Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Indian society

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

Indian Society

2BA5

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2BA5

Indian Society

2BA5
Indian society

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

1. Dr. Richa Yadav

(Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Reena Tiwari

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University))

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1 भारतीय समाज का पाठीय परिदृश्य 1
इकाई -2 भारतीय समाज का क्षेत्रीय परिदृश्य 12
इकाई -3 क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व 31
इकाई - 4 ग्राम, कस्बा एवं नगर 52

ब्लॉक -II

इकाई – 5 ग्राम, कस्बा एवं नगर 85
इकाई – 6 जनजाति 117
इकाई – 7 दलित 158
इकाई – 8 जनसंख्या-धरोहर एवं सम्बन्धित मुद्दे 177

ब्लॉक -III

इकाई – 9 जाति 221
इकाई – 10 धार्मिक विश्वास, व्यवहार एवं सांस्कृतिक प्रतिमान 255
इकाई – 11 नातेदारी 289
इकाई – 12 परिवार 341

ब्लॉक -IV

इकाई – 13 विवाह 396
इकाई – 14 भारतीय समाज में परिवर्तन एवं रूपान्तरण 465
इकाई – 15 राष्ट्र - निर्माण 479
इकाई – 16 परम्परा और आधुनिकता 508

ब्लॉक - I

इकाई -1
भारतीय समाज का पाठीय परिदृश्य
(The Textual view of Indian Society)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पाठीय परिदृश्य का अर्थ
1.4 पाठीय परिदृश्य के विश्लेषण के चरण
1.5 भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ सूची
1.10 अभ्यास प्रश्न

1.1 *प्रस्तावना*

भारतीय समाज और इसकी संस्कृति को समझना मानविकी और समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए हमेशा एक चुनौतीपूर्ण विषय रहा है। भारत में आठ से अधिक धर्म, सैकड़ों भाषाएँ, और जाति समूह हैं, जो विभिन्न भौगोलिक और जलवायु क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इस विविधता के कारण भारत को समाज और संस्कृति के संदर्भ में समझना उन लोगों के लिए एक चुनौती है, जो इसका अध्ययन करना चाहते हैं। भारत कई आधुनिक सभ्यताओं से पुराना है, और इसका इतिहास हज़ारों वर्षों पुराना है। इस लंबे इतिहास ने भारतीय समाज और संस्कृति को अत्यधिक विविध और जटिल बना दिया है।पश्चिमी सभ्यताओं के पास अपनी स्वयं की विद्वताएँ और विद्वान ज्ञान था। इन ज्ञान स्रोतों को ओरिएंटलिज़्म और इसके विद्वत्तापूर्ण दृष्टिकोण की ओर पश्चिमी श्रेष्ठता के

भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण के तहत नकारा गया। भारतीय समाज का 'वैज्ञानिक' अध्ययन, जो आधुनिक शिक्षा के युग में मानवशास्त्र (एंथ्रोपोलॉजी) के क्षेत्र में शुरू हुआ, ब्रिटिशों द्वारा भारत के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया के गहरे होने के साथ शुरू हुआ। जब ब्रिटिशों ने भारतीय प्रांत पर पूर्ण शासन प्राप्त करना शुरू किया, तो उन्हें भारतीय समाज को समझने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनमें शामिल थे:

• ज़मीन के स्वामित्व और किरायेदारी प्रणाली,

• विभिन्न जातियाँ और उनका विशाल भारत में शासन चलाने में भूमिका,

• विभिन्न धार्मिक समूह और उनके बीच सामुदायिक सद्भाव।"

समाज शास्त्र की मूल समस्या है समाज को समझना (Understanding Society)। यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि समाज को किस प्रकार से समझा जाये? चूँकि समाज शास्त्र समाज का विज्ञान होने के नाते इसका क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन करता है। समाज को समझने के दो आधार हैं-

(1) समाज की संरचना (Structure) को समझना।

(II) समाज में होने वाले परिवर्तनों (Changes) को समझना।

चूँकि समाज शास्त्र में भारतीय समाज (Indian Society) का अध्ययन किया जाता है। अतः भारतीय समाज को समझने के लिए भारतीय समाज की संरचना और इसमें होने वाले परिवर्तनों को समझना आवश्यक होगा। आगस्त कॉम्टे ने समाज शास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'समाज शास्त्र सामाजिक संरचना और गतिशीलता का विज्ञान है। इस दृष्टि से भी समाज दो भागों में विभाजित हो जाता है-

(1) सामाजिक स्थिति शास्त्र (Social Static) और

(II) सामाजिक गति शास्व (Social Dynamic) ।

इस प्रकार समाज के अध्ययन के दो स्वरूप है' जब इसे स्थिर मानकर अध्ययन किया जाता है तो समाज की संरचना का अध्ययन किया जाता है और जब इसे गतिशील मानकर अध्ययन किया जाता है तो इसमें होने वाले परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है।

यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि वे कौन-सी पद्धतियाँ (Methods) है, जिनकी सहायता से समाज का जो भी अध्ययन किया जाये तथा जो निष्कर्ष निकाले जायें, वे प्रामाणिक तथा वैज्ञानिक हों। इसके लिए प्रत्येक विज्ञान ने अपनी शोध पद्धति को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया है -

(1) सैद्धान्तिक (Theoretical) और

(II) व्यावहारिक (Practical)।

सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पद्धतियों के अनेक प्रकार है। इन प्रकारों में सैद्धान्तिक पद्धति का एक प्रकार पाठीय (Textual) है। इस पद्धति के द्वारा समाज के बारे में जो लिखित सामग्री उपलब्ध है, उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। भारतीय समाज का पाठीय परिदृश्य समझने के लिए आवश्यक है कि पहले पाटीय परिदृश्य के अर्थ को समझ लिया जाये।

1.2 *उद्देश्य*

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- भारतीय समाज के अध्ययन के लिए विकासात्मक, ऐतिहासिक और सभ्यतागत दृष्टिकोण।
- भारतीय समाज और संस्कृति का अध्ययन करने के विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने का महत्व।

1.3 पाठीय परिदृश्य का अर्थ (Meaning of Textual View)

पाठीय परिदृश्य जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस विधि की सहायता से लिखित सामग्री का विधिवत अध्ययन किया जाता है। भारतीय समाज की संरचना को समझने के लिए ढेर सारी लिखित सामग्री उपलब्ध है। दुनिया के अन्य देशों की तुलना में भारत में सबसे पहले संभ्यता का विकास हुआ।

सभ्यता के विकास का ही परिणाम है कि भारत में वेदों की रचना हुई। ऐसा कहा जाता है कि वेद विश्व के आदि ग्रंथ हैं। शब्दकोष के अनुसार परिदृश्य का अर्थ है- दृश्य, तस्वीर, दृष्टिकोण, नजर, आशय, अभिप्राय, अवलोकन, पर्यवेक्षण आदि। भारतीय समाज के परिदृश्य का तात्पर्य है भारतीय समाज को वस्तुस्थिति। इसलिए परिदृश्य का तात्पर्य हुआ भारतीय समाज की संरचना और इसमें होने वाले परिवर्तनों की वस्तुस्थिति। इसे ऐतिहासिक पद्धति (**Historical Method***)* के नाम से भी जाना जाता है। संक्षेप में भारतीय समाज के बारे में जो लिखित सामग्री उपलब्ध है, उसे इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है।

*1.4 भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य (*Textual View of Indian Society)

प्रो. श्यांमाचरण दुबे ने अपनी पुस्तक 'Indian Society' के प्रथम अध्याय 'Making of Indian Society' dian Society में भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्यों की विस्तृत विवेचना की। है। भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

(1) प्रजातीय विवरण (Racial Description) किसी भी समाज को समझने के लिए उस समाज की प्रजातियों को समझना अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि प्रजातियाँ ही समाज और संस्कृति तथा सभ्यता का निर्धारण करती है। अनेक विद्वानों ने भारतीय प्रजातियों का विवरण दिया है। इन विद्वानों में बी.एस. गुहा का विवरण महत्वपूर्ण है तथा इसकी सहायता से भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य को आसानी से समझा जा सकता है। गुहा ने भारत की निम्न छह प्रजातियों का उल्लेख किया है -

नीग्रिटो,

(ii) प्रोटो-आस्ट्रेलायड,

(ii) मंगोलायड,

(iv) भू-मध्य सागरीय,

(v) पश्चिमी चौड़े सिर वाले,

(vi) नार्डिक।

इनमें से प्रथम तीन प्रजातियाँ भारत की हैं, जिनका विवरण निम्न है-

क्रमांक	प्रजाति का नाम	निवास स्थान
1.	नीग्रिटो	अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, ट्रावनकोर और कोचीन, आसाम, पूर्वी बिहार के राजमहल की पहाड़ियाँ।
2.	प्रोटो-आस्ट्रेलायड	मध्य भारत की अधिकतर जनजातियाँ।
3.	मंगोलायड	आसाम, सीमांत प्रांत, चटगाँव, बर्मा, सिक्किम, भूटान, मणिपुर, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल।

भारतीय समाज के विकास में प्रजातियों की बहुलता तथा इनके योगदान की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

(2) सिंधु घाटी की सभ्यता (Indus Valley Civilization) सिंधु घाटी की सभ्यता भारतीय समाज

और जीवन का आइना है। जॉन मार्शल ने लिखा है कि "सिंधु घाटी के धर्म में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनसे

मिलती-जुलती बातें हमें अन्य देशों में भी मिल सकती हैं, लेकिन सब कुछ होते हुए भी उनका धर्म इतनी विशेषता के साथ भारतीय है कि आधुनिक युग के प्रचलित हिन्दू धर्म से कठिनता से इसका भेद किया जा सकता है।" सिंधु घाटी की सभ्यता भारतीय जीवन और समाज की अमूल्य धरोहर है। इससे ज्ञात होता है कि सिंधु

घाटी में एक विशाल सभ्यता का विकास हो चुका था। विद्वानों, वैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों का स्पष्ट मत था कि भारतीय सभ्यता की नींव इसी काल में

पड़ी थी और इस सभ्यता के तत्व आज भी मौजूद हैं। इस सभ्यता का अध्ययन करने से भारतीय समाज की संरचना और सामाजिक जीवन के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

(3) वैदिक सभ्यता (Vedic Civilization) भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्यों में वैदिक सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक सभ्यता और संस्कृति के संस्थापकों के लिए 'आर्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार जो बाहर से आए, वे आर्य कहलाए तथा यहाँ के मूल निवासियों को 'दस्यु' या 'दास' कहा। इसका कारण यह था कि भारत में आये लोग यहाँ के मूल निवासियों से अपने को श्रेष्ठ कहलाना चाहते थे। कुछ भी हो जो बाहर से आए, उन्होंने अपनी सभ्यता का विकास तो किया ही, साथ ही स्थानीय निवासियों की सभ्यता और आचार-विचार को अपने में समाहित कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों सभ्यताओं के विकास के कारण भारत एक सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज के रूप में विकसित हुआ। इस प्रकार आर्यों द्वारा विकसित सभ्यता को ही 'वैदिक सभ्यता' के नाम से जाना जाता है। वैदिक सभ्यता के अध्ययन से भी तत्कालीन भारतीय समाज और संस्कृति के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।

(4) जैन धर्म (Jain Religion) जैन धर्म आर्यों के वैदिक धर्म से बहुत पुराना है तथा भारतीय समाज और जीवन को समझने में जैन धर्म का योगदान महत्वपूर्ण है। जैन धर्म ने समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया तथा समाज में 'सुचिता' की स्थापना में योग दिया। व्यक्ति को कर्मों के स्थान पर समाज में महत्व देना तथा स्त्रियों की स्थिति को सुधारने में जैन धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्रियों की शिक्षा के कारण ही 2001 की जनगणना में जैन धर्मावलम्बियों की स्त्रियों में शिक्षा का प्रतिशत अधिक है। इस धर्म ने अनेक क्षेत्रों में योगदान दिया है, जिनमें कुछ प्रमुख हैं -

(i) सांस्कृतिक समन्वय एवं एकता का विकास,

(ii) प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों भावनाओं का समन्वय,

(iii) जातिवाद, भाषावाद, प्रांतवाद तथा सम्प्रदायवाद का विरोध,

(iv) सत्य, अहिंसा तथा धर्मनिरपेक्षता में विश्वास,

(v) भारतीय समाज की बहुलता एवं निरन्तरता में विश्वास।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय जीवन और समाज को समझने में जैन धर्म तथा साहित्य की महती भूमिका है।

(5) बौद्ध धर्म (Buddha Religion) सिद्धार्थ से गौतम और गौतम से ज्ञान प्राप्त करके 'बुद्ध' बनने की कथा का निचोड़ ही बौद्ध धर्म है। वैसे बुद्ध का अर्थ है ज्ञान प्राप्त करना। "अहिंसा परमोधर्मः" का उद्घोष करने वाले गौतम बुद्ध को बौद्ध धर्म का प्रवर्तक माना जाता है। गौतम बुद्ध के इसी 'अहिंसा' के सिद्धांत को महात्मा गाँधी ने अपनाया और दुनिया ने गाँधी के इस नए प्रयोग को अंगीकार किया। आजादी की सारी लड़ाई अहिंसा के अस्त्रों से लड़कर देश को स्वतंत्र कराने में जो सफलता गाँधी जी को मिली, वह दुनिया में अपने तरह की अनूठी है। बौद्ध दर्शन ने भारतीय समाज को जागृत किया तथा रूढ़िवादी तंत्र को तोड़ा है। बौद्ध धर्म ने जातीय बंधनों को तोड़ा है तथा अन्ध विश्वासों को दूर करने का प्रयास किया है। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारतीय समाज के विकास में योगदान दिया है।

(6) इस्लाम का प्रभाव (Impact of Islam) ताराचन्द ने अपनी पुस्तक 'Influence of Islam on Hindu Culture' में लिखा है कि 'भारत का सम्पर्क अरब से अत्यंत प्राचीन काल से है। पश्चिमी भारत में अरब लोगों की बस्तियाँ इस्लाम धर्म के उदय होने के पहले से ही विद्यमान थीं।'

भारत में इस्लामी शासक साम्प्रदायिकता के महत्व को समझते थे। यही कारण है कि साम्प्रदायिक सहिष्णुता को सर्वोच्च महत्व प्रदान करते थे। इस संदर्भ में बाबर द्वारा अपने पुत्र हुमायूँ को यह सन्देश देना महत्वपूर्ण है, जिसमें लिखा है कि "तुम धार्मिक भेदभाव को महत्व मत देना तथा निष्पक्ष न्याय करना। सभी लोगों के धर्मों की प्रथाओं का सम्मान करना। विशेष रूप से गाय के वध को रोकना, जिससे तुम भारत के लोगों के दिलों को जीत लोगे। तुम कभी भी किसी समुदाय के धार्मिक स्थानों को नष्ट मत करना।"

इससे स्पष्ट है कि मुगल सम्राट बाबर भारतीय समाज और जीवन को कितनी गहराई से जानता था तथा भारतीय समाज और संस्कृति का कितना सम्मान

करता था। अकबर जैसे महान शासकों ने भारत की नब्ज को पहचानकर भारतीयों पर शासन का प्रयास किया। यही कारण है कि लेनपूल ने लिखा है कि 'अकबर भारत के शासकों में सर्वोत्तम शासक हुआ है।' यही कारण था कि कालांतर में इस्लाम का भारतीयकरण हुआ। इस्लाम के अनेक विचारों को भारत ने ग्रहण किया तथा भारत की सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव इस्लाम पर पड़ा। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ा और सांस्कृतिक समन्वय के लिए पृष्ठभूमि तैयार हुई। इस्लामिक शासन व्यवस्था से भी भारतीय समाज और जीवन को समझने में मदद मिली है।

(7) ब्रिटिशे प्रभाव (British Impact) अंग्रेज भारत में व्यापारी बनकर आए, किंतु परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बदलीं कि वे शासक बन बैठे। अनेक बुराइयों के बाद भारत में ब्रिटिश शासन की एक ही उपलब्धि थी और वह थी भारत का एकीकरण। के. एम. पनिक्कर ने लिखा है कि "ब्रिटिश शासन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि भारत का एकीकरण थी।" भारत में अंग्रेजों के आने के कारण पश्चिमीकरण (Westernization) और आधुनिकीकरण (Modernization) को गांत मिली तथा इसका भारतीय जीवन और समाज पर चहुँमुखी प्रभाव पड़ा। अंग्रेजों ने भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कुछ अधिनियम भी बनाये जिनमें से में कुछ निम्नलिखित हैं-

(i) सती प्रथा निरोधक अधिनियम 1929,

(ii) विधवा पुनर्विवाह कानून 1856.

(iii) विशेष विवाह अधिनियम 1872,

(iv) बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929,

(v) बाल हत्या निरोधक अधिनियम 1909

इसके अलावा समय-समय पर विधि आयोगों (Law Commission) की स्थापना हुई, जिनके सुझावों के आधार पर अनेक कानूनों का निर्माण किया गया। ये कानून तलाक, सम्पत्ति हस्तांतरण, दत्तक ग्रहण, परिवार, भूमि अधिकार, व्यापार, जाति पंचायत, शिक्षा आदि से सम्बंधित थे। इनका सामाजिक जीवन पर व्यापक

प्रभाव पड़ा तथा इनके माध्यम से भारतीय समाज और जीवन को समझने में मदद मिली।

(8) स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज (Indian Society after Independence) 15 अगस्त, 1947 भारत आज़ाद हो गया। भारत में लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की गई। जनता को संवैधानिक अधिकार दिए गए। इन संवैधानिक अधिकारों में स्वतंत्रता, समानता, न्याय और मातृत्व की गारंटी दी गई। क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। जीवन के हर क्षेत्र में भारत ऊँचाइयों की ओर बढ़ा। अनेक कीर्तिमान स्थापित हुए। भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहलाने का गौरव मिला।ध

स्वप्रगति परीक्षण

1.भारतीय धार्मिक ग्रंथ कौन-कौन से हैं?

(What are the Indian religious texts?)

2.पुरातत्व साक्ष्य का महत्व क्या है?

(What is the significance of archaeological evidence?)

3.विदेशियों ने भारत का वर्णन कैसे किया है?

(How have foreigners described India?)

1.6 *सारांश*

विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी अकादमिक शिक्षा और उस समय के अकादमिक चर्चाओं से प्रभावित होकर भारतीय समाज और संस्कृति को विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है। उनके अध्ययन के क्षेत्र और शोध के आधार पर, उन्होंने उस दृष्टिकोण को अपनाया जो उनके अध्ययन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त था। प्रत्येक दृष्टिकोण एक लेंस की तरह है, जो छात्रों को समाज को उस विशेष कोण से समझने में मदद करता है। यह सलाह दी जाती है कि भारतीय समाज को समझने का प्रयास करते समय इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखा जाए। यदि छात्र उचित समझें, तो वे एक या एक से अधिक दृष्टिकोणों को जोड़

सकते हैं ताकि भारतीय समाज का समग्र दृष्टिकोण प्राप्त किया जा सके, जो कि मानवशास्त्र की एक विशेषता है - इसके छात्रों को समग्र दृष्टिकोण से समाज को देखने में मदद करना।

1.7 *स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जाँच

उत्तर 1 भारतीय धार्मिक ग्रंथों में वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, गीता, पुराण, जैन ग्रंथ (आगम) और बौद्ध ग्रंथ (त्रिपिटक) प्रमुख हैं।

उत्तर 2 पुरातत्व साक्ष्य प्राचीन सभ्यताओं, सांस्कृतिक विकास और ऐतिहासिक घटनाओं को समझने में सहायक होते हैं। ये भौतिक प्रमाण इतिहास को प्रमाणिकता प्रदान करते हैं।

उत्तर 3 विदेशी यात्रियों जैसे मेगस्थनीज, फाह्यान, ह्वेनसांग, और इब्न बतूता ने भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति का वर्णन अपने लेखों में किया है।

1.8 *शब्दावली*

1. सैद्धान्तिक (Theoretical): सिद्धांतों, विचारों, और अवधारणाओं पर आधारित अध्ययन।

2. व्यावहारिक (Practical): वास्तविक जीवन की परिस्थितियों और अनुभवों पर आधारित अध्ययन।

3. सामाजिक स्थिति शास्त्र (Social Static): समाज के स्थिर और संरचनात्मक पहलुओं का अध्ययन।

1.9 संदर्भ सूची

- Cohn, B.S. (2000). **भारत: एक सभ्यता का सामाजिक मानवविज्ञान**। न्यू दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

- Dirks, N.B. (2001). **मनोवृत्तियों का जाति: उपनिवेशवाद और आधुनिक भारत का निर्माण**। प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- Singer, M. (1958). **एक महान परंपरा एक महानगरीय केंद्र में: मद्रास**। *जर्नल ऑफ अमेरिकन फोकलोर*, 347-388।

1.10 *अभ्यास प्रश्न*

प्रश्न 1 निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए।

(अ) पाठीय परिदृश्य का अर्थ बताइये और भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य के महत्वपूर्ण स्रोतों का वर्णन कीजिए।

What is the meaning of Textual view and describe the important sources of Textual view of Indian Society.

(ब) भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य का वर्णन कीजिए ?

Describe about Textual view of Indian Society.

प्रश्न 2 भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य में सिंधु घाटी की सभ्यता और प्रजातियों की विवेचना कीजिए। Discuss Indus Valley Civilization and its races in Textual view of Indian Society.

प्रश्न 3. भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य में बौद्ध धर्म और बौद्धिक सभ्यता की स्थिति का वर्णन कीजिए। Describe about the status of Buddha Raligion and Vedic civilization in Textual view of Indian society.

इकाई - 2
भारतीय समाज का क्षेत्रीय परिदृश्य
(THE FIELD VIEW OF INDIAN SOCIETY)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 नाटक की विशेषताएँ एवं महत्व
2.4 मोहन राकेश का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
2.5 आधे-अधूरे नाटक के मुख्य वाक्यांश
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्द
2.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ
2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज की संरचना एवं कार्यों को समाजशास्त्रियों ने क्षेत्रीय अध्ययन के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया है। किसी भी समाज को पूर्णतया समझने के लिये पाठीय एवं क्षेत्रीय दोनों ही परिदृश्य आवश्यक है। इतिहासकार, भारतीय विद्या शास्त्री तथा ऐसे समाज शास्त्री जो कि ऐतिहासिक अध्ययनों को प्राथमिकता देते हैं, भारतीय समाज के पाठीय परिदृश्य को अधिमान देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ समाजशास्वी ऐसे हैं जो कि भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य को प्राथमिकता देते हैं। समाजशास्त्रियों का यह वर्ग भारतीय समाज ने संरचना और उसके प्रकार्यों, यथा- कार्य, अकार्य, दुष्कार्य, प्रत्यक्षकार्य तथा

अप्रत्यक्ष कार्यों के अध्ययन को महत्व देता है। भारतीय समाज का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्षेत्रीय अध्ययन एवं परिदृश्य अत्यंत आवश्यक है। क्षेत्रीय परिदृश्य के समर्थक समाज के स्थिर, अकालक्रमिक तथा वर्तमान स्थिति से संबंधित तथ्यों, आँकड़ों, कारण प्रभाव संबंधों के गहन अध्ययन पर जोर देते हैं।
प्रारम्भ में अधिकांश भारतीय और विदेशी समाजशास्वी, भारत के समाज व उसके विभिन्न पक्षों के ऐतिहासिक,
कालक्रमिक और गुणात्मक अध्ययनों पर विशेष ध्यान दिये थे, परंतु विगत वर्षों में क्षेत्रीय परिदृश्य पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। प्रस्तुत अध्याय में क्षेत्रीय परिदृश्य के अर्थ, विशेषताओं, महत्व और भारतीय क्षेत्रीय परिदृश्य पर प्रकाश डाला जाएगा।

2.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1.भारतीय समाज में मौजूद भौगोलिक, सांस्कृतिक, और भाषाई विविधताओं को पहचानना और उनका विश्लेषण करना।
2.विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक समूहों, जातियों, वर्गों, और समुदायों की संरचना और उनके आपसी संबंधों को समझना।
3.विभिन्न क्षेत्रों में कृषि, उद्योग, और अन्य आर्थिक गतिविधियों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का अध्ययन।

2.3 *क्षेत्रीय परिदृश्य का अर्थ (*Meaning of Field View)

क्षेत्रीय परिदृश्य जैसा कि इसके शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट हो रहा है, ये वे परिदृश्य है जो निश्चित भौगोलिक सीमा, भूमि, स्थान, प्रयोग क्षेत्र या निरीक्षण क्षेत्र में
स्थित समाज का क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन पर आधारित चित्रण है। क्षेत्र शब्द के विभिन्न संदों में भिन्न- भिन्न अर्थ होते हैं। यहाँ पर 'क्षेत्र' शब्द से

तात्पर्य वर्तमान भारतीय समाज जिसकी निश्चित भौगोलिक सीमा है तथा इसका निश्चित समाजशास्त्रीय निरीक्षण क्षेत्र है जो कि समाजशास्त्रियों द्वारा सुनिश्चित किए गए है। क्षेत्रीय परिदृश्य से तात्पर्य है अवलोकन, निरीक्षण या प्रत्यक्ष अध्ययन द्वारा संकलित सामग्री के अध्ययन के आधार पर समाज का सत्य, प्रमाणिक और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करना। क्षेत्रीय परिदृश्य का अर्थ है समाज की संरचना और उसके कार्यों का प्रत्यक्ष अध्ययन करके वर्णन करना व व्याख्या करना तथा यथार्थ विवरण तैयार करना है।

भारत में समाजशास्वीय अध्ययन की समृद्ध परम्परा रही है। इस क्षेत्र में प्राचीन शास्त्रीय स्रोतों और मौखिक, लिखित परम्परा के अनेक अध्ययन पीठ पाये जाते हैं। ज्योतिशास्त्र से लेकर उपनिषद और वेद, पुराण आदि हिन्दू शास्त्रों का व्यापक भण्डार अपने अनेक भाषांतर एवं शास्त्रीय टीकाओं से परिपूर्ण है। स्वतंत्रता पूर्व से पश्चिमी जगत के विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जा रहे नेतृत्व शास्त्र एवं समाजशास्व प्रभावित अध्ययन पद्धतियों का समावेश किया जाने लगा, तदुपरांत 1950 के आस-पास भारतीय समाज विज्ञान के मण्डल में तीन महान समाजशास्वी अपने प्रारंभिक योगदान से ही बहुचर्चित हुये।

प्रो. एम.एन. श्यामाचरण दुबे तथा प्रो. एम. एन. श्रीनिवास के योग्य शिष्य प्रो. आन्द्रे बेतई (दिल्ली विश्वविद्यालय) सागर से प्रो. श्यामाचरण दुबे पूरे भारत के अनेक संस्थानों के महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के साथ समाजशास्त्र की क्षेत्र कार्य परम्परा को आगे बढ़ाने में जहाँ अग्रणी रहे, वहीं दक्षिण भारत के 'रामपुरा' गाँव के बहुचर्चित क्षेत्र अध्ययन (Field work based) से पूरी दुनिया के समाजशास्त्रीय जगत में पहली पंक्ति के समाज विज्ञानी है।

क्षेत्र कार्य का ग्रामीण भारतीय इतिहास पचास-साठ साल पुराना है। यह सूक्ष्मदर्शी (Micro cosmic) दर्शन कराता है भारत के गाँवो का इससे ब्रहतत्व (Macro cosmic) अध्ययन कराया जा सकता है। क्षेत्र अध्ययन (Field Studies) को ग्राम अध्ययन (Village Studies) में ले जाये तो दो धारायें मुख्यतः दिखती है-

1. एक गाँव का अधिक समय तक किया गया अध्ययन।
2. कई गाँवों का विस्तृत पैमाने पर किया गया अध्ययन।

गाँवों में पहुँचने वाले नवोदित स्नातकोत्तर, शोध उपाधि के शोधकर्ता, किसी प्रोजेक्ट के सर्वे टीम का अगुवा एक-डेढ़ साल एक गाँव में रहकर मानव वैज्ञानिक पद्धति से काम करता रहा, सहभागी अवलोकन का सफल प्रयोग किया जाकर संग्रहीत जानकारियों पर आधारित 'निबंध' डाक्टोरल शोध ग्रंथ का प्रकाशन हुआ, आगे चलकर अनेक देशी, विदेशी मानववेत्ताओं के एकल ग्राम अध्ययन के आलेखों का सम्पादित संग्रह आये जैसे मैरियट सम्पादित, विलेज इंडिया, श्री निवास सम्पादित इंडियाज विलेज और डी. एन. मजूमदार सम्पादित 'विलेज प्रोफाइल' जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। दूसरे दौर में श्यामाचरण दुबे, आन्द्रे बेतई, के. ईश्वरन आदि नामचीन समाज विज्ञानी है, जिनके कार्यों का मानव विज्ञानी की अपेक्षा समाजशास्त्रीय का दृष्टिकोण है और 'इंडियाज चेजिग विलेजेज' कृति प्रो. श्यामाचरण दुबे को अग्रणी क्षेत्र विज्ञानी भी साबित करती है। क्षेत्र कार्य की दुरम्हता, श्रम, साध्य और थकान पूर्ण कार्यों की उपलब्धियाँ अनेकानेक मिली हैं। इसकी उपादेयता अनेक तरीके से मिलती है।

एम.एन. श्रीनिवास को उनके रामपुरा गाँव के अध्ययन के साथ-साथ संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण एवं प्रभु जाति की अवधारणा से निरंतर ख्याति मिली है। यह तीनों धारणाएँ ग्रामीण समाजों के अध्ययन में विश्लेषणात्मक विधियों (Analytical Techniques) का काम करती है।

क्षेत्रीय अध्ययन की उपादेयता निरन्तर बनी हुई है। भारत के इन तीनों अग्रणी समाज वैज्ञानिकों को प्रशिक्षित मानव विज्ञान भी कहा जा सकता है, क्योंकि समाजविज्ञान और सामाजिक मानवशास्त्र के बीच आन्तरिक सम्पर्क और निर्भरता से कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं तय हो सकती। प्रो. श्रीनिवास की परम्परा का अनुसरण अपने- अपने ढंग से प्रो. बेतई एवं दिल्ली के स्कूल ऑफ इकोनामिक्स (डी स्कूल) के अन्य समाजशास्त्री करते रहे। प्रो. अरिवंद शाह, वी.एस. वावस्किर, आनंद चक्रवर्ती के वरिष्ठ प्रो. आन्द्रे बेतई सभी 'क्षेत्रीय अध्ययन' के प्रमुख विचारक है।

ग्राम अध्ययनों में शास्त्रीय प्रवृत्तियाँ (Classical Approach) एवं दृष्टिकोण से आगे अनुभाविकता (Empiricism) को 1950 के बाद उभरती परम्परा कहा गया।

इसमें प्रो. श्यामाचरण दुबे की इंडियन विलेज (1955) का अध्ययन, श्रीनिवास के सम्पादन में प्रकाशित इंडियॉज विलेज में संग्रहीत लेख एफजी वेली कृत कास्ट एण्ड इकोनॉमिक, फ्रंटियर आदि अत्यंत नामचीन प्रकाशन भारत के लघु समुदाय यानि ग्राम अध्ययन है। ये सभी कृतियाँ (अंग्रेजी भाषा में) भारत के विभिन्न प्रांतों के गाँवों से परिचय कराती है।

सामाजिक अनुसंधान क्षेत्र कार्य के माध्यम से प्रामाणिकता और पुष्टिकरण (Validity and verifications of facts) हेतु अत्यंत उपयोगी रहा है। चैपिन (1920) की पुस्तक में इसकी व्याख्या मिलती है।

(1) प्रो. एम.एन. श्रीनिवास प्रो. श्रीनिवास भारत के अग्रणी पंक्ति के मानव विज्ञानी एवं समाजशास्त्री कहे जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रीय अध्ययन, जातीय गतिशीलता के रूप और अत्यंत बहुमुखी लेखन तथा रचना कर्म के लिए प्रो. श्रीनिवास नृजाति विज्ञान के आगे बीसवीं सदी में जाति के नये अवतार तक विस्तृत कैनवास रहा है। प्रो. अरविंद शाह ने हाल में सम्पादित एम. एन. श्रीनिवास प्रमुख आलेख (2002, आक्सफोर्ड यूनि.प्रेस) में समय रचना संसार इन खंडों में रखा है (देखिये शाह: 2002)

(1) ग्राम अध्ययन रामपुरा,

(2) जाति एवं सामाजिक संरचना,

(3) भारतीय महिला लैंगिकता (जेण्डर),

(4) सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन सम्बंधी,

(5) समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र का भारतीय परिप्रेक्ष्य,

(6) पद्धति शास्त्र,

(7) आत्मकथात्मक निबंधों का खण्ड।

2.4 ग्राम अध्ययन का पद्धतिशास्त्र: *Methodology of Village Studies*

ग्राम अध्ययन का पद्धतिशास्त्र: प्रो. श्रीनिवास ने अपना शोध कार्य प्रो. सदाशिव धुरिये (बम्बई) के निर्देशन में पूरा किया था। प्रो. धुरिये भारत विद्या, संस्कृति स्रोतो (क्लासिक ग्रंथों) में रुचि के साथ अनछुये ग्रामीण जीवन के पहलुओं हेतु मानवविज्ञानी को गाँव में जाकर सहभागी अवलोकन में बल देते थे। फलस्वरूप आपके शिष्यों ने क्षेत्रकार्य किया एवं प्रामाणिक कार्य प्रस्तुत किये। पद्धति शास्त्र (Method) के बारे में प्रो. श्रीनिवास ने ही कहा है कि किताबी दृष्टि (Book View) की जगह क्षेत्र दृष्टि (Field view) अपनानी होगी। आपका मानना है कि फील्ड व्यू की अवधारणा में ही बुक व्यू की अवधारणाओं से पैदा हुई विकृतियों और भाँतियों का संशोधन और परिष्कार करने की क्षमता है। प्रो. श्रीनिवास रामपुरा के अपने संस्मरणों को सामने रखकर एक नई कृति "यादों से रचा गाँव" (हिन्दी अनुवाद उपलब्ध राजकमल, 1995) दे सके, जो उनके स्टैनफोर्ड में 24 अप्रैल, 1970 को नष्ट हुए क्षेत्र कार्य मसौदों और डायरियों का सुंदर संस्मरणात्मक कृति बन गई। प्रसिद्ध रामपुरा ग्राम मैसूर राजवाड़े (कर्नाटक प्रदेश) का एक बहुजातीय गाँव है, जिसका फील्डवर्क 1945-46 में प्रो. श्रीनिवास ने किया। यानि स्वतंत्रता मिलने के वर्ष 1947 के पूर्व। चूंकि प्रो. श्रीनिवास भी इसी भाषाई प्रांत के निवासी थे तो उनका क्षेत्र कार्य दुभाषिये की सहायता की जगह निकटतम आमने-सामने के सम्बंधों के दायरे में हुआ। प्रमुख तथ्य यह है कि दस वर्षों बाद पुनः प्रो. श्रीनिवास ने रामपुरा का फिर से अध्ययन किया था। श्रीनिवास स्वीकार करते हैं कि उन्होंने भावना के आधार पर दक्षिण मैसूर क्षेत्र का चुनाव किया था। यह ग्राम रामपुरा न तो बहुत आधुनिक था न ही अत्यंत पिछड़ा हुआ। इसके पूर्व कुर्ग जाति के धर्म एवं परम्परा का अध्ययन उन्होंने किया था। अपने आलेख "अपने ही समाज के बारे में अध्ययन के सम्बंध में कुछ विचार" में लिखते हैं कि "कोई समाजशास्त्री स्वयं अपने ही समाज को किस हद तक समझ

सकता है", दक्षिण भारतीय होने से वे ब्राह्मणों और लिगायत दोनों समुदायों से संस्कृतिकरण का आदर्श (मॉडल) प्राप्त किये जबकि पश्चिमीकरण के क्षेत्रीय नजरिये का स्रोत भी दक्षिण भारत के मैसूर इलाके के ब्राह्मण रहे, प्रभुजाति की अवधारणा का भी प्रयोग वे मैसूर के एक गाँव की समाज व्यवस्था (A Social system in a Mysore village) में प्रस्तुत किये। 1948 के रामपुरा गाँव के क्षेत्र कार्य में वे ओक्का लिगा भूस्वामियों के प्रभुता (Dominance) को जाने तथा श्रीनिवास ने स्वीकार किया है कि उन्हें एन. रामराव की पुस्तक "केलवु नेनयुगलु" पढ़ने से धारणा को समझने में दृष्टि मिली। आपने दक्षिण भारत में पिछड़ा वर्ग आंदोलन की भी चर्चा की है, समाज शास्त्री के लिए उपयुक्त है कि वह अपने कार्य को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए अपनी धारणाओं और रुचियों का परीक्षण करना और उन्हें अपना सामाजिक पृष्ठभूमि और बौद्धिक इतिहास से जोड़ना आवश्यक है। (पृ. 134)

श्रीनिवास का मत है कि क्षेत्र कार्य (Field Work) अवलोकनकर्ता के अपने स्वयं के समाज से कुछ तटस्थता की आवश्यकता होगी, भावना और बुद्धि दोनों के साथ तटस्थता। क्षेत्र शोध (Field Studies) का दूसरा महत्व है। किसी अजनबी समाज के अवलोकन के लिये उत्कृष्ट तैयारी का कार्य करता है।

प्रो. श्रीनिवास सरकारी समितियों में काम करने वाले समाज वैज्ञानिकों के विकास कार्य को भी क्षेत्र अनुभव (Field Experience) के रूप में प्राप्त करने के समर्थक नजर आते हैं।

प्रो. श्रीनिवास पद्धतिशास्त्र की दृष्टि नई चुनौतियों को सामने रखते हैं। दुभाषिये की सहायता से कराये गये क्षेत्र कार्य कितनी प्रामाणिकता रखते हैं, जो अध्ययन के लिये चुने समुदाय से सीधा संवाद ही नहीं कर पाये, वह कितना सक्षम हो सकता है, उस समय के जानकार के रूप में?

(2) प्रो. श्यामाचरण दुबे (1922-1996) अग्रणी विज्ञान, साहित्य सेवा और चिंतक होने के कारण उत्तर भारत के अग्रणी समाज दृष्टा कहे जा सकते हैं। ग्रामीण अध्ययन की क्लासिक कही जाने वाली इंडियन विलेज (1955; से लेकर विकास शास्त्र तक एक दर्जन ख्याति प्राप्ति कृतियाँ प्रो. दुबे का समाजशास्त्र को योगदान

है। शमीर एट का अध्ययन क्षेत्र कार्य परम्परा में मील का पत्थर कहा जा सकता। इस पुस्तक वह हिन्दी अनुवाद सहज

श्रीनिवास (1967) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल Insider vernas netsider

भाषा में आम पाठक को पसंद है। प्रो. दुबे ने इंडियाज चेंजिंग क्लिजेज (1958) में गाँवों में बाहर से आने वाले प्रभावों का आकलन किया। ग्रामीण मूल्यों एवं परम्पराओं की उपेक्षा करने से विकास कार्यक्रमों की सफलता कम मिलेगी। अगली पुस्तक एक्सप्लेनेशन एण्ड मैनेजमेंट आफ चेंज में आधुनिकता इसके प्रभावों की विशद व्याख्या मिलती है।

प्रो. श्यामाचरण दुबे के द्वारा भारत में समाजशास्व, साहित्य, प्रशासक, नौकरशाही के प्रशिक्षण, एकेडेमिक जगत को सम्बोधित लेखन कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में किया गया, इसके आधार पर वे ग्राम अध्ययन से लेकर संचार क्रांति के प्रभावों को समाजशास्त्र की अनिवार्य विषयवस्तु का दर्जा देने में सफल हुये।

1960 में प्रकाशित मानव और संस्कृति आदिवासी भारत से परिचय कराती है, जिस पर वे समस्या और समाधान तक जाते है। सभ्यतामूलक सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण से आगे विकास एवं परिवर्तन, साहित्य का समाज शास्त्र गंभीर मनन और अध्ययन की गहरी भावना प्रो. दुबे के व्याख्यान, अखबारी लेखन और मूर्ति देवी पुरस्कार से सम्मानित उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व भारतीय समाज के 'पितामह' का दर्जा दिये जाने का सप्रमाण प्रतीक कहा जा सकता है।

प्रो. श्रीनिवास ने समाज की किताबी समझ और फील्ड वर्क पर आधारित दृष्टि में भेद किया है। प्रो. आन्द्रे बेतई भी इस तरह मठाधीश (Pontif) और यायावर प्रकृति के समाजशास्त्री का रूप बताया है। अपने समाज से कटा हुआ लेखन और अनुसंधान किसी प्रयोग का नहीं होता।

इस तरह प्रो. श्रीनिवास, प्रो. श्यामाचरण दुबे, प्रो. आन्द्रे बेतई ऐसे समाजशास्वी हैं, जिनकी संवदेनशीलता और प्रतिभा बेजोड़ है। प्रो. श्रीनिवास के समाजशास्त्र पर अनेक समालोचनाएँ है, परन्तु उनके 'फील्ड व्यू' आधारित तीनों अवधारणाएँ आज

भी अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए हैं। प्रो. श्यामाचरण दुबे उन्नत कोटि के साहित्यिक होने के साथ यायावर प्रकृति के समाजवैज्ञानिक रहे सर्वाधिक संस्थान और देशाटन में भ्रमण, नया दायित्व और सक्षम प्रशासक जैसी पहल के साथ।

प्रो. आन्द्रे बेतई सीधे तौर पर क्षेत्र कार्य परम्परा में प्रो. श्रीनिवास के सच्चे अनुयायी साबित हुए हैं। इन्होंने जर्नीमेन (Jounney man) और मठाधीश समाज शास्त्री का काम और उपयोग बताया। आज समाजशास्त्र को देशज और स्थानीय संकीर्णताओं से भी बचाने की आवश्यकता है। श्रीनिवास भाषा, स्थानीयता, महिला समानता, प्रजननता, सा. आंदोलन जैसे पक्षों पर व्यावहारिक समाजशास्त्र की धारा के बिल्कुल निकट पहुँचते हैं, प्रो. दुबे साहित्य के प्रति जरा खुलकर आगे आये और "परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति" कृति से उन्हें भारी सम्मान समाजशास्त्र के बाहर मिला। प्रो. श्रीनिवास एवं प्रो. दुबे हमारे बीच नहीं है। अब परंतु उनका कृतित्व युवा पीढ़ी की थाती है। दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद प्रो. आद्रे बेतई समाजशास्त्र के आकाश में सबसे उज्ज्वल तारे की भाँति दैदीव्यमान है।

भारतीय समाज के सकलात्मक (Holistic Approach) देखे जाने हेतु इन तीनों समाजशास्त्रियों के विचार क्षेत्र कार्य परम्परा और शास्त्रीय समाजशास्त्र (Classical Sociology) हेतु उपादेयतापूर्ण क्षेत्र कार्य पद्धति में प्रो. दुबे की पहल सर्वाधिक आरंभिक काल की है और वे 1958 में अंतर अनुशासनिक शोध (Interdisplinary Research) के अग्रणी थे। इंडियाज चेंजिंग विलेज इसकी देन है।

क्षेत्र कार्य के सुस्थापना में इसका योगदान कहा जा सकता है। नियोजित परिवर्तन के साथ-साथ समाज विज्ञान के उभरते हुए क्षेत्र एवं उपयोगिता का "ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों" का प्रामाणिक अध्ययन हेतु अन्तर अनुशासनिक पक्ष जानना आवश्यक है। गाँव के अन्दर और बाहर की दुनिया को जानना साहित्य से भी संभव है। अपने बाद की कृतियों से वे पद्धतिशास्त्र के प्रवर्तक के अलावा चितक के रूप में स्थापित हुये और समाजशास्त्र की विषय वस्तु और दृष्टिकोण जिस तरह तीस-चालीस वर्षों में बदलता रहा। इसी के साथ-साथ प्रो. दुबे का

कृतित्व बहु आयामी हुआ, वे प्रगति के माप तौल के गणित की आलोचना करने से नहीं चूके। अस्मिताओं का संघर्ष और पहचान की राजनीति की आलोचना करने में पीछे नहीं रहे। विकास की वजह से पनप रही विषमता उनके नजर में भी 'संक्रमण की पीड़ा' कृति में प्रो. दुबे उदारीकरण से चितित नजर आते हैं। वे कहते हैं विकास का एक ही मार्ग रह गया है। बाजार के संकेतों पर चलने वाली मुक्त अर्थव्यवस्था (पृ. 60-61) गरीबी और साधनहीनता के प्रश्न पर आपको समाजशास्त्र का अमर्त्य सेन (अर्थशास्त्री नोबल पुरस्कृत) कहा जा सकता है, जैसा विवेचन किया है। प्रो. दुबे रचित विकास का समाजशास्त्र (1996) में भारतीय समाज के समक्ष उत्पन्न परिवर्तन की चुनौतियों का विश्लेषण सामयिक है।
समाजशास्व की अध्ययन पद्धति और भारतीय समाज की वास्तविकता के बारे में श्यामाचरण दुबे परिवर्तन प्रबंधन की समस्या की ओर इशारा करते हैं, समाजशास्त्र को नीति प्रशासन में सहभागी होने का आह्वान करते है।
(3) प्रो. आन्द्रे बेतई (Andre Beteille) सन् 1960-70 के दशक में कास्ट, क्लास एण्ड पावर (1969) का प्रकाशन होने पर तेजी से लेखक का नाम चमका। प्रोफेसर आन्द्रे बेतई ने लगभग 10 वर्षों के प्रयास के साथ दक्षिण भारत के एक गाँव की सम्पूर्ण अनुभाविक तथ्यों (Total Empirical Facts) सहित प्रस्तुति की। जिस पर उन्हें पूर्व में दिल्ली विश्वविद्यालय से से डॉक्टरेट उपाधि प्राप्त हुई। थी। प्रो. आन्द्रे बेतई एकल ग्राम के प्र ग्राम अध्ययन परम्परा के समृद्ध प्रवक्ता के रूप में जाने जाते हैं। 1965 से 2002 तक प्रमुख प्रकाशित कृतियों की सूची से स्पष्ट होता है कि प्रो. बेतई ने भारतीय ग्राम के एकल अध्ययन से आगे चलकर जाति व्यवस्था की स्तरीकरण संरचना, असमानता के विभिन्न पक्ष, राज और समाज की भारतीय परिवर्तनोन्मुख को दशाओं के साथ धर्म निरपेक्षता, मार्क्सवाद और बहुलतावादी वैचारिकी का नवीन रूप, धर्म का समाज विज्ञान, आर्थिक समाजशास्त्र, विज्ञान और परम्परा आदि पर व्यापक लेखन, व्याख्यान एवं शोद्य परक लेखन किया। टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित आलेखों का नवीनतम संग्रह क्रमिनल ऑफ अथर टाइम विशेष रूप से सामान्य पाठकों के लिए पठनीय है।

प्रो. आन्द्रे बेतई का रचना संसार अत्यंत व्यापक एवं भरा-पूरा होकर निरन्तर जारी है। उनके अत्यंत समृद्धिवाद लेखन का हम विश्लेषण इन महत्वपूर्ण बिंदुओं में संक्षेप में करने का प्रयास करेंगे।

(1) भारतीय ग्रामीण अध्ययन सूक्ष्म मानवशास्त्रीय पद्धति के अध्येता आन्द्रे बेतई भारतीय समाजशास्त्री गुरुवर प्रो. निर्मल कुमार बोस, श्रीनिवास के पथ के अनुगामी रहे है। 1972-73 में राष्ट्रीय प्राध्यापक (नेशनल प्रोफेसर यू.जी.सी.) के कार्यकाल में आपने कृषक वर्गों, लघु समुदाय के रूपों पर व्याख्यान दिया था। भारतीय जनजातियों के ऊपर भी वे बिहार के मुण्डा और आस्ट्रेलिया के आदिम समाजों को भी तुलना परक व्याख्या में शामिल करते है। इस तरह तुलनात्मक समाजशास्त्र (Comparative Sociology) की दुर्खीम समाजशास्त्र का आग्रह/दृष्टिकोण प्रकट होता है।'

वर्तमान तक कृषक वर्गों पर जो अध्ययन हो चुके हैं, उनसे भिन्न आज का आधुनिक भारत है। सदी के अंत तक संचार तकनीक और डिजीटल क्रान्ति से अछूते भारत के गाँव नहीं है। सन् 1970 तक हरित क्रान्ति के प्रभावों के आकलन अध्ययन की प्रमुख धारा थी। आज ग्रामों के आन्तरिक संरचना में जो नवीन अन्तर्विरोध है। आन्द्रे बेतई जाति और वर्ग के ग्रामीण भारत में उभरते प्रवृत्तियों को पचीस वर्ष पूर्व इशारा कर चुके। जाति में वर्गीय गतिशीलता की संभावना उन्होंने पहले देख ली थी, जाति की ग्राम स्तर पर आर्थिक, राजनीतिक ताकत को अनुभव जन्य अब कहा जाने लगा है। भारतीय गाँव और इनके निवासियों की विशेषता रही है कि एक ओर तो इनके बीच बंधुता और विवाह की सुनियोजित व्यवस्था है। इसकी ओर ये कृषकगण स्तरीकरण और वर्गीकरण की दुरूह व्यवस्था के अंश है।

ग्रामीण अध्ययनों में जाति, वंशावली और सम्बंधों को विशिष्ट स्थान दिया जाता है। बेतई इसके साथ स्तरीकरण और श्रेणी (वर्ग) की उपादेयता बताते है। भारत के गाँवों में एक ओर कुछ न कुछ करने वाले जमींदार हैं और दूसरी ओर जमीन बेदखल हुये मजदूर हैं।

प्रो. बेतई का मत है कि कृषक समुदायों का अध्ययन, तृतीय विश्व में जागरुकता और चेतना प्रक्रिया - का अंश भी है। चीन और भारत दोनों देशों में ग्राम सुधार कार्यक्रमों ने कृषक समुदाय के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण काम किया है। कृषक समाज (Peasant Society) संकल्पना की व्याख्या प्रो. बेतई अपने अध्ययन के आधार पर करते हैं। रेडफील्ड को सभ्यता मूलक व्याख्या से लगभग भिन्न एशियाई कृषक समुदायों की 'पहचान' निरूपित करते हैं, वे कृषक समाज में उत्पादन और तकनीक के संगठन पर जोर देते हैं, जबकि अधिकांश जोर गाँव में जाति व्यवस्था पर शोधकर्ता देते थे। बारीकी से देखने पर जाति केन्द्रित अध्ययनों से आगे देखना कि सभी कृषकों के समुदाय (Homogenous Catagories) नहीं थे, अपितु ते अक्सर भूस्वामी, काश्तकार (Tenant-Cultivator) और भूमिहीन श्रमिकों में विभाजित थे। उत्पादन सम्बन्धों (Relation of Production) का अध्ययन रामकृष्ण मुकर्जी के अलवा प्रो. आन्द्रे बेतई के द्वारा प्रधानता से अपनाया गया। प्रो. बेतई का आग्रह भूमि के स्वामित्व, नियंत्रण एवं प्रयोग के सम्बंध में व्यापक एकल ग्राम अध्ययन (Single Village Studies) की ओर रही है। प्रो. बेतई (Peasant question) की मार्क्सवादी व्याख्या से आगे अधिक समग्रता मूलक दृष्टि (Holistic Approach) अपनाते हैं। कृषक प्रश्न आर्थिक एवं राजनैतिक दोनों रूपों में महत्वपूर्ण है।

रेडफील्ड के सभ्यता को समझने, यूरोपीय मार्क्सवादी इतिहासकारों का साम्यवादी व्यवस्था में 'कृषक प्रश्न' समझने से आगे भाग में उपनिवेशवादी परिस्थितियों में बदलते कृषकीय सम्बंधों (Colonial Peasantry) को आन्द्रे बेतई मानव शास्त्रियों के साथ आत्म निर्भरता, वर्गीय चरित्र एवं अन्तर ग्रामीण सम्बंधों का व्यापक 'पैटर्न' देते हैं, यह उनकी तुलनात्मक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का कार्य है।

अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ग्रामीण भारत, शहरी भारत एवं जनजातीय भारत में पूरा देश विभाजित नजरिये से देखा जाये। इस दृष्टिकोण से कृषक समुदाय के प्रतिनिधिक चरित्र नहीं प्राप्त हो पाते। जनजाति कृषकों में अनेक स्थायी कृषि करते है तथा कृषक जनजाति विभेद देखना शेष ग्रामीण भारत के संदर्भ में पुरातन संज्ञा होगी। जमीन जोतना किसी को कृषक बनाता है। प्रो. आन्द्रे

बेतई ने तंजौर (तमिलनाडु) के श्रीपुरम ग्राम का गहन क्षेत्र का कार्य किया था। (पीएचडी उपाधि के लिये लगभग 7 वर्षों तक क्षेत्र कार्य) इसमें वे दक्षिण के गाँवों के कृषकीय परिस्थितियों से सामना करते हैं। इनका अध्ययन ग्राम 349 घर परिवारों का एक बड़ा गाँव है, जिसकी सामाजिक बनावट बहुत अधिक विभेदीकृत तथा स्तरीकृत है। यह श्रीपुरम एक प्राचीन गाँव है। 349 घर-परिवारों में 92 ब्राह्मणों के है, जो अलग अग्रहारम नाम की गली में बसे हैं। ये ब्राह्मण परिवार मरासदार (भू-स्वामी और भाड़ा उगाहने वाला) है तथा पीजेन्ट या कृषक के शब्द कोष परिभाषा से नहीं सूचित होते। अपने आलेख 'कृषक समाज की संकल्पना' में बेतई रेड फील्ड, शानीन के 'कृषक' संकल्पना को भारतीय ग्राम के लिये उपयुक्त नहीं पाते। आपका मत है कि भारत में विभिन्न प्रकार के ग्राम है। कुछ तो साफ तौर पर कृषक ग्राम है, जबकि अन्य गाँवों में गैर कृषकों के साथ सह अस्तित्व में रहते हैं और कभी-कभी उनके संख्या के हिसाब से न सही, सामाजिक, आर्थिक गैर राजनैतिक प्रभाव के हिसाब से अधिक प्रभावशाली हो सकते हैं। यह संभव है भिन्न क्षेत्रों में, भिन्न प्रकार के गाँव अधिक महत्वपूर्ण होते है। यथार्थ प्रत्येक बड़े क्षेत्र में अनेक प्रकार के गाँव होंगे। (पृ. 64 वही) वह कृषक वर्ग "और कुलीनता का सह अस्तित्व है।"

प्रो. बेतई के अध्ययन ग्राम श्रीपुरम में काश्तकार और मजदूरों की गैर ब्राह्मण जातियाँ हैं, खेती करने वाले वेत्लाल, कल्ला, पदयाची प्रमुख है जो मालिक काश्तकार न होकर आसामी थे। भूमिहीन मजदूरों को पटिया और पल्ला नामक जातियाँ श्रीपुरम में थी। खेती का वास्तविक कार्य कौन करता है? जमीन और श्रम की साझेदारी आदि अनेक कृषक श्रेणी विभाजन के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण विकसित करने का श्रेय प्रो. बेतई को है। प्रो. वेतई पहले समाजशास्त्री हैं जो भारत में कृषि से स्वियों के अलग रखने का प्रश्न प्रतिष्ठा एवं स्तरण जैसे संवेदनशील संकेतक माने जनजाति और कृषक वर्ग को आधुनिक समाजशास्त्री वर्गीय श्रेणीबद्धता प्रश्न पर केन्द्रित किया है, जनगणना (1931) में 'कृषक' लिखे जाने की त्रुटियों भी आपने बताईं। राँची जिले (झारखंड) के उराव जनजाति में 1956- 57 के क्षेत्र कार्य के दौरान, हजारीबाग के संथालों के बीच क्षेत्र कार्य के

आधार पर आपने पाया कि संथाल और उरावों के गाँव 'कृषक' के सामान्य अर्थ के बहुत निकट आते हैं। कम जनसंख्या वाली जनजातियाँ और बड़ी समाजशारव बी.ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-11 जनजातियों की अर्थव्यवस्था से जनजाति कृषक निरंतरता (Tribal-Peasant Continum) को देखें तो ग्रामीण अध्ययनों (Rural Studies) को जनजातीय अध्ययनों की भांति ही किया जा सकता है। बेतई ने वेली, निर्मल कुमार बोस, एल्बिन के जनजाति लक्षणें का कृषक संदर्भों में परीक्षण किया है। जाति (वर्ण) और जनजाति को समझने का सूत्र कृषकीय श्रेणीबद्धता के विशेषताओं में है। प्रजाति एवं भारत विद्या (Ethnographical Indological) से अलग ढंग से देखा जाये।

2.5 कृषक एवं श्रमिक *Farmers and workers*

ग्रामीण समाजशास्त्र में श्रम की विवेचना सामाजिक आर्थिक सम्बंधों के पक्ष में की जाने का रिवाज क्षीण रहा है, जबकि बेतई का मत है कि कृषक एवं श्रमिकों की चर्चा करते समय हम समाज का स्तरीकरण व्यवस्था अथवा उसके वर्ग विन्यास पर विचार कर रहे होते हैं। (पृ. 87) मार्क्स, लेनिन औसोव्स्की (1963)। मार्क्स के प्रमुख तर्कों का सामान्य सहमति भी है। भारत की ग्राम्य समाज में परिस्थितियाँ समूहों के मध्य असमानता के साथ-साथ हितों का द्वंद्व भी है। ये असमानताएँ और द्वंद्व भूमि के स्वामित्व और उपयोग के इर्द-गिर्द महत्वपूर्ण सबसे केन्द्रीभूत है। आन्द्रे बेतई का वर्गीकरण देखें-

(1) कृषि कार्य करने वाले भू-स्वामी तथा निश्चित अवधि के लिए भूमि स्वामी (Tenure holders)।

(2) कृषि कार्य करने वाले भू-स्वामी और कृषि करने वाले वे आसामी जिनके काश्तकारी अधिकार मान्य है।

(3) बटाई पर कृषि करने वाले तथा कृषि श्रमिक श्रेणी 2,3 मिलाकर 'वास्तविक कृषक' हैं श्रेणी में आने वाले किसी भी अर्थ में कृषक नहीं कहे जा सकते।

(1)

भारत में जाति व्यवस्था का दबाव है, तभी उच्च सामाजिक स्तर तथा हाथ के काम के बीच अति संवेदनशील विलोम सम्बंध है। कृषि कार्य में वास्तविक भागीदारी के विभिन्न प्रकार देखे जाने योग्य है। शारीरिक श्रम का प्रत्यक्ष योगदान, स्त्री-पुरुष के बीच श्रम का विशिष्टीकरण और विभाजन भी। कृषि श्रमिक शब्द निःसंदेह संकुचित रूप में केवल उन श्रमिकों के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है, जो नकद मजदूरी के लिये काम करते हैं। कृषक का कृषि मजदूर के रूप में रूपांतरण आज भी इस बात का सबसे आम संकेतक है कि कृषि की बाजार स्थिति नीचे गिरती जा रही है। (बेतई पृ. 99)

स्वप्रगति परीक्षण

1. Indias changing village के लेखक हैं-

(अ) योगेश अटल (ब) मैरियट (स) एस.सी. दुबे (द) एम.एन. श्रीनिवास

2. यादों से रचा गाँव किस लेखक की पुस्तक है-

(अ) एम.एन. श्रीनिवास (ब) श्रीमती लीली दुबे (स) जी.एस. घुरिए (द) के.एम. कपाड़िया

2.6 सारांश

भारतीय समाज का क्षेत्रीय परिदृश्य उसकी सांस्कृतिक, भौगोलिक और सामाजिक विविधताओं का प्रतिबिंब है। यह अध्याय भारत की क्षेत्रीय विविधताओं और उनकी विशेषताओं को समझाने पर केंद्रित है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास ने भारतीय समाज की विशिष्टताओं को समझने के लिए "क्षेत्रीयता" के महत्व पर जोर दिया। मुख्य बिंदु:

1. क्षेत्रीयता और भारतीय समाज: श्रीनिवास के अनुसार, भारतीय समाज में क्षेत्रीय विविधताएं सामाजिक संरचनाओं को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भौगोलिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण समाज के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग रीति-रिवाज, परंपराएं, और सामाजिक व्यवहार विकसित हुए।

2. भौगोलिक विविधता: भारत का विभाजन भौगोलिक दृष्टि से पहाड़ी, मैदानी, रेगिस्तानी, और तटीय क्षेत्रों में होता है। हर क्षेत्र में वहां की जलवायु और भौगोलिक स्थिति के अनुसार समाज का विकास हुआ।

3. सांस्कृतिक विविधता: क्षेत्रीय सांस्कृतिक विविधता भारतीय समाज की विशेषता है। विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाएं, त्योहार, भोजन, और वस्त्र शैली पाई जाती हैं। एम.एन. श्रीनिवास ने "डोमिनेंट कास्ट" (प्रभुत्वशाली जाति) और "संस्कृतिकरण" (Sanskritization) जैसे सिद्धांतों के माध्यम से समाज को समझाया। उन्होंने बताया कि क्षेत्रीय विविधता के बावजूद, भारतीय समाज में परस्पर संबंध और सामाजिक प्रक्रियाएं, जैसे संस्कृतिकरण, एकरूपता को बढ़ावा देती हैं। भारतीय समाज का क्षेत्रीय परिदृश्य उसकी जटिलता और समृद्धि को दर्शाता है। यह क्षेत्रीयता समाज में विविधता और एकता दोनों को बनाए रखने में सहायक है। श्रीनिवास का दृष्टिकोण हमें क्षेत्रीयता के सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व को समझने का एक व्यावहारिक आधार प्रदान करता है।

2.7 *स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जाँच

उत्तरः- 1. (स),

उत्तर 2 (अ),

2.8 *मुख्य शब्द*

1. सामाजिक गति शास्त्र (Social Dynamic)

- **अर्थ**: समाज में होने वाले परिवर्तनों और उनके कारणों का अध्ययन।
- **मुख्य विचार**: यह समाज के विकास और परिवर्तनशील पहलुओं को समझने का प्रयास करता है।
- **उदाहरण**: समाज में औद्योगीकरण और शहरीकरण के प्रभावों का अध्ययन।

2. प्रजातीय (Ethnic)

- **अर्थ**: यह जातीय या नस्लीय समूहों के सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यवहारिक पहलुओं का अध्ययन करता है।
- **उदाहरण**: विभिन्न प्रजातीय समूहों की परंपराओं, भाषाओं और सामाजिक जीवनशैली का अध्ययन।

2.9 संदर्भ ग्रंथ

- राकेश, मोहन। (2020). आधे अधूरे और अन्य नाटक. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन। ISBN: 978-9388239565.
- त्रिपाठी, नरेश। (2018). मोहन राकेश के नाटकों में मानव संघर्ष . नई दिल्लीः साहित्य भंडार। ISBN: 978-9386658788.
- सिंह, संतोष। (2017). आधे अधूरेः एक अध्ययन . नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन। ISBN: 978-9351868396.

2.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न. 1- निम्नलिखित की व्यख्या कीजिए।

1.भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों और प्रमुख स्रोतों की विवेचना कीजिए। What do you mean by the Field View of Indian Society? Illustruate its aims and main sources.

2.भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य की विवेचना कीजिए।

Describe the Field View of Indian Society.

3.क्षेत्रीय परिदृश्य की परिभाषा दीजिए और भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य के प्रमुख घटकों का वर्णन कीजिए। Define the Field View and describe the main bodies of the Field View of Indian Society.

4.भारतीय समाज के बारे में क्षेत्रीय दृष्टिकोण का मूल्यांकन कीजिए।

Evaluate Field Views about Indian Society.

5.भारतीय समाज के अध्ययनों में प्रो. एस.सी. दुबे का योगदान लिखिए।

Write Contributions of Pro. S.C. Dube on studies of Indian Society.

6. प्रो. एम.एन. श्रीनिवास का ग्रामीण जीवन और भारतीय समाज पर अध्ययन की विवेचना कीजिए। Discuss studies on Indian Society and rural life of Prof. M.N. Sriniwas.

प्रो. आन्द्रे बेतई के भारतीय समाज पर दृष्टिकोण लिखिए।

7. Write views of Prof. Andre Beteille on Indian Society.

8. क्षेत्रीय परिदृश्य के महत्व को विवेचना कीजिए ? Discuss about importance of the field view.

9. क्षेत्रीय परिदृश्य की प्रकृति, उद्देश्य एवं विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसके भारतीय समाज से उदाहरण देते हुए महत्व पर प्रकाश डालिये।

Describing nature, aim and characteristics of the field view, throw light its importance giving examples from Indian Society.

10. क्षेत्रीय परिदृश्य का भारतीय समाज की संरचना और परिवर्तन के अध्ययन एवं रूपांतरण में क्या महत्व है? व्याख्या कीजिए।

What is the importance of field view in study and changes of status of the construction and changing of Indian Society. Explain.

11. शास्त्रीय और क्षेत्रीय दृष्टिकोणों के पारस्परिक सम्बंधों को लिखिये। Write interface of classical and field views.

12. शास्त्रीय और क्षेत्रीय दृष्टिकोणों का महत्व लिखिये? Write importance of classical and field views.

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए - Write a short note on following.

1. क्षेत्रीय परिदृश्य का अर्थ Meaning of Field View.

2. क्षेत्रीय परिदृश्य के दो उद्देश्य Any two aims of Field View.

3. भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य के प्रमुख स्रोत Main Sources of Field View of Indian Society.

4. क्षेत्रीय परिदृश्य की प्रकृति Nature of Field View.

5.क्षेत्रीय परिदृश्य की उपयोगिता

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1.संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रतिपादन किसने किया-

(अ) डी.एन. मजूमदार (ब) एस.सी. दुबे

(स) एम.एन. श्रीनिवास (द) ए.आर. देसाई

2.'मानव और संस्कृति' पुस्तक के लेखक है-

(अ) आन्द्रे बेवई (ब) एम.एन. श्रीनिवास (स) एस.सी. दुबे (द) जी.एस. धुरिए

उत्तरः- 1. (स), 2. (स), ।

...

इकाई - 3
क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व
(THE SIGNIFICANCE OF FIELD VIEW)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 परिचय क्षेत्रीय परिदृश्य की विशेषताएँ एवं प्रकृति
3.4 क्षेत्रीय परिदृश्य की उपयोगिता एवं महत्व
3.5 क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्द
3.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ
3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 *प्रस्तावना*

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है। समाज में रहने के कारण उसका समाज के अन्य व्यक्तियों तथा सस्थाओं से अन्तः क्रिया (Interaction) होता है। ये अन्तः क्रियाए दो प्रकार की होती है- सहयोगी (Co- operative) और असहयोगी (Non-Co-operative)। व्यक्ति की इन क्रियाओं का आधार है- समाज के बारे में व्यक्ति की समझ। समाज को समझने के मुख्य दो आधार है-
(a)लिखित सामग्री को पढ़कर, और

(b)समाज के बारे में किए गए नए शोध कार्यों या क्षेत्र क के आधार पर।

3.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. क्षेत्रीय विविधताओं और उनके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों को समझना।
2. भौगोलिक विशेषताओं और संसाधनों के महत्व को पहचानना।
3. क्षेत्रीय विकास के लिए प्रभावी नीतियां और योजनाएं बनाने की प्रक्रिया जानना।

3.3 परिचय क्षेत्रीय परिदृश्य की विशेषताएँ एवं प्रकृति (*Characteristics and Nature of Field view)*

किसी भी परिदृश्य का महत्व उसकी प्रकृति और विशेषताओं में निहित होता है। भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य के महत्व को समझने से पहले यह आवश्यक है कि इसकी विशेताओं और इसकी प्रकृति को समझ लिया जाय। इस दृष्टि से भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य की प्रमुख विशेषताएँ और उसकी प्रकृति निम्नलिखित है-

1.वैज्ञानिक (Scientific): क्षेत्रीय परिदृश्य की प्रकति वैज्ञानिक है। इसका कारण यह है कि जितने भी क्षेत्रकार्य किए जाते हैं, वे सभी वैज्ञानिक विधियों की सहायता से किए जाते हैं तथा उनमें अवलोकन, परीक्षण तथा पुनः परीक्षण को महत्व दिया जाता है। आधुनिक विज्ञान की जो भी पद्धतियाँ है इनका प्रयोग क्षेत्र कार्य में किया जाता है। इसके साथ ही तथ्यों का व्यक्तिगत परीक्षण और पुनः परीक्षण किया जाता है। इस प्रकार क्षेत्रीय परिदृश्य की प्रकृति वैज्ञानिक है।

2.अवलोकन (Observation): क्षेत्रीय परिदृश्य में अवलोकन का महत्व होता है। शोधकर्ता अपने शोध क्षेत्र में स्वयं निवास करता है तथा अवलोकन के माध्यम से तथ्यों का निरीक्षण तथा परीक्षण करता है। विषय के अनुसार अवलोकन तीन प्रकार से किया जा सकता है-

(a)सहभागी अवलोकन (Participant Observation)

(b)असहभागी अवलोकन (Non-participant Observation)

© अर्धसहभागी अवलोकन (Quasi- participant Observation)

3.वस्तुनिष्ठ (Objective): क्षेत्रकार्य की प्रकृति वस्तुनिष्ठ होती है। इसका कारण यह है कि इस विधि के द्वारा शोधकर्ता शोध क्षेत्र में स्वयं जाता है तथा वैज्ञानिक विधियों (Scientific Methods) और वैज्ञानिक उपकरणों (Scientific Tools) के माध्यम से स्वयं जानकारी का संग्रह करता है। अतः जो तथ्य एकत्रित किए जाते हैं, उनमें वस्तुनिष्ठता पाई जाती है।

4.कार्य-कारण सम्बन्ध (Casual Relations) क्षेत्रकार्य के माध्यम से जो अध्ययन किए जाते हैं, उनमें कार्यकारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। अर्थात समाज में जो घटनाएँ हो रही हैं उनका कारण क्या है। बटनाओं में परिवर्तन से कार्यों की प्रकृति पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार क्षेत्रकार्य समाज की घटनाओं के गुण-दोषों पर आधारित होता है।

5.प्राथमिक स्त्रोत (Primary Source) क्षेत्र कार्य में तथ्य संकलन (Collection of data) दो स्त्रोतों से होता है- प्राथमिक और द्वैतीयक (Secondary)। द्वीतीयक स्त्रोतों से जो तथ्य प्राप्त किए जाते है, वे इतने विश्वसनीय और प्रमाणिक नहीं होते हैं, जिनमें प्राथमिक स्त्रोतों से प्राप्त तथ्य होते है। इसीलिए क्षेत्र कार्य से प्राप्त जानकारी को अधिक प्रमाणिक माना जाता है।

6.परीक्षण (Verification) क्षेत्रकार्य से जो जानकारी प्राप्त होती है उसका परीक्षण और पुनः परीक्षण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी विशेष क्षेत्र में गरीबी (poverty) के अध्ययन को दुबारा जांचा परखा जा सकता है। इस प्रकार क्षेत्रकार्य परीक्षण और पुनः परीक्षण योग्य होता है।

7.विश्वसनीय (Reliability) क्षेत्रकार्य विश्वसनीय होता है। इसका कारण यह है जो तथ्य एकत्रित किए जाते हैं, वे सत्य तथा प्रमाणिक होते हैं। इस प्रकार क्षेत्रकार्य की प्रकृति विश्वसनीय होती है।

3.4 क्षेत्रीय परिदृश्य की उपयोगिता एवं महत्व (*The Significance and Utility of Field view)*

किसी भी समाज में जानने के लिए दो आधार है—

(i) उस समाज के बारे में लिखित साहित्य को पढ़कर, और

(ii) उस समाज के जाकर उस समाज का अध्ययन कर।

लिखित साहित्य को पाठीय परिदृश्य कहते है तथा उस समाज के व्यक्तिगत किए गए अध्ययन को क्षेत्रीय परिदृश्य कहते है। इन दोनों परिदृश्यों में क्षेत्र परिदृश्य का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है, जो निम्न है-

1. क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व इसलिए है, क्योंकि इसके माध्यम से समाज के बारे में जो जानकारी प्राप्त होती है, वह वैज्ञानिक विधियों के द्वारा प्राप्त की जाती है। अतः यह जानकारी प्रमाणिक होती है।

2.क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व इसलिए है क्योंकि यह मानव ज्ञान में वृद्धि करता है। साथ ही प्राप्त ज्ञान का परीक्षण एवं पुनरावलोकन करता है।

3. क्षेत्रीय परिदृश्य नई अवधारणाओं के विकास में मदद करता है। प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने क्षेत्रकार्य के माध्यम से समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया तथा ब्राह्मणीकरण, संस्कृतीकरण तथा पश्चिमीकरण की अवधारणाओं को जन्म दिया।

4.क्षेत्रीय परिदृश्य नए सिद्धान्तों की खोज में भी मदद करता है। आज भारतीय समाज परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इस परिवर्तन के कारण परम्परागत भारतीय संस्थाए प्रभावित हो रही हैं। संयुक्त परिवार, जाति व्यवस्था तथा धार्मिक

मान्यताओं में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। आज जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारण ही जातिवाद के सिद्धान्त का जन्म और विकास हुआ। परिवार में परिवर्तन के कारण विवाह की पवित्रता का विघटन हुआ और "लिव इन रिलेशन" के सिद्धान्त का जन्म हुआ। इस प्रकार क्षेत्र परिदृश्य के माध्यम से समाज में नए सिद्धान्तों का जन्म और विकास होता है।

5. सामाजिक समस्याओं के समाधान में भी क्षेत्रीय परिदृश्य की अहम भूमिका होती है। भारतीय समाज आज अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। इन समस्याओं में गरीबी, अशिक्षा, असमानता, आदि मुख्य हैं। इन समस्याओं के समाधान का एक ही रास्ता है और वह रास्ता है- क्षेत्रकार्य। क्षेत्रकार्य के माध्यम से समस्या की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है तथा इसके कारणों के समाधान के लिए प्रयास किए जाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी समाज को जानने में पाठीय परिदृश्य की तुलना में क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व अधिक है।

3.5 क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व (*Importance of Field View)*

भारतीय समाज का अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है पहला ऐतिहासिक और दूसरा गैर ऐतिहासिक अर्थात् स्थैतिक व गतिशील अध्ययन। स्थैतिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण प्रकार क्षेत्रीय अध्ययन है। भारतीय समाज के क्षेत्रीय परिदृश्य की विवेचना पूर्व में की जा चुकी है। अब भारतीय समाज के संदर्भ में क्षेत्रीय परिदृश्य के महत्व का अध्ययन, इसकी प्रकृति, उद्देश्य, विशेषताओं, आधार, लक्षण, प्रकार तथा उपयोगिता आदि के अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कि इस प्रकार है-

आधुनिक समाजशास्त्र में अनेकानेक 'उपागम' आ गये है। विचार पद्धति, दृष्टिकोण, पाठ्यक्रम का फैलाव, शोध के नवीन प्रांसगिक विषयों का विस्तार हुआ है दूसरी ओर प्राचीन ग्रंथों और संस्कृति विधा, जीवन वृत्तों के साथ क्लासिकल अध्ययन (Classical Studies) पर ध्यान देने की अपील होती है। अध्ययन की कुछ समस्यायें गिनाई जा सकती है-

(1) कौन से क्लासिकल ग्रंथों के आधार पर भारत में समाजशास्त्र की विचार पद्धति खड़ी की जाये। हिन्दू जीवनदर्शन दी प्रधानंता अथवा इब्न खल्दून, अरब मूल के ग्रंथों को भी समानवर्ती स्थान दे, प्राचीन ग्रंथों के बारे में कौन से विचार ले और किसे छोड़ दे, अयोध्या में रामजन्म भूमि विवाद का समाजशास्त्र के कुछ लेना देना है या नहीं? या गोमांस भक्षण ब्राह्मणों की स्थिति पर समाजशास्त्री किस ग्रंथ का सहारा ले, विद्वानों के मतभेद से समाजशास्त्री कैसे निपटे।

(2) समाजशास्त्र के गणिती या कम्युटर युग के आंकड़ा आधारित विवेचन में भारती विद्या के ऐतिहासिक भाष्य, मूल ग्रंथ के स्त्रोत काम नहीं दे पाते, उलझन बढ़ाते हैं।

(3) प्राचीन क्लासिकल रचनायें मुख्य रूप से समाज के उच्च वर्ग की रचनायें हैं। इन पर आधुनिक लेवल सवर्ण, मनुवादी विचार का पोषक एवं दलितों के प्रति असम्पृक्त होने का पूर्वाग्रह (Bias, Against Dalits) लेखन कहा जाता है, इन ग्रंथों के कारण सामाजिक विषमता को नैतिक बल मिलता रहा।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है प्राचीन क्लासिकल कृतियों की उपेक्षा नहीं करना चाहिये इनके अधिक उपयोग से समाजशास्त्र का भारतीयकरण अध्यापन और अनुशासन (Displine) का विकास होगा।

शास्त्रीय अध्ययन परम्परा समृद्धिवान होने के बावजूद इसकी क्षीण धारा समाजशास्त्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त मिलती है। सन् 1960-70 के दशक में विदेशी समाजशास्त्री अलबत्ता शास्त्रीय प्राचीन भारत-विद्या की ओर अधिक आकर्षित रहे।

प्रो. लुई डयूमों एवं पोकोक ने कहा भारतीय समाजशास्त्र के सही विकास की पहली शर्त उसके और प्राचीन भारत विद्या के बीच उचित सम्बन्ध स्थापित करना है। भारत के लिये समाजशास्त्र की परिकल्पना पर निरंतर चलाई गई चर्चा और बहसों का अवलोकन दृष्टव्य है जो एक तरफ स्वतंत्रता पश्चात तेजी से लोकप्रिय हो रहे समाजशास्त्र का अपना भारतीय परिवेश के अनरूप संस्करण के आग्रह से पूर्ण था। दूसरी ओर सार्वदेशिक समाजशास्त्र के अध्ययन पर जोर। अतः वर्तमान समाज शास्त्रीय संदर्भ (Sociological Perspectives) मध्य मार्ग अधिक स्वीकार्य है। पश्चिमी विचारकों के प्रति स्वागत भाव है और आनंद कुमार स्वामी, वी.पी. मुकर्जी आदि अनेक लोगों के भारत-विद्या के सामाजिक संदर्भों में विवेचन-दृष्टि को भी सम्मिलित करना। समाजशास्त्र में शास्त्रीय पृष्ठभूमि को संस्कृतिशास्त्रीय मात्र नहीं बने रहना पड़ा। हाल के वर्षों में अधिक वैज्ञानिक सुस्पष्ट पारिभाषित 'समाजशास्त्र' की रूपरेखा भारत में विकसित हो चुकी है। प्रो. योगेन्द्र सिंह ने अध्ययन की विचार- पद्धति को इस तरह विभाजित किया है। वर्तमान में समाजशास्त्रीय विचार पद्धति या संदर्भ (Perspectives) का प्रभाव है-

(1) तुलनात्मक ऐतिहासिक विचार पद्धति
(2) दार्शनिक समाजशास्त्रीय विचार पद्धति
(3) तार्किक दार्शनिक विचार पद्धति
(4) संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विचार पद्धति
(5) सांख्यकीय प्रत्यक्षवादी विचार पद्धतियदि हम क्लासिकल एवं अनुभाविक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के महत्व की व्याख्या करना चाहें तो एक सूत्र पीछे यानि अतीत मूलक होगा जबकि दूसरा सांख्यकीय उच्च पद्धतियों के निरन्तर समावेश का आग्रही प्रशिक्षित समाजशास्त्रीय उन्मेष है (Orientation)

(1) भारतीय समाज एकता में अनेकता का सूत्र (Key Words of Unity in Diversity)- एक अरब की आबादी पार कर जाने वाला इक्कीसवीं सदी का भारत बहुलवादी, पंथ निरपेक्ष और लोक तांत्रिक व्यवस्था चलाये रखने वाला देश हैं। यहां राष्ट्र-राज्य के एथनिक (ब्रजातीयता) के झगड़े, साम्प्रदायिकता की भारी-आमद के बीच शान्ति और सुलह, एकता

में अनेकता और इसके विलोम से जमी हुयी है, ढेर सारी विषमताओं, अन्तरों के बावजूद। हमें भौगोलिक, पर्यावरण के साथ धर्म के स्थानीय रूपों को भी देखना पड़ेगा। 15 अगस्त और गणतंत्र दिवस, कारगिल युद्ध, कश्मीर समस्या के पीछे आहत और समर्पित भावनायें, शास्त्रीय विचार के आगे पीछे रहकर समझनी पड़ेगी। श्रीनिवास कहते हैं कि एकता की अवधारणा हिन्दू धर्म में अन्तर्निहित है। संस्कृति के श्रेष्ठ और निम्न होने की समस्या यूरोप जैसी नहीं है। धार्मिक व्यवहार निजी है तो इनकी सामूहिक अभिव्यक्ति भी होती है। भाषा का फैलाव है आधे देशवासी एक से अधिक भाषायें जानने लगे है राज्यों का नया नाम अलबत्ता श्रेत्रीयता से पीड़ित है परन्तु इससे लोगों की भलाई है।

(2) भारतीय समाज के अपने अन्तर्विरोध है- हर समाज में अनेक उपद्रवी शक्तियाँ होती है वे दंगें करा कर तनाव बढ़ा देती हैं और दलित बनाम सवर्ण, अयोध्या बनाम पूरा तथाकथित प्रगतिशील चेहरा, भारत में कौन प्रजाति पहले बसी ? दक्षिण का ब्राह्मण श्रेष्ठ है कि उत्तर का बनारसी पंडित, ढेर सारे अन्तर्विरोध क्लासिकल बनाम आधुनिक विमर्श (Modern Discourse) में समाहित होते हैं। वर्णाश्रम, जाति, संस्कार, विवाह का आज . किन अर्थों में सदुपयोग है। क्या जातियाँ राजनैतिक गोलबंदी और बोट बैंक बनती जा रही है। शिक्षा ने भारतीय समाज को जोड़ा नहीं तोड़ा है। गरीब दलित और अमीर शहरी सभी के चेहरे पर बढ़ती नफरतें समाजशास्त्र के नये संदर्भ हो सकते हैं कारण आधुनिक व्याख्यायें करते जाने से पुरानी चीजें भी नवौन अर्थ ग्रहण कर समाधान देती है।

इक्कीसवीं सदी के भारत की सामाजिक संरचना और प्रक्रियाओं के रूप में भारतीय समाजशास्त्र विकसित हो गया है। अनेक समाशास्त्रियों ने कहा था कि यहाँ भारत की सांस्कृतिक-सामाजिक वास्तविकता के संदर्भ में विश्लेषण का कोई पैराडाइज नहीं है। समाजशास्त्र पाठ्यक्रम की स्नातक स्तरीय विषय वस्तु के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि आधारभूत अवधारणाओं के परीक्षण हो सकते हैं। नयी अवधारणायें सामने है। उदारीकरण

आर्थिक से कहीं ज्यादा सामाजिक उथल-पुथल का कारण बन गया है। प्रो. योगेन्द्र सिंह (1970) ने स्वतंत्रता पूर्व समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को बताते हैं-

1.जाति, लोकगाथा पर वर्णनात्मक सामग्री में वृद्धि

2. जाति और ग्राम समुदायों का मानव शास्त्र अध्ययन में निरन्तरता

3. जनसांख्यिकी एवं परिस्थिति, प्रादेशिक विशेषताओं का भारतीय प्राचीन परम्परा की अनुपयता, साथ ही पश्चिमी अवधारणाओं का प्रतिरोपण पर बल।

4. ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन

इसके बाद प्रो. योगेन्द्र सिंह समसामयिक समाजशास्त्रीय साहित्य के आधार पर सैद्धांतिक अनुस्थापन (Theoretical Orientation) बताते हैं। प्रो. धुर्वे तुलनात्मक ऐतिहासिक विचार पद्धति के अगुवा अध्येता थे। प्रो. के. एम. कापड़िया भारतविद्या (Indology) के उपयोग में विज्ञ। उन्दात्मक अनुस्थापन (Dialetical Ori- entation) प्रो. ए. आर. देश ने प्रयोग किया। राधाकमल मुकर्जी दार्शनिक समाजशास्त्रीय अनुस्थापन के प्रयोगकर्ता थे। व्यक्ति-मूल्य-संस्था के त्रिभुजाकार समाकलनकार। अतः भारत में समाजशास्त्र के बम्बई स्कूल और लखनऊ स्कूल का भी प्रभाव मिलता है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विचार पद्धति प्रो. श्रीनिवास, प्रो. दुबे के कार्यों में दिखाई पड़ती है। पिछले बीस वर्षों में इस परिवर्तनशील पैराडाइज की नयी कोटियाँ समझनी आवश्यक है।

क्षेत्र दृष्टि एवं शास्त्रीय दृष्टि

वर्तमान परिप्रेक्ष्य सन् पचास के क्षेत्र कार्य (Village Studies Oriented Field View) से आगे बढ़ चुका वर्तमान है। अतीत और वर्तमान के बीच एक सम्बन्ध होता है। इस सूत्र से आगे बढ़े तो पायेंगे कि सार्वभौमिक प्रकृति की भारतीय सामाजिक यथार्थता की व्याख्या दो विधायें या पद्धति करती रही है। इसका परिणाम यह हुआ पश्चिमी देशों के

समाजशास्त्रीय अनुस्थापन (Sociological Orientation) से भिन्न सिद्धान्त या अवधारणायें मिली जैसे श्रीनिवास के द्वारा प्रभु जाति, संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण के पीछे क्षेत्र कार्य और शास्त्रीय ज्ञान का आमना-सामना होने से उपादेयता (Significance) प्राप्त हुयी।

किसी देश व समाज को ज्ञानमय निर्माण सप्रयास शास्त्रीय एवं मैदानी समझ (Field view) का सकारात्मक संयोग दूसरे शब्दों में अन्तर अनुशासनिक प्रासंगिकता है।

प्रो. नरेन्द्र सिंधी (1998) का कहना है कि भारतीय समाजशास्त्रियों ने ऐतिहासिक व ज्ञान की धरोहर व लोक ज्ञान की मौखिक परम्परा को समीचीन रूप में प्रस्तुत करने का कोई संस्थागत अथवा व्यक्तिगत प्रयास किया है? दूसरे भारतीय ज्ञान की परम्पराओं को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में कितना विश्लेषित किया गया है? इसके प्रश्न का उत्तर शालीय दृष्टि एवं मैदानी समझ या क्षेत्र दृष्टि दोनों के महत्व के रेखांकन में भी निहित है, हम देखते हैं कि जाति और गाँव भारतीय समाजशास्व के क्षेत्र दृष्टि (फील्ड व्यू) में भी दबदबा बनाये रहे है। भारत के लिये वर्णनात्मक समाजशास्त्र का महत्व है जो क्षेत्र अध्ययन द्वारा होगा हर जाति हर गाँव का बर्णन संभव नहीं परन्तु अधिक प्रयास इसी ओर होता रहा है कि दोनों के पारस्परिक सम्पर्क को मध्यमार्गी उपागम प्राप्त हो।

क्षेत्रकार्य (Field Work) का वर्तमान उन्मेष समय व श्रम साध्य के स्थान पर तात्कालिक अभिमत प्रणाली (Instant Opinion through Internet, phone) इंटरनेट, टेलीफोन के जरिये, जमीनी स्तर पर आंकलन, संकलन की जा रही है। हर रोज उपभोक्ता सर्वेक्षण, पाठकों की इंटरनेट से राय पूछी जाती है, गाँव संचार क्रान्ति के भीतर आ गये हैं गाँव-शहर की दूरी खत्म होती जा रही है। ग्राम की एकांतता भंग कर उसे शहरी पड़ोस मिली है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय शोध संस्थाये, एन.जी.ओ, विकास के संवाहक आदि पुराने ढंग के क्षेत्र दृष्टि (Field view) से आगे आ चुके हैं। इसका तात्कालिक परिमाण-विश्लेषण

(Instant Quantifiaction) संभव है। आज भारत के गाँव, जाति, क्षेत्र सब सामाजिक पूँजी (Social Capital) है, नवीन पद्धति का क्षेत्र कार्य गतिशीलता प्रवजन (Mobility Map), सहभागीदारी मूल्यांकन (Participatory Apprasial Assessment) तथा जनगणना के सुपर कम्प्यूटर से विश्लेषण का युग है, आंकड़ों का नया संचार है। इस नये व्यवस्था के तहत नये सिरे से शास्त्रीय ज्ञान परम्परा को लेकर चलने की जरुरत है। प्राच्यवाद (Orientalism) बनाम मैदानी समझ के विवाद का अस्तित्व नकारात्मक दृष्टि कही जा सकती है। हमें कैसा होना चाहिये और हम क्या थे इसका स्त्रोत शास्त्रीय परम्परा सदैव मार्गदर्शक रहेगी। हम संस्कृति रक्षक हों तथा तटस्थ दृष्टि से बदलते समाज को देखते रहे। समाष्टिमूलकता शास्त्रीय एवं क्षेत्र-दृष्टि के पारस्परिक संवाद में हो, जो सैद्धांतिक निष्पशियों (Theoretical Synthesis) हेतु उपादेय होगी।

3.6 वर्तमान और अतीत के बीच संवाद (*THE INTERFACE BETWEEN THE PRESENT AND THE PAST)*

समाजशास्त्र की विषय-वस्तु है समाज को समझना। यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि समाज को कैसे समझा जाये? खासकर भारतीय को, जो विशाल और विविध तो है ही, जिनका इतिहास भी 7000 से अधिक वर्षों से पुराना है। यद्यपि समाज का अध्ययन अनेक विज्ञानों द्वारा किया जाता है, जैसे- इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र आदि। ये सभी विज्ञान की शाखाएँ समाज का अध्ययन अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं। दृष्टिकोण तथा विषयवस्तु में भिन्नता के बावजूद इन विज्ञानों का उद्देश्य समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करना है। समाजशास्त्र का उद्देश्य समाज. और सामाजिक जीवन के विविध आयामों का अध्ययन कर, उन आयामों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करना तथा उनकी उपयोगिता का प्रतिपादन करना है। चूँकि भारतीय समाज विशाल और विविधता वाला है तथा इसका एक लम्बा इतिहास है। इस दृष्टि से भारतीय समाज को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

L भारत का अतीत का समाज, और Ancient Society of India,
II. भारत का वर्तमान समाज Present Society of India

यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि क्या किसी भी समाज का उपर्युक्त दो भागों में किया जाने वाला अध्ययन सही और उपयुक्त होगा? क्या किसी भी समाज के दोनों भाग अन्तः सम्बन्धित नहीं है? क्या एक भाग की उपेक्षा करके दूसरे भाग को समझा जा सकता है? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर देने के लिए समाज शास्त्रियों ने भारतीय समाज के अतीत और वर्तमान के बीच परस्पर संवाद पर गहन चिन्तन-मनन किया है। इस दृष्टिकोण से भारतीय समाज की विवेचना निम्न दृष्टिकोणों से की गई है, जो इस प्रकार है-

अतीत के अध्ययन पर बल

भारतीय समाज का उद्‌गम अत्यन्त ही प्राचीन है और इसका इतिहास 7000 से अधिक वर्षों का है। 7000 वर्षों के लम्बे अन्तराल में भारतीय समाज ने अनेक उतार-चढ़ावों को देखा है। भारतीय समाज को समझने के लिए हमें भारत के 7000 वर्षों के इतिहास, साहित्य, कला, संस्कृति और शासन व्यवस्था को दृष्टिपात करना होगा। भारत में लिखित सामग्री के स्रोत हैं, वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ, धर्मग्रन्थ, शिलालेख, भ्रमणकारियों के विवरण, संस्मरण, अरबी तथा फारसी साहित्य आदि। भारत का प्राचीन साहित्य इतना सम्वृद्‌ध है कि दुनिया का कोई भी देश इतना सम्वृद्‌ध नहीं है। वेद विश्व के आदिग्रन्थ हैं और इन वेदों की रचना भारत में हुई है। भारत विद्‌या (Indology) इतनी सम्वृद्‌ध है कि इससे भारतीय समाज को समझने में महत्वपूर्ण स्रोत मिलते हैं।
समाजशास्त्रियों का विचार है कि भारत की आज की जो सामाजिक संरचना (Social structure) और सामाजिक व्यवस्था (Social System) है, वह इसके अतीत का परिणाम है। अतः यदि हम भारत को जानना चाहते हैं तो हमें इसके

अतीत को जानना होगा। इसका कारण यह है कि वर्तमान भारतीय समाज का उद्भव और उसका विकास इसके अतीत का परिणाम है।

उपर्युक्त विचारधारा का जिन विद्वानों ने समर्थन किया है उनमें निर्मलकुमार बोस, लुई ड्यूमा, आदि प्रमुख हैं। इन विद्वानों के अनुसार वर्तमान भारतीय समाज ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का परिणाम है। अतः यदि इसे समझना है, तो इतिहास को समझना आवश्यक होगा। आज भारतीय समाज की जो संरचना है तथा इसके संगठन के जो कारक हैं, यदि उन्हें समझा होगा, तो इसके इतिहास को समझना होगा। भारतीय समाज के दर्शन,साहित्य,कला, संस्कृति, मूल्य, कर्मकाण्ड, पुरुषार्थ, पुनर्जन्म, मोक्ष, जजमानी, जाति प्रथा आदि को समझने के लिए भारतीय समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष सेमेस्टर-11 समाज के 7000 वर्षों के इतिहास का ज्ञान अनिवार्य है। । इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जिन विद्वानों ने भारतीय समाज को समझने का कार्य किया है, उनमें एल. सी. राय, वृजेन्द्रनाथ सील, वी. के. सरकार, राधा कमल मुकर्जी, डी. पी. मुकर्जी, पी. के. चट्टोपाध्याय, जी. एस. धुरिए, आदि प्रमुख हैं। इस दृष्टिकोण से भारतीय समाज को समझने के लिए जिन विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किए हैं, उनके साहित्य का विवरण इस प्रकार है-

1.इंडो-यूरोपीय संस्कृति में परिवार और रिश्तेदार-1953

2.भारतीय साधु-1953

3.देवता और मनुष्य-1962

4.Pravara and charana - 1971

5.भारत में जाति और नस्ल - 1932

6.भारत में नातेदारी संगठन - 1953

7.हिंदू रिश्तेदारी-1947

8 भारत में परिवार और विवाह - 1955

1950 तक भारतीय समाज को समझने के लिए प्राचीन साहित्य को समझने पर अधिक जोर दिया जाता रहा। इस दृष्टकोण से अन्य अनेक विद्वानों ने भारतीय समाज और साहित्य पर अपने विचार व्यक्त किए है।

वर्तमान के अध्ययन पर बल

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है 1950 तक भारत में समाजशास्त्रियों की यह धारणा थी कि भारतीय समाज को जानने और समझने के लिए उनके अतीत को जानना और समझना आवश्यक है और इसी लाइन पर कार्य भी किए जाते रहे, किन्तु 1950 के बाद समाजशास्त्र में ऐसे विद्वानों का दौर आया, जिनका मन था कि भारतीय समाज को समझने के लिए वर्तमान को जानना आवश्यक है। इस क्षेत्र में दो विद्वानों का नाम उल्लेखनीय है - मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राउन। इनके अनुसार ऐतिहासिक अध्ययन न तो पूर्ण वैज्ञानिक होते हैं और न ही प्रमाणित। अतः इन पर विश्वास करना संभव नहीं है। किसी भी समाज को समझने के लिए वर्तमान को समझना आवश्यक है। अनेक आलोचकों का विचार है कि भारत विद्या या ऐतिहासिक पद्धति द्वारा समाज के अतीत को समझना अत्यन्त ही कठिन है। साथ ही जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत की तत्कालीन जनसंख्या का 90 प्रतिशत से अधिक भाग गाँवों में निवास करता था। इसके साथ ही भारतीय समाज में इतना विविधता और इतनी भिन्नताएँ हैं कि इनका समग्र अध्ययन एक कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज का न तो व्यवस्थित और न ही कोई क्रमबद्ध इतिहास है, जिसकी सहायता से भारतीय समाज को समझा जा सके। भारतीय विचारक मजूमदार और मदन ने लिखा है कि ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा जो अध्ययन किए जाते हैं, उनके अध्ययन मात्र उपकल्पनाओं तक ही सीमित रह जाते हैं। इस पद्धति में निरीक्षण तथा परीक्षण की कोई व्यवस्था भी नहीं है। इसके साथ ही इस पद्धति के द्वारा न तो तथ्यों की जाँच की जा सकती है और न ही तथ्यों के पारस्परिक कारणों और प्रभावों का ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकता है।“

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक पद्धति की सहायता से प्राचीन भारतीय समाज का ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है उपयुक्त सीमाओं और कर्मियों के कारण 1950 के बाद भारतीय जीवन और समाज को समझने के लिए समाजशास्त्रियों ने क्षेत्र कार्य पद्धति को अपनाया तथा इस पद्धति की सहायता से भारतीय जीवन के वर्तमान का अध्ययन किया और सामाजिक संरचना सामाजिक संगठन सामाजिक व्यवस्था तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों पर अपने निष्कर्ष को अंतिम रूप दिया इस क्षेत्र में जिन प्रमुख विद्वानों तथा उनके कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है उनमें से मुख्य है -

1. इंडियन चेंजिंग विलेज, डॉ. एस. सी. दुबे
2. आई.पी. देसाई, महुवा में कुछ पहलू और परिवार, 1964
3. एम. एन. श्रीनिवास - आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन।
4. इंडियन विलेज (संपादित) 1960, एम. एन. श्रीनिवास
5. इंडियन विलेज (संपादित) 1955, मकिम मेरिएट
6. भारतीय गांव में जाति और संचार - 1958, डी. एन. मजूमदार
7. भारतीय गांव, डॉ. एस. सी. दुबे
8. एम. एन. श्रीनिवास - जाति और अन्य निबंध।

ये कुछ मौलिक अध्ययन है, जिनके माध्यम से भारतीय समाज और उसकी व्यवस्था को जानने का प्रयास किया गया है। आज समाजशास्त्र में जो भी शोध-कार्य हो रहे हैं, वे अधिकांशतः क्षेत्रकार्य तथा समाज की वर्तमान व्यवस्था से सम्बन्धित है। इन विद्वानों का विचार है कि भारतीय समाज और इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन मात्र वर्तमान में ही किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र की विषय-सामग्री के सम्बन्ध में समाजशास्त्री दो सम्पदायों में विभक्त हो गए -

1. पहला सम्प्रदाय उन समाजशास्त्रियों का हैं जो इस मत के है कि भारतीय समाज का अध्ययन उसके अतीत को आधार मानकर ही किया जा सकता है।
2. दूसरे सम्प्रदायों के विद्वानों का विचार है निरीक्षण, परीक्षण तथा वैज्ञानिक विधियों के अभाव के कारण किसी समाज का अध्ययन संभव नहीं है। अतः किसी समाज को जानने के लिए उसके वर्तमान को जानना आवश्यक है।

उपर्युक्त दो मतों के कारण तीसरे सम्प्रदाय का जन्म और विकास हुआ। इस सम्प्रदाय के अनुसार किसी समाज का अध्ययन अकेले न तो अतीत को आधार मानकर किया जा सकता है और न ही वर्तमान को। समाज का वास्तविक अध्ययन अतीत और वर्तमान के समिश्रण के आधार पर ही किया जाता है। जो निम्न है:-

3.7 वर्तमान और अतीत के अध्ययन के बीच संवाद पर बल

उपर्युक्त दोनों सम्प्रदायों के दृष्टिकोणों पर समाजशास्त्रियों ने गहन अध्ययन और विचार-विमर्श किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय समाज के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा वर्तमान परिवेश का मिला-जुला अध्ययन ही वैज्ञानिक है। इन दोनों दृष्टिकोणों को समाहित कर जो भी निष्कर्ष निकाले जाएँगे, वे सत्य, प्रमाणित और विश्वसनीय होंगे तथा इनके आधार पर समाज के स्वस्थ मूल्यांकन में मदद मिलेगी तथा सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकेगा। इसका कारण यह है कि अतीत को जाने बिना वर्तमान को जानना कठिन है। प्रो. आर. एन. सक्सेना ने लिखा है कि "भारत में समाजशास्त्र विषय-वस्तु के रूप में पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता जब तक कि इसमें थोड़ा दर्शन सम्मिलित नहीं किया जाता, जो वर्तमान और अतीत के बीच एक निरन्तरता प्रदान करता है।"

कुछ इसी प्रकार का विचार लुइस ड्यूमा, डी. पी. मुकर्जी तथा ए. के. सरन ने व्यक्त किए हैं। उनका विचार है कि परम्परागत संदर्भों के अभाव में भारत का समाजशास्त्र असंभव है। भारत का अतीत इतना स्वर्णिम है कि आज भी भारतवासी उससे अपने को जोड़कर गौरव का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में गौरवशाली इतिहास को छोड़कर वर्तमान समाज का अध्ययन अपूर्ण और एकागी है। इरावती कर्वे ने 'Kinship organization in India', में इसी प्रकार अध्ययन किया है। साथ ही K. M. Kapadia ने अपनी पुस्तक Family and Marriage in India में तथा Hindu Kinship में इसी प्रकार के विचारों को व्यक्त किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अतीत और वर्तमान एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं और दोनों को मिलाकर ही भारतीय समाज का सही-सही अध्ययन किया जा सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. क्षेत्रीय परिदृश्य से सम्बन्धित विद्वान है-

(अ) मैकाइवर (ब) आगवर्न (स) गिलिन (द) प्रो. श्रीनिवास

2. क्षेत्रकार्य से सम्बन्धित पुस्तक है-

(अ) Society (ब) Cultural Sociology (स) A Hand-book of Sociology

(द) Social change in modern India

3. क्षेत्रकार्य है-

(अ) भाषण सुनना (ब) भाषण देना (स) पुस्तक पढ़ना (८) क्षेत्र में कार्य करना

4. India's changing village के लेखक हैं-

(अ) एम.एन. श्रीनिवास (ब) एस.सी. दुबे (स) जी.एस. घुरिए (द) मैर

3.8 सारांश

क्षेत्रीय परिदृश्य समाज, संस्कृति, और भौगोलिक संरचना को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों, सांस्कृतिक विविधताओं, आर्थिक असमानताओं और राजनीतिक प्रशासन के ढांचे का अध्ययन करता है। क्षेत्रीय परिदृश्य का महत्व इस बात में है कि यह स्थानीय और राष्ट्रीय विकास को संतुलित करने के लिए प्रभावी नीतियों और योजनाओं को विकसित करने में मदद करता है। इसके माध्यम से क्षेत्रीय असमानताओं को पहचानकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है, जो समाज और देश के समग्र विकास में सहायक होता है।

3.9 मुख्य शब्द

- **सांस्कृतिक विविधता**: एक क्षेत्र में विभिन्न भाषाओं, परंपराओं, धर्मों और जीवनशैलियों की विविधता को दर्शाता है।
- **आर्थिक असमानता**: क्षेत्रीय स्तर पर लोगों की आय, संसाधनों और जीवन स्तर में अंतर को दर्शाता है।
- **भौगोलिक विश्लेषण**: किसी क्षेत्र की प्राकृतिक विशेषताओं, जलवायु, भू-संरचना और संसाधनों का अध्ययन।

3.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तरः 1. (द), 2. (द), 3. (द) 4.(अ)।

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

- Human Geography - H.J. de Blij (1977)
- The Geography of Development - R. Peet and E. Hartwick (2009)
- Cultural Geography: A Critical Introduction - Don Mitchell (2000)
- Regional Geography of India - R.L. Singh (1971)

3.12 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न. 1- निम्नलिखित की व्यख्या कीजिए।

(अ) निवन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.शास्त्रीय और क्षेत्रीय दृष्टिकोणों के पारस्परिक सम्बन्धों को लिखिए।

Write interface of Textual and field views.

2. क्षेत्रीय दृष्टिकोणों का महत्व लिखिए।

Write importance of field views.

1. परम्परागत भारतीय स्त्रोत और समाजशास्त्र पर एक निबन्ध लिखिए।

   Write an essay on Traditional Indian source and Sociology.

2. वर्तमान और अतीत के बीच संवाद से क्या तात्पर्य है? आपके अनुसार भारतीय समाज के अध्ययन के लिए अध्ययन का कौन सा तरीका उत्तम है? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

3. “मात्र वर्तमान के अध्ययन पर बल” की विवेचना कीजिए।

Describe about “the emphasis on the study of only the present.”

4. “मात्र अतीत के अध्ययन पर बल” की विवेचना कीजिए।
   Illustrate about “the emphasis on only the study of the past.”
5. “वर्तमान और अतीत के अध्ययन के बीच संवाद पर बल” की विवेचना कीजिए।
   “Describe about emphasis on the study of the interface between the present and the past”.

(व) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. क्षेत्रीय परिदृश्य की प्रकृति

Nature of Field view

2. क्षेत्रीय परिदृश्य में विश्वसनीयता

Reliability in field view

3. ब्राह्मणीकरण

Brahminization

4. क्षेत्रीय कार्य और नई अवधारणाएँ।

Field work and new concepts

5.अतीत के अध्ययन के दो महत्व।

Any two importance of the study of the Past.

1. वर्तमान के अध्ययन के दो महत्व।
   Any two importance of the study of the Present.

2. वर्तमान और अतीत के अध्ययन के दो आधार ।

Any two bases of study of the Present and the Past.

इकाई - 4

ग्राम, कस्बा एवं नगर (VILLAGE, TOWN AND CITY)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 गाँव
4.4 गाँवों के प्रकार
4.5 ग्रामीण समुदाय
4.6 कस्बा
4.7 नगर
4.8 सारांश
4.9 मुख्य शब्द
4.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रन्थ
4.12 अभ्यास प्रश्न

4.1 *प्रस्तावना*

किसी भी समाज की संरचना में भूगोल का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसकी भौगोलिक परिस्थितियाँ ही देश की संरचना का निर्धारण करती है। संसार की मानव सम्पदाओं का विकास भौगोलिक दशाओं और परिस्थितियों की देन है। भारतीय समाज भी भूगोल की इन विशेषताओं से अछूता नहीं है। मानव ने अपनी घुमन्तू प्रवृत्ति पर जब रोक लगाई होगी, तो इसके मूल में भूगोल की ही दशाएँ रही होंगी। पानी तथा उपजाऊ जमीन सम्पदाओं के विकास का आधार है।

भारतीय समाज की संरचना के तीन आधार स्तम्भ है गाँव, कस्बा और नगर। गाँव और नगर के बीच की संरचना को कस्बा कहते हैं, जहाँ की जनसंख्या गाँव

से तो अधिक होती है, किंतु नगरों से कम होती है। इस दृष्टि से यहाँ ग्रामीण और नगरीय जीवन की सामाजिक संरचनाओं की ही विवेचना की जाएगी।

4.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. गांव, कस्बे और नगर की सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक संरचनाओं को समझना।

2. शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण सामाजिक और आर्थिक बदलावों का विश्लेषण करना।

3. गांव, कस्बा और नगर के बीच परस्पर निर्भरता और उनके सामाजिक और आर्थिक संबंधों को समझना।

4.3 गाँव *Villages*

ग्राम ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रयोगशाला है। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषयवस्तु और क्षेत्र ग्रामीण जीवन और समुदाय से सम्बंधित है। इस दृष्टि से भारतीय ग्राम का अध्ययन महत्वपूर्ण है। प्रायः सभी भारतीय ग्रामों में किसी न किसी मात्रा में समानता पाई जाती है। भारत में आदिकाल से ग्राम पाए जाते रहे हैं और इन ग्रामों में अपने युग की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारत में अनेक विदेशी शासक आए और उन्होंने भारत पर शासन किया। इन विदेशी शासकों को भारतीय ग्रामीण समुदाय पर प्रभाव अवश्य पड़ा, किंतु उनमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत में विविधता में एकता विद्यमान है। इस दृष्टि से ग्रामों का अध्ययन आवश्यक है।

ग्राम परिवारों का वह समूह है जो एक निश्चित क्षेत्र में स्थापित होता है तथा जिसका एक विशिष्ट नाम होता है। गाँव की एक निश्चित सीमा होती है। यह सीमा उस गाँव को दूसरे गाँवों से पृथक रहती है। इस सीमा में उस गाँव के व्यक्ति निवास करते हैं, कृषि तथा व्यवसाय करते हैं तथा अन्य कार्यों का सम्पादन करते हैं, भारतीय गाँवों के घरों की दीवारें मिट्टी की होती हैं। उनकी छत खपरैल होती है। आवागमन के लिए कच्ची गलियाँ होती है। भारतीय ग्राम अपेक्षाकृत एक परिपूर्ण इकाई होते थे। यद्यपि अब इनमें भी परिवर्तन की प्रक्रिया गतिशील है। जजमानी प्रथा का प्रचलन पाया जाता है। धर्म और परम्पराओं का ग्रामीण जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। गाँव की परिभाषा (Definition of Village) विभिन्न विद्वानों ने ग्राम की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें कुछ इस प्रकार है-

(1)डॉ. देसाई (i) "गाँव ग्राम्य समाज की इकाई है। यह रंगशाली के समाज है, जहाँ ग्राम जीवन अपने को प्रकट करता है और कार्य करता है।"

(ii) "**गाँव कृषि**"- अर्थव्यवस्था से उत्पन्न व्यक्तियों के सामूहिक रूप से बसने का प्रथम रूप है।

(2) पाटिल- 'ग्रामीण क्षेत्र में सामान्य ग्राम स्थान पर समीपस्थ गृहों में निवास करने वाले परिवारों के समूह को सामान्यतः ग्राम की अभिव्यक्ति के रूप में समझा जा सकता है।''

(3) सिम्स- 'ग्राम वह नाम है, जो कि प्राचीन कृषकों की स्थापना को साधारणतः दर्शाता है।''

(4) डॉ. अर्गल - "ग्राम एक सहवासी समुदाय है, जिसके सदस्यों का जीवन परस्पर सम्बंधित है, जहाँ जीवन के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति आत्मनिर्भरता के आधार पर होती है।" अपनी इस विशिष्टता के कारण अन्य समुदाय से भिन्न है।

(5) **सुमित्रानंदन पंत** ने ग्राम की परिभाषा निम्न शब्दों में की है-

'यहाँ नहीं है चहल-पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले बन की,

आता मौन प्रभात अकेला सन्ध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया सी।
यहाँ नहीं विद्युत दीपों का दिवस निशा में निर्मित,
अंधियाली ही रहती गहरी अंधियाली भय कल्पित।'

इस प्रकार 'ग्राम मानव निवास का वह नाम है, जिसका एक विशिष्ट क्षेत्र होता है और जहाँ सामुदायिक जीवन के सभी तत्व पाये जाते हैं। यहाँ निवास करने वाले सदस्य पारस्परिक आत्मनिर्भरता के द्वारा सामाजिक सम्बंधों का विकास करते हैं।'

4.4 गाँवों के प्रकार *Types of Villages*

(1) डॉ. श्यामाचरण दुबे- डॉ. श्यामाचरण दुबे ने भारतीय गाँवों या ग्रामीण समुदायों के वर्गीकरण को निम्नलिखित आधारों पर विभाजित किया है-

(i) आकार, जनसंख्या और भू-भाग के आधार पर (Size, Population and land area),
(ii) प्रजातीय संगठन और जाति संरचना (Ethics, composition and caste structure),
(iii) भूस्वामित्व के प्रतिमान (Pattern of land ownership),
(iv) अधिकार संरचना और शक्ति का सोपान क्रम (Structure of Authority and Power Hierarchy),
(v) सामुदायिक अलगाव की मात्रा (Degree of Isolation),
(vi) स्थानीय परम्पराएँ (Local Traditions) I

(2) **सोरोकिन**- सोरोकिन, जिमरमैन और गाल्पिन ने भूस्वामित्व को ग्रामीण वर्गीकरण का आधार माना है, जो निम्नलिखित है-

(vii) संयुक्त भूस्वामित्व वाले गाँव,
(viii) पट्टीदारी व्यवस्था वाले गाँव,
(ix) व्यक्तिगत भूस्वामित्व वाले गाँव,

(x) वह गाँव जहाँ पट्टीदार रहते हैं,

(xi) जहाँ जमींदारों के करिन्दा रहते हैं,

(xii) जहाँ नौकरी-पेशा वाले तथा श्रमिक निवास करते हैं।

(xiii) सहज सुविधा वाले गाँव (Simple Service Village),

(3) **कोल्व** - कोल्व ने ग्रामीण जीवन में उपलब्ध सुविधाओं को ग्रामीण वर्गीकरण का आधार माना है। इस दृष्टि से उन्होंने गाँवों को निम्न भागों में विभाजित किया है-

(i) सीमित सुविधा वाले गाँव (Limited Simple Service Village),

(ii) अपर्याप्त सुविधा वाले गाँव (Semi Complete Intermediate Type village)

(iii) पूर्ण आंशिक सुविधा वाले गाँव (Complete, Partially Specialized Type village),

(iv) पूर्ण नगरीय सुविधायुक्त गाँव (Urban Highly Specialized Type village) |

(4) ऐतिहासिक विकास क्रम की दृष्टि से ऐतिहासिक विकासक्रम(Historical Evolutionary Process)की दृष्टि से गाँवों को निम्न भागों मेंविभाजित किया जा सकता है -

(i) कृषकों का सामूहिक ग्राम (Peasants Joint ownership Village),

(ii) कृषकों के सामूहिक किरायेदारी ग्राम (Peasants Joint Tenants Village),

(iii) कृषकों का व्यक्तिगत स्वामित्व ग्राम (Peasant's Individual ownership Village),

(iv) कृषकों के व्यक्तिगत किरायेदार ग्राम (Peasaant's Individual ownership tenants Village),

(v) व्यक्तिगत कृषक मजदूरों के ग्राम (Private Peasants employees Village),

(vi) राज्य व धर्म, धार्मिक संप्रदाय के ग्राम (राज्य और चर्च किसान कर्मचारी ग्राम)।

(5) भूमि व्यवस्था के आधार पर (On the Basis of Land Tenure) प्रसिद्ध विचारक बेडन पावल (Baden Powell) ने भूमि व्यवस्था के आधार पर ग्रामों को निम्न भागों में विभाजित किया है-

(i)रैयतवारी ग्राम (Severalty village),

(ii)सामूहिक ग्राम (Collective village)।

(6)संरचना के आधार पर (On the Basis of Structure & Karve) का विचार है कि संरचना ग्रामीण जीवन का मुख्य आधार है। अतः इन्होंने संरचना को ध्यान में रखकर गाँवों को निम्न भागों में विभाजित किया है-

(i) बिखरे हुए गाँव (Non-Structure village),

(ii) समूह ग्राम (Grouped village) |

भारतीय गाँवों का सामान्य वर्गीकरण (General Classification of Indian village) -जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों ही दृष्टियों से भारत एक विशाल देश है। इस विशालता के कारण भारतीय गाँवों का वर्गीकरण एक समस्या है। भारतीय गाँवों का वर्गीकरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है - (1) जनसंख्या के आधार पर (On the Basis of Population) जनसंख्या की दृष्टि से भारतीय गाँवों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) बड़े ग्राम,

(ii) मध्यम ग्राम और

(iii) छोटे ग्राम।

बड़े ग्रामों की श्रेणी में 5000 से अधिक जनसंख्या वाले गाँवों को सम्मिलित किया जा सकता है। छोटे ग्रामों के अन्तर्गत 500 से कम आबादी वाले ग्रामों को सम्मिलित किया जा सकता है। जो ग्राम 500 से अधिक तथा 5000 से कम की आबादी के है। उन्हें मध्यम श्रेणी के गाँवों में सम्मिलित किया जा सकता है।

(1) क्षेत्रफल के आधार पर (On the Basis of Area) क्षेत्रफल के आधार पर गाँवों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) विस्तृत गाँव, और

(ii) सीमित गाँव।

विस्तृत गाँव वे है, जो विशाल क्षेत्रों में फैले होते हैं। इनका क्षेत्रफल काफी बड़ा होता है। इसके विपरीत सीमित क्षेत्रफल में फैले गाँव 'सीमित गाँव' के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

(2)सुविधाओं के आधार पर (On the Basis of Services) ग्रामीण जीवन में उपलब्ध सुविधाओं समाजशास्त्र: बी.ए. प्रथम वर्ष के आधार पर गाँवों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) पूर्ण सुविधायुक्त गाँव,

(ii) आंशिक सुविधायुक्त गाँव, और

(iii) असुविधायुक्त गाँव।

पूर्ण सुविधायुक्त गाँव की श्रेणी में उन गाँवों को रखा जाता है, जहाँ मानव जीवन की समस्त आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इन सुविधाओं में आवागमन तथा संचार, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा, शिक्षा, सुरक्षा, व्यवसाय आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। असुविधायुक्त गाँव वे है, जहाँ उपर्युक्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है। अर्द्धसुविधा युक्त गाँव इन दोनों के मध्य की स्थिति है, जहाँ कुछ सुविधाएँ भी हैं और कुछ असुविधाएँ भी।

(3)अर्थव्यवस्था के आधार पर (On the Basis of Economy) अर्थव्यवस्था के आधार पर गाँवों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) कृषि प्रधान गाँव,

(ii) उद्योग प्रधान गाँव और

(iii) मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले गाँव।

कृषि प्रधान गाँव वे हैं, जिनकी अर्थव्यवस्था खेती पर आधारित है। इन गाँवों में निवास करने वाले व्यक्तियों का प्रमुख व्यवसाय खेती करना है। इसके विपरीत उद्योग प्रधान गाँव वे हैं, जिनमें ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति तथा जीवन-यापन के लिए कुटीर उद्योगों का सम्पादन किया जाता है। इन उद्योगों में लकड़ी, लोहा, मिट्टी, चमड़े आदि के उद्योग सम्मिलित हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले गाँव हैं, जहाँ कृषि तथा उद्योग दोनों का ही मिला- जुला स्वरूप पाया जाता है।

(4)परिस्थिति शास्त्रीय आधार पर (On the Basis of Ecology) नगरीय और ग्रामीण परिस्थितियों के आधार पर गाँवों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) नगरीकृत गाँव,

(ii) अर्द्ध नगरीकृत गाँव और

(iii) ग्रामीण गाँव।

नगरीकृत गाँव वे हैं, जो विशाल नगरों के पास स्थित है। इन नगरों की अर्थव्यवस्था तथा जीवन पूर्णतया नगरों पर आधारित होता है। इन गाँवों में कोलकाता, मुम्बई, दिल्ली आदि के आस-पास स्थित गाँवों को सम्मिलित किया जा सकता है। ग्रामीण गाँव वे है, जो नगरीय सभ्यता से दूर स्थित हैं। वहाँ का वातावरण तथा जीवन ग्रामीण तत्वों पर आधारित है। अर्द्ध नगरीय गाँव वे है, जो न पूर्णतया नगरीकृत ही हैं और न ही ग्रामीण।

(5)अन्य वर्गीकरण(Other Classification) उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त गाँवों को अन्य अलग भागों में विभाजित किया जा सकता है, जो निम्न है-

(a)शैक्षणिक आधार पर गाँवों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) शिक्षित गाँव,

(ii) अर्द्धशिक्षित गाँव, और

(iii) अशिक्षित गाँव।

b.धार्मिक आधार पर गाँवों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) एक धर्म-प्रधान गाँव,

(ii) मिश्रित धर्म प्रधान गाँव।

© राजनैतिक आधार पर गाँव को सत्ता पक्ष और सत्ता विरोधी इन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

भारतीय गाँवों के इस सामान्य वर्गीकरण को निम्न तालिका में दिखाया गया है-

भारतीय गाँवों का सामान्य वर्गीकरण

↓

जनसंख्या के आधार पर:

- - बड़े गाँव
- - मध्यम गाँव
- - छोटे गाँव

क्षेत्रफल के आधार पर:

- - विस्तृत गाँव
- - सीमित गाँव

सुविधाओं के आधार पर:

- - पूर्ण सुविधायुक्त गाँव
- - आंशिक सुविधायुक्त गाँव
- - असुविधायुक्त गाँव

अर्थव्यवस्था के आधार पर:

- - कृषि प्रधान गाँव
- - उद्योग प्रधान गाँव
- - मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले गाँव

परिस्थिति शास्त्रीय आधार पर:

- - नगरीकृत गाँव
- - अर्ध नगरीकृत गाँव
- - ग्रामीण गाँव

शैक्षणिक आधार पर:

- - शिक्षित प्रधान
- - अर्द्धशिक्षित प्रधान
- - अशिक्षित प्रधान

धार्मिक आधार पर:

- - एक धर्म प्रधान
- - मिश्रित धर्म प्रधान

राजनीतिक आधार पर:

- - सत्ता पक्ष

- - सत्ता विरोधी पक्ष

4.5 ग्रामीण समुदाय (*Village Community)*

सामुदायिक जीवन (Community life) मानव समाज की मौलिक विशेषता है। सामुदायिक जीवन के दो पहलू हैं - ग्रामीण (Rural) और नगरीय (Urban)। सामुदायिक जीवन के ये दोनों पहलू सामाजिक परिस्थितिशास्त्र (Social Ecology) की देन है। गाँव और नगर दोनों की ही परिस्थितियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्रीय हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) का विचार है कि समाज का उद्विकास हुआ है। समाज में जितनी भी संस्थाएँ है, उन सबको सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा है। उद्विकास की इस प्रक्रिया में समाज की संरचना में भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न संस्थाएँ स्थित हैं।

ग्रामीण अंग्रेजी के 'रूरल' शब्द का हिन्दी रूपांतर है। ग्रामीण शब्द ग्राम से बना है। यहाँ ग्रामीण का तात्पर्य है गाँव से संबंधित ग्राम को साधारण बोलचाल की भाषा में गाँव कहा जाता है। यहाँ ग्रामीण शब्द के अर्थ और ग्रामीण जीवन के उद्विकास की विवेचना की जायेगी।

ग्राम का अर्थ (गाँव का अर्थ) ग्राम शब्द का अर्थ ऋग्वेद, महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्य ग्रंथों में किया गया है। ग्राम शब्द का अर्थ मानव समाज के सामाजिक संगठन की पहली इकाई से लगाया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार ग्राम वह स्थान है, जो प्राचीन कृषकों की स्थापना को दर्शाता है। ग्राम एक सहवासी समुदाय है। इसके सदस्यों का जीवन परस्पर सम्बंधित होता है। यहाँ का जीवन आत्मनिर्भर होता है और अपनी विशिष्टता के कारण यह दूसरे समुदायों से भिन्न रहता है। संक्षेप में यह मानव जीवन का निवास है, जहाँ सामुदायिक जीवन के सभी तत्व पाये जाते हैं।

भारतीय ग्रामीण समुदाय का इतिहास अत्यंत ही प्राचीन है। ग्रामीण समुदाय का भारत में ऐतिहासिक विकास तथा इसके कार्यों और उत्तरदायित्वों की विवेचना डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी ने की है। प्राचीन भारत में ग्रामों को अनेक नामों से पुकारा जाता था। इनमें कुल (Kula), गण (Gana), जाति (Jati), संघ (Sangh), समुदाय (Samudaya), समूह (Samuha), परिषद (Parishad) आदि के नामों से पुकारा जाता था। प्राचीन भारत में प्रत्येक ग्रामीण समुदाय का मुखिया होता था। ये ग्राम, इकाइयों में बँटे हुए थे तथा इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता था।

(1)1 ग्रामों का मुखिया 'ग्रामिक'।

(2)10 ग्रामों का मुखिया 'दासी'।

(3)20 ग्रामों का मुखिया 'विशान्ती'।

(4)100 ग्रामों का मुखिया 'शती'।

(5)1000 ग्रामों का मुखिया 'सहत्र ग्रामाधिपति' कहलाता था।

ग्रामीण समुदाय की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने ग्रामीण समुदाय की जो परिभाषाएँ दी है, वे निम्नलिखित है-

(1)**मेरिल तथा एलरिज** "ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का संकलन होता है, जो छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं है तथा सामान्य प्राथमिक हितों में भाग लेते हैं।"।

(2)**डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी** "समस्त मनुष्यों के एक सामान्य सभा के रूप में अपने समस्त सदस्यों के समान अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के लिए कार्य करता है, ताकि सब लोगों के मस्तिष्क में एक स्वतंत्रता, समानता और मातृत्व की भावना हो।"2

(3)**सिम्स (Sims)** - "गाँव नाम का प्रयोग सामान्यतः किसानों की बस्तियों के लिए किया जाता है।"

(4)**पीक (Peake) -** "ग्रामीण समुदाय परस्पर सम्बंधित अथवा असंबंधित व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो कि एक परिवार से आकार में बड़ा होता है जिसके अंतर्गत पास-पास बने अनेक मकान तथा खेत होते हैं। साथ ही अनेक चरागाह या बेकार जमीन होती है जिस पर कि वहाँ के निवासी पशुओं को चराते हैं। एक निश्चित सीमा तक यह या जमीन 'हमारी है' यह भावना भी वहाँ लोगों में स्पष्ट होती है।"

"ग्रामीण समुदाय को भारतवर्ष की उस लघु इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें आत्मनिर्भरता, जनसंख्या की समरूपता, प्रकृति से निकटता, सरलता आदि विशेषताएँ पाई जाती है।"

ग्रामीण समुदाय का उद्विकास

ग्रामीण समुदाय सामाजिक उद्विकास का ही एक अंग है। उद्दिद्वकासवादी विचारकों के अनुसार समाज की हर संस्थाओं और समुदायों का उद्विकास सरल से जटिल की प्रक्रिया में हुआ है। उद्दिद्वकासवादी विचारकों ने समाज के उद्विकास के स्तरों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है, किंतु सबकी आत्मा एक ही है। आगवर्न और निमकॉफ ने ग्रामीण समुदाय के उद्विकास की तीन अवस्थाएँ बतलाई है, जो निम्नानुसार है-

आखेट और भोजन इकट्ठा करने की अवस्था (Hunting and Food Gathering Stage)- मानव समाज के उद्विकास की यह सबसे पहली अवस्था थी। जब मनुष्य छोटे-छोटे समुदायों में रहता था और अपनी जीविका के लिए आखेट के द्वारा जानवरों का माँस और अनेक प्रकार के जंगली फल, फूल, जड़, पत्तियाँ इकट्ठा करता था। यह जीवन अस्थायी था। शिकार और फलों की तलाश में छोटे-छोटे समुदाय एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते रहते थे। यह जीवन आर्थिक क्रियाओं तक ही सीमित था। घुमन्तू जीवन होने के कारण सामाजिल जीवन का प्रश्न गौड़ था। समुदाय के दोनों तत्व इसमें नहीं थे या उनकी अस्पष्ट और

परिवर्तित तस्वीर थी। गाँवों का निर्माण इस युग में नहीं हुआ था। विकास की प्रक्रिया में यह समुदाय आगे बढ़ता गया।

(1)**पशुपालन अवस्था** (Pastoral Stage) मानव समाज के विकास की दूसरी अवस्था पशु-पालन की थी। आखेट अवस्था में पशुओं को मार डाला जाता था। बाद में ऐसा अनुभव किया गया कि पशुओं को मारने की अपेक्षा उनको पालना अधिक लाभदायक है। ऐसा करने से घुमन्तू जीवन में कुछ परिवर्तन आया और तुलनात्मक दृष्टि से लोग झोपड़ियाँ बनाकर अस्थायी रूप से एक जगह तब तक रहते थे, जब तक कि चारों ओर पानी समाप्त नहीं हो जाता था। पानी और चारा के समाप्त हो जाने पर वे स्थान परिवर्तन कर लेते थे। कभी-कभी एक-दो झुंड मिलकर एक स्थान पर बस जाते थे। यहाँ पर सामुदायिक भावना कुछ उभरकर सामने आई। गाँवों की स्थापना यहाँ भी नहीं हुई थी, किंतु एक अस्पष्ट रूपरेखा तैयार हो गई थी, जिसकी अगली अवस्था में गाँवों का जन्म होना अवश्यम्भावी था।

(2)**कृषक अवस्था** (Agricultural Stage) जीवन तुलनात्मक दृष्टि से स्थाई हो गया। जो अनिश्चितता थी, वह निश्चितता की आशा में परिवर्तित हो गई। कृषक अवस्था को पुनः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

a.कृषक अवस्था का पहला चरण कृषक अवस्था का पहला चरण आदिम गाँव के रूप में था। ये आकार में काफी छोटे होते थे। अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति ये स्वयं की अपने सीमित साधनों से करते थे। व्यक्तिगत सम्पत्ति नाम की कोई चीज नहीं थी। जमीन, पशु और औजार गाँव की सम्पत्ति समझे जाते थे। सभी का जीवन सामान्य था, एक देवी-देवता और एक ही प्रकार का रहन-सहन। इन आदिम गाँवों को समुदाय कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ क्षेत्रीयता के साथ ही 'सामुदायिक भावना' सबसे अधिक मात्रा में पाई जाती थी।

b.कृषक अवस्था का दूसरा चरण धीरे-धीरे जनसंख्या और गाँवों के आकार में वृद्धि होती गई। छोटे-छोटे समूह मिलकर एक स्थान पर रहने लगे। अब जो सम्पत्ति गाँव ही होती थी सामहिक होती थी इस भावना का धीरे-धीरे ह्रास होता गया और इसके साथ ही व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना का विकास हुआ। कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों ने आर्थिक साधनों को अपने हाथों में ले लिया और निर्बल लोगों को अपना दास बना लिया। यहीं से सामन्तशाही प्रथा का सूत्रपात हुआ। यह गाँवों का मध्यकालीन रूप था।

c.कृषक अवस्था का तीसरा चरण भूमि और आर्थिक साधनों पर स्वामित्व होने के कारण कृषि का विकास हुआ। भूमि का अधिकार वंशानुगत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होने लगा और उत्तराधिकार का महत्व बढ़ा। जनसंख्या से सजातीयता का रूप समाप्त हो गया। समूहवाद की भावना का पतन हो गया। व्यक्तियों में स्वार्थ की भावना चरम सीमा पर पहुँच गई। कृषि से सम्बंधित उद्योगों का जन्म और विकास हुआ। कृषि के लिए आधुनिकतम यंत्रों का विकास हुआ और 'समुदाय' का पूरी तरह से अंत हो गया। गाँव के इस रूप को आधुनिक गाँव कहा जाता है।

ग्रामीण समुदायों की उत्पत्ति के सिद्धांत

ग्रामीण समुदायों की उत्पत्ति के सम्बंध में विद्वान एकमत नहीं है। उन्होंने इसे अलग-अलग दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है। ग्रामों की उत्पत्ति के सम्बंध में प्रमुख सिद्धांत निम्न है -

(1)**कृषि सम्बंधी सिद्धांत (Agriculture Theory)** इस सिद्धांत के विद्वानों के अनुसार कृषि गाँवों की उत्पत्ति का मूल कारण है। जब से मानव को कृषि का ज्ञान हुआ, तभी उसे स्वाभाविक रूप से धरती (Land) से लगाव हो गया। यह लगाव धीरे-धीरे बढ़ा और यहाँ तक बढ़ा कि फिर भूमि को छोड़ना

असम्भव हो गया। इसी के कारण लोग एक स्थान पर बस गये और गाँवों का जन्म हुआ।

(2) **उद्विकासवादी सिद्धांत (Evolutionary Theory)** उद्विकासवादी सिद्धांत के अनुसार हर संस्था और समिति का उद्विकास हुआ है। यह उद्विकास एकाएक नहीं हुआ है, बल्कि इसकी कुछ अवस्थाएँ रही है। इसी प्रकार गाँवों का उद्विकास हुआ है। सभ्यता और संस्कृति के विकास ने गाँवों को जन्म दिया। मनुष्य आखेट अवस्था से चारागाह अवस्था में आया और स्वाभाविक रूप से चारागाह से कृषि अवस्था में आया। यहाँ मनुष्य छोटे-छोटे समूहों में बस गये और गाँवों का जन्म हुआ।

(3)**ऐतिहासिक सिद्धांत (History Theory)** इस सिद्धांत के विचारकों का कहना है कि गाँवों की उत्पत्ति ऐतिहासिक युगों में हुई। मानव विकास के पहले चरण में मनुष्य इधर-उधर घूमा करता था। बाद में उसने ठंड, गर्मी, वर्षा आदि से बचने के लिए कन्दराओं और गुफाओं की खोज की। उसके बाद मनुष्यों ने मकानों का आविष्कार पाषाण युग में किया। कृषि के प्रति लगाव होने से मकान खेतों पर बनाये जाने लगे और नवपाषाण युग में गाँवों का जन्म हुआ।

(4)**पशुपालक सिद्धांत (Pastoral Theory**) पशुपालक अवस्था मानवीय समाज के उद्विकास की दूसरी अवस्था है। आखेट से प्राप्त जानवरों को मारने की अपेक्षा उसने उनको पालना शुरू किया। अभी तक वह पूर्णतया घुमन्तू था और वह कहीं भी जाए या रह जाए उसे लौटने की चिंता नहीं होती थी। अब पशुओं के कारण उसे पुरानी जगहों में आना पड़ता था। वह एक निश्चित क्षेत्र में ही घूम सकता था। जहाँ पर पर्याप्त चारा और पानी मिल जाता था, घुमक्कड़ वहीं बस जाते थे और गाँवों का जन्म हो जाता था। इसके बाद कृषि के कारण उनमें स्थायीपन आया।

ग्रामीण समुदाय की विशेषताएँ

(Characteristics of Village Community)

ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) जनसंख्या सम्बंधी विशेषताएँ -

(i) ग्रामीण समुदायों में जनसंख्या कम होती है।

(ii) ग्रामीण समुदायों की जनसंख्या का घनत्व हमेशा भूमि पर निर्भर होता है।

(iii) ग्रामीण समुदायों की जनसंख्या में समरूपता पाई जाती है।

(iv) ग्रामीण समुदायों की जनसंख्या में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।

(v) ग्रामीण समुदायों में पाई जाने वाली जनसंख्या में समरूपता और सरलता पाई जाती है।

(2) **भौगोलिक विशेषताएँ**- ग्रामीण समुदाय भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय का जीवन परिस्थितियों पर आधारित होता है। जमीन, कृषि, जंगल, पशु, सूर्य, चंद्र, ठंड, गर्मी और बरसात का उनके निकट जीवन से सम्बंध होता है।

(3) **आर्थिक विशेषताएँ -** ग्रामीण समुदायों की आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) कृषि ग्रामीण समुदाय के आर्थिक जीवन का आधार होती है।

(ii) कृषि से सम्बंधित अन्य कुटीर उद्योग भी भारतीय ग्रामीण समुदायों की अर्थव्यवस्था को निर्धारित करते हैं।

(iii) ग्रामीण समुदायों में पाये जाने वाले व्यवसाय वंशानुगत होते हैं और ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को परम्परागत रूप से हस्तांतरित होते रहते हैं।

(iv) ग्रामीण आर्थिक जीवन अत्यंत ही सरल और स्पष्ट होता है।

(v) ग्रामीण समुदायों में आर्थिक क्षेत्र में श्रम-विभाजन और विशेषीकरण प्रक्रिया जटिल नहीं होती है।

(vi) ग्रामीण समुदाय के व्यवसाय परम्परागत होते हैं। मूलतः व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का अभाव पाया जाता है।

(4) **सामाजिक विशेषताएँ** - ग्रामीण समुदायों में निम्न सामाजिक विशेषताएँ पाई जाती है -

(i) सामुदायिक जीवन की भावना अत्यंत ही प्रबल होती है। ग्रामीण जीवन में इस सामुदायिक भावना का प्रकाशन निम्न तीन तत्वों के आधार पर होता है-

(a)हम की भावना (We feeling),

(b)आत्मनिर्भरता की भावना (Dependency feeling)

(c)कर्त्तव्य की भावना (Duty Feeling)।

(ii) ग्रामीण समुदायों में पड़ोस का अत्यधिक महत्व होता है।

(iii) ग्रामीण सामाजिक जीवन में मत-मतांतरों का अभाव होने के कारण घनिष्ठता पाई जाती है।

(iv) ग्रामीण समुदायों में जाति प्रथा का अत्यधिक महत्व होता है।

(v) ग्रामीण समुदायों में संयुक्त परिवारों की प्रबलता होती है।

(vi) विवाह को एक धार्मिक संस्कार माना जाता है। विवाह में माता-पिता और संरक्षकों की प्रधानता होती है।

(vii) ग्रामीण जीवन में अनेक प्रकार के रीति-रिवाज और प्रथाएँ पाई जाती है।

(viii) ग्रामीण समुदाय भाग्यवादी होता है।

(5)**धार्मिक विशेषताएँ** - ग्रामीण समुदायों की धार्मिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(ix) ग्रामीण समुदाय धर्म को सबसे ज्यादा महत्व प्रदान करता है।

(x)ग्रामीण समुदाय अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों से पूर्ण होता है।

(6)राजनैतिक विशेषताएँ गामीण समुदायों की राजनैतिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

a. ग्रामीण समुदायों में राजनैतिक एकरूपता पाई जाती है।

b. ग्रामीणों को प्रशासकीय व्यवस्थाओं का ज्ञान नहीं होता है।

(7)ग्रामीण समुदायों की संस्कृति सरल, यथार्थवादी और परम्पराओं पर आधारित होती है।

4.6 कस्बा (*town*)

मानव-निवास के स्थानों को विद्वानों ने उनकी जनसंख्या, मकानों की बनावट, प्रशासनिक एवं वैधानिक आधार पर विभिन्न भागों में विभक्त किया है, जिनमें ग्राम, कस्बा, नगर, महानगर, मैगापोलिस, प्रदेश या क्षेत्र प्रमुखतः उल्लेखनीय हैं। पूर्व के अध्यायों में ग्राम एवं नगर का वर्णन विस्तार में किया जा चुका है। अब, कस्बों के बारे में प्रकाश डाला जायेगा।

'कस्बा', ग्राम और नगर के बीच की संरचना है, अर्थात् कस्बे को पूर्णतया न तो गाँव कहा जा सकता है और न ही नगर (Cities), बल्कि इन दोनों के मध्य की कृति, 'कस्बा' कहलाती है। जनसंख्या की दृष्टि से कस्बे, गाँवों की तुलना में बड़े तथा नगरों से छोटे होते हैं। कस्बों में गाँवों और नगरों की मिश्रित विशेषताएँ पाई जाती हैं। इस कारण कस्बों का जीवन अधिक संतुलित व व्यवस्थित माना जाता है।

सामान्यतया कस्बों की आबादी 5000 से 10,000 के बीच मानी गई है। कुछ लोग 40,000 से 50,000 तक की आबादी वाली बस्ती को भी कस्बा मानते हैं। भारत में गंगा-यमुना के दोआब (द्वाबा क्षेत्र) में ऐसे बहुत से कस्बे बे हैं, जिनकी आबादी 30,000 तथा 35,000 से भी अधिक है। कस्बे की अवधारणा,

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों,संस्थाओं, सभ्यताओं, देशों और समयानुसार बदलती रही है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विश्व के 133 देशों का सर्वेक्षण कराया गया, जिससे ज्ञात हुआ कि 33 देशों ने गाँव, कस्बा और नगर का भेद, जनसंख्या के आधार पर, 20 देशों ने जनसंख्या व अन्य आधारों पर, 65 देशों ने वैधानिक, प्रशासनिक एवं शासकीय आधार पर और 15 देशों ने कुछ अन्य आधार पर यह भेद किया था।

कस्बा भी नगरीय क्षेत्र ही है, परंतु वह नगर की तुलना में छोटा होता है। कभी-कभी अंग्रेजी के 'Town' तथा 'City' शब्द का प्रयोग समानार्थी के रूप में होता है। ब्रिटेन में नगरीय क्षेत्रों के लिये आज भी 'Town' शब्द का प्रयोग होता है। 'City' शब्द का प्रयोग रोमन साम्राज्य एवं ब्रिटेन में उन नगरों के लिये होता था, जहाँ प्रधान गिरजाघर अथवा ईसाई पादरियों का स्थान होता था।

रिचथोफेन ने कस्बे को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "कस्बा एक संगठित समूह है जिसमें सामान्यतया प्रमुख व्यवसाय, कृषि क्रियाओं के विपरीत वाणिज्य तथा उद्योग से सम्बंधित है।" रेटजल महोदय ने कस्बे की तीन विशेषताएँ इस प्रकार बताई हैं-

(i) कस्बे में व्यापार एवं उद्योगों की प्रधानता होती है।

(i) मकानों का केन्द्रीयकरण और

(ii) निवासियों की एक न्यूनतम जनसंख्या 2,000 से अधिक होती है।

भारत में 1891 से 1941 तक की अवधि में जनगणना में 'कस्बे' की परिभाषा लगभग एक समान रही। सन् 1951 में आंशिक संशोधन हुआ। इस अवधि में 'कस्बे' की परिभाषा इस प्रकार थी-

"सभी नगर पालिकाओं को, चाहे किसी भी जनसंख्या की हो तथा मकानों के अन्य प्रत्येक सतत् समूह का जिसमें कम से कम 5,000 व्यक्ति स्थायी रूप से निवास करते हों तथा जिसे जनगणना अधिकारी 'कस्बा' घोषित करता हो।"

सन 1961 में इस परिभाषा में कुछ परिवर्तन किया गया और 1971, 1981 तथा 1991 की जनगणना में निम्नांकित आधारों पर 'कस्बे' का निर्धारण किया गया -

(i) वे सभी स्थान कस्बे कहे जायेंगे, जिनमें नगरपालिका, नगर निगम, छावनी, अधिसूचित नगर क्षेत्र या इसके समकक्ष कोई इकाई हो।

(ii) जहाँ की न्यूनतम जनसंख्या 5,000 हो।

(iii) जहाँ पुरुषों की कार्यशील जनसंख्या का न्यूनतम 75 प्रतिशत भाग कृषि के अतिरिक्त कार्यों में लगा हुआ हो।

(iv) जहां जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्गमील या 1000 व्यक्ति प्रति वर्गमील हो।

(v) अन्य कोई स्थान, जो उपर्युक्त विशेषताओं में सीमावर्ती है, परंतु प्रांतीय जनगणना अधिकारी के अनुसार स्पष्ट नगरीय सुविधाएँ एवं विशेषताएँ रखता हो।

गाँव, कस्बा एवं नगर का भेद व्यक्त करने के लिये दो प्रकार की परिभाषाएँ मुख्य रही है पहली वैधानिक तथा दूसरी - भौगोलिक। वैधानिक परिभाषाओं में कस्बा, वह है जिसे सरकार, कानून या सरकारी जनगणना के द्वारा कस्बे की मान्यता प्रदान करती है। भौगोलिक दृष्टि से कस्बे में वह सम्पूर्ण निर्मित क्षेत्र सम्मिलित है जो सभी दिशाओं में उस सीमा तक फैला होता है, जहाँ तक कृषि क्षेत्र, जंगल तथा अन्य नगरीय भूमि अथवा जलाशय महत्वूपर्ण ढंग से कस्बे के प्रसार को अलग न करता हो। इस परिभाषा का प्रयोग प्रायः भूगोलवेत्ता करते हैं। स्पष्ट है कि कस्बा भी नगरीय क्षेत्र ही है तथा कस्बे व नगर के लिये अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त 'Town' और 'City' शब्द समानार्थक रूप में व्यवहृत होते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार हमारे समक्ष यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि

कोई परिभाषा कस्बा विशेष के लिए है अथवा नगर के लिए। कस्बे एवं नगर का भेद ज्यादा स्पष्ट नहीं है।

पूर्व के विवेचनों में यह उल्लेख किया जा चुका है कि कस्बे, ग्राम एवं नगर के मध्य स्थित कड़ी के रूप में जाने जाते है। अर्थात् कस्बों में न तो बहुत अधिक ग्राम्य परिवेश जैसी परिस्थिति परिलक्षित होती है और न ही नगरों या महानगरों जैसा वातावरण। कस्बे केवल आकार विशेष के कारण नगरों से छोटे भर नहीं होते, बल्कि तमाम अन्य बातें भी कुछ ऐसी होती हैं जो कि नगरों और महानगरों में पाई जाती है, जबकि कस्बों में नहीं। इसी तरह शुद्ध ग्रामीण क्षेत्र के वातावरण, वहाँ के रहन-सहन और वहाँ की संस्कृति हुबहू कस्बों में नहीं पाई जाती, बल्कि उसका आंशिक प्रभाव कस्बों में दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि कस्बे गाँव की तुलना में भौतिक रूप से अधिक विकसित व प्रगतिशील तो होते हैं, परंतु इतना अधिक विकसित भी नहीं माने जा सकते कितना कि नगरों और महानगरों को माना जाता है। कभी-कभी कस्बे और नगर में भेद करना कठिन अवश्य होता है, परंतु असंभव नहीं।

पूर्व के अध्यायों में गाँव एवं नगर का विस्तृत विवेचन अलग से किया जा चुका है तथा उनमें उनकी विशेषताओं और महत्वों का प्रतिपादन भी किया जा चुका है। चूँकि कस्बे, गाँव एवं नगर के बीच की कड़ी होते है, इस कारण कस्बों को विशेषताओं एवं उसके महत्व के संबंध में उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसका अध्ययन पूर्व विवेचनों के आधार पर समझा जा सकता है।

4.7 नगर (*City*)

नगरों की उत्पत्ति और विकास के सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि नगरों का इतिहास भूतकाल में अलिखित पृष्ठों में दिया हुआ है। हम केवल नगरों की उत्पत्ति एवं विकास के

विषय में अनुमान लगा सकते है, अतः नगरों की उत्पत्ति की निश्चित तिथि का निर्धारण करना अत्यंत ही कठिन कार्य है। नगरों को किसी विशेष ऐतिहासिक युग की देन नहीं कहा जा सकता है। इनका इतिहास तो मानवीय साधनों के विकास क्रम के साथ जुड़ा हुआ है। अनंत आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए अपनाए जाने वाले साधन को भी नगरों का इतिहास कह सकते हैं।

प्रारम्भिक अवस्था में मानव घुमन्तू जीवन व्यतीत करता था। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त एक स्थान से दूसरे स्थान की तलाश करता रहता था। मानव उद्विकास के क्रम ने मनुष्य को आखेट अवस्था से पशुपालन अवस्था में लाकर छोड़ा, जहाँ मनुष्य स्थायी रूप से निवास तो नहीं करने लगा, परंतु तुलनात्मक रूप से उसके जीवन में स्थायित्व आया। मानव उद्विकास की तीसरी अवस्था जिसे कृषि की अवस्था के नाम से जाना जाता है, ने मानव को विवश कर दिया है कि वह एक निश्चित समय पर निश्चित स्थान पर रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि गाँवों का जन्म हुआ, जैसे कि गाँधी जी ने भी इस संदर्भ में अपने विचार प्रतिपादित किये हैं।

गिस्ट (Gist) और हेलबर्ट (Helbert) ने नगरों के उद्विकास को सभ्यता के उद्विकास के साथ जोड़ा है। उन्होंने लिखा है कि "सभ्यता की उत्पत्ति के समान ही नगर की उत्पत्ति भी भूतकाल के अंधकार में खो गई है।"।

विद्वानों का विचार है कि मनुष्य ने पाँच लाख से भी अधिक वर्ष खानाबदोशी जीवन के रूप में व्यतीत किये। पेट भरने के लिए वह यहाँ से वहाँ मारा-मारा फिरता रहा है। भोजन ही उस युग की एकमात्र मूलभूत आवश्यकता थी। चूंकि पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाई थी, इसीलिए लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को भ्रमण करते थे। मौसम के बदलने के साथ ही पशु भी स्थान परिवर्तन करते थे, इसलिए शिकारी इन पशुओं की तलाश में स्थान परिवर्तन करते थे।

नगर की उत्पत्ति

नगर की उत्पत्ति के सम्बंध में प्रमुख विद्वानों के जो विचार है, वह निम्नलिखित है -

1. मार्गरेट पूरे (Margaret Murray) इनका विचार है कि नगर की उत्पत्ति धातु युग (Metal Age) में हुई है। उसने अपने कथन के समर्थन में यह तर्क दिया है कि धातु के अस्त्र पत्थर के अस्वों से अधिक अच्छे होते थे। इसीलिए जिन व्यक्तियों के पास धातु के अस्व होते थे, वह अन्य दूसरे व्यक्तियों पर जिनके पास पत्थर के अस्त्र होते थे, शासन करते थे। धातु के अस्त्रों के परिणामस्वरूप किसानों पर आधिपत्य स्थापित करना सरल था। यह व्यक्ति अपनी सेना के साथ कुछ विशिष्ट सुरक्षित स्थानों में निवास करने लगे, जहाँ सरलता के साथ आक्रमणकारियों से अपनी सुरक्षा कर सकें। अपनी सुरक्षा के लिए यह सैनिकों को भी साथ रखते थे। इस प्रकार नगर स्थायी सैनिक शिविरों के रूप में विकसित हुए।

2. क्वीन और थॉमस (Queen & Thomas) इन्होंने भी नगर की उत्पत्ति के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके कहने का सारांश यह है कि पहले गाँव विकसित हुए। धीरे-धीरे कालान्तर में यही गाँव नगरों के रूप में परिवर्तित हो गये। यही विशाल नगर साम्राज्यों की राजधानी बने। इन विद्वानों ने नगर की उत्पत्ति के विषय में जो कुछ लिखा है, वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है "निस्संदेह वह पहले गाँव के रूप में विकसित हो गये, जिसमें विशाल राज्यों की राजधानियाँ थीं।" लेकिन इसका कोई निश्चत प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि जनसंख्या के द्वारा पाषाण युग के गाँव नगर के रूप में विकसित हो गए। इस तथ्य के ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में नगर विशाल नहीं होते थे। अनेक नगर तो गाँव से भी बहुत छोटे होते थे। लुटेटिया (Lutetia) और विण्डोवोना (Vindovona) ऐसे ही नगरों के उदाहरण है। इन नगरों में सिर्फ पुरोहित, गृहपति एवं अधिकारी आदि को छोड़कर सैनिकों के लिए घर बसाना कठिन होता था।

3. ममफोर्ड (Mumford) इनका विचार है कि नगरों का विकास गाँवों से हुआ है। उन्होंने लिखा है कि "आजकल वास्तव में जो नगर दिखलाई पड़ रहे हैं, उनमें से अधिकांश गाँवों में ही निहित थे।" उसके अनुसार नगरों का विकास दो स्तरों की संस्कृतियों के संस्करण से हुआ है।

4. चार्ल्स कूले (Charles Cooley) नगरों की उत्पत्ति के सम्बंध में प्रसिद्ध समाजशास्त्री चार्ल्स कूले (Charles Cooley) का सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। इस सम्बंध में उसने परिवहन के सिद्धांत (Theory of Transportation) का प्रतिपादन किया था। कूले ने लिखा है कि "नगरों का जन्म यातायात और संदेशवाहन के साधनों के जन्म और विकास के परिणामस्वरूप हुआ है। जिस स्थान पर यातायात और संदेशवाहन के साधनों के विकास की स्थिति अनुकूल थी, वहीं पर विशाल नगरों का जन्म हुआ। इसीलिए समुद्र के किनारे सबसे बड़े नगर विकसित हुए जो आज भी दिखाई देते हैं। परिवहन के परिणामस्वरूप वस्तुओं का एक स्थान से दूसरे स्थान को लाना ले जाना सम्भव होता है और इस प्रकार की उत्पत्ति होती है।"

5. एण्डर्सन (Anderson) ने नगरों की उत्पत्ति और विकास में परिवर्तन को महत्वपूर्ण माना है। नवीन आविष्कार और परिवर्तन नगरों की उत्पत्ति और विकास के महत्वपूर्ण कारण रहे हैं, जो स्थान विकसित हो जाते थे, बड़े हो जाते थे, यह छोटे स्थानों या अविकसित स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करते थे। यहाँ पर आर्थिक और भौगोलिक सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं। नगरों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभुत्व स्थापित करने की प्रक्रिया और प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप नगरों का जन्म हुआ। कुछ विद्वानों का विचार है कि राजनैतिक सत्ता के परिणामस्वरूप नगरों का जन्म और विकास हुआ। राजनैतिक सत्ता स्थापित हो जाने के पश्चात शासक वर्ग अपने रहने के लिए निवास और सैनिक शिविर आदि की स्थापना करते थे। मंदिर, मस्जिद, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध करने का प्रयास करते थे। व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित करते थे। यह सभी तत्व मिलकर नगरों के विकास में योगदान देते थे।

नगरों के विकास में धर्म का भी महत्व किसी भी प्रकार से कम नहीं है। धर्म, व्रत, मेले और बाजार आदि ऐसे कारक हैं, जहाँ पर से अनेक व्यक्तियों का सम्पर्क होता था। यह सम्पर्क धीरे-धीरे स्थायित्व प्रदान करता गया और नगरों का जन्म हुआ। नगरों के विकास में धर्म का भी महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं है। धर्म, व्रत, मेले और बाजार आदि ऐसे कारक है, जहाँ अनेक व्यक्तियों का सम्पर्क होता था। यह सम्पर्क धीरे-धीरे स्थायित्व प्रदान करता गया और नगरों का विकास हुआ।

नगरों के उद्‌विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Development of Cities)

नगरों का उद्‌विकास एक निश्चित क्रम से हुआ है। नगर कोई आधुनिक सभ्यता की उपज नहीं हैं, अपितु प्राचीनकाल से समाज में नगरों का अस्तित्व रहा है। सुविधा की दृष्टि से नगरों के उद्‌विकास के क्रम को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1.प्राचीन नगर (The Ancient Cities)- मानव समाज को प्राप्त सभ्यताएँ यह बतलाती हैं कि अत्यंत प्राचीनकाल में नगरों का अस्तित्व था। नील, दजला, फरात, सिंधु की घाटियों में जो सभ्यताएँ प्रकाश में आई है वे ऐसा प्रमाणित करती है कि उस युग में भी नगर अत्यंत ही विकसित रूप में थे। कारपेंटर ने प्राचीनकाल में नगरों के विकास के सम्बंध में अपने मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि निम्न कारणों से प्राचीनकाल में नगरों का विकास हुआ है-

(i) हल्की जलवायु, (ii) खाद्‌य सामग्री की उत्पत्ति,

(iii) आक्रमणों से तुलनात्मक दृष्टि में मुक्त (iv) उपजाऊ भूमि, और

(v) अनुकूल जलवायु।

कारपेंटर ने नगरों की उत्पत्ति और विकास के बारे में जो महत्वपूर्ण कारण बतलाये हैं उन्हें ग्रास (Gras) ने भी स्वीकार किया है, किंतु उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त उसने निम्नलिखित तीन कारण और बताये है जिनका नगरों की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण योगदान है -

(i) भूमि एवं जल प्राप्ति के साधन, (ii) शत्रुओं से दूरी और

(iii) व्यापार की दृष्टि से स्वतंत्र क्षेत्र।

अनेक विद्वानों ने प्राचीनकाल में नगरों के विकास की जो विवेचना प्रस्तुत की है, उससे स्पष्ट होता है कि नगरों की उत्पत्ति एक निरन्तर प्रक्रिया के द्वारा हुई और यह प्रक्रिया आज भी गतिशील है।

2. औद्योगिक क्रांति तथा आधुनिक नगर (Industrial Revolution & Modern Cities) - आधुनिक अर्थों में हम जिन्हें नगरों की संज्ञा देते हैं, वह इस युग की औद्योगिक क्रांति के परिणाम है। औद्योगीकरण ने उद्योगों का विशाल पैमाने पर केन्द्रीकरण किया और मानव सुख-सुविधाओं में कई गुना वृद्धि की। इन सुख-सुविधाओं में रेल, डाक, तार, आवागमन और संदेशवाहन, सुरक्षा, चिकित्सा, शिक्षा आदि प्रमुख है।। । इन सुविधाओं ने भी नगरों के विकास में मदद की है। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप ही मात्र 200 वर्षों में मैनचेस्टर शहर की

आबादी में आठ हजार गुना वृद्धि हुई है। यहाँ की आबादी 1650 में मात्र 5,000 थी जो 1850 में 40,00,000 हो समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष गई। 1800 में 1 लाख की आबादी वाले नगरों की संसार की कुल संख्या 21 थी। उस समय संसार में ऐसा कोई नगर नहीं था, जिसकी आबादी 10 लाख हो। 1927 में सम्पूर्ण

संसार में 1 लाख की आबादी वाले नगरों की संख्या 537 थी। आज 1 लाख की आबादी सामान्य हो गई है और इतनी आबादी के अनेकों नगर हैं। जैसे-जैसे औद्योगीकरण में वृद्धि होती जा रही है, नगरीकरण में भी अपने आप ही वृद्धि होती जा रही है।

नगरों के विकास के स्तर और प्रक्रियाएँ (Process & Steps of Growth of Cities)

नगरों के विकास के विषय में विभिन्न विद्वानों के मतों की विवेचना करने के उपरांत हमें इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है कि नगरों के विकास की क्या प्रक्रिया हो रही है? नगरों का विकास किन रतरों से हुआ है और नगरीय विकास के कौन-कौन से कारण रहे हैं? इन प्रश्नों का उत्तर दिये बिना नगरों के उद्भव और विकास को नहीं समझा जा सकता है।

नगरों का उद्भव और विकास मानव समाज के उद्भव और विकास के साथ हुआ है, इसलिए वहाँ ग्रामीण और नगरीय जीवन के उद्विकास की विवेचना की जाएगी। सबसे पहले ग्रामीण जीवन की विवेचना की जाएगी और इसके पश्चात नगरीय जीवन की।

ग्रामीण जीवन (Rural Life)

ग्रामीण अंग्रेजी के शब्द (Rural) का हिन्दी रूपान्तर है। 'ग्रामीण' ग्राम शब्द से बना है। ग्रामीण का अर्थ ग्राम से सम्बंधित है। साधारण बोलचाल की भाषा में गाँव कहा जाता है। ग्रामीण जीवन को समझने के लिए गाँवों के उद्भव विकास, ग्रामीण संगठन और इसकी विशेषताओं को समझना आवश्यक है।

ग्राम का अर्थ (Meaning of Village) ग्राम शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्य अनेक स्थानों में प्रयोग किया गया है। ग्राम शब्द का अर्थ

सामाजिक संगठन की पहली इकाई से लगाया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ग्राम वह स्थान है जो प्राचीन उद्योगों में कई विधियों का आविष्कार हुआ, इनका बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। इसमें काम करने के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता हुई जो गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर आये और नगरीकरण हुआ। इसके साथ ही राजनैतिक और धार्मिक कारणों से भी नगरों का उद्भव हुआ।

नगरों के उद्विकास के कारक

हर सभ्यता के इतिहास में ग्राम से नगर की ओर प्रवास तथा नगरों का विकास देखा जाता है। मैकाइवर के अनुसार वास्तव में सभ्यता का मूल अर्थ 'शहरीकरण' है। प्राचीनतर सभ्यताओं जैसे मेसोपोटामिया, मिश्र, यूनान तथा रोम में जैसे-जैसे उनके नगरों की शक्ति और प्रभाव बढ़ा, उनकी सभ्यताएँ भी बढ़ीं। जब उन नगरों का पतन हुआ तो उसकी सभ्यताओं का भी पतन हुआ। मैकाइवर और पेज ने नगरों के विकास के लिए तीन कारकों को उत्तरदायी माना है, जो इस प्रकार है-

1. **मौलिक कारक के रूप में अतिरिक्त साधन (Surplus Resources as the Fundamental Factor)** जब मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं से अधिक साधनों पर अधिकार कर लेता है तो नगरों का विकास होता है। प्राचीन समय में नगरों के विकास में मानवीय शक्तियों का प्रमुख हाथ होता था। बेगार, दासता और पराधीनता की नीवों पर विशाल नगरों का निर्माण होता था। युद्ध के द्वारा यदि एक ओर साम्राज्यों का अंत होता था तो दूसरी ओर नगरों का विकास भी होता था। प्रकृति पर जैसे-जैसे विजय प्राप्त कर ली जाती है, वैसे ही वैसे अतिरिक्त साधन अधिकाधिक मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं। मैकाइवर के अनुसार नगरों के विकास का मौलिक कारण कृषि में क्रांति है। कृषि में क्रांति के परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति अन्य उद्योगों में संलग्न होने के लिए बाध्य हुए, क्योंकि कृषि में मशीनों के आ जाने से अनेक व्यक्ति बेकार हो गये। नगरीय जीवन की आवश्यकताओं में वृद्धि होती गई। खनिज पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान हुआ और इन सबका परिणाम यह हुआ कि नगरों का विकास हुआ।

2. औद्योगीकरण और व्यवसायीकरण (Industrialization and Commercialization) - औद्योगीकरण ने कई मशीनों को जन्म दिया। इन नई मशीनों की एक जगह स्थापना की गई। जहाँ इन मशीनों की स्थापना की गई, वहाँ पर काम करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार नगरों के विकास की गति तीव्र हो गई। पश्चिमी देशों में भाप की शक्ति के आविष्कार ने नगरों के आरम्भिक विकास का कार्य पूरा किया। भारत में भी टाटानगर, मोदीनगर और जमशेदपुर का विकास औद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव हो सका है। औद्योगीकरण केन्द्र में व्यापार और व्यवसाय ने भी शहरों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। औद्योगीकरण ने भी अधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन किया, जहाँ उसकी खपत नहीं हो सकती थी। अतः यह आवश्यक हो गया कि इन उत्पादों को दूसरे स्थान पर ले जाया जाये। इस प्रकार उत्पादों का वितरण प्रारंभ हुआ एवं वाणिज्य सम्बंधी संस्थाओं का विकास हुआ। प्राचीन भारत में पाटिलपुत्र, नालंदा आदि का विकास व्यापार के कारण ही हुआ था। आधुनिक भारत में भी कानपुर, अहमदाबाद आदि का विकास व्यवसाय व व्यापार के कारण ही हुआ।

स्वप्रगति परीक्षण

1. ग्राम की परिभाषा दीजिए ?
2. सामाजिक उद्विकास की पहली अवस्था थी-

(अ) औद्योगिक युग (ब) आखेट युग (स) कृषि युग
(द) चरवाहा युग

4.8 सारांश

ग्राम, कस्बा और नगर तीन भिन्न-भिन्न बस्तियों का रूप हैं, जिनमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विविधताएँ देखने को मिलती हैं। ग्राम क्षेत्रों में मुख्य रूप से कृषि आधारित जीवनशैली होती है, जबकि कस्बों और नगरों में औद्योगिकीकरण और व्यापारिक गतिविधियाँ प्रचलित हैं। नगरों में शहरीकरण, बेहतर अवसंरचना और शिक्षा की सुविधा अधिक होती है, जबकि ग्रामों में पारंपरिक जीवनशैली और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की प्रमुखता रहती है। इस अध्ययन से यह समझने में मदद मिलती है कि कैसे विकास और शहरीकरण के प्रभाव से समाज की संरचना और आर्थिक गतिविधियाँ बदलती हैं।

4.9 मुख्य शब्द

- ग्रामीणता (Rurality): गाँव की विशेषता या साधारण जीवन शैली।
- स्वावलंबन (Self-reliance): आत्मनिर्भरता, जिसमें लोग अपनी आवश्यकताओं के लिए स्वयं पर निर्भर रहते हैं।
- आबादी घनत्व (Population Density): कस्बों में निवासियों की सघनता।
- लघु उद्योग (Small-Scale Industry): छोटे पैमाने पर संचालित उद्योग।
- नगरीकरण (Urbanization): ग्रामीण क्षेत्रों का शहरी क्षेत्रों में परिवर्तन।
- औद्योगीकरण (Industrialization): बड़े उद्योगों का विकास।
- मलिन बस्तियाँ (Slums): शहरों के गरीब और अस्वच्छ आवासीय क्षेत्र।

4.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तरः-1 **सिम्स-** 'ग्राम वह नाम है, जो कि प्राचीन कृषकों की स्थापना को साधारणतः दर्शाता है।''

उत्तरः- 2. (ब)।

4.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. "भारतीय ग्रामीण समाज" - श्यामाचरण दुबे, 1990

2. "नगरीकरण और शहरी विकास" - रमेश चंद्र, 2005

3. "भारतीय कस्बा: संरचना और परिवर्तन" - एम. एन. श्रीनिवास, 1960

4.12 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ग्राम की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
Define the village and throw light on its characteristics.

2. भारतीय ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
Throw light on main characteristics of Indian Rural Community.

3.गाँव के वर्गीकरण पर एक निबंध लिखिए।
Write an essay on the classification of village.

4.ग्राम एक जीवन विधि तथा क्या भारतीय ग्राम एक इकाई है? व्याख्या कीजिए।
Village is a way of life and is Indian Village a unit? Explain.

5. परम्परागत भारतीय ग्रामीण समुदाय के परिवर्तन की विवेचना कीजिए।
Discuss the changes that have taken place in the traditional Indian rural community.

6. कस्बा से आप क्या समझते हैं? विस्तार से समझाइए।
What do you mean by city? Explain in detail.

7. नगरों की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the origin and development of cities.

8. नगर के विकास के कारकों को लिखिए।

Write the factors responsible for development of cities.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. नगर की उत्पत्ति (Origin of the city)

2.नगरों के विकास के स्तर और प्रक्रियाएँ

(Process and steps of growth of cities.)

3.कस्बे का अर्थ और परिभाषा।

Meaning and definition of town.

ब्लॉक - II

इकाई -5
ग्राम, कस्बा एवं नगर
(VILLAGE, TOWN AND CITY)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 ग्रामीण नगरी अंतरसंबंध
5.4 कस्बाई ग्रामीण गठबंधन
5.5 ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना में कठिनाइयाँ
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्द
5.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ
5.10 अभ्यास प्रश्न

*5.*1 *प्रस्तावना*

मानव समाज का उद्विकास हुआ है। उद्विकास की इस प्रक्रिया में मानज समाज आज जहाँ खड़ा है, वह करोड़ों वर्षों के निरन्तर परिवर्तन का परिणाम है। आखेट और पशुपालन की अवस्था में मानव भोजन और पानी की तलाश में एक स्थान के दूसरे स्थान को भटकता रहता था। कालान्तर में कृषि युग आया और एक मानव के घुमन्तू जीवन को थोड़ा जुड़ाव और लगाव की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। कालान्तर में जुड़ाव और लगाव के इसी स्थान को गाँव के नाम से जाना गया। इतने पर भी मानव की विकास यात्रा रुकी नहीं। उसके चरण और आगे बढ़ते गए। मानव आवश्यकताओं में वृद्धि हुई। भोजन, वस्त्र और निवास की आवश्यकताओं से आगे बढ़कर उसने जीवन में नई खोजों को विकसित किया।

कृषि अर्थव्यवस्था के साथ ही उद्योगों की अवधारणा हुई और भारी संख्या में मानव एक स्थान पर निवास करने लेंगे। गाँव नगरों में विकसित होते गए। इस क्षेत्र, जनसंख्या, प्रशासन, मकानों की बनावट, वैज्ञानिक तथा सरकारी आधारों पर मानव निवास दो भागों में विभाजित हो गया- गाँव और नगर। गाँवों और नगरों का यह विभाजन मात्र जनसंख्या और क्षेत्रीयता पर आधारित था। इसके अतिरिक्त गाँव तथा नगर अपनी आवश्यकताओं से एक दूसरे से जुड़े रहे और इसी जुड़ाव को ग्रामीण-नगरीय निरन्तरता के नाम से जाना गया।

5.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के बीच आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का अध्ययन।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीकरण और नगरीय क्षेत्रों पर ग्रामीण प्रवास (Migration) के प्रभावों को समझना।
3. श्रमिक वर्ग (Labor Class) और उनकी ग्रामीण-नगरी जीवनशैली के अंतर की विवेचना।

5.3 ग्रामीण नगरी अंतरसंबंध *Rural Urban interrelationship*

ग्राम-नगर की अवधारणा अन्तः सम्बन्धित है। वास्तव में ग्राम-नगर मानव और प्रकृति के बीच होने वाला अन्तः क्रियाओं के दो स्वरूप हैं। इन दोनों स्वरूपों में भेद का पर्दा इतना महीन है कि दोनो आर-पार दिखाई देते हैं। अर्थात् एक दूसरे को देखा जा सकता है। इसलिए यह कहना अत्यन्त ही कठिन कार्य है कि कहाँ से ग्राम प्रारम्भ होकर कहाँ खत्म होता है। गाँव और नगर में जो भेद है वह मात्र

जनसंख्या, भूगोल और सुविधा की दृष्टि से है। अनेक क्षेत्र ऐसे भी है, जहाँ ग्रामीण और नगरीय दोनों ही अवस्थाएँ देखने को मिलती है। आज जैसे ही जैसे-सभ्यता का विकास होता जा रहा है, इस प्रकार के क्षेत्रों का भी विकास होता जा रहा है, जहाँ ग्रामीण और नगरीय दोनों ही की विशेषताएँ हों।

ग्राम नगर (Rurban) शब्द का सबसे पहले प्रयोग गाल्पिन (G.J. Galpin, Rural life 1918) ने किया था। इस अवधारणा को आगे विकसित करने का श्रेय विर्थ को है। बिर्थ का विचार है कि ग्रामीण और नगरीय दो भिन्न प्रकार की जीवन पद्धतियाँ हैं। ग्रामीण-नगरीय अध्ययन के क्षेत्र में अन्य जिन विद्वानों ने योगदान दिया है, उनमे रेडफील्ड, सोरोकिन, जिमरमैन, पीकर, बेवर, आदि प्रमुख है।

ग्रामीण-नगरीय सातत्य (Rural-Urban Continum) ग्रामीण-नगरीय जीवन में होने वाले परिवर्तनों की आधुनिक प्रक्रिया को ही सातत्य के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया दोनों ही क्षेत्रों-ग्रामीण और नगरीय में विद्यमान है। यह एक ऐसी घटना है, जिसका कोई माप नहीं है और साथ ही स्थायित्व भी नहीं है। यह घटना मात्र अंशों में परिलक्षित होती है। आज जो भी घटनाएँ हैं, उनमें से कोई न तो पूरी तरह ग्रामीण है और न ही पूरी तरह से नगरीय। ग्रामीण और नगरीय एक प्रक्रियात्मक अवधारणा (Processional Concept) का रूप लेती जा रही हैं। एक ग्रामीण घटना कब नगरीय घटना का रूप ले लेगी, इसका कोई निश्चित टाइम-टेबिल नहीं है। इस विचार पर अध्ययन करने वाले विद्वानों का विचार है कि ग्रामीण-नगरीय का अन्तर मात्र सामाजिक जीवन में देखा जा सकता है। अन्य क्षेत्रों आर्थिक जनसंख्यात्मक क्षेत्रों में इसे देखना और अलग करना अत्यन्त ही कठिन होता जा रहा है। ग्राम्यीकरण और नगरीकरण दो सतत् प्रक्रियाएँ हैं तथा इन्हीं सतत् प्रक्रियाओं के कारण इनमें अन्तर होता रहता है। इन्हीं दोनों ही प्रक्रियाओं के सम्मिलित स्वरूप को गाल्पिन ने 'ग्राम्य नगरीकरण' (Rurbanization) के नाम से सम्बोधित किया है। आगे इसी भावना को स्पष्ट

करते हुए बर्गेल ने लिख है कि "नगर की सीमाके बाहर एक ऐसा विशाल क्षेत्र है, जहाँ ग्रामीण एवं नगरीय परिवार इतने मिश्रित हो जाते हैं कि उनको ग्रामीण या नगरीय क्षेत्र कहना नितान्त असंभव हो जाता है। ऐसे मिश्रित प्रदेश ग्राम्य-नगर कहलाते हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन में ग्राम केवल राजस्व इकाई (Revenue Unit) मात्र नहीं है। ग्राम की प्रधानता खेती, लघु समुदाय, बिरलता और नैकट्यता रही है जो आज के कस्बाई-शहरी तत्वों से जुड़े गाँवों में यहापि शुद्ध रूप में मिलती है। राबर्ट रेडफील्ड का कहना था कि गाँवों की अपनी संरचनायें है और उन्ही संरचनाओं के आधार पर किसी ग्राम का अध्ययन किया जा सकता है। मैण्डलवाम ने बताया कि समाज की यथार्थता तथा सभ्यता में ग्राम का अपना एक अस्तित्व है।

ग्राम और नगर का सम्बन्ध कैसा था और वर्तमान में किस सूचकांकों को ग्रहण किये है, देखा जाना आवश्यक है। लोकतांत्रिक संघवादी व्यवस्था में, भारतीय ढाँचे में गाँव और नगर के निवासी साथ सम्मिलित है। आज भारत के नगर नगरवाद (Cosmopolitan) के प्रवाहक भी है। 1901 में भारत की 90 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण थी जो सौ वर्षों में घटकर 60 प्रतिशत तक अनुमानित रह गई है। जनगणना के परिणामों का फेरबदल ग्राम-नगरीय जनांकिकी को भी निम्न तथ्यों का बोध कराता है- 5000-20000 तक जनसंख्या के कस्बे या छोटे शहर 14 प्रतिशत तक थे (1981) इनमें अधिकांश गाँवों को नगर पंचायत का दर्जा दिया जाकर शामिल किया गया। आदिवासी क्षेत्रों में विकास प्रक्रिया को तेज करने की पुष्टि से नगर का दर्जा बड़े तहसील स्तर गाँवों को 1981 में दिया गया। फलस्वरूप दूरस्थ आदिवासी फैले गाँवों को अपने से बड़े जनसंख्या एवं सम्पर्क साधन युक्त गाँवों का नया आधार विकसित हुआ। ग्राम-नगर निरन्तरता के प्राचीनपन से परिचित है, बाजार और धार्मिक स्थानों का भारतीय संदर्भ में विशेष स्थान है अन्तर-ग्रामीण और अन्तर शहरी दोनों स्तर पर निरन्तरता प्रवाहमान मिलती है।

प्रश्न यह है कि भारत के गाँवों ग्रामीण-नगरीय निरन्तरता का कौन सा रूप और पक्ष प्रस्तुत करते है तथागत रूप से भेद प्रदर्शन (Critria) की आवश्यकता जनगणना आँकड़ों से किया जाता है। पारिस्थितिकीय (Ecological Mapping) से निरन्तरता की पुष्टि होती है। बदलते कृषकीय संरचना और भूमि सम्बन्धों से भी निरन्तरता के सार्वदेशिकता (Universally Development) की पुष्टि होती है। मलिन बस्ती जनसंख्या निर्धनता का ग्रामीण शहरी भेद, ग्रामीण जीवन की बदलती परिस्थितियों को समझने के उपयोगी मानक हो सकते हैं।
निरन्तरता के 'विमर्श' (discourse on continum) में वर्तमान के अवलोकन से बल मिलता है। ग्रामीणपन कितने अंशों में नगरीयता के संबंधों से अलग है? इस अन्तर का ऐतिहासिक आधार यदि ज्ञात है तो इसकी वर्तमान निरन्तरता में कितना योगदान माना जा सकता है। ग्राम-नगरीय सम्बन्धों में सन्तुलन और प्रभावी होने के नगरीय बंधन (Urbanbias) क्या गिनाये जा सकते हैं? नगरीय प्रभाव की दिशा और विस्तार के अलावा यह दृष्टिकोण कि ग्राम नगरों के उपनिवेश है व्याख्या का महत्वपूर्ण बिन्दु हो सकता है।

फोव-अरबन सोसाइटी अवधारणा आज लगभग 100 वर्ष पुरानी पड़ गयी है ग्राम समाज एक 'जड़' समाज है। इस शहरी प्रत्यक्षीकरण के चलते समाजशास्त्री विमर्श (Sociological discourse) में ग्रामीण समाजशास्त्र की शाखा पनपी। राबर्ट रेडफील्ड फर्डीनेण्ड टॉनीज के अलावा सोरोकिन जैसे विचारकों ने ग्रामीण नगरीय सामाजिक तथ्यों की अलग विशेषताओं पर जोर दिया। तृतीय विश्व के देश जैसे भारत में फैले साढ़े पाँच लाख गाँवों के अध्ययन से अलगाव के स्थान-पर-निरन्तरता (Continuties) सामने आयी। तदनुरूप राज्य, बुद्धिजीवी, सरकारें ग्रामीण वास्तविकता को नये परिप्रेक्ष्य में लेती है। देहातीपन (Rural way of life) का बोध लेखन में संयमित ढंग से हुआ है और ग्रामीण नगरीय सातत्य को 1970 के दशक तक बहुपठित उपन्यासों (क्लासिक) में प्रेमचंद के उपन्यासों में व्यापक वर्णन हैं। इससे हम बदलते पैराडाइम को सरलता से चिह्नित कर सकते हैं।

भारतीय ग्रामों में गतिशीलता और अनुकूलन की प्रवृत्ति तेज रही जहाँ गाँवों में पूँजीवादी कृषि 1970 के दशक में ग्रहित हुई। साथ ही हरित क्रान्ति के सामाजिक प्रभावों को 'निरन्तरता एवं परिवर्तन' (Continuity & change) परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्रियों ने विश्लेषण किया। कृषकीय सम्बन्धों (Agrarian Relations) का अनुसंधान नये ग्रामीण समाजशास्त्र का विशद विषयवस्तु है। इससे जुड़े शक्ति संरचना के जाति-वर्गीय सम्बन्धों (caste class nexus) को भी महत्व दिया जाता है। आज देहाती भारत को उत्पादकता की वस्तु (Comodity production), बीजों के पेटेन्ट, कृषि अनुसंधान और डंकल प्रस्ताव, खाद्यान्न की राजनीति के साथ गैर-कृषकीय अर्थव्यवस्था Noanpeasant economy) के तेज बदलावों से ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय वस्तु भी अद्यतन हुयी है और ग्रामीण नगरीय गठबंधन (Rural-Urban Nexus) अधिक ध्यान केंन्द्रित करने में सफल रहा है।'

ग्राम-नगर सातत्य आधुनिक संटों में प्राय खेतिहर समाज अपनी भौगोलिक मुख्य व्यावसायिक दशाओं से ग्रामीण क्षेत्रों में गिने जाते है। इसके मानदण्ड कमशः नवीन विशेषताओं को भी समाहित करते है। कुछ दशायें विलोपन अवस्था में है अथवा व्यवहार में नगण्य महत्व की, जैसे अर्द्धस्थायी गाँवों को ले ऐतिहासिक विकास क्रम में आगे अस्तित्वपूर्ण नहीं रह गए हैं। शहरी ग्रामों की नई दिशा देखें। वृहत्तर दिल्ली की राजधानी के भीतर अनेक गाँवों ने अपनी जगह ली है। जाटों का गाँव शाहपुर अब दक्षिणी दिल्ली का एक शहरी ग्राम कहा जा सकता है। ऐसे सैकड़ों गाँव हैं जो भोपाल, इन्दौर महानगरों में समाहित हो गये।

'ग्राम नगर निरन्तरता' इससे प्रकट होती है कि शहरी मास्टर प्लान में ये ग्राम 'वार्ड' अरबन बोर्ड मात्र सम्मिलित किये जायेंगे।

प्रमुख विरोधाभास और अन्तरहीन समानतायेंः 21वीं सदी के प्रवेश द्वार पर 'ग्रामीणपन' को गाँवों में रूपान्तरित और आधुनिक शहरी जीवन के लक्षणों से युक्त पाया जाना, दूसरी ओर शहरों के भीतर समाहित ग्रामों का बचा हुआ

ग्रामीणपन विरोधाभाषी सह अस्तित्व का द्योतक है। निरन्तरता का नवीन पक्ष समझना आवश्यक है।

(1) व्यवसायिक अर्थशास्त्र-बाज़ारी उद्योग से सार्जनिकताः -ग्रामीण आजीविका की प्रकारिकी में भारी परिवर्तन 'शहरीपन' का सूचक है। इसी तरह ग्रामीण समाजों में उपभोक्ता एवं शहरी उत्पादों का अधिक तेजी से बढ़ता प्रयोग। निर्वाही प्रकार (Subsistence) के साथ बाजार के लिये उत्पादन का जोर है। इस बिन्दु पर ग्रामीण एवं नगरीय दोनों सह अस्तित्व के लिये निकट से जुड़ गये है। ग्रामीण व्यावसायिक ढाँचा शहरी आधार के बगैर अधूरा है एवं शहरों के भीतर ग्रामीण निकटता श्रमिकों की पूर्ति से होती है। 'मजदूर मण्डी' का नया बाजार देहाती बेरोजगारों से पूरा हो रहा है, नये उद्यम, फार्म हाउस और अनौपचारिक क्षेत्र के व्यवसाय देहातों से कच्चा माल और मजदूरों की पूर्ति पर मुख्यतः निर्भर है, बाजार अर्थव्यवस्था के हिसाब से यह 'निरन्तरता' निर्भरतामूलक ही है।

(2) पारस्परिक का नया बोधः-ग्रामीण नगरीय सातत्यता को समझने के लिये नये संदर्भ देखे जाने योग्य है। संचार और सम्प्रेषणीयता का टेलीविजन और ग्राम पंचायतों में रखे गये कम्प्यूटर में पारस्परिक व्यवहार के शहरी और ग्रामीण तरीके तथा भाव और समझ (Common sense) को परिवर्तित किया है। इसमें कोई शक नहीं आज का ग्रामीण युवा अधिक से अधिक सूचना और ज्ञान के लिये शहरों पर निर्भर है। दूसरी ओर शहरों में स्थित टी.वी. प्रसारण, रेडियों एफ एम वैण्ड देहाती प्रोग्राम अधिक प्रसारित करते हैं। मनोरंजन उद्योग कि बिक्री सर्वाधिक देहाती बाजारों के लिये तैयार होती है। इस नये सूचना आधारित समाज (Information Society) के लक्षण दोनों समाजों के बीच कठोर दीवार की जगह निकट पारस्परिकता को प्रकट करते हैं। डाकखाने, टेलीफोन की व्यापक सुविधा है। बैलगाड़ी पर बैठा हरियाणा का किसान मोबाइल से बाजार भाव पता करता है।

(3) नागरिक समाज (Civil Society) का संबोधः-वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नागरिक समाज का विकास ग्रामीण-नगरीय दोनों में हो रहा है जैसे कृषक अधिकार संघ,

स्वैच्छिक संगठन, प्रोफेशनल संगठनों, टी.वी. दर्शक संघ, उपभोक्ता, अधिकार और मानव अधिकार जैसे नवीन राजनैतिक कार्यों वाले समूह तथा सक्रियावादी (activism) पर जोर देने वाले कार्यकर्ता नर्मदा बचाओ आंदोलन, मेधा पाटकर, महेन्द्र सिंह टिकैत जैसे अनेकों बुद्धिजीवी क्रियावादी है। वे देहातों का प्रश्न भारत बनाम इंडिया के भी सामने रखते हैं। शहरी भारत देहात भारत पर राज कर रहा है। ज्यादातर ग्राम्शी जैसे विचारकों से प्रेरित है। अतः ग्रामीण-नगरीय गठबंधन (Nexus) पर ध्यान देने की जरूरत है।

शहरों से अलग ग्रामीण संकुल: भिन्नताएँ

(1) व्यावसायिक भिन्नतायें,
(2) पर्यावरण सम्बन्धी विविधताएँ,
(3) समुदाय के आकार का अन्तर,
(4) जनसंख्या घनत्व का अन्तर,
(5)जनसंख्या की समांगता और विसमांगता,
(6)सामाजिक गतिशीलता की भिन्नताएँ
(7) प्रवजन दिशा और प्रवाह में अन्तर,
(8) स्तरीकरण प्रणाली के अन्तर,
(9) सामाजिक अन्तः क्रिया के अन्तर।

कालांतर में सातत्यवादी दृष्टिकोण का विस्तार हुआ। वर्तमान में सातत्व के नये पक्ष उपरोक्त अन्तरों को अलग-अलग के स्तर से कहीं अधिक मिश्रित और समरूपीय है। अन्तराल और विभिन्नतायें इतनी साफ है कि गाँवों का पुरानापन और अस्तित्व की पहचान नगण्य हो गयी है। ग्रामीण-नगरीय द्विभाजन (Dichotomy) को नये संदर्भों में 'परिवर्तन' सापेक्ष कहा जा सकता है।

खेती की भूमि पर मालिकाना हक रखने वाले किसानों का 30 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्र में निवास करता है। शहरों के भीतर पशुपालन का व्यक्तित्व वृहत उद्यम डेयरी उद्योग है।

सोरोकिन एवं जिमरमैन, राबर्ट रेडफील्ड के पूर्ववर्ती सम्प्रत्यमूलक उच्च विश्लेषण संदर्भ व विषयवस्तु के स्तर पर परिवर्तित हो चुकी है। मध्यवर्ती प्रक्रिया के पोषक चार्ल्स जे. गालपिन का मत है कि नगरीय जनसंख्या के ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के घुलन मिलन तथा बड़े क्षेत्र (fringe area) को अथवा मिश्रित ग्रामीण-नगरीय क्षेत्रों के परिमिश्रित स्वरूप हैं जो न शुद्ध रूप में ग्रामीण है और नगरीय शुद्ध स्वरूप भी नहीं है। गाँवों से नगरों की ओर संक्रमण (Trasitional phase) लम्बा एवं निरन्तर गतिमान रहा है। लोक-नगरीय (Folk-urban continum) ऐतिहासिक सामाजिक तथ्य है।

5.4 कस्बाई ग्रामीण गठबंधन *Town and Rural Alliance*

ग्रामीण नगरीय समामेलन से पारस्परिक प्रक्रियायें एक सोचे-समझे और योजना प्रवर्तन के दौरान गठबंधन और निर्भरता की राजनैतिक अर्थव्यवस्था का भाग है। यह संभव हुआ है गाँवों का कस्बों में तेजी से विकास, औपनिवेशक शासन, नये औद्योगिक शहर, मध्य वर्ग और सफेद पोश नौकरियों ने शहरों में पैठ बनाते हुये देहातों का 'कायाकल्प' कर दिया। वस्तु उत्पादन और वितरण की राजनैतिक अर्थव्यवस्था (Political economy of commodity production) कस्बाईपन का विस्तार और इसकी अपरिहार्यता स्थापित करने में सफल रही है। अन्तर्सम्बन्धों (Inter Linkage) का सामाजिक ढाँचा गाँवों और शहरों के फैले जातीय संगठन और वैवाहिक रिश्तों (Networking) का संजाल आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक परिवर्तनों का गठन फलक बनाता है। ग्रामीण समाजशास्त्र में कस्बों से गाँवों का और कस्बों का महानगर से आपूर्ति और माँग के उपभोक्ता मूलक रिश्ते बहुआयामी है। कारीगर, सूद पर धन देने का धंधा, (मनीलैडिंग), दुकान किराना

व्यवसाय, पगार पाने वाले कर्मचारी वर्ग, व्यवस्थित पुरोहित, फैक्टरी मजदूर और प्रबंधकों का एक पैर दूरस्थ गाँव में है जहाँ से वे हजार पाँच सौ मील दूरी पर धंधे नौकरी के लिये हैं। वह विकास के संवाहक भी हैं। आज ग्रामीण शहरी रिश्तें तनावपूर्ण भी हैं और साथ-साथ चलने की मजबूरी भी व्यापक परिप्रेक्ष्य में गाँवों और शहरों को क्षमतावान उत्पादक और क्षमतावान उपभोक्ता दोनों बने रहना होगा।

ग्रामीण-नगरीय सम्बन्धों के अध्ययन में प्रवास की अहम भूमिका है। प्रवास ही वह घटना है जो गाँवों को नगरों से और नगरों को गाँवों से जोड़ती है। इस सम्बन्ध में मौसमी प्रवास अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। जब कुछ समय के लिए ग्रामीण व्यक्ति नगरों में जाते है तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के उपरान्त पुनः गाँव आ जाते हैं।

प्रवास जीव-जनित (Life Oriented) प्रवृत्ति है। संसार का ऐसा कोई जीवधारी नहीं होगा, जिसमें प्रवास की प्रवृत्ति न पाई जाती हो। ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि प्रवासिता ही जीवधारियों की मूल प्रवृत्ति है। मानव सर्वश्रेष्ठ है। जीवधारियों की तुलना में उसके पास विस्तृत बौद्धिक क्षमता है, जिसके आधार पर वह कारण सहित तथा उद्देश्यपूर्ण प्रवासिता को प्रोत्साहित करता है। जहाँ तक मानव समाज का प्रश्न है, ऐसा कहा जाता है कि बुद्धिमान समाज वह है, जिसमें प्रवासिता की प्रवृत्ति पाई जाती है।

विकास के प्रथम चरण से ही मानव प्रवास करता आया है। आखेट अवस्था से लेकर आज तक मानव समाज में प्रवासिता विद्यमान है तथा इस प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। भारत गाँवों का देश है तथा भारत में ग्रामीण जीवन को सर्वोत्कृष्ट स्थान की संज्ञा दी गई है। इसी कारण कवियों ने भी लिखा है कि अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे। आरम्भिक समय में ग्रामीण जीवन सभी प्रकार की सुख- सुविधाओं से सम्पन्न था और यही कारण था कि ग्रामों को स्वर्ग की संज्ञा दी जाती थी। कालान्तर में ग्रामीण जीवन की सुख-सुविधाओं और मानव-मानसिकता में निरन्तर परिवर्तन होते गये। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जीवन आज उपेक्षा के शिकार हो गये। आजादी के

बाद ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं को शुरू किया गया, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न ही रही और ग्रामीण जवीन निरन्तर समस्याओं से ग्रसित होते गये। आज गाँवों में अनेक समस्यायें ग्रामीण प्रवासिता के कारणों से है।

1901 से 2011 तक की जनगणनाओं में ग्रामीण-नगरीय जनसंख्या के प्रवास के प्रतिशत को निम्न तालिका से समझा जा सकता है:-

ग्रामीण-नगरीय जनसंख्या का प्रवास प्रतिशत

क्रमांक	जनगणना वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या (प्रतिशत में)	नगरीय जनसंख्या (प्रतिशत में)
1	1901	89.00	11.00
2	1911	88.60	11.40
3	1921	88.70	11.30
4	1931	87.80	12.20
5	1941	85.90	14.10
6	1951	83.00	17.00
7	1961	82.20	17.80
8	1971	79.80	20.20
9	1981	76.70	23.30
10	1991	74.30	25.70
11	2001	72.20	27.80
12	2011	68.84	31.16

गाँवों की जनसंख्या के विगत 100 वर्षों का नगरों की ओर प्रवास के इतिहास का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि भारत में ग्रामीण जनसंख्या निरन्तर नगरों की ओर प्रवाहित हो रही है। इन 100 वर्षों को अगर दो भागों में विभाजित किया जाय तो पहले चरण 1901 से 1951 तक का होगा और दूसरा

भाग 1951 से 2001 तक होगा। अर्थात् पहला भाग आजादी के पूर्व का है, जबकि दूसरा भाग आजादी के बाद का है। आँकड़ों का सूक्ष्म विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है। कि स्वतंत्रता के पहले ग्रामीण जनसंख्या में प्रवासिता की प्रवृत्ति कम थी, जबकि स्वतंत्रता के बाद प्रवासिता की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। केवल इतना ही नहीं, लगता है कि प्रवासिता की यह प्रवृत्ति निरन्तर गतिशील हो रही है। में 1901 जहाँ 100 व्यक्तियों में 89 व्यक्ति गाँवों में रहते थे, वहीं 1951 में यह संख्या घटकर मात्र 82 रह गई है। अर्थात् 7 व्यक्ति और गाँव से नगरों की ओर पलायन कर चुके हैं। 2001 में यह संख्या मात्र 72 रह गई है। अर्थात् 1901 से 2001 के बीच गाँव से 100 में से 27 और व्यक्ति नगरों की ओर प्रवास कर गये हैं। भारत में गाँवों से नगरों की ओर जनसंख्या का सबसे अधिक प्रवास 1961- 1971 तथा 1971-1981 के दशक में हुआ है। इसका कारण आजादी तथा उसके बाद प्रशासनिक व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा की समस्यायें रही है जो ग्रामीण व्यक्तियों को नगरों की ओर प्रवाहित करती रही है। इसके अतिरिक्त शासकीय योजनाओं की विफलता तथा एक नई उभरती मानसिकता का विकास है जो गाँवों को अच्छा नहीं मानती है। इसके अतिरिक्त अनेक बिन्दु हैं जो मौसमी प्रवासिता को प्रभावित करते हैं।

प्रवास के अनेक प्रकार हैं। इनमें से मौसमी प्रवास एक है। शाब्दिक दृष्टि से मौसमी प्रवास वह प्रवास है, जो मौसम विशेष से सम्बन्ध रखता है। अर्थात् एक विशिष्ट समय ऐसा आता है, जब ग्रामीण प्रवासिता में वृद्धि होती है। भारत गाँवों का देश हैं। ग्रामीण जीवन की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती है। कृषि कार्य की प्रकृति मौसमी होती है। कृषि के अतिरिक्त गाँवों में अन्य उद्योग-धन्धों के न होने के कारण अनुमानतः वर्ष केआधे दिनों में किसान बेरोजगार रहते हैं। इन बेरोजगारी के दिनों मे किसान देश के अन्य भागों में, जहाँ कार्य की उपलब्धता होती है, जाकर कार्य करते हैं और पुनः गाँव लौट आते हैं।
सामाजिक विज्ञान के लिए मौसमी प्रवास महत्वपूर्ण अन्तर्भनुशासित विषय रहा है। यही कारण है कि अर्थशास्त्र, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, जनांकिकी तथा

समाजशास्त्र में मौसमी प्रवास के शोध की लोकप्रिय परम्परा रही है। वर्तमान में ग्रामीण जीवन अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। इन समस्याओं में निर्धनता, बढ़ती भूमिहीनता, ग्रामीण संघर्ष, बढ़ती जनसंख्या, नक्सलवाद, असुरक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव आदि मुख्य है। इन समस्याओं ने जनसंख्या को गतिशील बनाया है। परिणामस्वरूप आज गाँवों में केवल असमर्थ, अपाहित, निर्धन, बूढ़े, महिलाओं और बच्चे रह गये है तथा कार्यशील जनसंख्या काम की तलाश में प्रवास की ओर गतिशील है। सामान्यतया देखा गया है कि मौसमी प्रवास का चक्र निर्धन क्षेत्रों से धनी क्षेत्रों की ओर होता है। कहने का तात्पर्य कवेल इतना है कि निर्धन क्षेत्रों की जनता उन क्षेत्रों की ओर प्रवास कर रही है, जो सम्पन्न है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास तथा शहरी जीवन की ललक भी मौसमी प्रवास का एक कारण है।

एक समय था, जब गाँवों में ग्रामीण जीवन की सारी सुवधिाएँ उपलब्ध थीं। ग्रामीण मानसिकता ग्रामीण जीवन में उपलब्ध सुविधाओं के परिप्रेक्ष्य में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे, किन्तु आज संचार साधनों की उपलब्धता, आवश्यकताओं में वृद्धि तथा गाँवों में इनकी पूर्ति न होना, जागरूकता का विकास, प्रतिस्पर्धात्मक जिन्दगी आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जो ग्रामीण जनसंख्या को प्रवास के लिये प्रेरित करते हैं। सबसे बड़ी बात हैं, गाँवों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन। आज कोई भी साधन-सुविधा सम्पन्न व्यक्ति गाँवों में नहीं रहना चाहता और गाँवों को हेय की दृष्टि से देखता है। यही कारण है कि आजादी के इतने वर्षों के बाद भी आज ग्रामीण विकास से काफी दूर है। उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण गाँवों में प्रवास की दो प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही है-

1. गाँवों से नगरों की ओर स्थायी प्रवास, तथा

2. गाँवों से नगरों तथा सम्पन्न गाँवों तथा नगरों की ओर अस्थायी प्रवास, जिसे मौसमी प्रवास के नाम से जाना जाता है।

भारत के विभिन्न राज्यों में ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर प्रवास भिन्न-भिन्न है। 2001 की जनगणना के आँकड़ों का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है। कि कुछ राज्यों में ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर प्रवास अधिक है तथा कुछ राज्यों में कम है। दिल्ली में प्रवास का प्रतिशत 93.01 रहा है। इससे स्पष्ट है कि सारे देश की जनसंख्या राष्ट्रीय राजधानी की ओर तीव्र गति से प्रवासित हो रही है। इसके विपरीत हिमाचल प्रदेश में प्रवास का प्रतिशत सबसे कम है। विभिन्न प्रदेशों में प्रवासिता की स्थिति को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

भारत-राज्य अनुसार ग्रामीण-नगरीय जनसंख्या का वितरण (2011)

क्र.सं.	राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	कुल जनसंख्या	ग्रामीण जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या
1	आंध्र प्रदेश	84,580,777	56,361,702	28,219,075
2	अरुणाचल प्रदेश	1,383,727	870,087	513,640
3	असम	31,205,576	26,807,034	4,398,542
4	बिहार	104,099,452	92,341,436	11,758,016
5	छत्तीसगढ़	25,545,198	19,607,961	5,937,237
6	गोवा	1,458,545	677,091	781,454
7	गुजरात	60,439,692	34,694,609	25,745,083
8	हरियाणा	25,351,462	16,509,359	8,842,103
9	हिमाचल प्रदेश	6,864,602	6,176,050	688,552
10	झारखंड	32,988,134	25,036,946	7,951,188
11	कर्नाटक	61,095,297	37,552,529	23,542,768
12	केरल	33,406,061	17,455,506	15,950,555

13	मध्य प्रदेश	72,626,809	52,557,404	20,069,405
14	महाराष्ट्र	112,374,333	61,556,074	50,818,259
15	मणिपुर	2,721,756	1,830,106	891,650
16	मेघालय	2,966,889	2,287,422	679,467
17	मिजोरम	1,097,206	529,037	568,169
18	नगालैंड	1,978,502	1,406,861	571,641
19	ओडिशा	41,974,218	34,951,234	7,022,984
20	पंजाब	27,743,338	17,316,800	10,426,538
21	राजस्थान	68,548,437	51,540,236	17,008,201
22	सिक्किम	610,577	480,981	129,596
23	तमिलनाडु	72,147,030	37,189,229	34,957,801
24	तेलंगाना	35,193,978	21,097,236	14,096,742
25	त्रिपुरा	3,673,917	2,653,453	1,020,464
26	उत्तर प्रदेश	199,812,341	155,317,278	44,495,063
27	उत्तराखंड	10,086,292	7,036,954	3,049,338
28	पश्चिम बंगाल	91,276,115	62,183,113	29,093,002
29	अंडमान और निकोबार द्वीप	380,581	239,954	140,627
30	चंडीगढ़	1,055,450	92,120	963,330
31	दादरा और नगर हवेली व दमन और दीव	585,764	257,163	328,601
32	दिल्ली	16,787,941	419,042	16,368,899

33	जम्मू और कश्मीर	12,541,302	9,134,820	3,406,482
34	लक्षद्वीप	64,473	31,162	33,311
35	पुडुचेरी	1,247,953	394,341	853,612
36	लद्दाख	274,289	213,491	60,798

5.5

ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना में कठिनाइयाँ (Difficulties of comparing the urban and rural life)

ग्रामीण और नगरीय जीवन में तुलना करते समय कुछ कठिनाइयों आती है जिसके कारण अध्ययन अपूर्ण रह जाता है। मैकाइवर और पेज के अनुसार ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना में जो कठिनाइयों आती है उन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. ग्रामीण और नगरीय-मात्रा का अन्तर (Urban and Rural A matter of degree):- ग्राम और नगर दो स्थान है। विद्वान इन दोनों में तुलना करते रहे हैं, किन्तु यह निश्चित रूप से स्वीकार नहीं किया जा सका है कि किसे ग्राम कहा जाये और किसे नगर। ग्राम और नगर में अंतर का आधार जनसंख्या की मात्रा तो है, किन्तु अनेक परिस्थितियाँ और दशाएँ ग्रामीण और नगरीय जीवन की आधारशिला का निर्माण करती है। भिन्न-भिन्न देशों में यह मात्रा भी भिन्न-भिन्न है। जैसे कहीं पर 2,000 जनसंख्या प्रति वर्गमील वाले स्थानों को शहर कहा जायेगा (फ्रांस), तो कहीं 30,000 की जनसंख्या प्रति वर्गमील वाले स्थान को शहर कहा जाएगा (जापान)।

इसी प्रकार गाँव किसे कहा जाय? इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। गाँव तो 10-15 की जनसंख्या से लेकर 5,000 की जनसंख्या तक के होते हैं। ऐसी अवस्था में किसे गाँव कहा जाय और किसे गाँव न कहा जाय, ऐसा निर्णय करना असम्भव है। इस प्रकार मैकाइवर के अनुसार गाँव और नगर की तुलना में मात्रा सम्बन्धी कठिनाई प्रमुख रूप से आता है।

2. नगरीय वातावरण की विविधता (The manifold environment within the city):- तुलना में दूसरी कठिनाई वातावरण की विविधता से उत्पन्न होती है। गाँव एक समुदाय होता है। वहाँ का जीवन सामान्य होता है। उनके धर्म, रीति-रिवाज, विश्वास और रहन-सहन एक प्रकार के होते हैं। सामुदायिक भावना प्रबल रूप से पायी जाती है। व्यवसाय समान होते हैं। अधिकांश व्यक्ति खेती करते हैं और जो खेती करते हैं वे इससे सम्बन्धित व्यवसाय करते हैं, जैसे बढ़ईगिरी, लुहारगिरी आदि।

नगरीय वातावरण इससे भिन्न होता है। यहाँ अनेक समुदाय निवास करते हैं, जिनके धर्म, रीति-रिवाज, और विश्वास विभिन्न होते हैं। शहरों में व्यवसायों की अधिकता पायी जाती है। श्रम विभाजन और विशेषीकरण पाया जाता है। समग्ररूप से नगरीय वातावरण विविधता लिये हुए होता है, जबकि ग्रामीण वातावरण में एकरूपता या समानता रहती है। इस प्रकार विविध वातावरण वाले समुदाय की एक समान वातावरण वाले समुदाय से तुलना करने में कठिनाई होती है।

3. नगर एवं गाँव का परिवर्तनशील स्वभाव (The Changing Character of City and Country) मैकाइवर के अनुसार नगर और गाँव की तुलना में मुख्य कठिनाई यह है कि दोनों की प्रकृति परिवर्तनशील है। समाज की कोई प्रकृति ही परिवर्तनशील होती है। कोई भी विशेषता जो गाँव और नगर की तुलना के सम्बन्ध में निर्धारित की जायेगी वह परिवर्तित हो जायेगी। इसके साथ ही ऐसा देखा जा रहा है कि नगरों के प्रभाव के कारण गाँव अधिकाधिक नगरीकृत

(Urbanized) होते हैं। इसके साथ ही परिवर्तन के परिणामस्वरूप नगर में ग्रामीण जनसंख्या की विशेषताएँ अधिक मात्रा में आती है। इस कारण से भी दोनों की तुलना में कठिनाई होती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आवागमन, मनोरंजन के साधनों में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप गाँव और नगर की विशेषताओं में परिवर्तन होता जा रहा है। ग्राम और नगर के अन्तर को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है।

ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना
(Contrast in Urban and Rural life)

ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना अनेक आधारों पर की जाती है। ग्रामीण समाज नगरीय समाज से अनेक आधारों में भिन्न होता है। ग्रामीण विशेषताएँ नगरीय विशेषताओं से भिन्न होती है। संक्षेप में ग्रामीण और नगरीय जीवन की भिन्न विशेषताओं के आधार पर तुलना की जा सकती है-

1. **सामाजिक जीवन ग्रामीण और नगरीय सामाजिक** जीवन में निम्न अन्तर होता है-

(a) ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है। इसके विपरीत नगरीय जवीन में कृत्रिमता और दिखावटीपन अधिक होता है।

(b) ग्रामीण जीवन में घनिष्ठता पायी जाती है। ग्रामीण व्यक्ति एक-दूसरे से अधिक निकट होते हैं। नगरीय जीवन में घनिष्ठता का अभाव पाया जाता है।

(c) सामान्य जीवन ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। गाँवों में धर्म, रीति-रिवाज, रहन-सहन और परम्पराओं में समानता होती है। नगरीय जीवन में विभिन्नता पायी जाती है। वहाँ अनेक जाति, धर्म, वर्ग और संस्कृतियों के व्यक्ति निवास करते है। इससे जीवन में विविधता पायी जाती है।

(d) सामुदायिक भावना गाँवों में प्रबल मात्रा में पायी जाती है। वह एक दूसरे के दुःख और सुख में सहानुभूति रखते हैं। नगरों में सामुदायिक भावना का नितान्त अभाव रहता है।

(e) ग्रामीण जीवन में पड़ोस का अत्यधिक महत्व होता है। गाँवों में आमने-सामने (Face to Face) का सम्बन्ध पाया जाता है। नगरों में पड़ोस का कोई महत्व नहीं होता है। कई जगह पड़ोसी एक दूसरे को जानते भी नहीं है।

(f) गाँवों में सामाजिक स्तरण वंशानुगत होते हैं। वहाँ ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और नाई का पुत्र नाई, वाली बात लागू होती है। नगरों में व्यक्तियों के पद स्वयं अर्जित होते हैं। व्यक्ति अपनी बुद्धि, योग्यता और क्षमता के आधार पर पद प्राप्त करते हैं और इसी आधार पर सामाजिक स्तरण बनता है।

(g) गाँवों में सामाजिक गतिशीलता निम्न स्तर में पायी जाती है। ग्रामीण जीवन में अपनी परम्परागत मूल्यों की रक्षा होती है, अतः वहाँ परिवर्तन का प्रवेश धीमी गति से होता है। सामाजिक गतिशीलता का उग्र रूप नगरों में देखने को मिलता है। जहाँ सामाजिक परिवर्तन एक झटके के रूप में आता है।

(h) गाँवों में परिवार और पड़ोस ही सबसे बड़ी संस्था और समितियाँ होती है।, वहाँ अन्य संस्थाओं और समितियों का अभाव होता है। नगरों में अनेक प्रकार की संस्थाएँ और समितियाँ पायी जाती है।

(i) सामाजिक संगठन गाँवों की आधारभूत विशेषता है। वहाँ एकमत पाया जाता है। नगरों में मतों की विभिन्नता के कारण सामाजिक विघटन प्रबल रूप में पाया जाता है।

2. **पारिवारिक जीवन-ग्रामीण पारिवारिक** जीवन निग्न आधारों पर नगरीय पारिवारिक जीवन से भिन्न होता है-

(a) ग्रामीण परिवार अधिक शक्तिशाली होते हैं। ग्रामीण समाज कृषि प्रधान होने के कारण परिवार की प्रकृति भी संयुक्त होती है। ग्रामीण परिवार अधिकांशतः आत्मनिर्भर होते हैं। ग्रामीण परिवार के सभी सदस्य अपने सीमित उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हैं। नगरीय परिवार तुलनात्मक दृष्टि से निर्बल होते हैं और अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर आश्रित होते हैं। ग्रामीण परिवारों को प्रकृति व्यक्तिवादी होती है और सदस्य सीमित उत्तरदायित्व का ही निर्वाह कर पाते हैं।

(b) ग्रामीण जीवन में विवाह एक पवित्र संस्कार है और इसका संपादन परिवार द्वारा ही होता है। माता-पिता विवाह में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्ग करते हैं। नगरीय जीवन में विवाह एक समझौता होता है और इसका सम्पादन अदालत (Court) द्वारा होता है। नगरीय विवाह में माता-पिता से अधिक वर और वधु की भूमिक महत्वपूर्ण होती है।

(c) ग्रामीण पारिवारिक जीवन का आधार स्नेह, वात्सल्य और न्याय होता है, जहाँ सदस्य दूसरों के लिये अपने प्राणों की आहुति तक देते हैं। नगरीय परिवार में रोमांस पाया जाता है, अतः वहाँ त्याग भावना तुलनात्मक रूप से कम होती है। सभी सदस्यों में व्यक्तिवाद अधिक होता है।

(d) ग्रामीण परिवारों में पुरूष की तुलना में स्त्री का स्थान निम्न होता है। परिवार के सभी कार्यों का संचालन पुरुष की इच्छा और आज्ञा के अनुसार होते हैं। नगरों में स्त्रियों की स्थिति तुलनात्मक रूप से अच्छी होती है। परिवार के कार्यों में उनको महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

(c) ग्रामीण परिवार अधिक संगठित रहता है। वहाँ स्त्री और पुरूष का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का होता है। नगरों में पारिवारिक संगठन शिथिल होता जा रहा है। पारिवारिक जीवन में तनाव और पृथक्करण पाया जाता है।

3. **सामाजिक नियन्त्रण**- ग्रामीण और नगरीय सामाजिक नियन्त्रण के साधनों में निम्न आधारों पर भिन्नता होती है या अन्तर पाया जाता है।

(a) ग्रामीण नियन्त्रण के साधन प्राथमिक समूह और संस्थाएँ होती है, जैसे- माता-पिता, परिवार, पड़ौस आदि। नगरों में सामाजिक नियन्त्रण द्वैतीयक समूहों और संस्थाओं द्वारा होती है। इनमें अदालत, पुलिस और जेल मुख्य है।

(b) ग्रामीण सामाजिक नियन्त्रण साधन अनौपचारिकता (Informal) होते हैं जबकि नगरीय सामाजिक नियन्त्रण के साधन औपचारिक (Formal) होते है।

(c) गाँवों में परिवार, धर्म और प्रथाएँ सामाजिक नियन्त्रण रखती हैं। नगरों में धर्म, परिवार तथा प्रथाओं का महत्व कम होता है, अतः सामाजिक नियन्त्रण में इनका प्रभाव कम पड़ता है।

(d) ग्रामीण जीवन में सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देने का वैधानिक अधिकार नहीं है। नगरीय जीवन में सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को वैधानिक दण्ड देने की व्यवस्था है।

4. **सामाजिक सम्बन्धः** ग्रामीण जीवन और नगरीय जीवन मे सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर भी निम्न रूप से भिन्नता पाई जाती है।

(a) गाँवों में जनसंख्या कम होती है, इसलिये वहाँ वैयक्तिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। नगरों में जनसंख्या अधिक होने के कारण वैयक्तिक सम्बन्धों का अभाव पाया जाता है।

(b) गाँवों में प्राथमिक समूह पाये जाते है, इसलिए वहाँ के सम्बन्ध भी प्राथमिक होते हैं, इनमें परिवार, पड़ौस और मित्रता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नगरों में द्वैतीयक समूहों के कारण द्वैतीयक सम्बन्धों की प्रधानता पायी जाती है। इन द्वैतीयक समूहों में अनेक संस्थाएँ और समितियाँ आती है।

5. **सामाजिक अन्तः क्रियाः अंतः क्रियाओं (Interactions)** का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। नगरों और गाँवों में अन्तः क्रियाओं सम्बन्धी भिन्नता भी निम्नानुसार पायी जाती है।

(a) ग्रामीण जीवन में सहयोग की मात्रा अधिक पायी जाती है किन्तु यह सहयोग परिवार तक ही सीमित रहता है। नगरों में सभी संस्थाएँ, समूह श्रम-विभाजन और विशेषीकरण सहयोग के आधार पर ही कार्य करते हैं किन्तु आन्तरिक दृष्टि से सहयोग में अधिक भिन्नता पायी जाती है।

(b) गाँवों में प्रतिस्पर्धा कम मात्रा में पायी जाती है जबकि नगरीय जीवन का आधार ही प्रतिस्पर्धा है।

(c) ग्रामों में संघर्ष की मात्रा कम रहती है और इसका रूप प्रत्यक्ष होता है। नगरों में संघर्ष अधिक मात्रा में पाया जाता है और यह प्रत्यक्ष रूप में होता है।

(d) ग्रामीण जवीन में सामाजिक सहिष्णुता का अभाव होता है, इसीलिए उनमें सामाजिक परिवर्तनों के साथ अनुकूलन करने की क्षमता कम मात्रा में होती है। नगरीय जीवन में सहिष्णुता की मात्रा अधिक पायी जाती है, इसलिए उनमें परिवर्तन के साथ अनुकूलन करने की क्षमता अधिक होती है।

(e) ग्रामों में आत्मसात या एकीकरण की प्रक्रिया मन्द गति से चलती है। नगरों में सदैव एकीकरण की प्रक्रिया कार्य करती है। परिणामस्वरूप एकीकरण उत्पन्न होता रहता है।

6. **मनोवैज्ञानिकः ग्रामीण और नगरीय "मनोविज्ञान"** में निम्न आधारों पर अन्तर होता हैः

(a) ग्रामीण जीवन में भाग्यवादिता प्रमुख रूप से पायी जाती है जबकि नगरीय जीवन में आत्मविश्वास की भावना पायी जाती है।

(b) ग्रामीण जीवन अंधविश्वासी और रूढ़िवादी होता है। वहाँ प्रथाओं, परम्पराओं, धर्म और संस्कारों को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। नगरीय जवीन प्रगतिशील होता है, विज्ञान में उसकी आस्था होती है। वहाँ तर्क और बुद्धि के द्वारा सभी वस्तुओं का माप किया जाता है।

(c) ग्रामीण जीवन में सामाजिक सहिष्णुता का अभाव होता है। नगरीय जीवन में सामाजिक सहिष्णुता पायी जाती है।

(d) ग्रामों में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नगरों में धर्म शिथिल होता है।

(e) गाँवों में कृत्रिमता का अभाव होता है। वह स्पष्ट वक्ता, निष्कपट और सत्यनिष्ठ होते है। यह कृत्रिमता से घृणा करते हैं। नगरीय जीवन कृत्रिमता पर आधारित होता है।

(f) ग्रामीण जीवन में समूहवाद की भावना पायी जाती है। नगरों में समूहवाद के स्थान पर व्यक्तिवाद की भावना प्रबल होती है।

7. **सांस्कृतिक जीवन ग्रामीण साँस्कृतिक** जीवन निम्न आधारों पर नगरीय सांस्कृतिक जीवन से भिन्न होता है-

(a) ग्रामीण संस्कृति स्थिर होती है, इसमें शीघ्रता से परिवर्तन नहीं होते है। नगरीय संस्कृति गतिशील होती है, वह सदैव विकसित होती रहती है।

(b) ग्रामीण जीवन में भौतिक संस्कृति की अपेक्षा अभौतिक संस्कृति का महत्व अधिक होता है। भौतिक संस्कृति नगरीय जीवन का आधार है।

(c) ग्रामीण संस्कृति जातिगत होती है। नगरों में संस्कृति का आधार जाति न होकर वर्ग होता है।

(d) ग्रामीण संस्कृति पवित्रता की भावना पर आधारित है। नगरीय संस्कृति का आधार साम्प्रदायिकता होती है एवं उसमें पवित्रता का अभाव पाया जाता है।

(e) ग्रामीण जीवन में परम्पराओं का अत्यधिक महत्व होता है। नगरीय जीवन निरन्तर परिवर्तित होता रहता है, अतः वहाँ परम्पराओं का विशेष महत्व नहीं होता है।

(f) ग्रामीण जीवन स्वार्थरहित होता है। वहां स्वार्थ की जगह परमार्थ की भावना प्रबल होती है। नगरीय जीवन स्वार्थ की भावना से युक्त होता है।

8. **आर्थिक जीवनः गाँवों और नगरों के आर्थिक** जीवन में भी अन्तर पाया जाता है। यह अन्तर निम्न प्रकार है:

(a) गाँवों में केवल दो व्यवसाय पाये जाते हैंः मुख्य रूप से कृषि और गौड़ रूप में कृषि से ही सम्बन्धित कुटीर उद्योग, जैसे-लकड़ी का उद्योग, लोहे का उद्योग आदि। नगरों में व्यवसायों में विविधता पायी जातीहै।

(b) ग्रामीण जीवनस्तर सरल सादा और निम्न होता है। नगरीय जीवन स्तर जटिल, दिखावे में पूर्ण और उच्च होता है।

(c) ग्रामीण जीवन व्यवसाय वंशानुगत होते रहते हैं। नगरों में व्यवसाय अर्जित होते हैं। इनका आधार व्यक्ति की योग्यता और कुशलता होती है।

(d) गाँवों में आर्थिक असमानता उग्र रूप में नहीं होती है। नगरों में आर्थिक समानता का भीषण रूप होता समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष है। इसका कारण यह है वहाँ अनेक प्रकार की प्रकृति के व्यवसाय होते हैं।

(e) ग्रामीण व्यवसायों का सम्बन्ध जीतन में होता है जबकि नगरीय व्यवसाय "धन" से सम्बन्धित होते हैं।

(f) गाँवों में अर्थ का उपार्जन और व्यय कम होता है। नगरों में उपार्जन और व्यय दोनों की मात्रा अधिक होती है।

(g) ग्रामीण आर्थिक जीवन संघर्ष से रहित है जबकि नगरों के आर्थिक जीवन का आधार ही संघर्ष है।

9. **राजनैतिक जीवनः ग्रामीण राजनैतिक** जीवन निम्न आधारों पर नगरीय राजनैतिक जीवन से भिन्न होता है-

(a) गाँवों में राजनैतिक जीवन की ओर खिंचाव कम होता है। नगरीय जीवन राजनीति में अत्यधिक दिलचस्पी रखता है।

(b) गाँवों में वैचारिक एकता पायी जाती है जबकि नगरों में विचारों की विविधता पायी जाती है।

(c) ग्रामीण जनता में राजनीति के बारे में ज्ञान का अभाव होता है। नगरीय जनता को राजनीति का विस्तृत ज्ञान होता है।

(d) गाँवों में राजकीय नियमों का प्रभाव कम होता है। वहाँ ग्रामीण नियम, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ और परम्पराएँ होती है। नगरों में राजकीय नियम अधिक प्रभावशाली होते हैं।

10. **परिस्थितिशास्त्रीय विशेषताएँः** परिस्थितिशास्वीय (Ecological) विशेषताओं का सम्बन्ध स्थिति (Location) और उसकी परिस्थिति से होता है। गाँवों में निम्न परिस्थितिशास्त्रीय अन्तर पाया जाता है।

ग्रामीण जीवन में विशेषीकरण (Specialization) का अभाव पाया जाता है। ग्रामीण जीवन एक भौगोलिक क्षेत्र में स्थित होता है, जहाँ की मिट्टी उपजाऊ होती है, पानी की पर्याप्त सुविधाएँ रहती है और जलवायु अनुकूल होती है। गाँवों में सभी प्रकार के व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं। गाँवों में क्षेत्रीय विभाजन नहीं पाया जाता है, अर्थात् भिन्न-भिन्न वर्गों के व्यक्ति अलग-अलग नहीं रहते हैं। ग्रामीण जीवन छोटी-छोटी गलियों से जुड़ा रहता है। यह गलियों टेढ़ी-मेढ़ी और सकरी होती है। पानी के लिए नदी, तालाब या कुआ होता है जो सार्वजनिक उपयोग में आता है।

नगरों में विशेषीकरण पाया जाता है, इसीलिए वहाँ परिस्थितियाशास्त्रीय विशेषताएँ स्पष्ट रूप से दिखलायी देती है। नगरों में एक केन्द्र होता है और सम्पूर्ण नगर इसी केन्द्र से केन्द्रित रहता है अधिकांशतः नगरों के मध्य मे व्यवसाय तथा वाणिज्य केन्द्र होते हैं। इस केन्द्र के चारों ओर उद्योग केन्द्र स्थापित रहते हैं। इन उद्योगों के चारों और श्रमिक और निम्न वर्ग के लोगों की बस्तियाँ पायी जाती हैं। इसके बीच-बीच में तथा केन्द्र के चारों ओर मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग

के लोगों की बस्तियाँ पायी जाती है। इसके बीच-बीच में तथा केन्द्र के चारों ओर मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग के लोगों के निवास स्थान रहते हैं। इसके पश्चात् शिक्षित और अधिकारी वर्ग के बंगले होते है तथा शिक्षण संस्थाएँ स्थापित होती हैं।

11. **जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ**:- जनसंख्या की दृष्टि से भी गाँव नगर से निम्नानुसार भिन्न होता है:

(a) गाँवों में जनसंख्या कम होती है जबकि नगरों में जनसंख्या अधिक होती है।

(b) ग्रामीण जनसंख्या में एकरूपता पायी जाती है जबकि नगरीय जनसंख्या में अनेकरूपता पायी जाती है।

(c) ग्रामीण जनसंख्या क्षेत्र सीमित होता है। नगरीय जनसंख्या का क्षेत्र विस्तृत होता है।

(d) ग्रामीण जनसंख्या का समुचित विकास नहीं हो पाता है। नगरीय जनसंख्या का उचित विकास होता है।

(e) ग्रामीण जनसंख्या स्थिर होती है। नगरीय जनसंख्या गतिशील होती है।

(11) **ग्रामीण जनता को स्थान का** अभाव नहीं रहता है। वहाँ पर्याप्त मात्रा में भूमि रहती है। नगरीय जनता को भूमि की कमी रहती है।

(g) ग्रामीण स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान नहीं देते हैं। नगरीय जनस्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

(h) गाँवों में जनसंख्या निरोध के साधनों का अभाव पाया जाता है। नगरों में जनसंख्या निरोध की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध होती है।

12. **सामाजिक विघटनः गाँवों और** नगरों में सामाजिक विघटन की प्रकृति और मात्रा में अन्तर होता है। यह अन्तर निम्न हैं:

ग्रामीण जीवन रूढ़िवादी और परम्परावादी होता है। वहाँ धर्म का स्थान होता है। इस कारण वहाँ पर शीघ्रता में परिवर्तन नहीं होते हैं। वहाँ व्यक्तियों में मानसिक संघर्ष नहीं पाया जाता है। संस्थाएँ अपने-अपने कार्यों का सम्पादन करती है। अतः वहाँ पर सामाजिक संगठन पाया जाता है। नगरों में संस्कृतियों में संघर्ष होते रहते हैं तथा वहाँ पर विचारों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के कारण विचारों में संघर्ष होता है इससे सामाजिक विघटन को गति मिलती है।

13. **सामाजिक समस्याएँः** गाँव और नगर की समस्याएँ अलग-अलग प्रकृति की होती है। ग्रामीण समस्याओं में अस्पृश्यता, ग्रामीण बेकारी, स्वास्थ्य और स्वच्छता की समस्याएँ, ऋणग्रस्तता तथा जातिवाद मुख्य है।
नगरीय समस्याओं के अन्तर्गत बेकारी, भिक्षावृत्ति, निर्धनता, भीड़-भाड़ और गन्दी बस्तियां, वेश्यावृत्ति, जुआ, मद्यपान, अपराध और बाल-अपराध को सम्मिलित किया जा सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. Rurban शब्द का प्रयोग किसने किया था।

(अ) गिडिग्स **(ब) गाल्पिन** (स) गिलिन (द) बोगार्डस

2.Urban Sociology के लेखक कौन है?

(अ) गाल्पिन (ब) मैरियट (स) मैकाइवर (द) बर्गेल

3. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत कितना है?

(अ) 70.20 (ब) 71.20 (स) 72.20 (द) 73.20

5.6 सारांश

चमत्कार के प्रति प्रसादजी का मोह विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। अतः वे स्थान-स्थान पर आकस्मिक घटनाओं को ले आते हैं। प्रथम अंक में अनंतदेवी के प्रकोष्ठ में प्रपंचबुद्धि सहसा प्रवेश करता है। अगले दृश्य में इसी प्रकार पुरगुप्त और भटार्क सहसा उपस्थित हो जाते हैं। अवंत के दुर्ग में स्कंदगुप्त सहसा प्रवेश करता है, मानो वह इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हो। श्मशान में प्रपंचबुद्धि से देवसेना की रक्षा के लिए स्कंदगुप्त इसी प्रकार निकल पड़ता है। चमत्कार-प्रियता का सबसे बड़ा उदाहरण उस समय मिलता है जब कि विजया के शव के लिए भूमि खोदते हुए भटार्क को रत्नगृह मिल जाता है। स्कंदगुप्त के उपर्युक्त चरित्र के विश्लेषण करने के उपरांत हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वह त्याग तथा कर्मयोग का समन्वित रूप है। उसमें उदासीनता की भावना है, किन्तु वह स्वयं के लिए। वह राज्य के हित के लिए अपने प्रयलों से प्राप्त राज्य का अधिकार रण-भूमि में ही पुरगुप्त को सौंप देता है। सामूहिक रूप से उसका हृदय देश-प्रेम, त्याग, वीरता, साहस, क्षमा, उदारता आदि की आदर्श भावनाओं से भरा हुआ है। वह अकेले ही मालव की रक्षा तथा हुणों से देश को निरापद करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। संक्षेप में उसका चरित्र आदर्श और यथार्थ का अनुपम समन्वित रूप है।

5.7 मुख्य शब्द

- **प्रवास (Migration):** एक स्थान से दूसरे स्थान पर निवास के लिए जाना।
- **अर्थव्यवस्था (Economy):** उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रिया।
- **नगरीकरण (Urbanization):** ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन।
- **क्षेत्रीय असमानता (Regional Disparity**): विकास के असमान वितरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों में अंतर।
- **औद्योगिकरण (Industrialization):** उद्योगों के विकास की प्रक्रिया।

- **सामाजिक ढाँचा (Social Structure):** समाज में व्यक्तियों के बीच संबंधों और भूमिकाओं की संरचना।
- **आदान-प्रदान (Exchange):** वस्तुओं, सेवाओं या विचारों का लेन-देन।

5.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

(1)उत्तरः 1. (ब), 2. (द), 3. (स)।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. बर्गेल "अर्बन सोशियोलॉजी" 1955, पृ.135

2. "Rural-Urban Migration in India" - R. S. Deshpande, 2012

3."Indian Economy: Its Development Experience" - Dutt & Sundaram, 2020

4."Economic and Social Development in Rural Areas" - P. K. Bardhan, 2018

5.10 अभ्यास प्रश्न

1 अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ग्रामीण नगरीय सम्बन्धों पर एक लेख लिखिए।
Write an essay on rural-urban relations.

2. ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना कीजिए।
Explain the difference between rural and urban life.

3.ग्रामीण जीवन की विशेषताएँ लिखिए।
Write the characteristics of rural life.

4. नगरीय जीवन की विशेषताएँ लिखिए।
Write the characteristics of urban life.

5.ग्राम-नगर अवधारणा को समझाइए।
Explain the Rurban concept.

6. ग्रामीण नगरीय सातत्य क्या है? समझाइए।
Explain the rural-urban continuum.

7. कस्बाई-ग्रामीण सम्बन्धों को लिखिए।
Write about town-rural relations.

8. नागरिक समाज की अवधारणा को समझाइए।
Explain the concept of civil society.

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. ग्रामीण अवधारणा को समझाइये।
Explain the concept of rural.
2. नगरीय अवधारण को समझाइये।
Explain Urban Concept.
3.नगरीय गठबन्धन की व्याख्या कीजिये।
Explain Rural-Urban nexus.
4. जनसंख्या प्रवास पर प्रकाश डालिये।
Describe Population migration
5. ग्रामीण सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिये।

Describe Rural Social life.

6. नगरीय आर्थिक जवीन का वर्णन कीजिये।

Describe Urban Economic life.

इकाई -6
जनजाति(Tribes)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 जनजाति से सम्बन्धित शब्दावली
6.4 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति की परिभाषा
6.5 अनुसूचित जनजाति के निर्धारण के संवैधानिक प्रावधान
6.6 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक संरक्षण
6.7 भारत में अनुसूचित जनजातियाँ
6.8 जनजातीय समस्याओं का निराकरण
6.9 सारांश
6.10 मुख्य शब्द
6.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
6.12 संदर्भ ग्रन्थ
6.13 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव समाज हजारों और लाखों वर्षों की विकास प्रक्रिया से गुजरता हुआ वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है। प्रारम्भिक अवस्था में मानव जंगलों और पहाड़ों में निवास करता था तथा फल-फूल और शिकार की सहायता से अपने जीवन का निर्वाह करता था। आखेट और पशुपालन अवस्था के बाद भी मानव का भटकना समाप्त नहीं हुआ। जैसे ही मानव समाज

ने कृषि का अविष्कार किया वह एक स्थान पर स्थायी तौर से निवास करने लगा। सम्पूर्ण मानव समाज का विकास एक ही साथ नहीं हुआ। कुछ समाज विकास की परम्परा में आगे बढ़ गए, तो दूसरे समाज काफी पीछे रह गए। अनेक मानव समाज आज भी आखेट अवस्था में ही निवास कर रहे हैं। धीरे-धीरे इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया मानव समाज की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का भी विकास होता गया। जब ये झुण्ड और अधिक विकसित हो गए, तो वन्यजाति के नाम से सम्बोधित किए जाने लगे।

अंग्रेजी के "ट्राइब' शब्द के लिए हिन्दी में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों में वन्यजाति, जनजाति, आदिवासी, वनवासी और आदिम जाति मुख्य है।

6.2 *उद्देश्य*

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1.जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक संरचना को समझना।
2.उनकी जीवनशैली, रीति-रिवाज, परंपराओं और मूल्यों का विश्लेषण करना।
3.शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार के क्षेत्र में उनके उत्थान के उपाय सुझाना।
4.जनजातीय समाज की विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखना।

6.3 जनजाति से सम्बन्धित शब्दावली

जनजातियाँ भारतीय समाज और संस्कृति की जीवन्तता के प्रतीक है। यदि इन्हें भारतमाता का सच्चा प्रहरी कहा जाए, तो कोई अतिशोयोक्ति नहीं है। भारतीय समाज और संस्कृति की रक्षा आज इन्ही के द्वारा की जा रही है। ये भारत माता के सच्चे सपूत हैं। इन जनजातियों को अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। जनजाति का अर्थ क्या है, जनजाति की परिभाषा क्या है और जनजाति की

विशेषता क्या है? इसकी विवेचना करने से पहले जनजाति से सम्बन्धित शब्दावली को जान लेना आवश्यक है। वह शब्दावली निम्न है।

1. **आदिवासी-** श्री हरिशचन्द्र उत्प्रेती ने अपनी पुस्तक 'Tribes in India' में लिखा है कि प्रसिद्ध मानवशास्वी रिजले, लेके, ग्रिफ्सन, सोलर्ट, टेलट्स, सेनविक, मार्टिन तथा भारतीय समाज सुधारक ठवकर ने जनजातियों के लिए आदिवासी शब्द का प्रयोग किया है।
2. **प्राचीन जनजाति**- श्री जे. एच. हट्टन ने Census report of India 1931, Vol. I, Part I में इन्हें प्राचीन जनजातियाँ (Primitive Tribe) कहकर सम्बोधित किया है।
3. **आदिस्वामी** प्रसिद्ध मानवशास्त्री एलविन (Elvin) ने अपनी पुस्तक The Baiga (1939) London, p.p. 519 में जनजातियों के लिए आदिस्वामी (Aboriginals) कहा है।
4. **दर्शन जाति**-बेन्स (बैंस, ए.) ने भारत की जनगणना, 1891, खंड। I, भाग I, पृ. 158, 320 में डायनासोर के लिए आदिवासी जाति (जंगल जनजाति, वन जनजाति या लोक) को रेखांकित किया गया है।
5. **पिछड़े हिन्दू-** प्रसिद्ध समाजशास्त्री घुरिए (G.S. Ghurye) ने अपनी पुस्तक The Aborigines so- called and their future, 1943, pp-36 में अनुसूचित जनजातियों का पिछड़े हिन्दू (Backward Hindus) अथवा तथाकथित आदिवासी (so-called Aborigines) कहकर सम्बोधित किया है।

1961 की जनगणना Census of India Vol. I, part VB (II) pp.2-3 में लिख है कि 1921 से लेकर विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस समुदाय के सामाजिक स्तर के अनुसार कई प्रकार हैं। जैसे-

(a)प्राचीन जनजाति (Primitive Tribe)

(b)प्राचीन जनजाति या आदिवासी (आदिम जनजाति या आदिवासी)

(c)आदिम जनजाति (Aboriginal Tribe)

(d)आदिम और पहाड़ी जनजाति (Oboriginal and Hill Tribe)

(e)जंगली जनजाति (Forest Tribe)

(f) पहाड़ी जनजाति (Hill Tribe)

(g)जंगली तथा जिप्सी जनजाति (Forest and Gypsy Tribe)

(h)पिछड़ी जनजाति (Backward Tribe)

(i) अपराधी जनजाति (Criminal Tribe)

(j) घुमंतू जनजाति (Wondering Tribe)

6. अनुसूचित जनजाति - प्रसिद्ध समाजशास्त्री घुरिए ने जनजातियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' के नाम का प्रस्ताव किया था। संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है कि "राष्ट्रपति सार्वजनिक सूचना द्वारा जनजातियों, जनजाति समुदायों या जनजाति समुदाय के भीतरी समूहों की घोषणा करेंगे। इस सूचना में जो जनजाति समुदाय या जनजातियों के भीतरी समुदाय परिगठित किए जाएँगे, वे सब अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribes) कहलाएँगे।" भारत के संविधान के 16वें भाग में जनसंख्या के कुछ विशेष वर्गों का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद की धारा 330 में अविशेष वर्गों को नामांकित किया गया है। जिसके

सम्बन्ध में इस अनुच्छेद में कुछ विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। इन विशेष वर्गों को (a) अनुसूचित जातियाँ तथा (b) अनुसूचित आदिम जातियों कहा गया है।

भारतीय संविधान के 16वें अनुच्छेद की धारा 330 में उल्लेख किया गया है कि "राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि समय-समय पर आदिम जातियों अथवा आदिम समुदायों अथवा इनके कुछ वर्गों अथवा समूहों को अनुसूचित घोषित करे तथा संविधान के उद्देश्यों के लिए इसी घोषणा के आधार पर उन्हें अनुसूचित आदिम जातियाँ कहा जाएगा।" इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजातियाँ वे हैं, जो राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचित की जाती है तथा जिनका नाम संविधान की सम्बन्धित सूची में दर्ज है। इसके साथ ही साथ इनकी संख्या में भी परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् इनकी संख्या बढ़ती घटती रहती है। इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा कुल 14 राज्यों की घोषित अनुसूचित जातियों की कुल संख्या 212 है।

इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचित वे जनजातियाँ, जो भारतीय संविधान की विशिष्ट अनुसूची में दर्ज हैं, अनुसूचित जनजाति के नाम से जानी जाती है।

6.4 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति की परिभाषा

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, अनुसूचित जनजाति और जनजाति में कोई अन्तर नहीं है। जो अन्तर दिखाई देता है, वह मात्र शब्दों का है। इस दृष्टि से से इनके अर्थ, परिभाषाओं को अलग-अलग करना ठीक नहीं है। अनुसूचित जनजाति और जनजाति की अवधारणा की विवेचना निम्नानुसार है-

(1) मर्डोक "यह एक सामाजिक समूह है, जिसकी एक अलग भाषा होती है तथा भिन्न संस्कृति एवं एक स्वतंत्र राजनीतिक संगठन होता है।"।

(2)बो आम "जनजाति का अर्थ आर्थिक दृष्टि से ऐसा स्वतंत्र जनसमूह जो एक भाषा बोलता है और बाहरी आक्रमण से सुरक्षा के लिए संगठित होता है।"

(3)पिडिंग्टन "इस जनजाति को व्यक्तियों के एक समूह के रूप में परिभाषा कर सकते हैं, जो कि समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग में निवास करता हो तथा जिसकी संस्कृति में एक विशेष समरूपता रहती हो।"

(4)नोट्स एण्ड क्वेरीज आन एन्थरोपोलाजी "एक ऐसा समुदाय, जो किसी भू-भाग का स्वामी हो, जो राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से श्रृंखलाबद्ध स्वायत्त शासन चला रहा हो, उसे 'वन्यजाति' कहते हैं।"

(5)मजूमदार- "जनजाति परिवारों या परिवार समूहों के संकलन का नाम है। इनका एक सामान्य नाम होता है, ये एक ही भू-भाग में निवास करते है, एक ही भाषा बोलते हैं और विवाह, उद्योग तथा व्यवसाय में एक ही बातों को निषिद्ध मानते हैं। एक-दूसरे के साथ व्यवहार सम्बन्ध में भी इन्होंने अपने पुराने अनुभवों के आधार पर कुछ निश्चित नियम बना लिए है।"2

(6)गिलिन और गिलिन "जनजाति किसी भी ऐसे अशिक्षित स्थानीय समूह को कहा जाता है जो एक सामान्य भू-भाग पर निवास करता है, एक सामान्य भाषा बोलता है तथा एक सामान्य सांस्कृतिक व्यवहार करता है।"

(7) इम्पीरियल गजेटियर- "जनजाति परिवारों का संकलन है। इसका एक सामान्य नाम होता है, सामान्य भाषा में बोलते हैं तथा जो सामान्य प्रदेश में रहते हैं या रहने का दावा करते हैं और सामान्यतया अन्तर्विवाह नहीं होता है, भले ही आरम्भ में ऐसा करता रहा हो।"

"इस प्रकार जनजाति एक सामाजिक समूह है, जो सामान्यतया एक निश्चित क्षेत्र में पाया जाता है और जिसकी एक निश्चित भाषा, सांस्कृतिक सजातीयता और एकीकृत सामाजिक संगठन पाया जाता है।"

. "हम जनजाति को एक ऐसे समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो एक समान बोली बोलते हैं, एक समान क्षेत्र में निवास करते हैं तथा संस्कृति में एक निश्चित एकरूपता प्रदर्शित करते हैं।"

अनुसूचित जनजाति की विशेषताएँ
(Characteristics of Scheduled Tribe)

जनजाति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) जनजाति परिवारों या परिवारों के समूहों के संग्रह का नाम है।

(2) इसका एक सामान्य नाम होता है।

(3) जंगल, पहाड़, मैदान आदि किसी विशिष्ट क्षेत्र में फैले हुए होते हैं।

(4) एक प्रकार की भाषा या बोली बोलते हैं।

(5) विवाह, व्यवसाय, भोजन तथा अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में निश्चित निषेधों का पालन करते हैं।

(6) यह सामान्यतया एक अन्तर्विवाही समूह होता है अर्थात् विवाह सामान्यतया उसी समूह के अन्तर्गत किये जाते हैं।

(7) अनेक बार एक जनजाति टोटम या क्षेत्र के आधार पर अनेक भागों में विभाजित होते हैं जो अन्तर्विवाही हो भी सकते हैं और नहीं भी।

(8) जनजाति एक राजनीतिक इकाई भी होती है क्योंकि वन्यजातीय संगठन या तो वंशानुगत प्रमुख के द्वारा मान्यता प्राप्त होता है या गोत्र प्रमुख या वंशानुगत राजाओं के द्वारा एक समूह में संगठित किया जाता है।

(9) आर्थिक क्षेत्र में जनजाति अनेक प्रमुख, द्वैतीयक तथा सहायक व्यवसायों में संलग्न रहती है।

(10) सामाजिक संगठन के क्षेत्र में जनजातियाँ सिर्फ रक्त के बन्धनों द्वारा ही बंधी हुई नहीं हैं, अपितु निवास, परिवार और पारस्परिक सहायता जैसे बन्धों के द्वारा भी बंधी हुई होती है।

(11) धर्म और जादू जनजातीय जीवन के अभिन्न अंग होते हैं, भले ही इनका स्वरूप आत्मावाद (Animism) समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष या टोटमवाद (Totemism) के रूप में हो।

(12) सांस्कृतिक प्रतिमानों और सामाजिक संगठन जनजातीय संगठन एकीकृत रहता है।

जनजाति और अनुसूचित जनजाति में अन्तर
(Difference between Tribe And Scheduled Tribe)

मोटे तौर पर जनजाति और अनुसूचित जनजाति में कोई अन्तर नहीं है किन्तु संवैधानिक तथा अन्य दृष्टियों से इन दोंनो में कुछ अन्तर निम्न प्रकार है-

1. जनजाति एक सामान्य अवधारणा है, जिसमें इस समूह के सभी व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है, जबकि अनुसूचित जनजाति एक विशिष्ट अवधारणा है, जिसके अन्तर्गत केवल उन्हीं व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है, जिनका नाम विशिष्ट अनुसूची में सम्मिलित होता है।
2. जनजाति मानवशास्वीय अवधारणा (Anthropological concept) है, जबकि अनुसूचित जनजाति संवैधानिक अवधारणा (Constitutional Concept) है।
3. सभी जनजातियों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है, जबकि अनुसूचित जनजाति को संवैधानिक दर्जा प्राप्त है।
4. जनजातियों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं है, जबकि अनुसूचित जनजातियों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है।
5. जनजाति को आरक्षण की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है, जबकि अनुसूचित जनजाति आरक्षण की श्रेणी में है।
6. जनजातियों को चुनावों (Elections) में आरक्षण का लाभ नहीं मिलता, जबकि अनुसूचित जनजातियों को चुनावों में आरक्षण का लाभ मिलता है।
7. जनजातियों को शासकीय सेवाओं का लाभ तब तक नहीं मिलेगा, जब तक कि उनका नाम संविधान की विशिष्ट सूची में सम्मिलित न किया जाए और उन्हें अनुसूचित जनजाति की अनुसूची में न रखा जाए।
8. शासन द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जाता है। इन कल्याणकारी योजनाओं का लाभ सभी जनजातियों को नहीं मिलता है, जब तक कि उनका नाम संविधान की विशिष्ट अनुसूची में

सम्मिलित न हो और उन्हें अनुसूचित जनजाति का दर्ज प्राप्त न हो जाए।

9. अन्त में जनजाति अनुसूचित (Scheduled) नहीं है, जब कि अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित (Sched- uled) है।

इस प्रकार जनजाति और अनुसूचित जनजाति में कोई खास अन्तर नहीं है। अन्तर केवल 'अनुसूचित' का है। अनेक जनजातियाँ होती हैं जिनमें से जिन जनजातियों को संविधान की विशिष्ट अनुसूची में सम्मिलित कर लिया जाता है वे अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में आती हैं और जिन्हें सम्मिलित नहीं किया जाता या सम्मिलित किए जाने से छूट जाती है, वे जनजाति कहलाती है।

*6.5 अनुसूचित जनजाति के निर्धारण के संवैधानिक प्रावधान (*Constitutional Provisions to Determine Scheduled Tribe)

स्वतंत्रता के बाद सबसे बड़ी आवश्यकता थी, उस नियम-कानून की, जिसके अन्तर्गत देश की शासन व्यवस्था को संचालित करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण करना पहली प्राथमिकता थी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'संविधान सभा' के गठन की आवश्यकता का अनुभव किया गया, जिसका गठन 9 सितम्बर, 1946 को किया गया। इसमें 389 सदस्य थे। इन सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 13 सितम्बर, 1946 को संविधान सभा में 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया, जिसमें संविधान के उद्देश्य और उसके दर्शन का समावेश था। संविधान सभा ने 22 जनवरी, 1947 को इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और इसी को आधार मानकर भारतीय संविधान सभा को अमलीय जामा पहनाया गया। श्री बी.एन. राव संविधान सभा के परामर्शदाता थे। इस

संविधान सभा ने एक प्रारूप समिति का गठन किया जिसमें 7 सदस्य थे तथा इसके अध्यक्ष डॉ. बी. आर. आम्बेडकर थे। इस प्रारूप समिति ने 2 वर्ष 11 माह और 18 दिनों के अथक प्रयास से संविधान की रचना की। संविधान सभा के सदस्यों ने प्रारूप समिति द्वारा प्रस्तुत संविधान को पारित कर दिया और 26 नवम्बर 1949 को इसे ग्रहण कर लिया गया तथा 26 जनवरी, 1950 को संविधान को लागू कर दिया गया। प्रति वर्ष इसी दिन को गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसमें कुल 395 अनुच्छेद, 22 भाग तथा 8 अनुसूचियाँ थीं। वर्तमान में इसमें 443 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं।
भारतीय संविधान की प्रस्तावना इसकी आत्मा है, जिसमें इसके उद्देश्यों तथा नीतियों को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तावना में लिखा गया है कि-
हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता, प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभी में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियभित और आत्मार्पित करते हैं।

अनुसूचित जनजातियाँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति की धरोहर तथा राष्ट्रीय धारा की मेरूदण्ड है। भारतीय संविधान में सभी नस्लों, धर्मों, विचारों को स्थान दिया गया है तथा सभी की रक्षा और उनके स्वाभिमान को महत्व प्रदान किया गया है। समाज के उन वगों को, जो अनादिकाल से उपेक्षा के शिकार रहे हैं, उन्हें ऊपर उठाने तथा अवसर प्रदान करने का प्रयास किया है। इसी कड़ी में भारत की अनुसूचित जनजातियों को भी संविधान द्वारा सुरक्षा की गारन्टी दी गई है।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 338-A में भारत में अनुसूचित जनजातियों के निर्धारण की प्रक्रिया का उल्लेख है। संविधान के 65 वें संशोधन में, जो 1990 में अनुसूचित जनजातियों के निर्धारण के लिए जो प्रावधान किए गए है, वे इस प्रकार हैं-

1.राष्ट्रीय आयोग अनुसूचित जनजाति कौन? इसके निर्धारण के लिए संविधान में प्रावधान किया गया है। इस हेतु एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाएगा। इस आयोग का नाम राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग होगा।

2.आयोग का गठन-राष्ट्रीय आयोग का गठन विधि के प्रावधानों के आधीन संसद द्वारा होगा। इसमें निम्न पदाधिकारी होगे-

(a) अध्यक्ष-एक (b) उपाध्यक्ष-एक (c) सदस्य- पाँच

3.सेवा शर्ते अनुसूचित जनजाति के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की सेवा शर्ते, आयोग का कार्यकाल, आदि का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाएगा।

4.नियुक्ति- अनुसूचित जनजाति के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उनके हस्ताक्षर एवं मोहर युक्त वारन्ट द्वारा की जाएगी।

5.आयोग की शक्तियों का विनियमन आयोग को अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने का अधिकार और शक्ति होगी।

6.आयोग का कर्त्तव्य- राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के निम्न कर्तव्य करने होंगे-

(a)राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के आधीन अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन अथवा सरकार के किसी आदेश के आधीन अनुसूचित जनजातियों के लिए उपबन्धित संरक्षण (सुरक्षोपाय) से सम्बन्धित सभी विषयों

की जाँच एवं समीक्षा करने और उसे ऐसे सुरक्षोपाय की समीक्षा करने का अधिकार।

(b)अनुसूचित जनजातियों के सुरक्षोपय एवं अधिकारों से वंचित करने से सम्बन्धित शिकायतों की जाँच का अधिकार।

(c) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना तथा राय देना और संघ तथा राज्यों में उनके विकास की प्रगति की समीक्षा का अधिकार।

(d) अनुसूचित जनजातियों के सुरक्षा उपायों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को वार्षिक अथवा अन्य समुचित समय पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार।

(e) प्रतिवेदनों में ऐसे उपायों को सम्मिलित करना, जिन्हें अनुसूचित जातियों के उपर्युक्त सुरक्षा उपायों तथा उनके संरक्षण, कल्याण एवं सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु संघ अथवा राज्यों द्वारा लागू किया जा सके।

(f) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास एवं उत्थान से सम्बन्धित ऐसे कार्यों को करने का जो राष्ट्रपति द्वारा (संसद द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के आधीन रहते हुए) नियमों के आधीन विनिर्दिष्ट किए जाएँ।

7. प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरण- राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगा। राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन को, उस पर की गई अथवा की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के साथ, संसद के प्रत्येक सदन में रखवाएगा।

जहाँ ऐसा प्रतिवेदन अथवा उसका कोई भाग ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में है, जो किसी राज्य सरकार से सम्बन्धित है, तो उस प्रतिवेदन की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को प्रेषित की जाएगी और राज्यपाल उस प्रतिवेदन को, उस पर की गई अथवा की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित राज्य की विधान पालिका के समक्ष रखवाएगा।

8. आयोग की शक्तियाँ अनुसूचित जनजाति से संबंधित किसी विषय पर अन्वेषण करते समय अथवा किसी विषय पर जाँच करते समय आयोग को सिविल न्यायालय की वे सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी, जो किसी बात के विचारण के समय सिविल न्यायालय को होती है और विशेष रूप से निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में-

(a) भारत के किसी भी भाग में किसी व्यक्ति को उपस्थित रहने हेतु समन जारी करना अथवा उसे बाध्य करना तथा शपथ पर उसका परीक्षण करना।

(b) किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण, उसके प्रस्तुतीकरण की अपेक्षा करना,

(c) शपथ पत्रों पर साक्ष्य अभिप्राप्त करना,

(d) किसी न्यायालय अथवा कार्यालय से कोई लोक अभिलेख अथवा उसकी प्रतिलिपि की माँग करना,

(e) साक्षियों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना।

(f) ऐसा कोई अन्य विषय, जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा सुनिश्चित करें।

9. आयोग से विचार-विमश- संघ और प्रत्येक राज्य सरकार अनुसूचित जनजाति को प्रभावित करने वाले नीति विषयक मामलों पर आयोग में विचार-विमर्श करेंगे।

स्पष्टीकरण (Clarification)

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति के निर्धारण के राष्ट्रपति द्वारा संविधान के प्रावधानों के तहत एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाएगा। यह आयोग यह निर्धारित करेगा कि कौन-सी जाति जनजाति है और कौन-सी नहीं है। इसके निर्धारण के बाद भी अनेक अनुसूचित जनजातियों है, जो इस श्रेणी में नहीं आ पाती है और उनको इसका लाभ भी नहीं मिल पाता है। इसके अतिरिक्त अनेक जातियों के नाम इस अनुसूची में जुड़ जाते है, जो जनजाति नहीं है और इसका लाभ ले रहे हैं। ऐसी स्थिति की व्याख्या भी संविधान में की गई है। इसका प्रावधान भी संविधान के तहत राष्ट्रपति उन जनजातियों अथवा जनजातीय समूहों को या उनके किसी भागों को अनुसूचित जातियों में सम्मिलित करने के लिए विनिर्दिष्ट कर सकता है। सामान्य अवस्था में राष्ट्रपति अपने आदेश में सभी जातियों एवं उपजातियों का उल्लेख कर देता है, किन्तु कभी-कभी कोई उपजाति आदेश में अंकित करने से रह जाती है, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह उपजाति अनुसूचित जनजाति के मूल शीर्षक में सम्मिलित नहीं है। "पटार" जाति 'मुण्डा' अनुसूचित जनजाति की उपजाति है। लेकिन राष्ट्रपति के आदेश में 'मुण्डा' शीर्षक के अन्तर्गत इसका उल्लेख नहीं किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने 'पटार' जाति को 'मुण्डा' अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत ही माना है।

इसी प्रकार यदि कोई औरत जो अनुसूचित जनजाति की सदस्या नहीं है, किसी अनुसूचित जनजोति के पुरूष से विधिवत विवाह कर लेती है, तो वह अनुसूचित जनजाति की सदस्या मानी जाएगी। यह आवश्यक नहीं कि कोई व्यक्ति जन्म द्वारा ही अनुसूचित जनजाति का सदस्य हो सकता है। वह विवाह के द्वारा भी ऐसी जाति की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

किसी संघ राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति के प्रत्याशी के किसी दूसरे राज्य में चले जाने पर वह वहाँ भी अनुसूचित जनजाति का सदस्य (प्रत्याशी) बना रहेगा।

6.6 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक संरक्षण (Constitutional Protections for Scheduled Tribe)

भारतीय संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों के लिए जो प्रावधान (Provisions) किए गए हैं, उन्हें निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a)संरक्षी प्रावधान (Protective Provisions) और

(b)विकासी प्रावधान (Promotive Provisions)

अनुसूचित जनजातियाँ भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। किन्तु इनका निवास स्थान और इसकी भौगोलिक परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण ये बाह्य संसार के अलग-थलग रहे हैं। अलग-थलग रहने के कारण ही इनका समुचित संरक्षण और विकास नहीं हो सका और आज वे अनेक समस्याओं से जूझ रहे हैं। ये समस्याएँ ही इनके पिछड़ेपन का कारण है। संविधान निर्माताओं ने ऐसा महसूस किया था कि केवल संरक्षण प्रदान कर देने मात्र से अनुसूचित जनजातियों का कल्याण नहीं होगा और वे राष्ट्र की मुख्य धारा से नहीं जुड पाएँगे। इसके लिए संरक्षण के साथ ही साथ उनका चहुमुखी विकास भी आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जहाँ एक ओर संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है वहीं दूसरी और इनके विकास और कल्याण के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए है, जो इस प्रकार हैं-

1.संविधान के बारहवें भाग के अनुच्छेद 275 में स्पष्ट उल्लेख हैं कि जनजातियों के कल्याण के लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को धन उपलब्ध कराएगी।

2.संविधान के पन्द्रहवें भाग के अनुच्छेद 325 में स्पष्ट उल्लेख है कि धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग आदि किसी भी आधार पर किसी भी व्यक्ति या सम्प्रदाय को मताधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

3.अनुच्छेद 16 की धारा 3 के अनुसार भारतीय जनजातियों के कल्याण की दृष्टि से विशिष्ट योजनाओं के निर्माण को महत्व दिया है।

4.अनुच्छेद 16 की धारा 4 के अनुसार सार्वजनिक सेवाओं और शासकीय सेवाओं में जनजातियों के व्यक्तियों के लिए पद निश्चित किए जाने की व्यवस्था है।

5.335 अनुच्छेद के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं में 75 प्रतिशत स्थान जनजातियों के लिए सुरक्षित रखे गये हैं।

6.भारतीय संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 46 के अनुसार जनजातियों की शिक्षा और आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को दिया गया हैं।

7.भारतीय संविधान के भाग 6 के अनुच्छेद 164 के अनुसार भारत सरकार को बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा में जनजातियों के कल्याण की दृष्टि से स्वतन्त्र मन्त्रालय की स्थापना की व्यवस्था की गई है।

8.संविधान के अनुच्छेद 330, 332 और 334 के अनुसार लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं में जनजातियों को जनसंख्या के आधार पर निश्चित सीटें सुरक्षित करने की व्यवस्था है।

9.संविधान के अनुच्छेद 335 के द्वारा इस आशय की व्यवस्था की गई है कि यदि राज्य सेवाओं में जनजातियों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो ऐसी दशा

में राज्य का यह कर्तव्य होगा कि सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियाँ करते समय वन्यजातियों के हितों को ध्यान में रखा जाय।

10.भारतीय संविधान के अनुच्छेद 338 के अधीन राष्ट्रपति को ऐसा अधिकार दिया गया है कि किसी भी विशेष अधिकारी की नियुक्ति करके जनजातियों के कल्याण के लिए सुझाव लें।

11. संविधान के अनुच्छेद 339 के अधीन ऐसी व्यवस्था की गई है कि जिला और प्रदेश स्तर पर जनजातीय समाजशास्त्र थी.ए. प्रथम वर्ष कल्याण सलाहकार परिषदों की स्थापना की जाय, जो राज्य सरकारों को उचित परामर्श और निर्देश दें।

12. अनुच्छेद 341 और 342 के अनुसार यदि आवश्यकता हो तो असम तथा अन्य प्रदेशों में जिला और प्रदेश स्तर पर विशेष आयुक्तों की नियुक्ति की जाय।

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान द्वारा जनजातियों के हितों की रक्षा और सुरक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है।

प्रशासकीय व्यवस्था (Administrative Set-up)- भारतीय संविधान में वर्णित व्यवस्थाओं के अतिरिक्त जनजातियों के कल्याण के लिए जो प्रशासकीय व्यवस्था है, उसे निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता हैः-

(a) संविधान की छठी अनुसूची के अनुसार असम में वन्यजातीय जिलों में जिला स्तर पर परामर्शदात्री समितियों का गठन किया है। इस समिति में अधिक से अधिक 24 सदस्य होते हैं, जिनमें तीन-चौथाई सदस्यों का चयन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। जिन जिलों में ऐसी समितियों बनाई गई है,

उनमें खासी- जैन्तियों की पहाड़ियों मिजो पहाड़ियों, गारो पहाड़ियों और उत्तर कद्दीर पहाड़ियों के जिले प्रमुख है।

(b) संविधान में ऐसी व्यवस्था की गई है कि जिन राज्यों में वन्यजातियों की जनसख्या अधिक है, वहाँ 'जनजातीय सलाहकार परिषद' (Tribal Advisory Councils) की स्थापना की जाय।

(c) राष्ट्रपति को इस प्रकार के अधिकार दिए गए हैं कि वे उन क्षेत्रों में जनजातीय सलाहकार परिषदों का गठन कर सकते हैं, जो अनुसूचित जनजातीय क्षेत्र तो नहीं है, किन्तु जनजातियाँ निवास करती है।

(d) राज्यों में प्रादेशिक आयुक्तों का काम जनजातीय कल्याण मन्त्रालय को सौंपा गया है।

(e) प्रत्येक राज्य में जहाँ जनजातियों की जनसंख्या अधिक है, जनजातीय कल्याण मंत्री की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

(f) अनेक राज्यों में जनजातियों के कल्याण हेतु अनुसंधान संस्थाओं (Tribal Research Institute) की स्थापना की गई है। मध्यप्रदेश और बिहार में इस प्रकार के संस्थान कार्य कर रहे हैं।

जनजातीय कल्याण संस्थाएँ (Tribal Welfare Institute) के अलावा जनजातियों के कल्याण के लिए जो अन्य संस्थाएँ कार्य कर रही हैं, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित है-

(a) केन्द्रीय आयुक्त- संवैधानिक व्यवस्था को दृष्टि में रखकर भारत सरकार के केन्द्रीय आयुक्त की नियुक्त की है। इस आयुक्त के आधीन अनेक व्यक्ति काम

करते हैं। केन्द्रीय आयुक्त की नियुक्ति का उद्देश्य जनजातियों का कल्याण करना है। केन्द्रीय आयुक्त सरकार में जनजातियों के कल्याण के लिए व्यावहारिक सुझाव भी देता है। प्रत्येक वर्ष इस आयुक्त के कार्यालय से एक वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित किया जाता है।

(b) जनजातीय अनुसंधान संस्थान- भारतीय जनजातियों की संस्कृति, परम्पराओं और साहित्य का अध्ययन करने की दृष्टि से अनेक राज्यों में अनुसंधान संस्थानों की स्थापना की गई है। जिन राज्यों में अनुसंधान संस्थानों की स्थापना की गई है, उनमें मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान और पश्चिमी बंगाल प्रमुख है। इन संस्थानों का उद्देश्य जनजातियों का गंभीरता से अध्ययन करना और कल्याणकारी योजनाओं को प्रस्तुत करना है।

(c) प्रशिक्षण केन्द्र- जनजातियों से सम्बन्धित काम करने के लिए अनेक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। ये कार्यकर्ता तभी कुशलतापूर्वक काम कर सकते हैं जबकि इन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाय। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर अनेक संस्थाओं ने जनजातीय क्षेत्रों में काम करने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। मध्यप्रदेश के जनजातीय अनुसंधान संस्थान में प्रशिक्षण की ऐसी ही व्यवस्था की गई है। टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज तथा राँची की सोशल एजुकेशन आर्गनाइजर्स सेन्टर इसी प्रकार की अन्य प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं।

(e) सार्वजनिक संस्थाएँ- जनजातियों के कल्याण कार्यों में सार्वजनिक संस्थायें भी अपना योगदान दे रही है कुछ प्रमुख सार्वजनिक संस्थाएँ निम्नलिखित है-

(i) अखिल भारतीय आदिमजाति सेवक संघ, दिल्ली,
(ii) सारतिया लोक कला मंडल, यूके,
(iii) मानव विज्ञान समाज, सहकारी समिति,
(iv) गुजरात अनुसंधान समाज।

(4) विश्वविद्यालयों द्वारा अनुसंधान- जनजातीय जीवन के अध्ययन में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा जो अनुसंधान कार्य किये गये हैं।, उनका भी कम महत्व नहीं है। इस प्रकार के अनुसंधान कार्य समाजशास्त्र और मानवशास्त्र विभाग के अन्तर्गत किये जाते हैं। जिन विश्वविद्यालयों द्वारा वन्यजातियों से सम्बन्धित मौलिक कार्य किये गये हैं, उनमें राँची, कोलकाता, गौहाटी, आगरा, लखनऊ, बम्बई, सागर, जबलपुर आदि प्रमुख है।

अनुसूचित जातियों के आयुक्तों का सम्मेलन- केन्द्रीय आयुक्त श्रीकान्त के प्रयासों से 1958 में दिल्ली में राज्य अधिकारियों के परामर्श मण्डली का एक सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन मे जनजातियों के कल्याण के लिये निम्न सुझाव दिये गये थे-

(a) ऐसे राज्यों में शीघ्र ही परामर्श मण्डल स्थापित किये जाएँ, जहाँ अभी तक वन्यजातीय कल्याण परामर्श मण्डल स्थापित नहीं किये गये हैं,

(b) प्रत्येक राज्य में जहाँ जिला कल्याण समितियाँ नहीं है, शीघ्र ही स्थापना की जाय,

(c) अनेक समुदाय ऐसे हैं जिन्हें जनजातियों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है, उन्हें शीघ्र ही सम्मिलित किया जाय,

(d) प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर जनजातीय छात्रावासों (Tribal Hostels) की स्थापना की जाय,

(e) ऐसा प्रयास किया जाय जिससे जनजाति के व्यक्ति शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के लिए प्रोत्साहित हों। सब हो, यदि अनुभव किया जाय तो प्रवेश के लिए स्थान सुरक्षित रखे जाएँ,

(f) जनजातियों की अर्थ-व्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए लघु उद्योगों की स्थापना की जाय,

(g) जनजातीय क्षेत्रों में 'बहुउद्देशीय विकास खण्डो' (Multipurpose Development Blocks) की स्थापना की जाय,

(h) ऐसे स्थान जहाँ आवागमन के साधनों का अभाव है, वहाँ विस्तृत चिकित्सा सुविधाएँ पहुँचायी जाए,
(i) जनजातियों को ऐसी जमीन के स्वामित्व का अधिकार दे दिया जाय, जहाँ पर कि उनके मकान बने हुए है,
(j)जनजातीय व्यक्तियों को सरकारी और सार्वजनिक सेवाओं में काम करने की जो निर्धारित योग्यता है, उसमें छूट दी जाय,
(k) जनजातियों को लोकसभा और विधानसभाओं में 10 वर्ष के लिए जो स्थान सुरक्षित हैं, इसकी अवधि में वृद्धि कर दी जानी चाहिये,
(i) जनजातियों में सहकारिता का प्रसार किया जाय तथा भवन-निर्माण के लिए जनजातियों को निश्चित अनुदान प्रदान किया जाय।

(7)**योजनाओं में जनजातीय कल्याण (Tribal welfare in Plannings)**- देश के बहुमुखी विकास के लिए भारत सरकार ने योजना आयोग (Planning Commission) की स्थापना की थी। योजना आयोग की स्थापना का उद्देश्य देश के विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना था। भारतवर्ष में जनजातियों की संख्या अत्यधिक है। इस दृष्टि को सामने रखकर योजना आयोग ने योजनाओं में जनजातीय कल्याण की समुचित व्यवस्था की थी। जनजातीय कल्याण में शिक्षा, चिकित्सा, आवागमन की सुविधा, नौकरी, ऋण की व्यवस्था, कुटीर उद्योगों का विकास, कृषि और इससे सम्बन्धित सहायता और परामर्श, गृह निर्माण, सांस्कृतिक विकास आदि प्रमुख है।

6.7 भारत में अनुसूचित जनजातियाँ (*Scheduled Tribes in India)*

2001 की जनगणना के अनुसार भारत तथा इसके प्रदेशों और संघ शासित क्षेत्रों की कुल जनसंख्या, अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या तथा कुल

जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के प्रतिशत को दिखाया गया है।

2011 के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या

क्र.	राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश	कुल जनसंख्या	अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत
1	लक्षद्वीप	61	57	94.51
2	मिजोरम	889	839	94.46
3	नगालैण्ड	1990	1774	89.15
4	मेघालय	2319	1993	85.94
5	दादरा एवं नागर हवेली	220	137	62.24
6	अरुणाचल प्रदेश	1098	705	64.22
7	मणिपुर	2167	741	34.20
8	छत्तीसगढ़	20834	6617	31.76
9	त्रिपुरा	3199	993	31.05
10	झारखण्ड	26946	7087	26.30
11	उड़ीसा	36805	8145	22.13

12	अंग	541	111	20.60
13	मध्यप्रदेश	60348	12233	20.27
14	गुजरात	50671	7481	14.76
15	राजस्थान	56507	7098	12.56
16	असम	26656	3309	12.41
17	अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह	356	29	8.27
18	दमन दीव	158	14	8.85
19	महाराष्ट्र	96879	8577	8.85
20	जम्मू और कश्मीर	10144	1106	10.90
21	आंध्रप्रदेश	76210	5024	6.55
22	कर्नाटक	52851	3464	6.55
23	पश्चिम बंगाल	80176	4407	5.50
24	हिमाचल प्रदेश	6078	245	4.02
25	उत्तराखण्ड	8489	256	3.02
26	केरल	31841	364	1.14
27	तमिलनाडु	62406	651	1.04
28	बिहार	82999	758	0.91
29	उत्तरप्रदेश	166198	108	0.06
30	गोआ	1348	1	0.04

31	पंजाब	24359	0	0.00
32	चण्डीगढ़	901	0	0.00
33	हरियाणा	21145	0	0.00
34	दिल्ली	13851	0	0.00
35	पांडिचेरी	974	0	0.00
	भारत	1028610	84326	8.20

भारत में प्रति 10 वर्ष में जनगणना होती है। इस जनगणना के आधार पर भारत में अनुसूचित जनजातियों की भी गणना की जाती है। 2001 की जनगणना के आधार पर भारत के विभिन्न प्रदेशों और केन्द्र शासित क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या और उनके प्रतिशत को दर्शाया गया है। इसमें क्रमानुसार अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों और केन्द्र शासित क्षेत्रों को दिखा गया है है। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार भारत में कुल अनुसूचित जनजातियों की संख्या 560 है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजातियाँ वे है, जिन्हें भारतीय संविधान की जनजातियों के निर्धारण (Determination) के लिए कभी भी आदेश दिए जा सकते हैं। और इस आदेश के परिपालनार्थ राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग संवैधानिक प्रावधानों (Constitutional Provisions) के अनुसार किसी भी जाति को अनुसूचित जनजाति की अनुसूची में सम्मिलित भी कर सकता है और इस अनुसूची से किसी भी जाति के नाम को हटा सकता है।

भारत में जनजातीय समस्याएँ
(Tribal Problems in India)

भारतवर्ष में 6 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या जनजातियों की है। ये जनजातियाँ सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैली हुई हैं। भारतवर्ष में अनेक प्रदेश तो ऐसे हैं,

जिनमें 20 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या जनजातियों की है। भारतवर्ष सदियों की गुलामी के पश्चात 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ। इससे पहले की जो शासन पद्धति थी, उसमें इन जनजातियों की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। स्वतंत्रता के बाद भारतवर्ष के सामने अनेक समस्याएँ अपने विकट रूप में उपस्थित हुईं। आज देश को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। अनेक गम्भीर समस्याओं में जनजातियों की समस्या मौलिक है तथा अत्यंत ही भीषण है। भारत में इन जनजातियों की संख्या 2 करोड़ 25 लाख से भी अधिक है। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने इन समस्याओं की ओर गम्भीरता से विचार करना प्रारम्भ किया है।

जनजातीय समस्याओं के कारण

प्रत्येक समस्या के पीछे एक निश्चित पृष्ठभूमि होती है। यही पृष्ठभूमि कारणों को पैदा करती है और समस्या का विकास होता है। भारतवर्ष में जनजातीय समस्याओं के पीछे जो कारण है, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) दुर्गम निवास स्थान (Unapproachable Habitation)- भारतवर्ष की जनजातियों की मौलिक विशेषता यह है कि ये ऐसे स्थानों में निवास करती है, जो भीषण जंगलों और पहाड़ों से घिरे हुये होते हैं। इनका परिणाम यह होता है कि संचार के साधनों का वहाँ पर अभाव पाया जाता है। संचार साधनों के अभाव के कारण वे परिस्थितियों के दास हो जाते है और अन्य संसार से उनका सम्पर्क टूट जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक समस्याओं का जन्म अपने आप ही हो जाता है। सम्पर्क साधनों के अभाव के कारण ये समस्याएँ और भी अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं।

(2) सभ्य समाज से सम्पर्क (Contact with Civilized Society)- जनजातियों की समस्याओं का कारण सभ्य समाज से सम्पर्क में आना है। जनजातियों के सम्पर्क में जो सभ्यताएँ आईं, उन्हें निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) हिन्दू सभ्यता और (ii) पाश्चात्य सभ्यता।

ये दोनों सभ्यताएँ जनजातियों के लिए नई प्रतीत हुईं। जनजाति इन सभ्यताओं के साथ अपना अनुकूलन करने में असमर्थ रहे, इसके परिणामस्वरूप भी अनेक समस्याओं का जन्म हुआ।

(3) शोषण (Exploitation)- जनजातियों का बाहरी समाजों द्वारा शोषण के कुचक्र के कारण भी अनेक प्रकार की समस्याओं का विकास हुआ। जिन समूहों द्वारा जनजातियों का शोषण दिया जाता है, उनमें व्यापारी, महाजन, ठेकेदार आदि प्रमुख है। इन्होंने जनजातियों की अर्थ व्यवस्था को अत्यंत ही जर्जर कर दिया है।

(4) ईसाई मिशनरी (Christian Missionaries)- इन ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों के कल्याण का काम तो किया परन्तु उन्हें हिन्दू से ईसाई बनाने का महत्वपूर्ण काम भी किया है। इन ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों की दयनीय अवस्था का काफी फायदा उठाया और अपने धर्म का प्रचार किया है। इन ईसाई मिशनरियों के कारण समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष भी जनजातियों के जीवन में अनेक स्पस्याओं का जन्म हुआ है।

(5) शासन व्यवस्था (Administrative set up)- अंग्रेजों के द्वारा शासन व्यवस्था की स्थापना भारतवर्ष में की गई थी। इससे भी उनके जीवन में अनेक समस्याओं का जन्म हुआ। अंग्रेजों के शासनकाल में अनेक अधिकारी जनजातियों की समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से जनजातीय क्षेत्रों में भेजे गए।

इन अधिकारियों ने जनजातियों की समस्याओं का समाधान करना तो दूर रहा, इन्हीं का शोषण करना प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ।

जनजातीय समस्याएँ (Tribal Problems)

भारतीय जनजातियों की जो प्रमुख समस्याएँ हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) परिस्थितिशास्त्रीय समस्याएँ- जनजातियों की जितनी भी समस्याएँ हैं, इन समस्याओं में मौलिक समस्या परिस्थितियों से सम्बंधित है। वे घने जंगलों और पहाड़ों में निवास करते हैं। उनका जीवन ठीक उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार 'वन मानुष' का होता है। यहाँ सम्पर्क तथा आवागमन के साधनों की कमी के कारण अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है। भयावह पकृति ही उनके जीवन का एक सहारा होती है। इसी प्रकृति की गोद में जन्म लेते हैं, पलते हैं, बड़े होते हैं, क्रियाओं का सम्पादन करते हैं तथा अपनी जीवन लीला को समाप्त कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भोजन, वस्त्र, आवास, दवाई तथा इसी प्रकार की अन्य समस्याओं का जन्म होता है।

(2) आवास समस्या- जनजातियों की दूसरी बड़ी समस्या मकान की है। मकान घास-फूस, लकड़ी और मिट्टी के बने होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से ये मकान अत्यंत ही हानिकारक होते हैं। मकान अत्यंत ही छोटा होता है। इसमें प्रायः एक ही कमरा होता है। वह भी अत्यंत ही सँकरा और छोटा होता है। खिड़कियों का पूरी तरह अभाव पाया जाता है। मकानों में समुचित रूप से हवा और रोशनी का अभाव होता है। एक ही कमरे के घर में खाना, सोना, जीना, मरना, रहना सब कुछ होता है। घरों में गंदगी भी पर्याप्त मात्रा में रहती है। इस सबका परिणाम यह होता है कि अनेक प्रकार की समस्याओं मस्याओं का जन्म होता है।

(3) **वस्त्राभाव की समस्या**- जनजातियों के सामने वस्त्र प्राप्त करना भी समस्या होती है। इसका कारण यह है कि उनके पास इतना पैसा नहीं होता है, जिससे कि वे वस्त्र खरीद सकें। बच्चे प्रायः नंगे ही रहते हैं। अधिकांश आदिवासी 'लंगोटी' से ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं और सारा शरीर खुला ही रखते हैं। स्त्रियाँ मोटे कपड़े की धोती का प्रयोग करती है। सम्पन्न घरों की औरतें ब्लाउज का भी प्रयोग करती हैं, जो भी कपड़े पहनते हैं। वे गन्दे आदि होते हैं।

(**4) खाद्य सामग्री की समस्या-** खाद्य सामग्री भी जनजातियों की एक प्रमुख समस्या है। इस दृष्टि से ये आज भी आखेट और पशुपालन अवस्था में रह रहे है। जंगली फलों, फूलों, जड़ों, छालों और पत्तियों का प्रयोग खाद्य सामग्री के रूप में करते हैं। जंगली जानवरों का शिकार करके अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। अनेक परिवार ऐसे होते हैं, जिन्हें गरीबी के कारण भोजन मिलना भी एक समस्या है। वे मोटा अनाज खाते हैं। खाद पदार्थों में पौष्टिक तत्वों का पूर्ण अभाव पाया जाता है।

(5) ऋणग्रस्तता की समस्या- जनजातीय लोग अज्ञानी, निर्धन और भोले होते हैं। इनके सरल स्वभाव का लाभ अनेक व्यापारी, साहूकार तथा अन्य चालाक व्यक्ति उठाते हैं। इनमें से अधिकांश ऋण पुश्तैनी होता है और यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहता है। सूदखोरी एक ऐसा कारण है, जिससे ये जनजाति कभी भी अपने को ऋण से मुक्त नहीं कर पाते हैं।। रुपये में 2 पैसा प्रतिमास से लेकर 12-15 पैसे प्रति माह की दर से इनसे ब्याज वसूल किया जाता है। इसके साथ ही अनेक महानुभावों की खुशामद करने के लिए इन जनजातियों को ऋण लेना पड़ता है। इस ऋण से ये आजीवन मुक्ति नहीं पाते हैं।

(6) झूम कृषि समस्या- झूम कृषि को स्थानांतरित कृषि (Shifting Cultivation) के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार की खेती में लाखों जनजातीय व्यक्ति लगे है। खेती का तरीका अत्यंत ही प्राचीन और पिछड़ा हुआ है। झूम खेती से

जंगल और जमीन दोनों की ही बर्बादी होती है। इससे पर्याप्त उत्पादन नहीं हो पाता है, जिससे खाद्य समस्या सामने आती है। आज झूम पद्धति से की जाने वाली कृषि अत्यंत ही हानिकारक है और इससे अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है।

(7) जंगल से सम्बंधित समस्याएँ अपने शोध कार्य के दौरान 1965 में जब मैं सरगुजा जिले के मेनपाट ब्लाक के मूसारबोल गाँव गया था तो वहाँ 'परभू' कोरवा से इस आशय का प्रश्न किया कि आधुनिक शासन व्यवस्था से क्या तुम खुश हो? उसने अपने उत्तर में कहा (नहीं) उसका जवाब पाकर उत्सुकतावश मैने नाराजगी का कारण पूछा तो उसने जवाब दिया कि जंगल काटने पर भी तो सरकार ने रोक लगा रखी है। एक समय था, जब आदिवासी मनमाने तरीके से जंगलों को काटते थे। आज इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। साथ ही ठेकेदार को जंगल की लड़की ठेके पर बेच देते हैं। अतः ठेकेदार इन जनजातियों का शोषण करते हैं और कम मजदूरी पर कठिन काम लेते हैं।

(8) औद्योगिक श्रमिकों की समस्याएँ नगरीकरण और औद्योगीकरण का परिणाम यह हुआ कि सभ्यता से दूर रहने वाली जनजातियों को भी उद्योगों के सम्पर्क में आना पड़ा है। इनमें बागान उद्योग, खान उद्योग और कारखाना उद्योग प्रमुख हैं। इन उद्योगों ने जनजातियों की समस्याओं को और भी भीषण बना दिया है। जनजाति के व्यक्तियों को लालच देकर इन्हें औद्योगिक कार्यों में लगाया जाता है, किंतु इन श्रमिकों को न तो पर्याप्त वेतन ही दिया जाता है और न ही रहने की सुविधा तथा स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था ही की जाती है। इनसे अधिक घंटों तक कठोर काम लिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जनजातियों के जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हो जाता है।

(9) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ आधुनिक युग में जनजातियों के जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म और विकास हुआ है। इसमें स्वास्थ्य

सम्बंधी समस्या प्रमुख है। भारतीय जनजातियों की स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) अत्यधिक बीमारियाँ - जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि जनजातियों को भर पेट भोजन नहीं मिल पाता है। इसके साथ ही वे ऐसे वातावरण में रहते हैं; जिससे अनेक प्रकार की बीमारियों का जन्म होता है। इन बीमारियों में हैजा, चेचक और तपेदिक प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त जनजातियाँ अनेक प्रकार की क्षेत्रीय बीमारियों से भी पीड़ित रहती हैं।

(b) चिकित्सा का अभाव जनजाति वैसे भी अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त होती है। साथ ही उन्हें चिकित्सा सुविधाओं का भी अभाव रहता है। जनजातियों में चिकित्सा सुविधाओं की कमी के दो कारण है।

(i) जनजातियाँ परम्परात्मक चिकित्सा पद्धति में विश्वास करती हैं और आधुनिक चिकित्सा पद्धति को उपेक्षा की दृष्टि से देखती है और

(ii) जनजातियाँ ऐसे बीहड़ और दुर्गम स्थानों में निवास करती हैं कि वहाँ तक चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराना अत्यंत ही कठिन होता है।

(10) शिक्षा सम्बंधी समस्याएँ अशिक्षा जनजातियों के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। यह अशिक्षा अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। अशिक्षा ही एक ऐसा कारण है जिससे उनके जीवन में अनेक प्रकार के कुसंस्कारों और कुप्रथाओं का जन्म होता है। इसके साथ ही प्रत्येक जनजातीय समूह अपने सदस्यों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करता था। इस शिक्षा का उद्देश्य होता था समुदाय की सामाजिक और सांस्कृतिक एकता को बनाए रखना। आधुनिक शिक्षा का परिणाम यह हो रहा है कि वे अपनी संस्कृति को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है।

(11) धार्मिक समस्याएँ जनजातियों के जीवन पर दो धर्मों का प्रमुख प्रभाव पड़ा है ईसाई और हिन्दू। हिन्दू धर्म का प्रभाव उन जनजातियों पर पड़ा जो गाँवों में अन्य जातियों के साथ निवास करती हैं। इसके विपरीत ईसाई धर्म का प्रभाव उन जनजातियों पर अधिक पड़ा है जो सभ्यता से दूर जंगलों और पहाड़ों में निवास करती है। आज जनजातियों के जीवन की सबसे बड़ी समस्या धर्म परिवर्तन की है। अनेक जनजातियाँ शीघ्रता से ईसाई धर्म को अपनाती जा रही हैं। यही कारण है कि आज जनजातियों में अनेक धार्मिक आंदोलन चल पड़े है और धार्मिक भेदभाव का विकास होता जा रहा है। इससे जनजातीय समुदाय की एकता समाप्त होती जा रही है और पारिवारिक तनाव, भेदभाव, विघटन आदि अनेक प्रकार की समस्याओं का विकास होता जा रहा है।

(12) कन्या-मूल्य अधिकांश जनजातीय समूह कन्यामूल्य (Bride Price) जैसी भयानक सामाजिक समस्या से ग्रस्त है। कन्यामूल्य वह धन है जो माता-पिता अपनी कन्या के विवाह के बदले पैसा या द्रव्य के रूप में प्राप्त करते हैं। यह समस्या आज और भी विकसित होती जा रही है तथा उग्र रूप धारण करती जा रही है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक व्यक्तियों को विवाह से वंचित रह जाना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष है कि अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है।

(13) बाल विवाह बाल विवाह भी जनजातियों की मौलिक सामाजिक समस्या है। बाल विवाह के कारण अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है। इसका कारण यह है कि बाल विवाह स्वयं एक समस्या है।

(14) ललित कलाओं का पतन आधुनिक सभ्यता और अ बाहरी संस्कृति के प्रभाव का तीसरा परिणाम यह हुआ है कि इससे जनजातीय समाजव की कला और

संस्कृति का पतन प्रारंभ म हो गया है। जनजातीय कलाओं के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, नक्काशी, ललित कलाओं आदि को सम्मिलित किया जाता है। अपनी संस्कृति की उपेक्षा और बाहरी संस्कृति के साथ सामंजस्य न होने के कारण जनजातियों के जीवन में उदासीनता का विकास होता जा रहा है। इससे भी अनेक समस्याओं का जन्म होता है।

(15) स्त्रियों की स्थिति जनजातियों की स्त्रियों की समाज में अच्छी स्थिति नहीं होती है। उन जनजातियों में जो मातृसत्तात्मक है, पुरुषों की सामाजिक स्थिति अच्छी है, किंतु मातृसत्तात्मक परिवार अत्यंत ही सीमित है। अधिकांश जनजातियों में पिता की परिवार में सत्ता होने के कारण स्त्रियों की स्थिति अत्यंत ही दयनीय होती है। वे शिक्षा से दूर रहती है, अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त रहती हैं। नवीन विचारों से दूर रहती हैं और यही कारण है कि रूढ़ियों, प्रथाओं और परम्पराओं में चिपटी रहती हैं।

(16) भाषा सम्बंधी समस्या जनजातियों के जीवन में भाषा सम्बंधी अनेक समस्याएँ है। प्रत्येक जनजाति की एक अपनी भाषा होती है। इसके साथ ही प्रत्येक जनजाति एक ऐसी भाषा का भी प्रयोग करती है, जिससे वह बाहरी समाज के व्यक्तियों के साथ सम्बंध स्थापित करती है। परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण जनजाति अपनी भाषा को भूल जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि संस्कृतियों के आदान-प्रदान में अनेक कठिनाई उत्पन्न होती है। इससे समाज की संस्कृति, आदर्शों और मूल्यों का पतन होता है तथा समाज का विघटन है।

(17) युवागृहों का पतन जनजातियों के जीवन में युवागृहों की स्थापना सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन की शिक्षा के उद्देश्य से की गई थी। आधुनिक सभ्यता के कारण ये युवागृह समाप्त होते जा रहे है। इसका कारण है कि इन्हें असभ्यता का प्रतीक माना जाने लगा है। इस संस्था के विघटन के साथ ही समाज पर अनेक बुरे परिणाम स्पष्ट होते जा रहे हैं।

*6.8 जनजातीय समस्याओं का निराकरण (*Remedies of Tribal Problems)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि जनजातियों का जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है। इन गंभीर समस्याओं के समाधान या निराकरण के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं -

(1) शिक्षा सम्बंधी सुझाव -जनजातियों की समस्याओं का मूल कारण अशिक्षा है। इसलिए जनजातियों में शिक्षा से सम्बंधित अग्रांकित सुझाव दिए जा सकते हैं -

(i) जनजातियों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।

(ii) ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे जनजाति के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने को आकर्षित हों।

(iii) प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(iv) जनजातियों में शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षा का माध्यम जनजातियों की भाषा को बनाया जाना चाहिए।

(v) जनजातियों को जो शिक्षा प्रदान की जाये, उसका आधार व्यावसायिक हो। दस्तकारी तथा अन्य व्यवसाय सम्बंधी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से जनजातियों को बेरोजगारी की समस्या से बचाया जा सकता है।

(vi) शिक्षा के साथ ही जनजातियों के मनोरंजन की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। मनोरंजन का आधार वन्य जातीय लोक नृत्य, संगीत और आदि होना चाहिए।

(vii) जनजातियों की शिक्षा के लिये विद्यालय हो, उनमें व्यवसाय से सम्बंधित व्यावहारिक प्रशिक्षण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(viii) ऐसे अध्यापकों को राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार देने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिन्होंने जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किया हो।

(2) आर्थिक सुझाव -जनजातियों की दूसरी समस्या आर्थिक जीवन से सम्बंधित है। इस सम्बंध में जनजातियों के आर्थिक जीवन से सम्बंधित निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं-

(i) जनजातियों को पर्याप्त जमीन दी जानी चाहिए, जिस पर वे अच्छी तरह से कृषि कर सकें।

(ii) ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए जिससे झूम खेती की प्रथा समाप्त हो जाये। इसका कारण यह है कि झूम खेती से जंगलों को काटना पड़ता है, जिससे राष्ट्रीय हानि होती है।

(iii) जनजातियों को भूमि देना ही पर्याप्त नहीं होगा, अपितु उन्हें खेती के लिए औजार, उत्तम बीज, खाद

और अच्छी नस्ल के पशु देने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(iv) जनजातियों को कृषि से सम्बंधित आधुनिक प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए ताकि वे कृषि से अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकें।

(v) ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए, जिससे जनजातियों में घरेलू उद्योग-धंधों का विकास किया जा सके।

(vi) जनजातियों को गृह उद्योगों से सम्बंधित आधुनिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(vii) जो श्रमिक औद्योगिक क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, उनके लिए आवास, कार्य दशाएँ, कार्य के घंटे आदि के प्रति उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(viii) जनजातीय क्षेत्रों में सहकारी समितियों का विकास किया जाना चाहिए।

(ix) जनजातीय पुरुषों और महिलाओं को शासकीय नौकरी दिलाने के प्रयास किये जाने चाहिए।

(x) साहूकारों और महाजनों पर इस प्रकार के प्रतिबंध लगाये जाने चाहिए जिससे वे जनजातियों का आर्थिक शोषण न कर सकें।

(3) सामाजिक सुझाव -

जनजातियों की समस्याओं के समाधान से सम्बंधित तीसरा सुझाव उनके सामाजिक जीवन से है। इस संबंध में निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं-

(i) जनजातियों की आर्थिक स्थिति को सुधारने से यौन अनैतिकता की समस्या पर रोक लगाई जा सकती है।

(ii) कानून का निर्माण करके बाल विवाह और कन्या-मूल्य पर रोक लगा दी जानी चाहिए। साथ ही जो व्यक्ति ऐसा करे, उनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(iii) युवागृह जनजातीय युवकों और युवतियों के लिए शिक्षा के साधन होते हैं। अतः युवागृहों को नष्ट होने से बचाया जाये और उनका पुनरुत्थान किया जाये।

(iv) ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए जिससे जनजातियों में व्याप्त धार्मिक कट्टरता समाप्त हो जाये।

(v) जनजातीय समस्याओं के समाधान के लिए जो भी कार्यक्रम अपनाएँ जायें वे जनजातीय भाषा में हों, साथ ही उसका आधार वन्य जातीय संस्कृति हो।

(4) जनजातियों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उपाय निम्न किये जाने चाहिए-

(i) जनजातीय युवकों और युवतियों को कम्पाउण्डर और दाई का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(ii) जनजातियों में ऐसी जागरूकता का विकास करना चाहिए, जिससे वे भोजन में पौष्टिक तत्वों के प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।

(iii) जनजातियों के लिए चलते-फिरते औषधालयों की व्यवस्था करनी चाहिए।

(Iv) ग्राम पंचायतों, स्कूलों, युवागृहों आदि में प्राथमिक चिकित्सा बाक्स (First Aid Box) के रखे जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए

(V)ऐसे प्रयास करने चाहिए जिससे जनजातियों में अंग्रेजी दवाइयों पर आस्था पैदा हो सके।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. किस विद्वान ने जनजातियों को पिछड़े हिन्दू कहा है-
   (अ)एस. सी. दुबे (द) के. एम. कपाड़िया (स) जी. एस. घुरिए(ब) एम. एन. श्रीनिवास

2. किस विद्वान ने जनजातियों को आदिस्वामी (Aboriginals) कहा है-
   (अ)फ्यूच (ब) एलविन (स) हट्टन (द) मजूमदार

3. 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों का प्रतिशत सबसे अधिक है-
   (अ)मिजोरम (बी) नागालैण्ड (स) मेघालय (द) लक्षद्वीप

4. 2001 की जनगणना के अनुसार भारतीय जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत है-
   (अ)8.20 (ब) 9.20 (स) 10.20 (द) 11.20

6.9 सारांश

जनजाति इकाई समाज के एकीकृत विकास में सहायक होती है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रगति में योगदान देने के साथ-साथ अपनी विशिष्ट परंपराओं और रीति-रिवाजों को जीवित रखती है। इसका अध्ययन हमें न केवल मानव समाज को बेहतर समझने में मदद करता है, बल्कि सामुदायिक और विकासात्मक नीतियों को बेहतर बनाने में भी सहायक होता है। जनजाति अध्ययन का उद्देश्य न केवल उनकी संरचना को समझना है, बल्कि उनके जीवन में सकारात्मक

बदलाव लाने और उनकी विरासत को सुरक्षित रखने की दिशा में काम करना है।

6.10 मुख्य शब्द

- आर्थिक - धन और संसाधनों से संबंधित।
- विकासात्मक - प्रगति या उन्नति।
- योगदान - सहयोग देना।
- विरासत - पूर्वजों से प्राप्त धरोहर।
- संरक्षण - संरक्षण करना या बचाव।
- परंपराएं - प्राचीन रीति-रिवाज।
- समरसता - एकता और सामंजस्य का भाव।
- सांस्कृतिक - सभ्यता और परंपराओं से संबंधित।
- सामुदायिक - समुदाय से संबंधित।

6.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (स), 2. (ब), 3. (द), 4. (अ)।

6.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. "भारत की जनजातियाँ" - बी.एस. वर्मा (2015)।
2. "Tribal India: Continuity and Change" - आर.एन. शर्मा (1994)।
3. "Tribal Development in India" - जयप्रकाश जोशी (2002)।
4. "Indian Anthropology" - एन.सी. चांदा (1988)।

5. माडाँक, जी.पी. हमारे आदिम समकालीन। मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 1961

6. बो एएनएम, एफ. मानवशास्त्र और आधुनिक जीवन' डब्ल्यू.डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी, न्यूयॉर्क, 1921 2

6.13 अभ्यास प्रश्न

1. जनजाति की परिभाषा दीजिए तथा इनकी विशेषताएँ बताइए। Define the tribes and write its characteristics.

2. भारत की जनजातियों की समस्याओं के कारणों पर प्रकाश डालिए तथा इनके निवारण के सुझाव दीजिए। Throw light on causes of the problems of tribes of India and give the suggestions for its remedies.

3. जनजातियों की समस्याओं के समाधान के लिए किए गए प्रयासों की विवेचना कीजिए। Illustrate the efforts for the remedy of the problems of Tribes.

4. अनुसूचित जनजातियों के लिए किए गए संवैधानिक उपायों को बताइये। Write constitutional remedies for Scheduled Tribes.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short answer types Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये Write a short note on the following:

1. जनजातीय समस्याएँ। Tribal Problems.

2. जनजातियों के कल्याण हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयास। Government efforts for Tribal's welfare.

3. जनजातीय समस्याओं के कारण। Cases of Tribal's problem.

4. जनजातीय समस्याओं के लिए सुझाव। Suggestions for the tribal problems.

इकाई -7
दलित [DALIT]

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारत में अनुसूचित जातियों की संख्या और प्रतिशत
7.4 अस्पृश्यता की परिभाषा और अस्पृश्यता की विशेषताएँ
7,5 अस्पृश्यता की उत्पत्ति के सिद्धांत
7.6 अस्पृश्यों की अयोग्यताएँ
7.7 सारांश
7.8 मुख्य शब्द
7.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ ग्रन्थ
7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

दलित से आशय उन लोगों से है जो संविधान की धारा 341 (1) तथा (2) के अन्तर्गत अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखे गए हैं। अनुसूचित जाति मूलतः सम्वैधानिक अवधारणा है। अनुसूचित जाति शब्द द को अंग्रेजों ने कानूनी तथा प्रशासनिक दृष्टि से प्रयोग किया था। 1936 में ब्रिटिश सरकार ने कुछ जातियों, जनजातियों और प्रजातीय समूहों को अनुसूचित जाति के रूप में जानने का प्रयास किया था। 1931 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार दलित वर्ग का निर्धारण करने के लिए कुछ मापदण्डों का निर्धारण किया गया था। उदाहरण के लिए -

1. ब्राह्मणों, नाई, मिस्त्री, दर्जी और इस प्रकार की अन्य सेवाओं से वंचित,
1. हिन्दू मन्दिरों और जन सुविधाओं जैसे सड़क, नौकर, कुँआ तथा शिक्षण संस्थाओं के उपयोग की मनाही,
2. सम्पर्क द्वारा अपवियता, आदि।

7.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. जनजातियों की जीवनशैली, परंपराओं और संस्कृति को समझना।
2. जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का ज्ञान प्राप्त करना।
3.जनजातीय समुदायों के संरक्षण और उनके विकास के लिए आवश्यक नीतियों और उपायों को समझना।

7.3 *भारत में अनुसूचित जातियों की संख्या और प्रतिशत*

भारतीय संविधान में इनकी अलग पहचान इनकी सामाजिक अयोग्यताओं और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने और इन्हें विशेष आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से की गई है। गरीबी, गन्दगी, अशिक्षा, बीमारी और अभाव की शिकार ये जातियाँ बहिष्कृत और नागरिक अधिकारों से वंचित है। आज भी अनुसूचित जातियाँ गरीबी रेखा से नीचे का जीवन जीने के लिए विवश है। इनके पास आजीविका के साधन तथा भूमि और अन्य संसाधन बहुत कम है। यद्यपि कानूनी तौर पर बंधुआ मजदूरी समाप्त हो गई है, किन्तु अभाव, गरीबी और भुखमरी ने इन्हें बंधुआ मजदूरों जैसी जिन्दगी जीने के लिए बाध्य कर दिया है। आज भी दलित अभाव में जी रहे हैं तथा गन्दे कार्यों को कर रहे हैं। आज देश में अनुसूचित जातियों की बड़ी जनसंख्या है। विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों में अनुसूचित जातियों का प्रतिशत निम्न है-

विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों में अनुसूचित जातियों का प्रतिशत

जनगणना वर्ष	अनुसूचित जातियों का प्रतिशत (%)
1951	15.1
1961	14.7
1971	15.1
1981	15.8
1991	16.3
2001	16.2
2011	16.6

भारत में अनुसूचित जातियों की संख्या एवं प्रतिशत (2011-2015)

वर्ष	अनुसूचित जाति की जनसंख्या (मिलियन)	कुल जनसंख्या (मिलियन)	प्रतिशत (%)
2011	201.4	1210.0	16.64
2012	204.0	1232.0	16.56
2013	206.6	1254.0	16.48
2014	209.3	1276.0	16.40
2015	211.9	1298.0	16.33

अनुसूचित जातियों में साक्षरता का प्रतिशत भी अत्यन्त ही कम है। यही कारण है कि समाज में वे काफी पिछड़े हुए है। विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों में अनुसूचित जातियों की शिक्षा का प्रतिशत निम्न है-

भारत में अनुसूचित जातियों की साक्षरता दर (2011-2015)

वर्ष	साक्षरता दर (%)
2011	66.1
2012	67.3
2013	68.5
2014	69.7
2015	70.9

अस्पृश्यता की परिभाषा
(Definition of Untouchability)

विभिन्न विद्वानों ने अस्पृश्यता की जो परिभाषाएँ दी है, वे निम्नलिखित है -

1.डॉ. शर्मा - "अछूत जातियाँ वे हैं जिनके स्पर्श से व्यक्ति अपवित्र हो जाय और उसे पवित्र होने के लिए कुछ क्रियाएँ करनी पड़ें।"।

2.डॉ. घुरिये "मैं अनुसूचित जातियों की परिभाषा उस समूह के रूप में कर सकता हूँ जो कुछ समय के लिए अनुसूचित जातियों के अन्तर्गत रखे गये हैं।"2

3.मजूमदार "अस्पृश्य जातियों वे है जो अनेक सामाजिक और राजनैतिक निर्योग्यताओं की शिकार हैं, इनमें से अनेक निर्योग्यताएँ उच्च जातियों द्वारा परम्परात्मक तौर पर निर्धारित और सामाजिक तौर पर लागू की गई।"3

इस प्रकार "अस्पृश्य जातियों का तात्पर्य मनुष्य के समूह विशेष से है। इस समूह के सभी व्यक्ति सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक अयोग्यताओं से ग्रस्त होते हैं। ये अयोग्यताएँ इस समूह के सदस्यों को समाज से प्रथक कर देती है और यही प्रथकता इनकी अस्पृश्यता का कारण है।"

अस्पृश्यता की विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अस्पृश्यता की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती है-

(i) सार्वजनिक पूजा के स्थानों में प्रवेश की मनाही रहती है।

(ii) अस्पृश्य किसी भी प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ नहीं कर सकते है, जैसा कि सामान्य धर्म वाले व्यक्ति करते हैं।

(iii) उन्हें पवित्र जलाशय में प्रवेश पर रोक रहती है।

(iv) दुकान, होटल, जलपान गृह, सार्वजनिक मनोरंजन की जगहों पर प्रवेश नहीं मिलता है।

(v) इनके यहाँ ब्राह्मण पुरोहिताई नहीं करते हैं।

(vi) नाई, धोबी, कहार आदि प्रजा के लोग भी इनके यहाँ सेवा नहीं करते हैं।

अस्पृश्यों के प्रकार

1.अछूत (Untouchable) ये वे जातियाँ हैं जिनके स्पर्श से व्यक्ति अपवित्र हो जाते हैं और इस अपवित्रता को दूर करने के लिए कुछ विशेष प्रकार की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं।

2.अदृश्य (Unseeable) - ये वे अछूत जातियाँ है जिनके देखने मात्र से व्यक्ति कलुषित हो जाता है। साथ ही ऐसा विश्वास किया जाता है कि किसी यात्रा या शुभ कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व की घड़ी में यदि ये दिखाई देती हैं तो कार्य में अनेक विघ्न बाधाएँ आती हैं।

3.अप्रवेश्य (Unapproachable) ये वे अछूत जातियाँ है जिन्हें कुछ निश्चित जगही में प्रवेश की मनाही है और ऐसा विश्वास किया जाता है यदि ये जातियाँ इन निश्चित जगहों में प्रवेश करेंगी तो अनर्थ हो जायेगा।

*7.5 अस्पृश्यता की उत्पत्ति के सिद्धांत (*Theories of Origin of Untouchability)

अस्पृश्यता की उत्पत्ति और विकास क्यों हुआ? वे कौन-सी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक वातावरण और प्रजाति सम्बन्धी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने अस्पृश्यता को जन्म दिया? अस्पृश्यता के जन्म के लिए कोई एक कारण नहीं है। इसके साथ ही साथ विभिन्न विद्वानों ने इसे अलग-अलग प्रकार से सिद्ध करने का प्रयास किया है। अस्पृश्यता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रतिपादित प्रमुख सिद्धांत निम्न है -

1.धार्मिक सिद्धांत (Religious Theory) धर्म के साथ पवित्रता का तत्व जुड़ा होता है। धार्मिक कार्यों के सम्पादन में पवित्रता को विशेष स्थान दिया जाता है। धार्मिक दृष्टिकोण से कुछ कार्य अपवित्र समझे जाते हैं और जो व्यक्ति इन अपवित्र कार्यों को करते हैं उन्हें अपवित्र माना जाता है। ये अपवित्र व्यक्ति धार्मिक

क्रियाओं का सम्पादन नहीं कर सकते हैं। इन्हें धार्मिक स्थानों में प्रवेश नहीं दिया जाता है। इस प्रकार कुछ व्यक्तियों को अपवित्र माना जाता है और यही अपवित्रता अस्पृश्यता के जन्म और विकास का मूल आधार है।

2.प्रतिलोम विवाह (Pratilom Marriage) मनु के अनुसार अस्पृश्यता की उत्पत्ति प्रतिलोम विवाह के कारण हुई है। जब उच्च वर्ण का लड़का निम्न वर्ण की लड़की से विवाह करता है तो इनसे जो सन्तान उत्पत्ति होती है उन्हें समाज में उचित स्थान प्राप्त नहीं होता है और समाज से अलग रखा जाता है। समाज से यह पृथकता अस्पृश्यता को जन्म देती है।

3.प्रजातीय सिद्धांत (Racial Theory) प्रजाति का आधार शारीरिक विशेषताएँ और विभिन्नताएँ हैं। जब एक प्रजाति दूसरी प्रजाति को विजित कर लेती हैं तो विजित प्रजाति को घृणा की दृष्टि से देखती है और उसे दास बनाकर रखती हैं। इन लोगों को घृणित कार्य भी करने पड़ते हैं। फलस्वरूप उन्हें अस्पृश्य समझा जाने लगता है।

4.व्यावसायिक सिद्धांत (Occupational Theory) इस सिद्धांत के अनुसार व्यवसाय अस्पृश्यता की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का जन्म हुआ। व्यवसाय के चुनाव में कुछ व्यक्तियों को ऐसे व्यवसाय का चुनाव करना पड़ा जो घृणित माने जाते हैं, जैसे मलमूत्र की सफाई, जूठे बर्तनों की सफाई, चमड़े का कार्य करना और जूते बनाना आदि। ये व्यवसाय अपवित्र समझे जाने लगे और जो व्यक्ति इन व्यवसायों को करते थे वे अछूत कहे जाने लगे। कालान्तर में यह अस्पृश्यता की भावना अत्यन्त ही कठोर हो गई।

5.कर्म का सिद्धांत (Theory of Karma) भारतीय दर्शन में पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार किया गया है इसके साथ ही कर्म और कर्मफल की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है। विश्व में अनेक प्रकार के कर्म है बुरे भी और अच्छे भी। कर्मफल के अनुसार अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है। जो व्यक्ति बुरे कर्म करते हैं उन्हें अगले जन्म में अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति आज अस्पृश्य है, समाज के निम्न स्तर पर है, निम्न कर्म कर रहे हैं। इसका कारण उनके पिछले जन्म के बुरे फल है। इस प्रकार अस्पृश्यता बुरे कर्मों का प्रतिफल है।

7.6 *अस्पृश्यों की अयोग्यताएँ* Disabilities of untouchables

सामाजिक ढाँचे में अस्पृश्यों को निम्नतम स्थान प्राप्त होता है। उन्हें अत्यन्त ही घृणित कोटि के कार्य करने पड़ते हैं उन्हें समाज में अत्यन्त ही निम्न स्थान प्राप्त होता है और वे अनेक अयोग्यताओं या असुविधाओं से ग्रस्त होते हैं। अस्पृश्यों की प्रमुख अयोग्यताओं को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

1.धार्मिक अयोग्यताएँ (Religious Disabilities) धार्मिक अयोग्यताओं का अर्थ उन अयोग्यताओं से है जो अस्पृश्य जातियों के धार्मिक जीवन में प्राप्त होती हैं। प्रमुख धार्मिक अयोग्यताएँ इस प्रकार है-

(a)धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन नहीं कर सकते हैं।
(b)मन्दिर तथा अन्य धार्मिक तथा पूजा के स्थानों में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।
(c)धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन नहीं कर सकते हैं।
(d)धार्मिक उपदेशों का श्रवण नहीं कर सकते हैं।
(e)श्मशान घाटों में अपने मुर्दों को जला नहीं सकते हैं।

(f) ब्राह्मण इनकी पुरोहिताई नहीं कर सकता, साथ ही किसी प्रकार के धार्मिक कार्यों और संस्कारों का सम्पादन नहीं कर सकते हैं।

2.सामाजिक अयोग्यताएँ (Social Disabilities) सामाजिक अयोग्यताओं के अन्तर्गत उन अयोग्यताओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका सामना उन्हें सार्वजनिक जीवन में करना पड़ता है। अछूतों की प्रमुख सामाजिक अयोग्यताएँ निम्न है -

(a)समाज में इन्हें सबसे निम्न और घृणित स्थान प्राप्त होता है।
(b)ये स्कूल और कालेजों में प्रवेश लेकर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते हैं।
(c)ये अच्छे मकानों में निवास नहीं कर सकते हैं।
(d)ये सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश नहीं कर सकते है। ये सड़कों पर भी नहीं चल सकते हैं।
(e)ये अच्छे कपड़े और आभूषण नहीं पहन सकते हैं।
(f) किसी से मिलने-जुलने या बात करने तक की मनाही रहती है।

3.आर्थिक अयोग्यताएँ (Economic Disabilities) अछूतों को जिन आर्थिक अयोग्यताओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें निम्न भागों में बाँटा जा सकता है

a. व्यवसायों के चुनाव में स्वतंत्रता का अभाव रहता है।

b. अत्यन्त घृणित कोटि के व्यवसाय करने पड़ते हैं।

c. वे भू-स्वामी नहीं बन सकते हैं, ऐसा करने पर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं।

d. उन्हें अत्यन्त कम वेतन प्राप्त होता है।

e. उनके व्यवसाय वंश-परम्परा के अनुसार होते हैं।

4.राजनैतिक अयोग्यताएँ (Political Disabilities) अछूतों की प्रमुख राजनैतिक अयोग्यताएँ इस प्रकार है -

a. सभी प्रकार के राजनैतिक अधिकारों से वंचित रहना पड़ता था।
b. वे किसी भी ऊंचे पद पर नौकरी नहीं प्राप्त कर सकते थे।
c. वे मताधिकार से भी वंचित रखे जाते थे।

अयोग्यताओं के दुष्परिणाम (Consequences of Disabilities) अस्पृश्य जातियाँ अनेक प्रकार की अयोग्यताओं की शिकार थीं। इन अयोग्यताओं का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा। इन अयोग्यताओं के दुष्परिणाम क्या थे? अस्पृश्यों की अयोग्यताओं के प्रमुख दुष्परिणाम निम्न हुए -

(i) इन अयोग्यताओं के कारण से भारतीय सामाजिक संगठन शिथिल हुआ और सामाजिक एकता की भावना का हास हुआ।

(ii) संगठन के अभाव में समाज विघटन के ओर मुड़ गया। इस विघटन ने धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप अनेक अस्पृश्य जातियाँ हिन्दू धर्म को त्यागकर दूसरे धर्मों को ग्रहण कर लिया।

(iii) समाज में आर्थिक असमानता फैल गई। कुछ व्यक्ति अत्यन्त धनी हो गये और कुछ व्यक्ति अत्यन्त गरीब हो गये।

(iv) व्यवसायों में प्रतिस्पर्धा के अभाव में उत्पादन में कमी आई।

(v) परम्परागत व्यवसायों के कारण नये व्यवसायों का जन्म और विकास नहीं हो सकता।

(vi) आर्थिक असमानता के कारण सामान्य जनता का जीवन-स्तर निम्न से निम्नतर होता गया।

(vii) अयोग्यताओं के परिणामस्वरूप शिक्षा पर रोक लगा दी गई और अज्ञानता तथा अशिक्षा का प्रसार हुआ।

(viii) गन्दी बस्तियों में निवास के परिणामस्वरूप स्वाथ्य का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता गया।

(ix) हिन्दू समाज का विघटन और एकता का नाश हुआ।

अस्पृश्यता निवारण
(Removal of Untouchability)

समाज के लिए अस्पृश्यता अपराध है। इनसे समाज की प्रगति को रोकने के साथ ही साथ समाज के ढाँचे को अस्त-व्यस्त कर दिया है। अस्पृश्यता निवारण को हम दो भागों में बाँटकर समझने का प्रयास करेंगे।

(1) अस्पृश्यता के निवारण के लिए किये गये प्रयास, तथा

(2) अस्पृश्यता निवारण के लिए सुझाव।

अस्पृश्यता निवारण के लिए किये गये प्रयास भारत वर्ष में अस्पृश्यता की समस्या के समाधान के लिए जो भी प्रयास किये गये, वे इस प्रकार हैं-

(1) महात्मा बुद्ध ने जाति-व्यवस्था की आलोचना की थी। उन्होंने कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी थी। अस्पृश्यता का उन्होंने विरोध किया था।

(2) अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में प्रसिद्ध धार्मिक गुरु शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामानुज, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

(3) आर्य समाज, ब्रह्म समाज, सिक्ख समाज, प्रार्थना समाज आदि ने भी अस्पृश्यता की समस्या के समाधान के लिये सराहनीय कार्य किया है।

(4) भारतीय हरिजन सेवक द्वारा भी अस्पृश्यता निवारण के लिये अनेक प्रशंसनीय कार्य किये गये है और आज भी किये जा रहे हैं।

(5) 1936 में स्वतन्त्रता से पहले जो काँग्रेस द्वारा मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया था उसके अन्तर्गत भी हरिजनों के सुधार के लिए प्रयास किये गये थे।

(6) भारतीय संविधान में अस्पृश्यता निवारण के लिए हरिजनों को निम्न सुविधाएँ प्रदान की गई हैं -

(i) अनुच्छेद 15 के द्वारा राज्य, जाति, रंग, धर्म, वंश आदि के आधार पर अपने नागरिकों में भेदभाव नहीं करेगा।

(ii) अनुच्छेद 16 के अनुसार सरकारी नौकरियों में सभी को समान सुविधाएँ और नियुक्ति के समान अवसर प्राप्त होंगे।

(iii) अनुच्छेद 16 के अनुसार अस्पृश्यता के आधार पर अयोग्यतायें लागू करना अपराध और इसके लिये दण्ड दिया जायेगा।

(iv) अनुच्छेद 29 के अनुसार धर्म, जाति, रंग तथा वंश के आधार पर किसी व्यक्ति को शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त करने से नहीं रोका जायेगा।

(v) अनुच्छेद 38 के द्वारा सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलाने की व्यवस्था की गई है।

(vi) अनुच्छेद 46 के द्वारा राज्य अनुसूचित जातियों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करेगा।

(7) **अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम**, 1955 के द्वारा किसी भी रूप में अस्पृश्यता का पालन और संरक्षण अपराध होगा और उसके लिये कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गई है।

उपर्युक्त संवैधानिक व्यवस्थाओं के अतिरिक्त सरकार की ओर से अस्पृश्यता की समाप्ति के लिये अनेक पयास किये गये हैं।

अस्पृश्यता निवारण के लिए सुझान (Suggestions for Removal of Untouchability) - संविधान और कानून अस्पृश्यता की समस्या को समाप्त नहीं

कर सकते हैं। अस्पृश्यता का जन्म तो मानवीय प्रवृत्तियों के कारण हुआ है। अतः मानवीय प्रवृत्तियाँ ही इस समस्या का समाधान कर सकती है। अस्पृश्यता की समस्या के समाधान के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं

(1) समाज में ऐसी भावना का विकास किया जाय कि अस्पृश्यता जन्मजात न होकर कर्मगत और व्यावसायिक है। अतः इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

(2) अस्पृश्यों में स्वयं जागरुकता की भावना का विकास किया जाय और उन्हें इसके लिए प्रयत्नशील होने के लिए कहा जाय।

(3) शिक्षा, संचार तथा आवागमन के साधनों के द्वारा अस्पृश्यों तथा सवर्णों के निकट सम्पर्क में लाने के लिए कहा जाय।

(4) जातिवाद के अभिशापों से परिचित कराया जाय और इसे दूर करने के लिए प्रयास किए जाएँ।

(5) ऐसे प्रयास किय जाएँ, जिनसे घृणित और अपवित्र कार्य समाप्त हो जाय।

(6) शिक्षा का प्रसार किया जाय और महिला शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

(7) अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों, समुदायों और संगठनों को पुरस्कार दिये जाएँ।

(8) धर्म की व्याख्या-वर्तमान परिस्थितियों से की जाय तथा इसे जाति, वर्ग, वंश तथा रंग के संकुचित दायरों से अलग किया जाय।

(9) अस्पृश्यों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान की जाय तथा व्यवसायों के चुनाव में स्वतन्त्रता और सहयोग दिया जाय।

(10) अस्पृश्यों को राजनैतिक अधिकार प्रदान किये जायें।

(11) अस्पृश्यता निवारण के लिए स्वस्थ जनमत तैयार किया जाय।

म.प्र. सरकार द्वारा दलितों के कल्याण हेतु उठाए गए कदम

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 15.2 प्रतिशत है। सरकार द्वारा दलितों के कल्याण हेतु अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सरकार द्वारा इन जातियों में शिक्षा के प्रति रूचि जाग्रत करने एवं आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए वृहद स्तर पर शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिससे इनकी गरीबी दूर हो सके और जीवन स्तर ऊँचा उठ सके। राज्य सरकार द्वारा दलित वर्ग के बच्चों के लिए, जो कि दूरस्थ स्थानों पर रहते हैं, आवास की सुविधा तथा पढ़ाई के लिए विभिन्न प्रकार के छात्रावास तथा आश्रम शालाओं की स्थापना की गई है।
राज्य सरकार द्वारा सन् 2004 से कल्याणकारी योजना के अन्तर्गत 89 आदिवासी विकासखण्डों की प्राथमिक शालाओं में निःशुल्क भोजन उपलब्ध कराया जा रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्य सरकार द्वारा दलितों/ अनुसूचित जातियों के शैक्षणिक विकास, रोजगार हेतु प्रशिक्षण एवं सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यक्रम क्रियान्वित कर जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जा रहा है।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. अनुसूचित जाति क्या है?
2. अनुसूचित जातियों की सूची कौन तैयार करता है?
3. अनुसूचित जातियों का उल्लेख संविधान के किस अनुच्छेद में है?
4. अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था कब लागू हुई?

7.7 सारांश

दलित, भारतीय समाज में ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रहने वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। ये वर्ग सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से शोषित रहे हैं। 'दलित' शब्द का अर्थ है 'दबाया हुआ' या 'टूटा हुआ।' इन्हें पहले अछूत कहा जाता था, लेकिन यह शब्द अपमानजनक है। भारत के संविधान ने उन्हें समान अधिकार प्रदान किए और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए विशेष आरक्षण का प्रावधान किया। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलितों के अधिकारों की लड़ाई में अग्रणी भूमिका निभाई। वर्तमान में, दलित समाज शिक्षा, रोजगार और सामाजिक समता के क्षेत्र में प्रगति कर रहा है, लेकिन कई क्षेत्रों में अभी भी चुनौतियां बनी हुई हैं।

7.8 मुख्य शब्द

1. **दलित**: भारतीय समाज के उन वर्गों को संदर्भित करता है, जो ऐतिहासिक रूप से सामाजिक रूप से शोषित और दबाए गए थे।
2. **हाशिये पर**: समाज में मुख्यधारा से अलग, निम्न स्थिति में रखा गया।

3. **अछूत:** पारंपरिक भारतीय समाज में वह वर्ग, जिसे अछूत माना जाता था (अब असंवैधानिक)।
4. **सामाजिक न्याय**: सभी को समान अवसर और अधिकार प्रदान करना।
5. **आरक्षण**: शिक्षा, रोजगार आदि में सामाजिक पिछड़े वर्गों को विशेष सुविधा।

7.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:1 भारत के संविधान में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए निर्दिष्ट जातियों को अनुसूचित जाति कहा जाता है।

उत्तर: 2 भारत सरकार।

उत्तर: 3 अनुच्छेद 341।

उत्तर: 4 1950 में।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. अंबेडकर, भीमराव. (वर्ष अज्ञात). जाति का उच्छेद.
2. वाल्मीकि, ओ. (वर्ष अज्ञात). दलित साहित्य की परंपरा.
3. लिंबाले, शरणकुमार. (वर्ष अज्ञात). दलित विमर्श.

7.11 अभ्यास प्रश्न

(आ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अस्पृश्यता की व्याख्या कीजिए तथा इसकी उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालिये।
2. "अस्पृश्यता की उत्पत्ति प्रजातीय, व्यावसायिक, धार्मिक तथा सामाजिक कारकों का संयुक्त परिणाम है।"
3. हरिजन कल्याण पुस्तकालय में महात्मा गाँधी द्वारा संचालित हुएक निबन्ध पत्र। भारत में हरिजन कल्याण आंदोलन में महात्मा गांधी के नियमों पर एक निबंध लिखें।
4. भारत वर्ष में आज भी अस्पृश्यता क्यों अपना अस्तित्व बनाये हुए है? क्या इसे वैधानिक ढंग से समाप्त किया जा सकता है? इसे समाप्त करने के अपने सुझाव दीजिए।
5. अस्पृश्य जातियों की विभिन्न निर्योग्यताओं की विवेचना कीजिए तथा अस्पृश्यता निवारण के सुझाव दीजिए। Describe various disabilities of untouchable and suggest measures to remove untouchability
6. "भारत में अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन जनता और शासन दोनों का आन्दोलन है।" अस्पृश्यता निवारण के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों के सन्दर्भ में उक्त कथन की व्याख्या कीजिए। "Removal of untochability movement in India is the movement of public and state both. "Explain the above statement with the reference to the efforts made for the removal of untouchability.
7. भारत में आज भी अस्पृश्यता के अस्तित्व के क्या कारण हैं? क्या इसे कानूनी रूप से दबाया जा सकता है? इसे दूर करने के लिए अपने सुझाव दीजिए।

इकाई -8

जनसंख्या-धरोहर एवं सम्बन्धित मुद्दे (POPULATION PROFILE AND RELATED ISSUES)

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 भारत की जनगणना 2011 की जनांकिकीय विशेषताएँ
8.4 भारत में जनाधिक्य
8.5 भारत की जनसंख्या नीति
8.6 सारांश
8.7 मुख्य शब्द
8.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ
8.10 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र की अमूल्य धरोहर होती है, क्योंकि यह उसकी मानव संसाधन शक्ति को दर्शाती है। एक संतुलित और नियंत्रित जनसंख्या किसी भी देश की प्रगति और विकास में सहायक होती है। किंतु जब जनसंख्या एक सीमा को पार कर जाती है, तो यह देश के संसाधनों पर दबाव डालती है और कई समस्याओं का कारण बनती है।

भारत, जो एक विकासशील राष्ट्र है, अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है। यहां जनसंख्या वृद्धि की दर विश्व के अन्य देशों की तुलना में अधिक है। वर्तमान में, भारत की जनसंख्या लगभग 140 करोड़ से अधिक हो चुकी है, जो इसे विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाले देशों में से एक बनाती है।

भारत में जनगणना का इतिहास

भारत में पहली जनगणना 1872 में हुई थी, हालांकि यह पूर्ण रूप से व्यवस्थित और वैज्ञानिक नहीं थी। 1881 में पहली व्यवस्थित जनगणना की गई, जिसे हर दस साल में दोहराया जाता है। जनगणना के माध्यम से हमें देश की जनसंख्या, उसकी संरचना, आयु-वितरण, शिक्षा स्तर, और आर्थिक स्थिति की सटीक जानकारी मिलती है।

8.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. विभिन्न कालों में जनसंख्या के विकास, संरचना, और सांस्कृतिक धरोहर को समझना।
2. जनसंख्या वृद्धि, लिंग अनुपात, और संसाधनों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।
3. जनसंख्या नियंत्रण, शिक्षा, और पर्यावरण संतुलन के लिए नीतियों का सुझाव देना।

*8.3 भारत की जनगणना 20*11 *की जनांकिकीय विशेषताएँ (*Demographic Characteristics of Census 2011)

जनसंख्या वृद्धि के कारण

1. **स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार**: चिकित्सा विज्ञान और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण मृत्यु दर में कमी आई है।
2. **अशिक्षा और अज्ञानता**: ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की कमी के कारण लोग परिवार नियोजन के महत्व को नहीं समझ पाते।

3. **धार्मिक और सामाजिक मान्यताएं**: कुछ समुदायों में बड़े परिवार को अधिक महत्व दिया जाता है।
4. **प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता**: भारत की जलवायु और कृषि की अनुकूलता ने जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा दिया है।

बढ़ती जनसंख्या के परिणाम

1. **संसाधनों की कमी**: खाद्य सामग्री, पानी, ऊर्जा, और भूमि की उपलब्धता सीमित हो जाती है।
2. **बेरोजगारी**: रोजगार के अवसर कम हो जाते हैं, जिससे आर्थिक समस्याएं बढ़ती हैं।
3. **शिक्षा और स्वास्थ्य पर प्रभाव**: बढ़ती जनसंख्या के कारण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर गिर जाता है।
4. **शहरीकरण और प्रदूषण**: अधिक जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में भीड़ और प्रदूषण का कारण बनती है।

समस्या का समाधान

जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

1. **शिक्षा का प्रचार-प्रसार**: विशेष रूप से महिलाओं को शिक्षा प्रदान करना।
2. **परिवार नियोजन कार्यक्रम**: परिवार नियोजन के साधनों और तकनीकों का प्रचार।
3. **सरकारी नीतियां**: जनसंख्या नियंत्रण के लिए प्रभावी नीतियों का निर्माण और उनका सख्ती से पालन।
4. **सामाजिक जागरूकता**: समुदायों को जनसंख्या नियंत्रण के लाभों के प्रति जागरूक करना।

अतः जनसंख्या का संतुलित होना किसी भी देश के लिए आवश्यक है। भारत को भी अपनी जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए ठोस कदम उठाने

होंगे, ताकि देश की प्रगति में बाधा न आए और हर नागरिक को बेहतर जीवन स्तर प्रदान किया जा सके।

जनसंख्या किसी राष्ट्र की अमूल्य धरोहर होती है, किन्तु जब जनसंख्या एक सीमा को पार कर जाती है तो यह एक समस्या बन जाती है। भारत विकासशील राष्ट्र है, इस राष्ट्र में जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। भारत में पहली जनगणना 1872 में हुई थी।

भारत की जनगणना 2011 की जनांकिकीय विशेषताएँ
(Demographic Characteristics of Census 2011)

जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि (Size and Increase of Population)- भारत की जनसंख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है। यह वृद्धि भारत के लिए चिंता का विषय है, क्योंकि भारत की जनसंख्या जो 1901 में 23.8 करोड़, 1951 में 36.10 करोड़, 1971 में 54.8 करोड़, 1991 में 84.3 करोड़ थी। वह धीरे-धीरे बढ़कर 2001 में 102.70 करोड़ हो गई। इस तरह भारत की जनसंख्या में 1991-2001 के दशक में लगभग 18 करोड़ की वृद्धि हुई। यह वृद्धि ब्राजील की कुल जनसंख्या से भी अधिक है, जो विश्व का पाँचवाँ सबसे बड़ा देश है। निम्न तालिका में जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर दी गई है।

भारत की जनसंख्या: आकार एवं वृद्धि दर (2011 की जनगणना तक)

इस दस्तावेज़ में भारत की जनसंख्या के आकार और वृद्धि दर का विवरण दिया गया है, जो 2011 की जनगणना तक के आंकड़ों पर आधारित है। यह जनसंख्या वृद्धि दर की औसत वार्षिक वृद्धि विधि को भी प्रदर्शित करता है।

क्रम संख्या	वर्ष	कुल जनसंख्या (करोड़ में)	दशकीय वृद्धि (%)	औसत वार्षिक वृद्धि दर (%)

1	1901	23.84	-	-
2	1911	25.21	5.75	0.56
3	1921	25.13	-0.31	-0.03
4	1931	27.89	10.96	1.05
5	1941	31.86	14.22	1.33
6	1951	36.11	13.31	1.25
7	1961	43.92	21.64	1.98
8	1971	54.82	24.80	2.24
9	1981	68.33	24.66	2.22
10	1991	84.64	23.87	2.14
11	2001	102.87	21.54	1.95
12	2011	121.08	17.70	1.64

राज्यवार जनसंख्या का वितरण (State-wise Distribution of Population) भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश अभी भी जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है, जहाँ कुल जनसंख्या का 16.49% भाग निवास करता है। यहाँ की कुल जनसंख्या 19.98 करोड़ है, जो विश्व के कई देशों की जनसंख्या से अधिक है। जनसंख्या की दृष्टि से सबसे छोटा राज्य सिक्किम है, जहाँ कुल जनसंख्या का 0.05% भाग निवास करता है।

केंद्र शासित प्रदेशों में दिल्ली की जनसंख्या सबसे अधिक है, जहाँ कुल जनसंख्या का 1.39% भाग निवास करता है। दूसरी ओर, लक्षद्वीप की जनसंख्या सबसे कम है, जहाँ कुल जनसंख्या का केवल 0.03% भाग निवास करता है।

निम्न तालिका में राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों की कुल जनसंख्या, प्रतिशत भाग और दशकीय वृद्धि दर दी गई है:

भारत के राज्य और केंद्र शासित प्रदेश - 2011 जनगणना (संपूर्ण)

यह तालिका भारत के सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की कुल जनसंख्या, प्रतिशत भाग, और दशकीय वृद्धि दर 2011 की जनगणना के आधार पर प्रस्तुत करती है।

राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	कुल जनसंख्या (करोड़)	प्रतिशत भाग (%)	दशकीय वृद्धि दर (%)
आंध्र प्रदेश	8.46	6.99	11.10
अरुणाचल प्रदेश	0.14	0.11	26.03
असम	3.12	2.58	17.07
बिहार	10.41	8.58	25.07
छत्तीसगढ़	2.55	2.11	22.61
गोवा	0.15	0.12	8.17
गुजरात	6.04	4.98	19.17
हरियाणा	2.54	2.09	19.90
हिमाचल प्रदेश	0.69	0.57	12.81
जम्मू और कश्मीर	1.25	1.04	23.64
झारखंड	3.29	2.71	22.42
कर्नाटक	6.11	5.05	15.60
केरल	3.34	2.76	4.91
मध्य प्रदेश	7.26	6.00	20.30
महाराष्ट्र	11.23	9.28	15.99
मणिपुर	0.28	0.23	24.50
मेघालय	0.30	0.25	27.82
मिज़ोरम	0.11	0.09	23.48
नगालैंड	0.20	0.16	-0.58

ओडिशा	4.20	3.45	13.97
पंजाब	2.77	2.29	13.89
राजस्थान	6.85	5.66	21.31
सिक्किम	0.06	0.05	12.89
तमिलनाडु	7.21	5.96	15.60
तेलंगाना	3.52	2.91	NA
त्रिपुरा	0.37	0.31	14.84
उत्तर प्रदेश	19.98	16.49	20.23
उत्तराखंड	1.01	0.83	18.81
पश्चिम बंगाल	9.13	7.54	13.93
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	0.38	0.03	6.68
चंडीगढ़	0.11	0.09	17.19
दादरा और नगर हवेली	0.34	0.03	55.50
दमन और दीव	0.24	0.02	53.76
दिल्ली	1.68	1.39	21.20
लक्षद्वीप	0.06	0.03	6.23
पुडुचेरी	0.12	0.10	27.72

भारत में जनसंख्या घनत्व (1901-2011)

जनसंख्या घनत्व का अर्थ

जनसंख्या घनत्व किसी क्षेत्र में प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करने वाले लोगों की संख्या को दर्शाता है। यह सूचक किसी क्षेत्र की जनसंख्या के वितरण को समझने में मदद करता है। यदि जनसंख्या घनत्व अधिक होता है, तो इसका अर्थ है कि वह क्षेत्र अधिक घनी आबादी वाला है। कम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र

कम घनी आबादी वाले होते हैं। जनसंख्या घनत्व का अध्ययन आर्थिक, सामाजिक, और पर्यावरणीय योजना के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1901 से 2011 तक भारत में जनसंख्या घनत्व

वर्ष	जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग किमी)
1901	77
1911	82
1921	81
1931	90
1941	103
1951	117
1961	142
1971	177
1981	216
1991	267
2001	324
2011	382

नगरी और ग्रामीण जनसंख्या अनुपात (2011 जनगणना)

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या का **31.16 प्रतिशत** भाग नगरीय क्षेत्रों में निवास करता है, जबकि **68.84 प्रतिशत** जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। यह पिछले दशक की तुलना में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि को दर्शाता है।

नगरीय जनसंख्या

राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में नगरीय जनसंख्या का अनुपात सबसे अधिक निम्नलिखित क्षेत्रों में देखा गया:

1. **दिल्ली**: 97.5 प्रतिशत
2. **चंडीगढ़**: 97.25 प्रतिशत
3. **लक्षद्वीप**: 78.07 प्रतिशत
4. **पुडुचेरी**: 68.33 प्रतिशत

ग्रामीण जनसंख्या

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या का सबसे अधिक अनुपात इन राज्यों में पाया गया:

1. **हिमाचल प्रदेश**: 89.97 प्रतिशत
2. **बिहार**: 88.71 प्रतिशत
3. **ओडिशा**: 83.31 प्रतिशत

2011 में नगरीय जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि का मुख्य कारण तेजी से शहरीकरण, रोजगार के लिए शहरों की ओर पलायन, और औद्योगिकीकरण है। दिल्ली और चंडीगढ़ जैसे क्षेत्र लगभग पूरी तरह नगरीकृत हो गए हैं, जबकि हिमाचल प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात अभी भी अत्यधिक है, जो उनकी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था और भौगोलिक स्थिति को दर्शाता है।

भारत में लिंग अनुपात (2011 और 2021 का विवरण)

जनसंख्या की लिंग संरचना (Sex Composition of the Population) किसी देश के जनांकिकीय विश्लेषण में उस देश की लिग संरचना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक एवं जनसंख्या वृद्धि बहुत कुछ देश की लिंग संरचना पर

निर्भर करते हैं। भारत की जनसंख्या संरचना की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की संख्या अधिक है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 1000 पुरुषों के पीछे 80 स्वियों की संख्या 940 है, जबकि 1901 में यह संख्या 972 थी। इस तरह देश में विगत 100 वर्षों में यह अनुपात निरंतर कम होता गया है।

लिंग अनुपात भारत में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या को दर्शाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत का लिंग अनुपात 940 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष था। राज्यों में यह विविधता दिखाता है:

राज्यवार उच्चतम और निम्नतम लिंग अनुपात:

- **उच्चतम:** केरल (1084 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष)
- **निम्नतम:** हरियाणा (877 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष)

भारत में लिंग अनुपात (1901 - 2011)

वर्ष	लिंग अनुपात (प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाएं)
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930

1981	933
1991	927
2001	933
2011	940

लिंग-अनुपात में गिरावट के कारण भारत में लिंग अनुपात में कमी के लिए जो कारण उत्तरदायी हैं, उनमें प्रमुख है, बाल विवाह, लड़कियों की अपेक्षाकृत उपेक्षा, पौष्टिक भोजन तथा प्रसव सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, प्रसव पूर्व एवं प्रसव पश्चात स्त्रियों की देखभाल की सुविधा की कमी, कन्याओं की भ्रूण हत्या तथा स्त्रियों का घरेलू कामकाज से दबे रहना आदि।

साक्षरता: भारत में साक्षरता दर पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ी है, जो देश के सामाजिक और आर्थिक विकास को दर्शाती है। 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल साक्षरता दर 64.8% थी, जिसमें पुरुषों की साक्षरता दर 75.3% और महिलाओं की 53.7% थी। 2011 की जनगणना में साक्षरता दर में उल्लेखनीय सुधार हुआ, जिसमें कुल साक्षरता दर 74.04% दर्ज की गई। पुरुषों की साक्षरता दर 82.14% और महिलाओं की 65.46% हो गई। यह वृद्धि शिक्षा को बढ़ावा देने वाले सरकारी कार्यक्रमों, जैसे सर्व शिक्षा अभियान और बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ जैसी योजनाओं का परिणाम है।

राज्यों के संदर्भ में, 2011 की जनगणना में केरल ने 94% साक्षरता दर के साथ सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, जबकि बिहार 61.8% के साथ सबसे निचले स्थान पर रहा। पुरुष साक्षरता दर में भी केरल और दिल्ली सबसे आगे थे, जबकि महिलाओं की साक्षरता में केरल और मिजोरम शीर्ष पर थे। महिलाओं और पुरुषों के बीच साक्षरता दर का अंतर कई राज्यों में अभी भी चिंता का विषय है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

हालांकि, हाल के वर्षों में लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने और महिलाओं को शिक्षित करने के लिए किए गए प्रयासों ने इस अंतर को कम करने में मदद की है। भारत में शिक्षा का यह सुधार देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति के लिए एक महत्वपूर्ण संकेतक है।

शिशु जनसंख्या (Infant Population) भारत में प्रतिदिन करीब 70 हजार से ज्यादा शिशुओं का जन्म होता, इनमें से करीब 28 हजार शिशुओं के बारे में कोई भी जानकारी नहीं प्राप्त हो पाती है। केरल और पंजाब ही ऐसे राज्य हैं, जहाँ जन्म पंजीकरण शत-प्रतिशत होता है। बिहार, उत्तरप्रदेश तथा अन्य राज्य इस मामले में सबसे पीछे हैं। बिहार व उत्तरप्रदेश में 33 प्रतिशत तथा असम में 23 प्रतिशत बच्चों का जन्म के समय पंजीयन हो पाता है।

भारत की शिशु जनसंख्या और लिंग अनुपात का विश्लेषण 2011 की जनगणना के आधार पर महत्वपूर्ण सामाजिक और सांख्यिकीय पहलुओं को उजागर करता है। 2001 की जनगणना के अनुसार, 0-6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों की जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 15.9% थी, जबकि 2011 में यह घटकर 13.1% रह गई। यह गिरावट जन्म दर में कमी और परिवार नियोजन कार्यक्रमों की सफलता का संकेत है।

शिशु लिंग अनुपात (0-6 वर्ष आयु वर्ग में प्रति 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या) भी चिंताजनक था। 2001 में यह अनुपात 927 था, जो 2011 में घटकर 919 रह गया। यह गिरावट कन्या भ्रूण हत्या और लड़कियों के प्रति सामाजिक भेदभाव जैसी समस्याओं को दर्शाती है।

राज्यों के संदर्भ में, केरल और मिजोरम जैसे राज्यों में शिशु लिंग अनुपात अपेक्षाकृत बेहतर रहा, जबकि हरियाणा और पंजाब जैसे राज्यों में यह अनुपात सबसे खराब था। इससे पता चलता है कि कई राज्यों में लड़कियों के प्रति समाज का रवैया सुधार की मांग करता है।

इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में शिक्षा और बाल कल्याण के क्षेत्र में प्रगति हुई है, लेकिन लिंग अनुपात और लड़कियों की स्थिति को सुधारने के लिए और प्रयासों की आवश्यकता है।

8.4 भारत में जनाधिक्य

भारत में जनाधिक्य है या नहीं? के पक्ष और विपक्ष में दोनों विचारधाराओं के दिये गये तर्क है, को देखने से यह स्पष्ट होता है कि भारत आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ राष्ट्र है। इस तथ्य को दोनों पक्ष के विद्वानों ने किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में निश्चित रूप से जनाधिक्य की स्थिति विद्यमान है, भले ही वह आर्थिक विकास के अभाव ही में हो। इस दृष्टि से यदि कहा जाये कि 'भारत में जनाधिक्य नहीं है', के सन्दर्भ में जो तर्क दिये गये हैं, वह बहुत उपयुक्त प्रमाणित नहीं होते। वास्तव में भारत में जनाधिक्य है जैसा कि कार साउण्डर्स ने भारतीय जनसंख्या के बारे में लिखा है- "यहाँ जीवन निर्वाह के साधनों के ऊपर जनसंख्या का अत्यधिक भार है।

भारत की तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने एक बार कहा था "जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते रहने से आयोजित विकास करना बहुत कुछ ऐसी भूमि पर मकान खड़ा करने के समान है, जिसे बाढ़ का पानी बहा ले जा रहा हो। मैं कहूँगी कि यह बालू पर मकान खड़ा करने जैसा है। योजना, औद्योगिक तथा कृषि विकास द्वारा जो कुछ भी उन्नति होती है, वह आबादी की वृद्धि में डूब जाती है।"

स्पष्ट है कि भारत में जनाधिक्य की स्थिति को नकारना वास्तविकता पर पर्दा डालना है। देश की समस्याओं का हल जनाधिक्य को दूर कर देश के आर्थिक विकास में निहित है।

भारत में जनाधिक्य के कारण
(Causes of over Population in India)

भारत ही क्या संसार के सभी देश जनसंख्या वृद्धि की समस्या से चिंतित हैं। भारत में अनेक सामाजिक समस्याओं के तारतम्य में जनसंख्या वृद्धि की समस्या सबसे महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर अत्यंत ही तीव्र है। यद्यपि भारत की अन्य अनेक परिस्थितियाँ जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं, किंतु भारत में जन्मदर का होना और मृत्यु दर में निरन्तर कमी जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण है। भारत कृषि प्रधान, परंपरात्मक देश है और भारत का यह परम्परा प्रेम भी जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारणों में मूल कारण है। संक्षेप में भारत में जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) जन्म दर का अधिक होना

प्राप्त जनगणना रिपोर्टों के आधार पर भारतवर्ष में निरन्तर जन्म दर में वृद्धि होती जा रही है। यद्यपि वर्तमान समय में जन्म दर में कुछ कमी अवश्य आई है, किंतु जन्म-दर की यह कमी मृत्यु दर में भी निरन्तर होने वाली कमी के. कारण नगण्य साबित हुई है। मौलिक प्रश्न यह है कि भारतवर्ष में जन्म दर इतनी अधिक क्यों है? इस प्रश्न का कोई एक उत्तर नहीं है। मौलिक रूप से भारत का धर्म, समाज, व्यवस्था, विवाह और परिवार की प्रथाएँ तथा आर्थिक जीवन जन्म दर की वृद्धि के मूल कारणों में से है। संक्षेप में जन्म दर अधिक होने के प्रमुख कारण इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं-

1.**बाल विवाह**- भारत विश्व का एक ऐसा देश है, जहाँ बालक और बालिकाओं के जन्म लेने से पूर्व उन्हें विवाह बंधनों में बाँध देने की प्रथा है। इसके अतिरिक्त

कम अवस्था में विवाह करना भारत में आम बात है। अनेक स्थानों पर तो एक-दो वर्ष में लड़के और लड़कियों के विवाह होते पाये गये हैं। भारत सरकार द्वारा पारित अनेक अधिनियमों के बावजूद भारत में बाल विवाह की प्रथा में कोई खास अन्तर नहीं आया है। बाल विवाह की यह प्रथा जन्म दर में वृद्धि का मूल कारण है।

2.बहुपत्नी विवाह - भारत में बहुपत्नी विवाह की भी प्रथा का प्रचलन है। बहुपत्नी विवाह के कारण सन्तानों की उत्पत्ति बहुत अधिक है। यद्यपि इन विवाहों पर सरकार ने रोक लगाई है, और इसके प्रभावशील परिणाम धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं।

3.अशिक्षा और अज्ञानता- भारत में साक्षरता का प्रतिशत सिर्फ 65.38 है। इसके साथ ही साथ अज्ञानता की प्रकृति भी भारतवासियों में बहुत अधिक है। अज्ञानता और अशिक्षा के कारण भारतवासी सन्तानोत्पत्ति को ईश्वर की कृपा मानते हैं। इसके साथ ही प्राचीन धारणा के अनुसार अधिक सन्तानों का होना भाग्यशाली होने की निशानी मानी जाती रही है। यह अज्ञानता और अशिक्षा जन्म-दर वृद्धि का मूल कारण है।

4.वैवाहिक अनिवार्यता- भारत में विवाह अनिवार्य सामाजिक व धार्मिक घटना है। अविवाहित स्त्री और पुरुषों को समाज में विवाहित स्त्री और पुरुषों की तुलना में निम्न स्थान प्राप्त होता है तथा उन्हें शंका और घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। विवाह से पहले लड़के और लड़कियों का साथ-साथ रहना अधर्म और पाप कहा जाता है। विवाह की यह अनिवार्यता भी जन्म वृद्धि के कारणों में मुख्य है।

5.संयुक्त परिवार प्रथा- आदिकाल से भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा पाई जाती रही है। संयुक्त परिवार की प्रथा का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि इससे माता-पिता को अपने बच्चों के पालन-पोषण के उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं करना पड़ता है। वे सन्तान उत्पन्न करते जाते हैं। मुखिया उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी वहन करता है। इस प्रकार संयुक्त परिवार बच्चों को पैदा करने वाले एक कारखाने के रूप में कार्य कर रहा है।

6.गरीबी एवं निम्न सामाजिक स्तर- भारत अत्यंत गरीब देश है और इस गरीबी के कारण आम भारतवासी का जीवन स्तर निम्न कोटि का होता है। गरीब व्यक्ति सन्तान को कमाई का एक साधन मानते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी गरीब व्यक्ति को कम सन्तानों से सन्तोष नहीं होता है। इन विचारधाराओं के परिणामस्वरूप भी भारत में जन्म दर की मात्रा अधिक है।

7.सामाजिक मान्यताएँ- उपर्युक्त प्रथाओं के अतिरिक्त भारत में जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि की अलग- अलग सामाजिक और पारिवारिक मान्यताएँ हैं। जिन मान्यताओं के कारण भी भारत में जन्म दर की मात्रा अधिक होती है।

8.धार्मिक मान्यताएँ - भारत में मुख्य रूप से दो धार्मिक विचारधाएँ भी अधिक जन्म दर के लिए उत्तरदायी है।

(i) मोक्ष प्राप्ति की अवधारणा, जिसके लिए सन्तान होना अत्यन्त आवश्यक है।

(ii) दूधो नहाओ, पूतो फलो की अवधारणा के कारण अधिक सन्तानों को मान्यता प्राप्त है।

9.गर्भ निरोधक सामग्रियों का अभाव- भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम को जनता ने अपनी स्वीकृति प्रदान नहीं की है और इसे मात्र सरकारी कार्यक्रम कहकर उपेक्षा की जाती है। इसके साथ भारत गाँवों का देश है और गाँवों में गर्भ निरोधक सामग्रियों का उतना प्रचार और प्रसार नहीं हुआ, जितना कि होना चाहिए, इसके परिणामस्वरूप भारत में जन्म दर की मात्रा अधिक है।

मृत्यु दर का निम्न होना -

भारतवर्ष में जनसंख्या वृद्धि का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारण मृत्यु दर का निरन्तर कम होना है। निम्न तालिका में भारत में मृत्यु दर की निरन्तर कमी को दिखाया गया है।

दशक	मृत्यु दर
1891-1901	44.2
1901-1911	42.6
1911-1921	47.2
1921-1931	36.2
1931-1941	31.2
1941-1951	27.4
1951-1961	22.8
1971-1981	15.5
1981-1991	10.0
1991-2001	8.1
2001-2011	8.5

भारत में मृत्यु दर कम होने के निम्नलिखित कारण हैं-

(a) चिकित्सा सुविधाओं का प्रसार- भारत में स्वतंत्रता के बाद चिकित्सा सेवाओं का काफी विस्तार किया गया है। अनेक संक्रामक बीमारियों पर सरकार ने नियंत्रण स्थापित कर लिया है। शिशु मृत्यु दर में काफी गिरावट आई है। इसके साथ ही साथ केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने बीमारियों की रोकथाम करने के लिए तथा बीमार व्यक्तियों को तत्काल चिकित्सा सुविधा प्रदान करने के लिए अनेक

चिकित्सालयों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की है, इससे भी भारत में मृत्यु दर में कमी आई है।

(b) स्वास्थ्य अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना- भारत सरकार ने संक्रामक बीमारियों का निदान करने के लिए कुछ स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की है, जहाँ योग्य और प्रशिक्षित डॉक्टर बीमारियों को चिकित्सा के लिए नई पद्धतियों की खोज कर रहे हैं।

© चिकित्सा शिक्षा व्यवस्था- भारत सरकार ने देश के विभिन्न भागों में अनेक चिकित्सा महाविद्यालयों की स्थापना की है, जिनमें आयुर्वेदिक, अंग्रेजी, होम्योपैथिक तथा अन्य प्रकार के चिकित्सालयों से सम्बंधित शिक्षा प्रदान की जाती है।

(d) महामारियों पर नियंत्रण- देश में हैजा, प्लेग, मलेरिया, चेचक, लाल बुखार आदि अनेक महामारियों से अधिकांश जनसंख्या की मृत्यु हो जाती थी। सरकार ने अपने प्रयासों के द्वारा इन महामारियों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया है। इस कारण भी देश में मृत्यु की औसत दर कम हो रही है।

(e) शिक्षा का प्रसार- देश में शिक्षा का प्रतिशत निरन्तर बढ़ रहा है। शिक्षा के कारण देशवासियो में स्वास्थ्य और परिवार के बारे में जागरूकता विकसित हो रही है। इस जागरूकता के कारण भी देश में मृत्यु दर कम होती है।

(f) न्यूनतम जीवन-स्तर की पूर्ति- पुराने समय में यातायात और संचार वाहन के साधनों की कमी के कारण अकाल और दुर्भिक्ष की स्थिति में लाखों व्यक्ति काल-कवलित हो जाते थे। यातायात और संचार साधनों में वृद्धि के कारण सरकार ने अकाल और दुर्भिक्ष पर भी नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। इससे भी भारत में मृत्यु की औसत दर कम हो रही है। जीवनोपयोगी वस्तुओं का न्यायोचित वितरण तथा उपलब्धि में यातायात और संचार साधनों का योगदान महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे देश में इन साधनों का विकास होता जा रहा है, वैसे-वैसे जीवनोपयोगी साधनों की क्षेत्रीय और अन्तर्राज्यीय विषमता दूर होती जा रही है, जिससे भारतीयों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है और मृत्यु दर घटी है।

(g) अन्य कारण- भारत में जनसंख्या वृद्धि के लिए उपर्युक्त दो कारण ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। इन दो कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी है, जो भारत में जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं। ये कारण निम्नलिखित हैं -

(h) वातावरण सम्बन्धी कारण- भारतीय जलवायु उष्ण है। जलवायु की उष्णता से जनसंख्या में सन्तानोत्पादन की शक्ति अधिक होती है। उदाहरणार्थ जलवायु के कारण कम आयु में में ही बच्चे पैदा करने की शक्ति विकसित हो जाती है। इस कारण भी भारत में जनसंख्या बढ़ रही है।

(i) आवास - आवास भी एक ऐसा कारण है, जो किसी देश में जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित कर सकता है। भारत में प्रतिवर्ष कई लाख व्यक्ति अन्य देशों से आते हैं। दूसरे देशों से इन व्यक्तियों के आने के कारण भी जनसंख्या में वृद्धि होती है।

(j) आर्थिक कारण- भारत की अधिकांश जनसंख्या गरीब है, कितु जो लोग मध्यम श्रेणी के हैं और जिनकी आमदनी के साधन अच्छे हैं, वे अधिक सन्तान की कामना करते हैं और इस कारण भी भारत की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है।

जनाधिक्य निराकरण के उपाय

भारत जैसे विकासशील देश में प्रतिवर्ष 1 करोड़ 30 लाख की दर से जनसंख्या की वृद्धि बहुत ही चिन्तनीय है। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के प्रयास किये जायें। डॉ. जूलियन हक्सले के अनुसार "जनसंख्या के सम्बन्ध में भारत की स्थिति बड़ी संकटपूर्ण है। यदि भारत जनसंख्या की समस्या के समाधान में विफल रहा तो इससे एक बड़ी राजनीतिक एवं सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी और यदि वह सफल होता है तो न केवल उसे एशिया का नेतृत्व प्राप्त होगा वरन् वह सम्पूर्ण संसार की आशा का केन्द्र बन जायेगा।"

1976 के बाद भारत सरकार जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की ओर विशेष ध्यान दे रही है। उसे इस कार्य में भारी सफलता भी मिली है, पर वह सफलता आंशिक ही कही जा सकती है, उससे इस समस्या का सन्तोषजनक हल नहीं हो पाया है,

देश में जनसंख्या के हल के लिए यह परम आवश्यक होगा कि एक ओर जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण लगाया जाये और दूसरी ओर देश के उत्पादन को बढ़ाया जाये। इस समस्या के समाधान के लिए निम्न उपाय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं -

(1) उत्पादन में वृद्धि -

(a) कृषि उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या समस्या के समाधान हेतु देश की कृषि में तेजी से विकास किया जाना चाहिए, ताकि खाद्यान्न समस्या का समाधान हो सके। इसके लिए आधुनिक पद्धति से कृषि, सिचाई के साधनों का प्रसार, बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, चकबन्दी, सहकारिता का विकास, कृषि वित्त उपलब्ध कराना तथा अन्य आधुनिक वैज्ञानिक साधनों और तरीकों का प्रयोग आवश्यक है।

(b) लघु एवं कुटीर उद्योग-धंधों का विकास भारत एक ग्राम प्रधान, निर्धन, जनसंख्या वाला देश है, जहाँ के लोगों की आय और जीवन-स्तर बहुत गिरा हुआ है। देश में पूँजी निर्माण की धीमी गति होने के कारण सस्ती दर पर पर्याप्त मात्रा पूँजी का बहुत अधिक अभाव है। ऐसी स्थिति में देश के उत्पादन को बढ़ाने तथा अतिरिक्त जनसंख्या को रोजगार प्रदान करने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योग-धंधों का विकास करना अति आवश्यक है।

© औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि देश की बेरोजगारी, निर्धनता और निम्न जीवन स्तर की समस्या को हल करने के लिए बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास भी आवश्यक है, ताकि देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का पूर्ण व उपयुक्त विदोहन हो सके और देश का उत्पादन भी आवश्यक मात्रा में बढ़ाया जा सके। इसके माध्यम से कृषि भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव को कम किया जा सकता है।

(2) शिक्षा का प्रसार- देश में शिक्षा का तेजी से प्रचार और प्रसार करना भी समस्या के समाधान का एक आधारभूत उपाया होगा। इससे जहाँ एक ओर जनसंख्या नियंत्रण में मदद मिलेगी, वहीं दूसरी ओर देश के उत्पादन को बढ़ाने में भी मदद मिलेगी। शिक्षित होने से देश के नागरिक जनाधिक्य के दुष्परिणाम को भलीभाँति समझ सकेंगे और वे स्वयं जनसंख्या नियंत्रण के साधनों को

अपनाकर समस्या समाधान में अपेक्षित सहयोग दे सकेंगे। इस क्षेत्र में स्त्रियों की शिक्षा अधिक महत्व रखती है। राष्ट्रीय सर्वेक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आये है कि अशिक्षित महिलाएँ 7.7 प्रतिशत मिडिल शिक्षा प्राप्त, 4.5 प्रतिशत मैट्रिक शिक्षा प्राप्त, मान्यता रही है कि जनसंख्या की बहुलता राष्ट्र की शक्ति का प्रतीक है क्योंकि वे "खूब सोना, खूब जनशक्ति और खूब धन" (More Gold, More Man Power and More wealth) के सिद्धांत पर विश्वास रखते थे। इसी तरह धार्मिक आधारों पर स्थापित राज्यों में नेताओं द्वारा अपनी सुरक्षा के लिए जनसंख्या की अधिकता का भरपूर समर्थन किया जाता था। वास्तव में उस समय जीवन स्तर की समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी। जनसंख्या को सैन्य शक्ति के रूप में ज्यादा महत्व दिया जाता था। युद्ध सिपाहियों के बल पर मैदानों में लड़े जाते थे, पर आज की परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। जनसंख्या तेजी से बढ़ती हुई अनेक समस्याओं को जन्म देकर आर्थिक विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष नहीं करती वरन् राजनीतिक अस्थिरता, अव्यवस्था को भी जन्म देती है। आये दिन तोड़-फोड़, हड़ताल और मार- पीट की घटनाएँ होती रहती हैं, जिससे देश में शांति और व्यवस्था बनाये रखना शासन के लिए कठिन होता है।

बढ़ती हुई अराजकता का कारण जनातिरेक और उससे उत्पन्न समस्याएँ ही है। वास्तव में युद्ध जीतने, देश की अखंडता और स्वतंत्रता की रक्षा करने तथा देश को शक्तिशाली बनाए रखने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता देश का आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली होना है और इसके लिए जनसंख्या का अनुकूलतम स्तर पर होना अनिवार्य है। यह तभी सम्भव है जब परिवारों का आकार सीमित हो, जनसंख्या की किस्म में सुधार हो, निर्धनता, बेरोजगारी और निम्न जीवन स्तर की समस्याएँ जिनसे राजनीतिक असंतोष उत्पन्न होता है न रहे। इसके लिए एक उपयुक्त जनसंख्या नीति प्रत्येक देश के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है।

स्पष्ट है कि एक उपयुक्त जनसंख्या नीति (परिवार नियोजन) आज विश्व के सभी देशों के लिए महत्वपूर्ण आवश्यकता है। उपर्युक्त आवश्यकताओं और महत्व

के अतिरिक्त सामाजिक संगठन, व्यवस्था, शांति और नैतिकता सभी दृष्टियों से इसकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है। बिना उपयुक्त जनसंख्या नीति को अपनाये आज कोई भी देश अपने कल्याणकारी, समाजवादी, मानवतावादी व प्रजातांत्रिक लक्ष्य को व्यवहार में प्राप्त नहीं कर सकता है।

8.5 भारत की जनसंख्या नीति

जनसंख्या नीति से आशय उस नीति से है जिसके अनुसार सरकार जनसंख्या वृद्धि अथवा नियंत्रण को प्रोत्साहित करती है। अर्थात् जनसंख्या सम्बंधी वह नीति जिसके माध्यम से सरकार देश की जनसंख्या की अनुकूलतम (Optimum Population) बनाये रखने का प्रयत्न करती है। जनसंख्या नीति जनसंख्या के आकार व गठन से, जन्मदर को बढ़ाने या घटाने से, मृत्यु दर को कम करने, जनसंख्या की वृद्धि दर को कम करने या अधिक रखने तथा जनसंख्या वितरण को सन्तुलित करने तथा उसमें गुणात्मक सुधार करने से सम्बंधित है। जनसंख्या नीति प्रत्येक देश की समान नहीं होती क्योंकि हर देश की स्थिति और परिस्थितियों में बहुत अधिक भिन्नता होती है। अतः जनसंख्या नीति भी भिन्न-भिन्न होती है। (जनसंख्या नीति की परिभाषा के लिए 'जनसंख्या' का अध्याय देखिए।)

भारत में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। भारत में प्रतिवर्ष 210 लाख व्यक्ति जन्म लेते हैं, जिनमें 80 लाख मृत्यु को प्राप्त होते हैं अर्थात् 130 लाख जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि होती है। अतः प्रतिवर्ष लोगों के भरण- पोषण, शिक्षा-दीक्षा एवं रोजगार आदि से सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न एवं बुद्धिमान होती जा रही हैं। भारत के संदर्भ में कहा जाता है कि "भारत के शयनागार खेतों की अपेक्षा अधिक उपजाऊ है" अथवा यों कहिए कि "भारत जनसंख्या की दृष्टि से एक पंचवर्षीय योजना से आगे है, लेकिन आर्थिक विकास के क्षेत्र में दो योजना पीछे है।" जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दुनिया में चीन के बाद दूसरा स्थान है।

यहाँ विश्व की 15 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जिसमें आस्ट्रेलिया के बराबर जनसंख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है पर भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का केवल 2.2 प्रतिशत है। डॉ. चन्द्रशेखर के अनुसार, "भारत में सन्तान उत्पादन सबसे बड़ा कुटीर उद्योग बन गया है।" श्री जेम्स रैग्टन ने जनसंख्या वृद्धि के खतरे को आणुविक शक्ति के खतरे से भी अधिक विनाशकारी बताया है।

इस समस्या के समाधान के लिए भारत में आर्थिक नियोजन के साथ-साथ जनसंख्या नियोजन आवश्यक है, क्योंकि बिना उपयुक्त जनसंख्या नीति के आर्थिक नियोजन एवं विकास देश का सम्भव नहीं है, न होगा। योजना, औद्योगिक तथा कृषि विकास से जो कुछ भी उन्नति होती है, वह जनसंख्या की वृद्धि में डूब जाती है। फलस्वरूप जनता के रहन-सहन के स्तर कोई उल्लेखनीय प्रगति दिखाई नहीं पड़ती है। उपर्युक्त कथन देश में आयोजन में के साथ-साथ जनसंख्या की एक उपयुक्त नीति जिससे जनसंख्या पर शीघ्र नियंत्रण किया जा सके, अपनाने की महती आवश्यकता को प्रकट करता है। डॉ. ज्ञानचन्द ने भी लिखा है कि "द्रुतगति से बढ़ती हुई जनसंख्या भारत के आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।" इसी तरह भारतीय योजना आयोग ने स्वयं कहा है, "भारत जैसी स्थिति वाले देश में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि की दर का आर्थिक विकास एवं प्रति व्यक्ति जीवन-स्तर पर निश्चय ही विपरीत प्रभाव पड़ता है।" स्पष्ट है कि भारत की प्रगति बिना जनसंख्या की उपयुक्त नीति अपनाये कदापि सम्भव नहीं है। आर्थिक क्षेत्र में होने वाली प्रगति जनावृद्धि समाप्त कर देता है। अतः भारत जैसे देश में जहाँ जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ आहार समस्या, पोषण और स्वास्थ्य तथा चिकित्सा व शिक्षा समस्या, आवास समस्या, बेरोजगारी समस्या, निम्न जीवन स्तर की समस्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही हो, वहाँ आर्थिक व सामाजिक विकास की प्रत्येक आयोजना में जनसंख्या नीति का होना अपरिहार्य है। भारत में जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि सारी समस्याओं की जड़ है। अतः भारत की वर्तमान जनसंख्या नीति परिवार नियोजन ही है जिसके विविध साधनों द्वारा जन्मदर को नियंत्रण करने के 1952 से ही

नियोजित प्रत्यत्न किए जा रहे है। आज कोई भी व्यक्ति भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या नियंत्रित करने की आवश्यकता से इंकार नहीं कर सकता।

भारत में जनसंख्या नीति की आवश्यकता
(Need for Population Policy in India)

जैसा कि ऊपर ही लिखा जा चुका है कि बिना जनसंख्या की उपयुक्त नीति के भारत की प्रगति और समस्याओं के समाधान की कल्पना नहीं की जा सकती है। जनसंख्या को नियंत्रित करना आज देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है। (Crying need of the hour)। संक्षेप में, भारत में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता के औचित्य को निम्न आधारों पर प्रमाणित किया जा सकता है -

(1) खाद्यान्न अभाव- भारत में सतत प्रयत्नों के बाद भी जनसंख्या और खाद्य पूर्ति के मध्य निरन्तर असन्तुलन बना हुआ है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण देश की खाद्यान्न समस्या दिनोंदिन गंभीर होती ज रही है। इसे प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये का खाद्यान्न विदेशों से आयात करना पड़ता है। उदाहरण के लिए 1960-61 में गेहूँ का कुल आयात जहाँ 153 करोड़ रूपये का करना पड़ा था, वहीं 1965-66 में 265 करोड़ रूपये का तथा 1973-74 में 346 करोड़ रूपये का आयात करना पड़ा। सूखे की स्थिति का सामना करने के लिए सरकार ने 1988 में 25 लाख टन खाद्यान्न आयात किया। खाद्यान्न की माँग में होने वाली अप्रत्याशित वृद्धि जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण उत्पन्न होती है। अब भारत अमेरिकी बाजार में गेहूँ का सबसे बड़ा खरीददार देश है। योजना आयोग के अनुसार, "हमारी खाद्य समस्या का प्रमुख कारण खाद्यान्न की माँग एवं पूर्ति तत्कालीन असन्तुलन नहीं है, बल्कि देश में खाद्यान्न की अपेक्षा जनसंख्या की निरन्तर अत्यधिक वृद्धि है।" कृष्णमाचारी समिति तथा अशोक मेहता जाँच समिति द्वारा भी अपने प्रतिवेदनों में यह कहा है कि जनसंख्या वृद्धि की तुलना

में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं हो पा रही है। फलतः अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति के लिए हमें खाद्यान्न आयात करना पड़ रहा है। आज भारत में 10 लाख व्यक्ति भीख माँगकर गुजारा करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के 60 वर्षों के बाद भी समस्त जनसंख्या के लिए कभी भी पर्याप्त भोजन प्रदान करना सम्भव नहीं हो सका। जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है। यदि उसे समय रहते रोका नं गया तो 63 हजार नवागन्तुओं को जो प्रतिदिन पैदा होते हैं, उनको खिलाने की समस्या और अधिक गम्भीर हो जायेगी। खाद्यान्नों की माँग तथा पूर्ति में व्याप्त असन्तुलन का कारण तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है। अतः देश की खाद्यान्न समस्या के समाधान के लिए भारत में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति आवश्यक है।

(2) राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए सतत् प्रयत्न करती रही है। जब तक पाँच पंचवर्षीय योजना तथा 3 वार्षिक योजनाएँ पूरी की जा चुकी हैं, फिर भी राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में अपेक्षित वृद्धि सम्भव नहीं हो सकी है। जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने के बाद भी प्रति व्यक्ति आय की उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो सकी। 1950-66 तक राष्ट्रीय आय में 63.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और जनसंख्या में 35 प्रतिशत वृद्धि हो जाने के कारण प्रति व्यक्ति आय में मात्र 20.4 प्रतिशत की ही वृद्धि हो सकी है। 1996 में प्रति व्यक्ति आय रु. 10,771 आँकी गई थी पर मूल्य वृद्धि के कारण यह आय रु. 2,761 (1981 के मूल्य पर) ही रही। यद्यपि राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हुई है पर जनसंख्या वृद्धि के कारण अपेक्षित वृद्धि नहीं हो सकी। केवल 1981-91 के दशक में जनसंख्या में 23.85 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अतः देश की राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में अपेक्षित वृद्धि करने के लिए जनसंख्या पर नियंत्रण आवश्यक है, जिसके लिए एक उपयुक्त जनसंख्या नीति का होना अनिवार्य है।

(3) जीवन-स्तर - भारतीय जनता का जीवन स्तर प्रति व्यक्ति आय में कमी, मूल्यों में वृद्धि, बेरोजगारी,निर्धनता, वस्तुओं के अभाव में बहुत गिरा हुआ है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत के 40 प्रतिशत से भी अधिक व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे भूख व कुपोषण का शिकार रहते हुए निर्धनता की दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत करते हैं। भोजन में कम से कम 2500 कैलोरीज तथा 40 ग्राम प्रोटीन होनी चाहिए। यहाँ औसत उपलब्ध कैलोरीज की मात्रा 1800 से अधिक नहीं है। अधिकांश लोगों को 5 ग्राम प्रोटीन भी नहीं मिल पाता है। आवास और अन्य साधनों की स्थिति गम्भीर है। जीवन स्तर निम्नतम होने का कारण जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि भी है। जो भी आर्थिक विकास होता है वह आबादी के बाढ़ में समा जाता है। जीवन स्तर में उन्नति के लिए भी भारत में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की परम आवश्यकता है।

(4)बेरोजगारी - यद्यपि भारत सरकार देश की बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए सतत् प्रयत्नशील रही है, पर जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि के कारण बेरोजगारी में अप्रत्याशित वृद्धि होती रही है। बेरोजगारों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। 1991 की जनगणना के अनुसार 3.63 करोड़ व्यक्ति रोजगार चाहते थे। भारत में बढ़ती हुई तीव्र बेरोजगारी की समस्या का एक प्रमुख कारण जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि है। इस दृष्टि से भी भारत में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता है।

(5) शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ- भारत में शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं की समस्या आज भी चिन्तनीय बनी हुई है। सरकार के आय का एक बहुत बड़ा भाग इन मदों पर व्यय किया जाता है, फिर भी स्थिति संतोषजनक नहीं है। देश में आज भी शिक्षा का प्रतिशत बहुत कम है। जनसंख्या और डॉक्टर, अस्पताल, पलंग, नौं, मिडवाइफों का अनुपात बहुत कम है। निरंतर प्रयत्न एवं भारी व्यय के बाद स्थिति में सुधार नजर नहीं आ रहा है। इसका कारण जनसंख्या में वृद्धि और जनसंख्या समस्या है। इस दृष्टि से भी भारत को एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता है।

(6) आवास समस्या- भोजन, कपड़ा और मकान मानव की मूलभूत आवश्यकता है, लेकिन भारत में तीनों का अभाव अपने आप में शर्मनाक एवं दुःखद है। जनसंख्या वृद्धि ने आवास समस्या को और अधिक गंभीर बना दिया है। नगरों में बढ़ती हुई जनसंख्या ने जिन गंदी बस्तियों को जन्म दिया है उनका वर्णन बहुत ही दुःखद है। मानव इन बस्तियों में हर दृष्टि से नारकीय जीवन व्यतीत कर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी आवास की गम्भीर समस्या विद्यमान है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक सर्वेक्षण में कहा गया है कि एशिया (जिसमें भारत भी सम्मिलित है) अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों में 50 प्रतिशत लोगों के पास या तो मकान नहीं हैं या असुरक्षित अभावग्रस्त व अनुपयुक्त हैं। इस समस्या के समाधान के लिए भी एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता है।

(7) पूँजी निर्माण - भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश में आय और बचत का स्तर निम्न होने के कारण पूँजी निर्माण की दर बहुत कम है, जिसके कारण देश के आर्थिक विकास के लिए पूँजी का अभाव बराबर अवरोधक बना हुआ है। इसलिए ऐसे प्रयत्नों की आवश्यकता है जिससे लोगों की आय और बचत में वृद्धि हो सके और नियोजन के लिए देश में ही पर्याप्त पूँजी उपलब्ध हो सके, पर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति आय और बचत का स्तर ऊँचा नहीं उठ पा रहा है। 1994-95 में विनियोग दर 24.9 प्रतिशत के स्तर हो गई। इसको और अधिक स्तर पर ले जाने के लिए भी भारत में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता है।

उपर्युक्त आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक, शारीरिक व राजनीतिक दृष्टि से भी भारत में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की तत्काल आवश्यकता है। जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि तथा उसका हीन प्रमाण न केवल निर्धनता, बेरोजगारी, निम्न जीवन स्तर, आवास समस्या, पूँजी की धीमी गति, स्वास्थ्य, चिकित्सा एवं शिक्षा तथा खाद्यान्न समस्या, कुपोषण व आर्थिक के मार्ग में बाधक है, बल्कि यह वैयक्तिक, पारिवारिक व सामुदायिक विघटन, अवरोध, बाल अपराध, भिक्षावृति, नैतिक पतन, राजनीतिक व सामाजिक भ्रष्टाचार, भावी पीढ़ी के निर्माण में बाधा, स्वास्थ्य में गिरावट, बीमार, दुर्बलता आदि का भी कारण है,

वहीं राजनीतिक अस्थिरता, शांति व व्यवस्था के मार्ग में भी बाधक है। इन सभी पतनकारी समस्याओं के समुचित समाधान के लिए देश में एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की आवश्यकता को आज कोई भी व्यक्ति नकार नहीं सकता है।

स्पष्ट है कि भारत में उपयुक्त जनसंख्या नीति के अभाव में आर्थिक नियोजन तथा उसके लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। अतः भारत में आर्थिक नियोजन के साथ-साथ जनसंख्या नियोजन के लिए एक उपयुक्त जनसंख्या नीति की परम आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही हमारी सम्पूर्ण आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था छिन्न- भिन्न हो रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से जनसंख्या के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आर्थिक नियोजन के आधार पर आर्थिक विकास निरन्तर होता जा रहा है, लेकिन जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि ने न केवल हमारी आर्थिक एवं सामाजिक विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने में बाधाएँ उत्पन्न की है वरन् उससे प्राप्त प्रतिफलों को नगण्य करने में अग्रणी रही है। अतः यदि बढ़ती हुई जनसंख्या पर शीघ्र नियंत्रण स्थापित नहीं किया गया तो आर्थिक योजनाओं के द्वारा देश की प्रगति का भी सपना जो हमने सँजोया है यह कभी साकार नहीं हो सका। हमें शीघ्र ही जनसंख्या की प्रजनन क्षमता को विवाह की आयु बढ़ाकर, गर्भ निरोध के विविध रासायनिक व वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग, बंध्याकरण व गर्भपात आदि को प्रोत्साहित कर घटाना होगा।

भारत के लिए उपयुक्त जनसंख्या नीति
(Suitable Population Policy in India)

भारत के समक्ष न केवल जनसंख्या की वृद्धि की समस्या है वरन् जनसंख्या के हीन प्रमाप की भी समस्यासमाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष है। भारत में स्त्रियों की प्रजनन क्षमता औसतन 5 से 8 बच्चे तक है तथा प्रजनन आयु 15 से 50 वर्ष है। भारत की जनसंख्या में 1 करोड़ 80 लाख की प्रतिवर्ष अतिरिक्त वृद्धि हो रही है जिसके लिए प्रतिवर्ष 16,500 स्कूल, 2,50,900 मकान1,88,744,000

मीटर कपड़ा, 1,25,45,000 क्विटल खाद्य सामग्री एवं 40,00,000 नौकरियाँ अतिरिक्त चाहिए जो सम्भव नहीं है।

दूसरी जनसंख्या सम्बंधी गम्भीर समस्या जनसंख्या के हीन प्रमाप की है अर्थात् भारतीय जनसंख्या का स्वास्थ्य स्तर बहुत गिरा हुआ है। अधिकांश जनसंख्या अस्वस्थ एवं दुर्बल है। एक भारतीय की औसत आयु 60.8 वर्ष है। चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव में अन्य देशों की तुलना में शिशु मृत्यु दर बहुत ऊँची है। साक्षरता का प्रतिशत केवल 65.38 ही है। यही कारण है कि भारतीय जनता हीन किस्म की है अर्थात् यहाँ की मानव पूँजी घटिया है, उसकी उत्पादन क्षमता बहुत कम है जिसके रहते राष्ट्रीय उत्पादन में न तो अपेक्षित वृद्धि सम्भव है न ही एक सुदृढ़ सम्पन्न और कल्याणकारी समाज की स्थापना ही सम्भव हो सकती है। स्पष्ट है कि आज भारत के लिए एक ऐसी जनसंख्या नीति की आवश्यकता है जिससे जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को रोका जा सके इस दृष्टि से भारत के लिए उपयुक्त जनसंख्या नीति के अन्तर्गत निम्न प्रमुख बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(i) जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावशाली नियंत्रण- भारत की वर्तमान तथा भविष्य में होने वाली जनवृद्धि को ध्यान में रखते हुए विविध साधनों तथा हर सम्भव प्रयत्नों के द्वारा जनसंख्या वृद्धि को शीघ्र नियंत्रित करने सम्बंधी नीति एवं कार्यक्रम।

(ii) जनसंख्या के आकार या मात्रा को कम करने के प्रश्न को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर प्रजनन क्षमता को घटाने के लिए विवाह की आयु में वृद्धि, गर्भ निरोधक साधनों के प्रयोग, बंध्याकरण व गर्भपात को प्रोत्साहित करने सम्बंधी कारगर नीति अपनाई जानी चाहिए।

(iii) जनसंख्या नीति में राष्ट्रीय स्तर पर एकरुपता लाकर परिवार नियोजन सम्बंधी कानून में समानता लानी चाहिए।

(iv) परिवार नियोजन एवं यौन शिक्षा को एक अनिवार्य विषय के रूप में हाई स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाया जाना चाहिए।

(v) जनसंख्या के गुणात्मक स्तर में सुधार के लिए शिक्षा, चिकित्सा एवं जन स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं में सुधार व विस्तार।

(vi) शुद्धजनन विज्ञान के मूल सिद्धांतों को जनसंख्या नीति का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

(vii) जनसंख्या नीति का उद्देश्य जनसंख्या पर नियंत्रण प्राप्त कर उसके गुणात्मक स्तर में उत्थान के साथ सर्वोत्तम जनसंख्या के स्तर को प्राप्त करना चाहिए।

(viii) भारत जैसे निर्धन और जन विशालता वाले देश में जनसंख्या नियंत्रण के साथ-साथ शीघ्र आर्थिक विकास तथा खाद्य उत्पादन में तीव्र वृद्धि की नीति को साथ-साथ प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित किया जाना चाहिए, ताकि लोगों के जीवन स्तर में सुधार हो सके और उन्हें पौष्टिक एवं संतुलित आहार प्राप्त हो सके।

(ix) परिवार नियोजन को युद्ध स्तर पर व्यापक रूप से गाँव-गाँव तक पहुंचाया जाना चाहिए। इसके लिए जगह- जगह इसके प्रचार के साथ बड़ी संख्या में परिवार नियोजन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।

(x) जनसंख्या नीति ऐसी होनी चाहिए जिसके सफल क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न न हो और जन्म दर को नियंत्रित करने के साथ-साथ मृत्यु दर को भी नियंत्रित किया जा सके क्योंकि मृत्यु दर में होने वाली कमी आगे चलकर जनसंख्या बढ़ाने की अपेक्षा जनसंख्या को घटाने में अधिक सहायक होगी।

इस प्रकार भारत जैसे निर्धन, विकासशील और जनाधिक्य वाले देश में अपनाई जाने वाली जनसंख्या की नीति ऐसी होनी चाहिए कि जो देश की स्थिति-परिस्थिति और आवश्यकता के अनुकूल हो। जिसका आधार वैज्ञानिक व व्यावहारिक हो तथा जिसका क्रियान्वयन कर देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को शीघ्र रोका जा सके और जनसंख्या के गुणात्मक स्तर में सुधार हो सके।

एक उपयुक्त जनसंख्या नीति के विद्वानों द्वारा चार प्रमुख उद्देश्य बताये गये हैं-

(1) जन्म दर पर नियंत्रण।

(2) जनसंख्या की किस्म में सुधार।

(3) मृत्यु दर में कमी।

(4) शीघ्र आर्थिक विकास।

भारत में आर्थिक नियोजन के साथ जनसंख्या नियोजन परम आवश्यक है। इसके लिए उपर्युक्त सिद्धांतों पर आधारित जनसंख्या की नीति उपयोगी होगी। आर्थिक नियोजन और जनसंख्या नियोजन की सफलता परस्पर निर्भर है, जहाँ मानव नियोजन से आर्थिक विकास का बल मिलेगा, वहीं विकास से मानव नियोजन भी प्रभावित होगा। विकसित देशों के जनांकिकीय इतिहास से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि आर्थिक विकास का जनसंख्या नियंत्रण पर अनुकूल प्रभाव रहा है। जीवन-स्तर में सुधार के साथ-साथ जन्म दर में उल्लेखनीय गिरावट इसके प्रमाण हैं। जहाँ तक मृत्यु दर में कमी का प्रश्न है इस संदर्भ में भारत की मृत्यु दर नियंत्रण सम्बंधी नीति बहुत सुनिश्चित एवं स्पष्ट है जिसका लक्ष्य चिकित्सा स्वास्थ्य सेवाओं में विस्तार करना व बीमारियों का उन्मूलन कर मृत्यु दर में कमी लाना है। इस नीति के फलस्वरूप ही मृत्यु दर में उल्लेखनीय गिरावट सम्भव हो सकी है।

भारत की जनसंख्या नीति (परिवार नियोजन)

Population Policy of India (Family Planning)

भारत में सबसे बड़ी जनांकिकीय समस्या जनाधिक्य और जनसंख्या के हीन किस्म की है। अतः राष्ट्रीय उत्थान के लिए जनसंख्या नियंत्रण के साथ-साथ जनसंख्या की किस्म में सुधार भी अति आवश्यक है, लेकिन आज देश के समक्ष सबसे बड़ी समस्या जनाधिक्य की है जिसे यदि अन्य समस्याओं की जननी की

संज्ञा दी जाये, तो अतिशयोक्ति न होगी। जैसा कि योजना ने स्वयं स्वीकार किया है कि "भारत जैसी स्थिति वाले देश में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि की दर का आर्थिक विकास एवं प्रति व्यक्ति जीवन-स्तर पर विपरीत प्रभाव है।" यही कारण है कि जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए व्यापक पैमाने पर परिवार नियोजन को अपनाया गया है। इस दृष्टि से यदि भारत की जनसंख्या नीति परिवार नियोजन है, कहना गलत न होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक भारत सरकार जनसंख्या की समस्या के प्रति इस विश्वास के साथ उदासीन रही है कि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि देश के लिए हानिकारक नहीं है पर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं ने पूर्ववर्ती विश्वास को तोड़ने और छोड़ने के लिए स्वदेशी सरकार को विवश कर दिया। भारत के समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों, जनसंख्याशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों और भारत सरकार तथा योजना आयोग की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करने के उपायों को सोचने के लिए विवश होना पड़ा। अतः जनसंख्या सम्बंधी नीति के तहत परिवार नियोजन को सरकारी कार्यक्रम के रूप में पहली बार सन् 1952 में प्रयोग के रूप में प्रारम्भ किया गया। वर्तमान भारत की जनसंख्या नीति अर्थात् परिवार नियोजन के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं-

(i) जन्म दर को जो 1950-60 में 42 प्रति हजार थी, घटाकर 20 या 25 प्रति हजार करना है।

(ii) जिन कारणों से जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है उन्हें ज्ञात कर उनको दूर करना।

(iii) परिवार नियोजन के नये से नये और सरल से सरल साधनों और तरीकों के बारे में अनुसंधान कर खोज करना।

राष्ट्रीय जनसंख्या परिषद्

1969 में जनसंख्या नीति को निर्धारित करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में शिक्षा संस्थाओं, प्रशासन, सामाजिक कल्याण एवं आम जनता के व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया। इस सम्मेलन में भारतीय

जनसंख्या परिषद् की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव की भूमिका में लिखा गया था कि -

"जनसंख्या एक बहुमुखी तत्व है, जिसका बड़ी सतर्कता से तथा गहनता से विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। विशेषकर इसकी संख्या, भौगोलिक विवरण, देश के अंदर तथा बाहर प्रवास, देश में श्रम शक्ति के लिए योगदान, जीवन स्तर, कार्यक्षमता आदि। चूंकि जनसंख्या का परिमाणात्मक एवं गुणात्मक पहलू आर्थिक विकास एवं राष्ट्रीय कल्याण के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। अतः जनसंख्या नीति राष्ट्रीय प्रयत्नों की आदेश सूचक है।"

भारतीय जनसंख्या परिषद् की स्थापना का जो प्रस्ताव किया गया था, उसमें जनसंख्या नीति के अन्तर्गत जिन विषयों को सम्मिलित किया गया था, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

(1) अन्तर्राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया को अपनाना।

(2) देश की मानवीय संसाधनों की उत्पादन क्षमता तथा उसके गुणों का पता लगाना।

(3) क्षेत्रों तथा उपक्षेत्रों के लिए उपयुक्त जन्मदर का निर्धारण करना।

(4) जहाँ एक ओर प्रजनन नियंत्रण को ऐच्छिक बनाया जाये, वहीं दूसरी ओर इसके अभीष्ट लाभों की प्राप्ति को भी सार्थकता प्रदान की जाये।

(5) जनता को जनसंख्या नीति के कार्यक्रमों में सम्मिलित करने के लिए जनस्वास्थ्य एवं संचार की व्यापक व्यवस्था की जाये।

(6) स्कूल तथा महाविद्यालयीन स्तर पर 'जनसंख्या शिक्षा' को प्रारम्भ किया जाये।

(7)जनता में 'छोटा परिवार, सुखी परिवार' की भावना का विकास किया जाये।

(8) परिवार नियोजन के कार्यक्रमों में ऐच्छिक संस्थाओं को भी शामिल किया जाये।

(9) कृषि विकास और आर्थिक लाभ के वितरणों को जनता तक पहुँचाया जाये।

(10) पौष्टिक आहार कार्यक्रम तथा शिशु पालन को प्राथमिकता प्रदान की जाये।

(11) ग्रामीण तथा नगरीय प्रवास को दिशा-निर्देश देने के लिए नीति का निर्धारण किया जाये।

(12) आन्तरिक जनसंख्या के प्रवाह-प्रवास को दिशा-निर्देशन प्रदान किया जाये।

(13) विदेशों से जो विस्थापित भारत आए हैं, उनकी समस्या का समुचित हल ढूँढ़ा जाये।

(14) भारत से विदेशों को जो प्रवास प्रवाह हो रहा है, उसकी उचित व्यवस्था तथा नीति का निर्धारण।

(15) मृत्युक्रम तथा अस्वस्थ्यता के प्रभावों का अध्ययन करना।

(16) महिलाओं की सामाजिक स्थिति में वृद्धि के जनांकिकीय प्रभावों का अध्ययन करना।

(17) धर्म के अनुसार उर्वरता का अध्ययन किया जाये।

(18) परिवार नियोजन में शिक्षा नीति तथा शिक्षा के प्रभावों का अध्ययन किया जाये।

(19) परिवार कल्याण कार्यक्रम को चिकित्सालय के स्थान पर 'सामाजिक कल्याण' का आधार प्रदान किया जाये।

(20) जनसंख्या से सम्बंधित सामाजिक, आर्थिक और प्रशासकीय क्षेत्रों में अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहित किया जाये।

(21) प्रजननता के नियंत्रण में गैर शासकीय संस्थाओं में सहयोग प्राप्त करना।

(22) जनसंख्या की समस्या के अनेक पहलू है। अतः इस समस्या के समाधान के लिए इसे अनेक उपविभागों में विभाजित करना तथा

(23) जनसंख्या नीति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करना।

जनसंख्या नीति 1976 - भारत में जून 1975 में आपातकाल की घोषणा की गई। इसी आपातकाल के दौरान अप्रैल 1976 में कांग्रेस सरकार ने जिस नई जनसंख्या नीति की घोषणा की उसमें उल्लेखनीय बात जन्म दर को नियंत्रित करने के लिए विवाह की आयु में वृद्धि व अनिवार्य परिवार नियोजन आपरेशन ही मुख्य थी। यह स्वीकार किया गया कि जनसंख्या की अधिकता ही देश में निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा व निम्न स्वास्थ्य स्तर का मूल कारण है। देश को

गंभीर समस्याओं से निकालने के लिए कम से कम समय में जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण स्थापित करना माना गया। तदनुसार विवाह की आयु में वृद्धि, कम बच्चे पैदा करने की मनोवृत्ति के विकास के लिए विद्यार्थियों को जन शिक्षा, संतुलित आहार कार्यक्रम, तीन बच्चों के बाद अनिवार्य रूप से ऑपरेशन, परिवार नियोजन के लिए प्रेरणा स्वरूप दी जाने वाली राशि में वृद्धि, जिला पंचायत, शिक्षक व सहकारी समितियों के सदस्यों को प्रेरणा स्वरूप धनराशि व करों में छूट तथा परिवार नियोजन कार्यक्रम को अनिवार्य कार्यक्रम के अन्तर्गत रखने का प्रांतीय शासन को आदेश आदि पर अमल किया गया।

आपातकाल के दौरान निश्चित रूप से परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग 1 करोड़ ऑपरेशन करके विश्व रिकार्ड स्थापित किया गया और जिस ढंग से अधिकाधिक ऑपरेशन करने की आँधी आई उससे अनेक जबरन ऑपरेशन (जहाँ तक कि बुजुर्ग, निःसंतान, अविवाहित व्यक्तियों के भी) किए गए। पुलिस बल का प्रयोग ही नहीं किया गया वरन् शासकीय कर्मचारियों को ऑपरेशन न कराने की स्थिति में वेतन न देने, वेतन वृद्धि बंद करने, पदोन्नति रोकने व नौकरी से निकाला देने तक के आदेश प्रसारित हुए। यही कारण था कि इस अनिवार्य ऑपरेशन वाली जनसंख्या नीति की जन सामान्य में बुरी प्रतिक्रिया हुई।

1977 की जनसंख्या नीति मार्च- 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी भारी बहुमत से विजय प्राप्त कर सत्ता में आई। इस पार्टी ने परिवार नियोजन के दौरान ही अपने घोषणा-पत्र का मुख्य मुद्दा बनाया और सत्ता में आते ही परिवार नियोजन को 'परिवार कल्याण' नया नाम व सम्बन्धित विभाग 'स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग' नाम देने के साथ ही नियोजन सम्बंधी अनिवार्यता समाप्त कर दी। जनता सरकार ने गरीबी का कारण जनसंख्या की अधिकता न मानेकर विनियोजन की विकृति व रोजगार के अवसरों की कमी को माना। अपनी जनसंख्या नौति में जनता सरकार ने परिवार नियोजन के महत्व को स्वीकारने पर यह स्पष्ट कर दिया कि यह व्यक्ति की स्वेच्छा से होगा और परिवार में 'बच्चों की संख्या' का निर्धारण सम्बंधित परिवार की आर्थिक स्थिति व सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं पर आधारित होगी।

जनता सरकार की स्वेच्छा पर आधारित परिवार कल्याण नीति निश्चित रूप से लोकप्रिय तो साबित हुईं, पर इससे पूर्व में हुई जन्म दर में गिरावट में पुनः वृद्धि होने लगी।

1977 की जनसंख्या नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) परिवार कल्याण कार्यक्रम की अन्य कार्यक्रमों जैसे भोजन, वस्त्र, पेयजल, आवास, नारी-शिक्षण, पोषण आदि से सम्बंधित कर दिया जायेगा।

(2) परिवार कल्याण कार्यक्रम में माता और शिशु के स्वास्थ्य को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई।

(3) परिवार नियोजन कार्यक्रम पूर्णतः स्वैच्छिक होगा और परिवार में बच्चों की संख्या का निर्धारण सम्बंधित परिवार की आर्थिक स्थिति व सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं पर आधारित होगी।

(4) परिवार नियोजन की विधि के सम्बन्ध में निर्णय दम्पत्ति की स्वेच्छा पर होगा।

(5) छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक जन्म दर 30 प्रति हजार से घटाकर 25 हजार करने का लक्ष्य रखा गया।

(6) परिवार नियोजन को लोकप्रिय बनाने के लिए सभी सामाजिक संस्थाओं की सेवा ली जायेगी।

(7) नसबन्दी की सेवाएँ, सुलभ तथा निःशुल्क उपलब्ध कराई जायेंगी।

(8) गर्भवती माताओं को सभी प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध कराई जायेंगी।

(9) जनसंख्या शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाये।

(10) स्त्री शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाये।

(11) परिवार नियोजन कार्यकमों की सफलता के लिए प्रचार-प्रसार के सभी साधनों का उपयोग किया जाये।

(12) प्रजनन विज्ञापन तथा गर्भ निरोध के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाये।

1980 के बाद की जनसंख्या नीति 1980 में मध्यावधि चुनाव के द्वारा पुनः इंका सरकार केन्द्र में सत्ता पर आसान हुई। सत्ता में आते ही इस सरकार ने छठीं

योजना जिसमें जनता सरकार ने जनसंख्या वृद्धि को विकास में बाधक नहीं माना था, में परिवर्तन का गर्भ नियंत्रण को सम्पूर्ण विकास से जुड़ा माना तथा योजना में इसे महत्वपूर्ण स्थान देने हुए परिवार नियोजन कार्यक्रम पर पाँचवीं योजना की तुलना में दोगुने से भी अधिक व्यय का प्रावधान रखा। इस योजना में यह लक्ष्य रखा गया कि 1985 तक देश के 36 प्रतिशत दम्पत्तियों को परिवार नियोजन द्वारा सुरक्षित किया जाये। ऐसा अनुमान है कि 1981 तक 245 लाख दम्पत्ति गर्भ धारण से सुरक्षित कर लिये गये है। अब 190 लाख दम्पत्तियों को सुरक्षित करना है। यह स्वीकार किया गया है कि जन्म दर को स्थिर रखने के लिए 353 लाख ऑपरेशन प्रतिवर्ष करने होंगे।

इस प्रकार भारत की वर्तमान जनसंख्या नीति का उद्देश्य हर प्रकार से जनसंख्या वृद्धि की दर को कम करना है। इसके लिए भारत सरकार ने डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति पर सलाह देने के लिए एक विशेष दल का गठन किया था। इस विशेषज्ञ दल ने 21 मई, 1994 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसकी सिफारिशें निम्नवत है-

स्वामीनाथन समिति की रिपोर्ट (1994)

(1) जनसंख्या नीति का प्रमुख उद्देश्य जनसंख्या में स्थायित्व लाना ही होगा, परंतु इसके प्राप्त करने के लिये विकेन्द्रीकृत संस्थाओं ओं के के माध्यम से समग्र सामाजिक विकास पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

परिवार नियोजन कार्यक्रम (Family Planning Programme FPP) को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम से जोड़ा जाना चाहिए।

(3) बाल विवाह, दहेज, भ्रूण हत्या आदि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये विशेष प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

(4) जनसंख्या नियंत्रण और सामाजिक विकास सम्बंधित लक्ष्य स्थानीय निकायों द्वारा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तय किये जाने चाहिए।

(5) जनसंख्या और सामाजिक विकास आयोग (Population & Social Development Commission PSDC) के रूप में एक शीर्ष संस्था की स्थापना की जाए जो स्वास्थ्य व कल्याण से सम्बंधित विभाग का स्थान ले।

(6) एक जनसंख्या और सामाजिक कोष की स्थापना की जाये।

(7) लिंग परीक्षण (Pre-Natal Dignostic Test) पर प्रतिबंध लगाया जाये तथा 18 वर्ष से कम उम्र में विवाह के रोकने के लिए व्यापक विवाह पंजीकरण कानून बनाया जाये।

(8) कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate TFR) को 1991 के 3.6 प्रतिशत से घटाकर 2 प्रतिशत तक 2.1 प्रतिशत किया जाये।

(9) शिशु मृत्यु दर (Child Mortality Rate CMR) के घटाकर 2010 तक 30 प्रति हजार करने के उपाय किये जायें।

जनसंख्या नीति 2000

15 फरवरी, 2000 को "स्वामीनाथन समिति" की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा नई जनसंख्या नीति 2000 की घोषणा की गई। नई जनसंख्या नीति में जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करने के लिये प्रोत्साहन कदमों का प्रस्ताव किया गया है तथा इस नीति का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि की दर को स्थिर करना है। जनसंख्या के आकार के साथ देश की अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित होती है। भारत के राष्ट्रीय आय विश्व की कुल आय का 1.2 प्रतिशत है। केन्द्रीय मंत्रिपरिषद ने जनसंख्या के लिये जो रणनीति बनाई है, वह सुचितित तो नहीं लगती, परंतु सरकार ने समस्या की गंभीरता को पहचाना है, जो स्वागत योग्य है।

तीन सूत्रीय रणनीति 'नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' के तीन सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 2045 तक देश की आबादी स्थिर रखने का लक्ष्य रखा गया है। दूरगामी परिणाम वाले महत्वपूर्ण कदमों के तहत निम्नलिखित निर्णय किये गये हैं-

L जनसंख्या पर प्रभावशाली अंकुश नहीं लगाने वाले राज्यों को हतोत्साहित करने की दृष्टि से सन् 2026 तक लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व न बढ़ाने का निर्णय लिया गया है। वर्तमान प्रावधान के अनुसार सन् 2001 में राज्यों की जनसंख्या के आधार पर लोकसभा में उनकी संख्या बढ़ाए जाने पर पुनर्विचार किया जाना था।

II. सन् 2010 तक आबादी वृद्धि की दर को 2.1 प्रतिशत तक लाना है। की दर यही बनी रही, तो 2010 में भारत की जनसंख्या 110 करोड़ प्रतिवर्ष की दर से आबादी बढ़ रही है। अनुमान नुमान है है। कि आबादी में बढ़ोत्तरी हो जायेगी। वर्तमान में 1.55 करोड़

III. प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में आबादी के बारे में एक नया जनसंख्या एवं सामाजिक विकास आयोग (PSDC) बनाया गया है। इस आयोग में स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्री के अतिरिक्त सभी राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री शामिल होंगे।

नई जनसंख्या नीति 2000 के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं -

(1) वर्ष 2045 तक जनसंख्या की वृद्धि दर को स्थिर करना।

(2) गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले उन परिवारों को 5000 रूपये की स्वास्थ्य बीमा सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी, जिनके सिर्फ दो बच्चे हों और दो बच्चों के जन्म के बाद उन्होंने बंध्याकरण करा लिया हो।

(3) गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले उन लोगों को पुरस्कृत किया जायेगा जो निर्धारित आयु में विवाह करने के बाद पहले बच्चे को तब जन्म दें जब माँ की उम्र 21 वर्ष हो जाये अर्थात् विवाह के 3 वर्ष बाद बच्चे को जन्म दें और वे छोटे परिवार के सिद्धांत में विश्वास रखते हुए दो बच्चों का जन्म होने के बाद बन्ध्याकरण करा लें।

(4) केन्द्र सरकार उन पंचायर्ता और जिला परिषदों को पुरस्कृत करेगी जो अपने क्षेत्र में रहने वाले लोगों को समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम प्रथम वर्ष जनसंख्या नियंत्रण के उपायों को अधिकाधिक अपनाने के लिये प्रेरित करेंगी। अकाल-बाल मृत्यदर में कमी लाने, साक्षरता को प्रोत्साहन देने, बालिका समृद्धि योजना का कार्यान्वयन तथा बाल-विवाह कानून का सख्ती से कार्यान्वयन किया जायेगा।

(5) नई जनसंख्या नीति में बाल-विवाह निरोधक अधिनियम तथा प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण तकनीकी निरोधक अधिनियम को सख्ती से लागू किया जायेगा।

(6) ग्रामीण क्षेत्रों में एम्बूलेंस की सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से उदार शर्तों पर ऋण तथा आर्थिक मदद उपलब्ध कराई जायेगी।

(7) गर्भपात सुविधा योजना को और मजबूत किया जायेगा।
(8) 14 वर्ष तक बुनियादी शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य किया जायेगा।
(9) विवाह, गर्भावस्था और जन्म-मृत्यु के पंजीकरण को अनिवार्य बनाया जायेगा।
(10) विवाह की न्यूनतम उम्र (लड़की के लिये) 18 वर्ष से बढ़ाकर 20 वर्ष किये जाने का प्रावधान है।
(11) संक्रामक बीमारियों की रोकथाम तथा उन पर नियंत्रण किया जायेगा।
(12) गैर-सरकारी स्वयं सेवी संस्थाओं को इस कार्य से जुड़ने के लिये प्रोत्साहित किया जायेगा।
(13) प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन किया जायेगा।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग 2000 (National Population Commission, 2000)

11 मई, 2000 को दिल्ली में 'आस्था' नामक 'शिशु' (पुत्री) के जन्म के साथ ही भारत की जनसंख्या के एक अरब हो जाने पर भारत सरकार ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में जुलाई, 2000 में राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन किया। इस आयोग में कुल 127 सदस्य है, जिनका प्रमुख उद्देश्य उच्च प्राथमिकता के आधार पर सरकार को जनसंख्या को स्थिर रखने के प्रयासों में ठोस सुझाव देना है।

प्रधानमंत्री इस आयोग के अध्यक्ष तथा श्री के.सी. पन्त इसके उपाध्यक्ष हैं। केन्द्र सरकार के नौ विभागों के मंत्री-वित्त, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, सूचना एवं प्रसारण, पर्यावरण एवं वन, ग्रामीण विकास तथा महिला एवं बाल विकास इस आयोग के सदस्य बनाये गये हैं। इस आयोग के संदर्भित विषय निम्नलिखित हैं -
(i) राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में घोषित लक्ष्यों को प्राप्त करने को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन हेतु दिशा-निर्देश देना तथा समय-समय पर जनसंख्या नियंत्रण के मामले में प्राप्त उपलब्धियों की पुनः परीक्षा करना।

(ii) जनांकिकीय, शैक्षणिक, पर्यावरणीय तथा विकासात्मक कार्यक्रमों के बीच सह-क्रियात्मकता का प्रोन्नयन करना ताकि जनसंख्या स्थिरीकरण की ओर तेजी से बढ़ा जा सके।

(iii) केन्द्र एवं राज्य सरकारों की उन सभी एजेंसियों के बीच अंतर क्षेत्रक समन्वय स्थापित करना जो जनसंख्या नियंत्रण के कार्यान्वयन में लगी है। 22 जुलाई, 2000 को आयोग की बैठक में राष्ट्रीय जनसंख्या स्थिरीकरण कोष के गठन का प्रस्ताव किया गया।

राष्ट्रीय जनसंख्या स्थिरीकरण कोष (National Population Stability Fund) - प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के अमल में सहयोग देने के लिए राष्ट्रीय जनसंख्या स्थिरीकरण कोष (National Population Stability Fund NPSF) तथा एक शक्ति सम्पन्न कार्य समूह बनाने की घोषणा की। उन्होंने कहा कि योजना आयोग को इसके लिये कुछ प्रारंभिक कोष की व्यवस्था करनी चाहिए। इस कोष की धनराशि आरम्भ में 100 करोड़ रूपये होगी। इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने सभी से विशेष तौर पर व्यापार तथा उद्योग जगत से इस कोष के लिए उदारतापूर्वक धन दिये जाने का आह्वान भी किया ताकि इस राष्ट्रीय प्रयास को सभी के सहयोग से सफल बनाया जा सके। जनसंख्या वृद्धि से निपटने के लिये प्रधानमंत्री ने उच्च अधिकार प्राप्त कार्यदल की घोषणा करते हुए कहा कि यह दल उन राज्यों के लिये विशेष तौर पर कार्यक्रम चलायेगा, जो कि जनसंख्या स्थिर करने के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये हैं। साथ ही गर्भ निरोधकों को उपलब्ध कराने तथा जन जागरुकता लाने पर भी विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस कोष का उद्देश्य जनसंख्या स्थिरीकरण परियोजनाओं हेतु वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराना है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. 2001 की जनगणना में औसत वृद्धि दर कितने प्रतिशत थी-

(अ) 1.73 (ब) 1.83 (स) 1.93 (द) 2.03

2. 1999-2001 के बीच भारतीय जनसंख्या में जनघनत्व कितना था-

(अ) 314(ब) 324 (स) 334(द) 344

3. 2001 की जनगणना के अनुसार प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियों का अनुपात कितना है-

(अ) 913 (ब) 923 (स) 933 (द) 943

4. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत का कौन-सा राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश सबसे अधिक साक्षर है-

(अ) दिल्ली (ब) लक्षद्वीप (स) मिजोरम (द) केरल

8.6 सारांश

यह अध्याय भारत की जनसंख्या धरोहर और उससे संबंधित सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय मुद्दों का विश्लेषण करता है। इसमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जनसंख्या की संरचना और विकास का अध्ययन किया गया है। अध्याय में लिंग अनुपात, शहरीकरण, और संसाधनों के असंतुलन जैसे विषयों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। साथ ही, इन समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा, जागरूकता, और नीति-निर्माण की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों पर दबाव और सामाजिक असमानताओं को समझने के लिए यह अध्याय अत्यंत उपयोगी है।

8.7 मुख्य शब्द

1. **जनसंख्या धरोहर:** पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होने वाली सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और जनसांख्यिकीय विशेषताएँ।
2. **लिंग अनुपात:** प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या।
3. **जनसांख्यिकी:** जनसंख्या की संरचना और विशेषताओं का अध्ययन।
4. **संरचना:** किसी वस्तु या समूह का विन्यास, जैसे–जनसंख्या में आयु, लिंग, और सामाजिक वर्ग का वितरण।

8.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (स), 2. (ब), 3. (स), 4. (द)।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. अशोक मित्रा - "इंडिया'स पॉप्युलेशन: एस्पेक्ट्स एंड पॉलिसीज" (1978)।
2. अमरजीत सिंह - "डेमोग्राफिक ट्रांसफॉर्मेशन इन इंडिया" (2005)।
3. भारत सरकार - "भारत की जनगणना रिपोर्ट" (2011)।

8.10 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबंधात्मक प्रश्न (Essay type questions)

1. भारत में अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि या जनसंख्या विस्फोट के कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।

Explain causes and results of uncontrolled population in India.

2. भारत में जनसंख्या और परिवार कल्याण कार्यक्रमों की प्रगति और उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

Evaluate the progress and achievements of population and family welfare programmes in India.

3. परिवार कल्याण के मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख कीजिए? इसके निराकरण के उपाय बताइये।

Write obstacles in the family welfare programme? Give solutions for it.

4. भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए।

Evaluate family welfare programmes in India.

5. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति- 2000 की समीक्षा कीजिए।

Criticize the national population policy 2000.

6. जनसंख्या वृद्धि को रोकने के उपायों पर प्रकाश डालिए।

Throw light on the prevention of the population growth.

7. जनसंख्या वृद्धि के क्या परिणाम हैं? इस समस्या का समाधान कैसे किया जा सकता है? \

What results are population growth? How to solve these problems.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer type questions)

1.परिवार कल्याण कार्यक्रम में बाधाएँ।

Obstacles in family welfare programmes.

2.भारत में जनसंख्या नियंत्रण के उपाय।

Remedies to control population in India.

3.परिवार कल्याण की सफलता हेतु सुझाव।

Suggestions for the success of family welfare.

4.भारत में जनसंख्या विस्फोट के कारण।

Causes of increase in population of India.

ब्लॉक - III

इकाई -9
जाति (CASTE)

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 जाति की परिभाषा
9.4 जाति प्रथा की विशेषताएं
9.5 जाति की उत्पत्ति
9.6 जाति के कार्य
9.7 जाति-प्रथा के अकार्य या दोष या हानियाँ
9.8 जाति व्यवस्था में परिवर्तन
9.9 सारांश
9.10 मुख्य शब्द
9.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
9.12 संदर्भ ग्रन्थ
9.13 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज में चाहे वह आदिम हो या आधुनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित किसी न किसी प्रकार का स्तरण (Stratification) पाया जाता है। इस सामाजिक स्तरण के भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। इन आधारों में शिक्षा, पद, आर्थिक स्थिति तथा धर्म का स्थान प्रमुख है। सामाजिक स्तरण के आधार पर सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण तो होता ही है, साथ ही, इसके आधार पर समाज में सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना भी होती है। प्रत्येक समाज इसी तथ्य पर टिका

है कि सामाजिक व्यवस्था स्थायी रहे। सामाजिक व्यवस्था के स्थायी रहने के लिए यह आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पद (Status) निश्चित हों। साथ ही सभी व्यक्तियों को अपनी भूमिका (Role) की भी जानकारी हो। जाति हिन्दू समाज की वह व्यवस्था है जिसके आधार पर व्यक्तियों के पदों और कार्यों का निर्धारण होता है

9.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का इतिहास और इसकी संरचना को समझना।
2. जाति आधारित भेदभाव और इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. जाति प्रथा को समाप्त करने और सामाजिक समानता स्थापित करने के प्रयासों और नीतियों को जानना।

*9.3 जाति की परिभाषा (***Definition of Caste)**

जाति अंग्रेजी के 'कास्ट' (Caste) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। यह पुर्तगाली शब्द कास्टा (Casta) से निकला है, जिसका अर्थ 'शुद्ध जाति' होता है। इस प्रकार जाति का अर्थ एक विशेष आनुवांशिक सामाजिक समूह से लगाया जाता है, जो कि भोजन और विवाह की अपनी प्रथाओं पर आधारित है। जाति प्रणाली भारत की अद्भुत विशेषता है। जब सामाजिक स्तरीकरण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर होता है तो उसे जाति कहते हैं इसकी सदस्यता जैवकीय उत्तराधिकार से निश्चित होती है अनेक विद्वानों ने जाति की परिभाषा दी है। इन परिभाषाओं में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं

1. **मजूमदार और मदन**- "जाति एक बन्द वर्ग है।"।

2. **कूले**- "जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रमण पर आधारित होता है तो हम इसे जाति कहते हैं।"2

3. **हावेल -** "अन्तर्विवाह और वंशानुक्रमण द्वारा प्रदत्त पद की सह से सामाजिक वर्गों को जमा देना ही जाति है।"3

4. **रिजले-** "यह परिवारों या परिवारों के समूहों का संकलन है जिनका एक सामान्य नाम होता है, अपने को किसी 'काल्पनिक पूर्वज' मानव अथवा दिव्य के वंशज बतलाते है, जो एक से आनुवांशिक व्यवसाय करने का दावाकरते हैं, जो उन लोगों के द्वारा, जो अपना मत प्रदर्शित करने के योग्य हैं, एक ही समुदाय के समझे जाते हैं।"4 संक्षेप में, "जाति वंशानुगत व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो परम्परागत व्यवसाय करते हैं तथा जातीय नियमों और निषेधों का पालन करते हैं।"

*9.4 जाति प्रथा की विशेषताएं (*Characteristics of Caste System)

विभिन्न विद्वानों ने जाति-प्रथा को परिभाषित करते हुए इनकी विशेषताओं का उल्लेख किया है अनेक विद्वानों ने भारतीय जाति प्रथा का गहन अध्ययन किया है तथा इसके कार्यों, गुणों और दोषों की विवेचना की है। इस विवेचना में भी जाति प्रथा की विशेषताओं का उल्लेख है। यहां जाति प्रथा की विशेषताओं को प्रमुख रूप से निम्न दो भागों में विभाजित किया गया है-

(1) जाति प्रथा की विशिष्ट विशेषताएँ (Special Characteristics of Caste System)

इस शीर्षक के अन्तर्गत जाति प्रथा की उन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है जिसका निर्धारण विशिष्ट विद्वानों ने किया है। प्रमुख विद्वानों द्वारा जाति प्रथा की निर्धारित विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(a) डॉ. घुरिये के अनुसार (According to Dr. Ghurye)

(i) संस्तरण व्यवस्था

(ii) समाज का खण्डनात्मक विभाजन

(iii) विभिन्न जातीय वर्ग-समूहों के विशिष्ट अधिकार और उनकी अयोग्यताएं,

(iv) सामाजिक एवं भोजन संबंधी प्रतिबन्ध (

v) जातिगत व्यवसाय और

(vi) वैवाहिक प्रतिबन्ध आदि

(b) केतकर के अनुसार (According to Ketkar)

(i) जन्मजात सदस्यता और

(ii) वैवाहिक प्रतिबन्ध

(c) दत्ता के अनुसार (According to Dutta)

(i) वैवाहिक प्रतिबन्ध,

(ii) भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध,

(iii) निश्चित व्यवसायिक प्रतिबन्ध,

(iv) सामाजिक संस्तरण (इसमें ब्राहाणों की सर्वोच्च स्थिति)

(v) जन्म पर आधारित और

(vi) ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर आधारित एवं केन्द्रित

(2) जाति-प्रथा की सामान्य विशेषताएँ
(General Characteristics of Caste-System)

विभिन्न विद्वानों ने जाति-प्रथा की कुछ विशिष्ट विशेषताओं का उल्लेख किया है जाति-प्रथा की इन विशेषताओं के अतिरिक्त इसकी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं इन विशेषताओं को सामान्य विशेषताओं के शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है। जाति प्रथा की सामान्य विशेवताएँ निम्नलिखित हैं -

(1) जाति एक बन्द वर्ग होने के कारण इनमे परिवर्तन असम्भव है

(2) जाति का आधार अन्तर्विवाह है। कोई भी व्यक्ति जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकता है

(3) अधिकांश जाति के निश्चित व्यवसाय होते हैं। उदाहरण के लिए नाई-बाल काटना, हजामत करना, कुम्हारः घड़े बनाना, बढ़ई : लकड़ी का कार्य अपना वंशगत व्यवसाय समझते है और करते हैं

(4) जाति में श्रेणी प्रणाली अर्थात ऊँच-नीच का भाव होता है, जैसे ब्राह्मण ऊँची जाति और शूद्र निम्न जाति|

(5) शिक्षा तथा वस्त्रों आदि के पहनने आदि के संबंध में भी कुछ नियन्त्रण होते हैं, जैसे शूद्र वेद नहीं पढ़ सकते, ब्राह्मण के माथे पर चन्दन होना चाहिए। यद्यपि ये नियन्त्रण ढीले पड़ रहे हैं|

9.5 जाति की उत्पत्ति (*Origin of Caste)*

जहाँ तक भारतीय जाति-प्रथा की उत्पत्ति का प्रश्न है, यह समाज में प्रचलित अनेक प्रकार की दन्तकथाओं पर आधारित है निश्चित रूप से ऐसा कहना संम्भव नहीं है कि जाति प्रथा के प्रणेता कौन थे? जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रो. सोरोकिन (P.A.Sorokin) का विचार है कि प्रजाति, चयन और वंशगत सम्बन्धी बातें लोगों को बहुत दिनों से ज्ञात थीं। भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में सिद्धांत रूप में इसका प्रतिपादन है कि विभिन्न जातियाँ ब्रह्मा की देह के विभिन्न अंगों से निकली है और उनमें मौलिक अन्तर है फलतः रक्त का सम्मिश्रण या अन्तर्जातीय विवाह या प्रजातियों के बीच किसी प्रकार का सम्पर्क सबसे बड़ा अपराध माना जाता था। प्रत्येक व्यक्ति का समाज में स्तर या दर्जे का निर्धारण माता-पिता के रक्त के आधार पर होता है। प्राचीन समाज में लोगों को प्रजनन तत्व की बातें खूब मालूम थीं और वे उस पर अमल भी करते थे।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बार्न्स और बेकर का विचार है कि यह महत्वपूर्ण है कि भारतीय जाति-व्यवस्था के आधार स्तम्भ चार वर्ण है और चारों वर्णों का तात्पर्य चार रंगों से है यह वर्ण हल्के श्वेत से लेकर गाढ़े कृष्ण तक है। इस व्यवस्था के शीर्ष पर पुरोहित (ब्राह्मण) है जो लगभग 3000 वर्ष ईसा पूर्व भारत पर आक्रमण करने वाले आर्यों के वंशज है।

बेस्टरमार्क ने भी इसी प्रकार के विचारों का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि आर्यों की विजय के पूर्व भारत ने कृष्ण वर्ण के लोगों की आबादी थी। इन कृष्ण वर्ण की वन्यजातियों के प्रति आर्यों को घोर घृणा और शत्रुता थी जिसे उन्होंने अपने तथा पराजित लोगों शूद्रो के बीच तरह-तरह की बाधाएँ खड़ी करके अभिव्यक्त किया है। जाति प्रथा की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों ने जिन प्रमुख सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, वह निम्न हैं -

(**1) परम्परागत सिद्धांत (Traditional Theory**)-जाति-प्रथा की उत्पत्ति से सम्बन्धित यह सबसे प्राचीन सिद्धांन्त है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन जो विद्वान करते हैं उनका तर्क है कि चूंकि जाति प्रथा भारतीय समाज की विशेषता है। अतः इसकी उत्पत्ति से सम्बन्धित ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि भारतीय ग्रन्थों का अवलोकन किया जाये। इस दृष्टि से परम्परागत सिद्धांत को निम्न भागों में विभाजित करके समझा जा सकता है-

(a) वैदिक सिद्धांत भारतीय साहित्य मे वेदों का महत्व सबसे अधिक है वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चार वेद आते हैं इनमें ऋग्वेद का महत्व सबसे अधिक है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त मण्डल 10, सूक्त 90, मन्त्र 11-12 में जाति की विवेचना तो की गई है, किन्तु इसकी उत्पत्ति के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया है। जाति की उत्पत्ति से सम्बन्धित जो श्लोक वेदों से प्राप्त हैं, वह निम्न है

ब्राह्मणों अस्य मुखामार्सीदबाहु राजन्यः कृतः
उरु तदस्य वदवैश्यः पदभ्याम् शूद्रो अजायत ।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि प्रजापति ब्रह्मा ने जातियों की उत्पत्ति की। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों की, भुजाओं से क्षत्रियों की, जंघा से वैश्यों की और पैर से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मा ने इन जातियों की उत्पत्ति संसार की उन्नति के लिए की है।

(b) शतपथ ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण में जाति की उत्पत्ति के बारे निम्न दो बातें बतलाई गई हैं–

(i) जाति की उत्पत्ति "भूः भुवः स्वः" से हुई, और

(ii) देवताओं और असुरों के संघर्ष से वर्गो की उत्पत्ति हुई जो आगे चलकर जाति के नाम से जाने गये।

(c) तैत्तिरीय ब्राह्मण - तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार निम्नलिखित वेदों से वर्षों की उत्पत्ति हुई, जो आगे में परिवर्तित हो गये

(i) सामवेद- ब्राह्मण

(ii) यजुर्वेद- क्षत्रिय

(iii) ऋग्वेद-वैश्य

(d) मनुस्मृति मनुस्मति में जाति की उत्पत्ति के लिए दो बातों का उल्लेख है - ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग किये-पुरुष और स्त्री। इन्हीं से वर्षों और जातियों का विकास हुआ

(i) मुख-ब्राह्मण

(i) बाहु-क्षत्रिय

(iii) पेट-वैश्य

(iv) जंघा-शूद्र

(c) महाभारत महाभारत के शान्तिपर्व में भृगु ने जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि जातियों में कोई अन्तर नहीं है। प्रारंभ में ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की और सभी लोग जन्मजात ब्राह्मण थे। बाद में अपने भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार लोग अलग-अलग जातियों में बंट गये।

(1) गीता श्रीमदभागवत गीता के अनुसार कृष्ण भगवान ने गुण और कर्मों के अनुसार सभी लोगों को चार वर्षों में बाँट दिया, जो आगे चलकर जातियों के रूप में परिवर्तित हो गये ।

(2) व्यावसायिक सिद्धांत (Occupational Theory)-नेसफील्ड (Nesfield) ने जाति-प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में व्यावसायिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि "कार्य और केवल कार्य ही जाति संरचना की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है।" नेसफील्ड के अनुसार कार्य का तात्पर्य व्यवसाय से है। उसका विचार है कि जाति प्रथा का जन्म

व्यवसायों की भिन्नता के कारण हुआ। नेसफील्ड के अनुसार सभ्यता के विकास के साथ ही मनुष्य ने विभिन्न व्यवसायों को अपनाया। व्यवसायों को अपनाने की यह परम्परा समाज में निरन्तर चलती रही। उसका इस सम्बन्ध में तर्क है कि सुविधा और सामाजिक व्यवस्था के कारण बाद में ये व्यवसाय परम्परागत रूप से हस्तान्तरित होने लगे और इन्हीं व्यवसायों के आधार पर जातियों का निर्माण हुआ। नेसफील्ड ने जाति की उत्पत्ति के लिए पुरोहिताई के व्यवहार का उदाहरण दिया है और इसे निम्न आधारों पर समझाने का प्रयास किया है -

(i) पहले इस पर ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं था
(ii) क्षत्रिय भी इस कार्य का सम्पादन करते थे,
(iii) धीरे-धीरे मन्त्रों की जटिलता के कारण यह कार्य जटिल होता गया,
(iv) जिन्होंने इस जटिलता में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली वे ब्राह्मण कहलाये,
(v) उन दिनों यज्ञों का महत्व होने के कारण ब्राह्मणों को प्रतिष्ठा मिली,
(vi) यह रूप आगे वंशानुगत हो गया, और अन्त में जाति का जन्म हुआ।

(3) प्रजातीय सिद्धांत (Racial Theory)-जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रजातीय सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रतिपादन सर हरबर्ट रिजले ने किया था और अनेक विद्वानों ने इसका समर्थन किया था। जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रजातीय सिद्धांत के जो प्रमुख विचारकों के दृष्टिकोण हैं, वे निम्नलिखित है -

(a) रिजले (Risley)- रिजले के अनुसार भारत में जातियों का जन्म निम्न कारणों से हुआ :-

(i)मूल निवासी और बाहर से आने वाले व्यक्तियों में अन्तर होने के कारण जातियों का जन्म हुआ।

(ii) आर्थिक आधार भी जातियों की उत्पत्ति का कारण है। व्यवसायों में भिन्नता के कारण जातियों का जन्म हुआ।

(iii) धर्म में भिन्नता के कारण रहन सहन और विचारों में भिन्नता आई, जिससे अनेक जातियों का जन्म हुआ।

(iv) कुछ विशेष प्रकार के चिन्हों में विश्वास के कारण भी जातियों का जन्म हुआ।
(v) एक स्थान से दूसरे स्थान में निवास करने के कारण भी जातियों का जन्म हुआ।
(vi) रीति रिवाजों में परिवर्तन के कारण भी जातियों का जन्म हुआ ।
रिजले ने लिखा है कि भारत में आने से पहले आर्यों का समाज चार वर्गों मे विभाजित था। विभाजन की यही प्रणाली भारत पर भी लागू की गई फलस्वरूप अनेक जातियों का जन्म हुआ। रिजले ने भारतवर्ष में विभिन्न जातियों की उत्पत्ति के लिये दो कारकों को उत्तरदायी माना है-

(i) प्रजातीय भिन्नता, और(ii) अनुलोम विवाह

(b) डॉ. मजूमदार (Dr. D. N. Majumdar)- डॉ. मजूमदार का विचार है कि प्रजातीय मिश्रण (Racial Mixture) ही भारतवर्ष में जाति प्रथा की उत्पत्ति के मूल में है। मजूमदार के अनुसार भारत में द्रविड रहते थे और आर्य बाहर से आये। ये आक्रमणकारी जब बाहर से आये तो निम्न परिस्थितियों ने उन्हें प्रजातीय मिश्रण के लिए प्रेरित किया -

(i) स्थायी जीवन का आकर्षण
(ii) स्त्रियों की कमी, और
(iii) विकसित द्रविड सभ्यता।

समाज में होने वाले सांस्कृतिक संघर्ष और प्रजातीय सम्पर्क के कारण अनेक अन्तर्विवाही समूहों का जन्म हुआ। अंतर्विवाही समूहों का उददेश्य रक्त की शुद्धता को स्थायी रखना था और यही अन्तर्विवाही समूह कालान्तर में जातियों के रूप में परिवर्तित हो गये। मजूमदार ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "जाति की स्थिति इस बात पर निर्भर है कि उसमें किस परिणाम तक रक्त की शुद्धता है और कहां तक दूसरे सामाजिक समूह में पृथक रह पाया है।"

(c) डॉ. राधाकृष्णन (Dr. Radha Krishnan)- "अनेक प्रजातियों के निरन्तर आक्रमण होते रहे हैं। इसकी विभिन्न प्रजातियाँ संघर्ष और सात्मीकरण की

प्रक्रिया से गुजरी। प्रजातियों की भिन्नता का आधार विशेष रूप से रंग होता है। जैसे ही जैसे प्रजातियों में मिश्रण हुआ, अनेक जातियों का जन्म हुआ।"

(d) डॉ. घुरिये (Dr. G.S. Ghuriye)- डॉ. घुरिये का विचार है कि प्रजातीय मिश्रण नहीं अपितु प्रजातीय पृथक्करण जातियों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है। डॉ. घुरिये के अनुसार, इण्डों-आर्यन प्रजाति के व्यक्ति भारत में तीन वर्गों में विभक्त थे और अन्तर्विवाह के सिद्धांतों पर आधारित थे। जो जहां के आदिवासी थे, उन्हें अपने से अलग रखा तथा उन्हें शूद्र कहने लगे। डॉ. धुरिये का विचार है कि जाति प्रथा इण्डो-आर्यन संस्कृति के ब्राह्मणों का बच्चा है, जो गंगा-यमुना के मैदान में पैदा हुआ है।

(4) धार्मिक सिद्धांत - जाति-प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धार्मिक सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। जिन प्रमुख विद्वानों ने जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धार्मिक सिद्धांत का समर्थन किया है, वे निम्नलिखित है-

(a) सेनार्ट (Senart)- सेनार्ट के अनुसार भोजन सम्बन्धी निषेध जाति-प्रथा की उत्पत्ति के आधार में है। कुल के आधार पर एक समूह के सदस्य अपने देवता को एक विशिष्ट प्रकार का भोजन प्रदान करते थे। इससे समाज में भोजन से सम्बन्धित अनेक प्रकार के समूह बन गये। अपरिचित के साथ खान-पान पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये और ऐसा विश्वास किया गया कि अपरिचित के साथ भोजन करने से पवित्रता समाप्त हो जाती है। अन्तर्विवाह को रक्त की शुद्धता को बनाये रखने के लिए नियम के रूप में स्वीकार किया गया। इस प्रकार रक्तकी शुद्धता और धर्म की पवित्रता दो ऐसे आधार है जिनसे जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई।

(b) होकार्ट (Hocart) होकार्ट के अनुसार भारत वर्ष में देवताओं को चढ़ाई जाने वाली "बलि" जाति प्रथा की उत्पत्ति का मूल कारण है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति पशुओं की हत्या करना उचित नहीं समझता था। अतः इस कार्य के लिए दासों की सेवाएं प्राप्त की जाती थीं। प्राचीन भारत में अनेक प्रकार के धार्मिक कार्य होते थे। इन धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी, जैसे पुरोहित, माली, धोबी, नाई, आदि। प्राचीन काल में

राजा धार्मिक कार्यों को संचालित करते थे और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर अनेक व्यक्ति इस कार्य में अपनी सेवाएं देते थे। इन्हीं सेवाओं के आधार पर समाज में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा स्थापित होती थी जो आगे चलकर जातियों में परिवर्तित हो गई।

(c) राइस (Rice)- राइस का विचार है कि टोटम (Totem) के कारण भारत में विभिन्न जातियों का जन्म हुआ। एक ही टोटम में विश्वास करने वाले व्यक्तियों का समूह कालान्तर में जातियों के रूप में परिवर्तित हो गया। बाद में अनेक नियमों और निषेधों के कारण जाति की धारणा प्रबल हो गई।

(5) राजनैतिक सिद्धांन्त (Political Theory)- इस सिद्धांत के प्रतिपादक अबे डुबोइस (Abbe Dubois)है। इनका कहना है कि भारत में जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ब्राह्मणों की राजनैतिक चाल महत्वपूर्ण है। ब्राह्मणों ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए एक ऐसे सामाजिक संगठन (Social organization) का निर्माण किया, जिसके द्वारा वे अन्य वर्गों का सरलता से शोषण कर सकें। यह संगठन स्थायी रहे इसके लिए क्षत्रियों की शक्ति का सहारा लिया। कालान्तर में समाज का यही संगठन जाति के रूप में परिवर्तित हो गया।

(6) भौगोलिक सिद्धांत (Geographical Theory)- इस सिद्धांत के प्रतिपादक गिलबर्ट (Gilbert) है। उनके अनुसार क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत अत्यन्त ही विशाल देश है। यह विशाल देश भौगौलिक परिस्थितियों- मरुस्थल, पहाड़, नदी आदि के कारण दूसरे से पृथक मालूम पड़ता है। प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं में भिन्नता थी और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न आर्थिक क्रियाएँ करते थे। इसी भौगोलिक पृथकता और आर्थिक भिन्नता के कारण भारतवर्ष में विभिन्न जातियों का जन्म हुआ।

(7) सांस्कृतिक सिद्धांत (Cultural Theory)- जाति-प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हट्टन (Hutton) ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है उसे सांस्कृतिक सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। हट्टन का विचार है कि हम जाति प्रथा की उत्पत्ति को जानना चाहते है तो आदिम संस्कृतियों का अध्ययन करना चाहिये। आज भी हमारे देश में अनेक वन्यजातियाँ हैं, जो दुर्गम प्रदेशों में निवास करती हैं

और उसके जीवन में अत्यन्त ही कम परिवर्तन हुए हैं। इसलिए इन आदिम वन्यजातियों में जाति प्रथा की उत्पत्ति को ढूँढ़ा जा सकता है। हट्टन ने नागा वन्यजाति का उदाहरण दिया है। इस वन्यजाति में गाँवों का स्वरूप एक आर्थिक और राजनैतिक इकाई के रूप में होता है। इस वन्यजाति में यदि एक गाँवों में लोहार है, तो दूसरे में बुनकर। जब एक गाँव का व्यक्ति दूसरे गाँव में जाता है, तो उसे और भी सुविधाएं दी जाती है किन्तु उसे गाँव का व्यवसाय अपनाने नहीं दिया जाता है। इस व्यक्ति को अपने गाँव का पुराना व्यवसाय करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसे गाँव का पुराना व्यवसाय करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह गाँव में भिन्न परिवार बसा कर रहता है। इस प्रकार व्यवसायों की परम्परागत व्यवस्था के कारण भी जाति-प्रथा की उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धांत को माना का सिद्धांत (Theory of manaism) भी कहकर सम्बोधित किया जाता है।

(8) सांस्कृतिक एकीकरण का सिद्धांत (Theory of Cultural Integration)- श्री शरदचन्द्र राय (S.C.Ray) का विचार है कि भारतवर्ष में जाति प्रथा की उत्पत्ति का प्रमुख कारण विभिन्न संस्कृतियों का मिलन और अन्तः क्रिया का परिणाम है। उनके अनुसार विभिन्न संस्कृतियों की जिन विशेषताओं से जाति-प्रथा का जन्म हुआ, वे निम्न है -

(a) इण्डो-आर्यन संस्कृति की विशेषताएँ -

(i) वर्ण व्यवस्था

(ii) कर्म की प्रधानता, और

(ii) शक्ति में विश्वास

(b) द्रविड़ संस्कृति की विशेषताएँ -

(i) व्यावसायिक वर्ग-विभाजन, और

(ii) पुरोहित वर्ग की अलौकिक शक्ति

(c) प्राद्रविण संस्कृति की विशेषताएँ-

(i) सामाजिक व्यवस्था और

(u) आत्मतत्व की प्रधानता।

इन तीनों प्रजातियों की संस्कृतियों में समन्वय का परिणाम यह हुआ कि एक सामाजिक संरचना का निर्माण हुआ। इसी संरचना को जाति के नाम से जाना गया।

(9) उद्विकासवादी सिद्धांत (Evolutionary Theory)- इस सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादक का नाम डैन्जिल इबेट्सन (Denzil Ibbetson) है। इस सिद्धांत को प्रजातीय व्यावहारिक सिद्धांत (Racial Functional Theory) के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार जाति-प्रथा की उत्पत्ति निम्न तीन कारणों से हुई है-

(a) वन्यजातीय उत्पत्ति (Tribal Origin)

(b) व्यावसायिक संघ (Occupational Religion)

(c) पुरोहित धर्म (Levitical Religion)

उपर्युक्त तीनों कारकों के संयोग से जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धांत के अनुसार विकास की प्रारम्भिक अवस्था में में मनुष्य घुमन्तू (Nomadic) जीवन व्यतीत करता था। इस जीवन में किसी प्रकार के व्यवसाय को अपना लिया जाता था। इससे वन्यजाति एक व्यावसायिक संघ के रूप में परिवर्तित हो जाती थी। विकास के साथ ही व्यक्ति व्यावसायिक कुशलता प्राप्त कर लेते थे और अपने व्यावसायिक रहस्य को गुप्त रखने का प्रयास करता थे। आर्थिक जीवन की सुरक्षा के लिए इन व्यावसायिक संघों में प्रभुत्व के लिए संघर्ष हुए और इस संघर्ष में पुरोहित वर्ग की विजय हुई। इस वर्ग में अन्तर्विवाह के द्वारा व्यावसायिक नियमों का कठोरता से पालन किया गया। इसका अनुसरण व्यवसायिक संघों ने भी किया और व्यावसायिक संस्तरण का विकास हुआ। कालान्तर में यही व्यावसायिक संस्तरण जाति-प्रथा के रूप में परिवर्तित हो गया।

(10) बहुकारक सिद्धांत (Multi Factor Theory)- भारत एक विशाल देश है और इसकी परिस्थितियों में अनेक विभिन्नताएँ है। इन विभिन्नताओं के कारण भारत में जाति-प्रथा की उत्पत्ति के किसी एक कारण की बात करना तर्कसंगत नहीं है। हट्टन का विचार है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति किसी एक कारण से नहीं हुई है। इसकी उत्पत्ति में अनेक कारकों का योगदान रहा है। हट्टन ने लिखा है

कि यह गर्व के साथ जोर देकर कहा जा सकता है कि भारतीय जाति-प्रथा भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक कारकों को स्वाभाविक परिणाम है जो सम्मिलित रूप से अन्यत्र नहीं पाये जाते हैं" हट्टन ने भारतवर्ष में जाति-प्रथा की उत्पत्ति के लिए जो अनेक समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष कारण बताये है, वे निम्नलिखित हैं -

(a) भौगोलिक पृथकता,

(b) टोटम, माना, आत्मा, निषेध, आदि का विचार,

(c) वन्यजातीय व्यक्तियों की इस प्रकार की विचारधारा कि भोजन के साथ गुणों का समावेश हो जाता है,

(d) धार्मिक बलि, पवित्रता, आदि के विचार,

(e) पारिवारिक पृथकता और पूर्वजों की पूजा,

(f) कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास,

(g) व्यवसाय आदि से सम्बन्धित जादू-टोने में विश्वास,

(h) परम्परात्मक व्यवसाय और व्यावसायिक रहस्य को गुप्त रखने का विचार,

(i) मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक संस्कृतियों में संघर्ष,

(j) प्रजातीय संघर्ष,

(k) विभिन्न सामाजिक और धार्मिक सुविधाएँ तथा इनसे निर्मित विभिन्न वर्ग,

(l) आर्थिक जीवन और संघों का निर्माण,

(m) जनजातियों की राजनैतिक पृथकता,

(n) एक बुद्धिमान समूह द्वारा अन्य समूह का शोषण करना और इसे ऐसे धार्मिक दर्शन पर आधारित करना कि सब उसे स्वीकर करें।

9.6 जाति के कार्य (Functions of Caste)

आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन में जाति-प्रथा की कितनी ही आलोचना क्यों न की जाय, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारत में जाति प्रथा का उद्भव और विकास कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया

गया होगा। आज जाति प्रथा भले ही निरर्थक प्रतीत हो, किन्तु प्राचीन काल में वह अनेक सामाजिक कार्यों का सम्पादन करती थी तथा इससे समाज में अनेक लाभ होते थे। यही कारण है कि हट्टन ने जाति प्रथा के लाभ या कार्यों की विवेचना की है। जाति प्रथा के प्रमुख लाभ या कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है -

(1) व्यक्तिगत दृष्टिकोण से (From Individual Point of View) विल्सन ने व्यक्ति के जीवन में जाति-प्रथा को उपयोगी माना है। उनका कहना है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक जाति प्रथा व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण कार्य करती है। इसी प्रकार हट्टन ने भी लिखा है कि जाति कुछ घटनाओं से समुदायों के लिए सामाजिक स्तर पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का भी कार्य कर सकती है। व्यक्तिगत जीवन में जाति के प्रमुख कार्य या लाभ निम्नलिखित है-

(**a) सामाजिक सुरक्षा**- जाति प्रथा अपने सदस्यों की सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा की जिम्मेदारी लेती है। जब भी जाति के किसी सदस्य पर किसी भी प्रकार का संकट आता है तो उस जाति के अन्य सदस्य संकट की घड़ी में उस व्यक्ति की मदद करते हैं, जो संकटग्रस्त होते है। सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के कारण ही जाति-प्रथा को श्रमिक संघ (Trade Union) की संज्ञा दी गई है। इसके साथ ही जाति अनेक प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग के कार्य का भी संचालन करती है। इस प्रकार एक व्यक्ति जाति का सदस्य होने के कारण सामाजिक दृष्टि से अपने को सुरक्षित समझता है।

(b) मानसिक सुरक्षा व्यक्ति की दृष्टि से जाति-प्रथा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करना। हट्टन ने लिखा है कि "जातिप्रथा से समाज के सभी कार्य सुचारु रूप से चलते हैं। विभिन्न जातियों के सदस्य इन कार्यों को धार्मिक कर्तव्य समझ कर करते हैं। सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार इस जन्म में उन्हें अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार समाज की सेवा करनी है।" जाति-प्रथा में अनेक व्यक्ति के कार्य पूर्व निर्धारित होते हैं। व्यक्ति को यह पहले से ही ज्ञात रहता है कि उसे किस समूह में विवाह करना है, कौन कौन से संस्कारों का सम्पादन करना है तथा

किस प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक कार्यों का सम्पादन करना है।

(c) व्यवहारों पर नियन्त्रण प्रत्येक जाति के निश्चित नियम और सामाजिक निषेध होते हैं। जातीय नियम जहाँ व्यक्तियों को कुछ कार्यों को सम्पादित करने का निर्देश देते हैं, वहीं दूसरी ओर जातीय प्रतिबन्ध व्यक्ति के कर्मों को नियन्त्रित करते हैं। खानपान, धार्मिक संस्कार, सामाजिक व्यवहार तथा व्यवसाय आदि के निर्धारण में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। श्री मजूमदार और मदान ने लिखा है कि "एक स्थायी वातावरण अथवा अवस्था के अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए जाति व्यक्ति की प्रतिरक्षा की प्रमुख व्यवस्था है, जो उनकी परिवर्तनशील क्षमताओं पर आधारित नहीं है।"

(d) स्थिति का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति की समाज में एक निश्चित स्थिति होती है। मुक्त समाजों में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण कार्य के आधार पर होता है। जाति व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण जन्म के आधार पर करती है। जाति के द्वारा व्यक्ति को जो सामाजिक स्थिति प्रदान की जाती है, वह अत्यन्त ही स्थायी होती है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण या शूद्र के परिवार में जन्म लिया व्यक्ति आजीवन ब्राह्मण या शूद्र कहलायेगा । इसका प्रमुख कारण यह है कि जाति की सदस्यता का आधार जन्म (Birth) होता है, जिसे कभी बदला नहीं जा सकता है। आधुनिक भारतीय समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में है। इस परिवर्तन के कारण यद्यपि जन्मजात स्थिति में कुछ परिवर्तन आये ये हैं किन्तु आज भी जातीय स्थिति का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। हट्टन ने लिखा है कि "जाति जन्म से ही अपने सदस्यों की सामाजिक स्थिति को निश्चित करती है जिसे न सम्पत्ति, न दरिद्रता, न सफलता और न किसी प्रकार की विपदा ही हटा सकती है, जब तक वह जाति के किसी नियम को नहीं तोड़ता है।"

(c) व्यवसाय का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति के व्यवसाय जन्म से ही निश्चित होते हैं। इसके साथ ही साथ बालक का समाजीकरण एक निश्चित व्यावसायिक पर्यावरण में होता है। इसका परिणाम यह होता है कि बालकों को एक निश्चित व्यवसाय के बारे में स्वतः जानकारी हो जाती है तथा उसे इस व्यवसाय की

तकनीकी जानकारी प्राप्त करने के लिए किसी प्रशिक्षण संस्था में जाना नहीं पड़ता है। व्यवसाय की इस परम्परा प्रकृति के कारण भी थोड़ा प्रयास करने पर व्यक्ति अपने व्यवसायों में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। (f) जीवन साथी का चुनाव व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जीवन साथी का चुनाव करना जाति- प्रथा का मौलिक कार्य है। जाति में वैवाहिक प्रतिबन्ध पाये जाते हैं। इन प्रतिबन्धों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करने की अनुमति होती है। प्रत्येक जाति का वैवाहिक समूह निश्चित होने के कारण व्यक्ति को अपने जीवन साथी के चुनाव में काफी भाग-दौड नहीं करनी पडती है। यद्यपि आज अन्तर्जातीय विवाह हो रहे है, किन्तु इनकी संख्या अत्यन्त ही कम है।

(2) सामुदायिक दृष्टिकोण से (From Community Point of View) जाति प्रथम स्तर में व्यक्ति के लिए कार्य करती है। दूसरे स्तर में जाति का सामुदायिक दृष्टिकोण से महत्व है। जातीय समुदाय की दृष्टि से जाति जिन कार्यों का सम्पादन करती है, वे निम्नलिखित हैं -

(a) संस्कृति की रक्षा- श्री हट्टन का विचार है कि जाति संस्कृति की दृष्टि से दो महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है -

(i) प्रत्येक जाति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। इसके अंतर्गत उस जाति की जीवन पद्धति, कुशलता, ज्ञान और व्यवहार की विधियों को सम्मिलित किया जाता है, और

(ii) प्रत्येक जाति अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है। इस प्रकार जाति उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर जातीय समुदाय से संस्कृति की रक्षा करती है।

(b) धर्म की रक्षा प्रत्येक जाति की अपनी धार्मिक भावनाएं, विचार और धार्मिक पद्धतियां होती है। श्री देसाई ने लिखा है कि "यह जाति ही है, जो जनता के धार्मिक जीवन में अपने सदस्य की स्थिति को निश्चित करती है।" जाति अपनी धार्मिक विधियों और भावनाओं की रक्षा करती है। प्रत्येक जाति के अपने धार्मिक प्रतिमान भी होते है, जाति इन धार्मिक प्रतिमानों की भी रक्षा करती है।

(c) रक्त की शुद्धता प्रत्येक जाति अपने सदस्यों में रक्त की शुद्धता (Purity of Blood) को बनाये समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष रखने का भी प्रयास करती है। आज के इस वैज्ञानिक युग में रक्त की शुद्धता जैसी अवधारणा का कोई मूल्य नहीं है, फिर भी जाति अपने दृष्टिकोण से अन्य जातियों के साथ सम्मिश्रण को बचाने का प्रयास करती है। वैवाहिक दृष्टिकोण से भी जाति का अपना महत्व है। सामाजिक दृष्टिकोण से अन्य जातियों के साथ सम्मिश्रण को बचाने का प्रयास करती है। वैवाहिक प्रतिबन्धों की सहायता से जाति रक्त की शुद्धता को बनाये रखती है।

(3) सामाजिक दृष्टिकोण से (From Social Point of View) -जाति व्यवस्था सिर्फ अपने व्यक्तियों और समुदाय के लिए ही कार्य नहीं करती, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी जाति का अपना महत्व है। सामाजिक दृष्टिकोण से जाति निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करती है-

(a) श्रम-विभाजन की व्यवस्था जाति समाज का जन्मगत विभाजन है। प्रत्येक जाति के निश्चित कार्य और व्यवहार होते हैं। जाति प्रथा कर्म की भावना के आधार पर इन कार्यों की संचालित करने में सहायक होती है। भारतीय जाति व्यवस्था से पुनर्जन्म और कर्मफल की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। सभी व्यक्ति अपने कार्यों को अपना अनिवार्य कर्तव्य समझकर करते हैं। इस प्रकार श्रम विभाजन की व्यवस्था द्वारा समस्त कार्यों का संचालन होता रहता है।

(b) सामाजिक उन्नति जाति व्यवस्था समाज के विकास और प्रगति में भी सहायक है। सामाजिक प्रगति की दृष्टि से जाति निम्न दो महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है-

(i) समाज के प्रत्येक सदस्यों के कार्यों का निर्धारण करना और इस प्रकार जातीय सदस्यों को मानसिक निराशा और अन्तर्द्वन्द से मुक्ति दिलाना, तथा

(ii) सामाजिक एकता और संगठन को बनाये रखना ।

(c) समाजवादी व्यवस्था की स्थापना डॉ. भगवानदास ने जाति प्रथा को अतीत काल के प्रचलित वैज्ञानिक समाजवाद की संज्ञा दी है। जाति- प्रथा सिर्फ व्यवसाय का ही निर्धारण नहीं करती, अपितु धर्म, विवाह, शिक्षा, मित्रता, व्यक्तिगत स्थान

आदि का भी निर्धारण करती है। व्यक्ति को एक ओर जहां स्थायी संस्था का सदस्य बनाती है, वहीं दूसरी ओर उसे अपूर्ण आकांक्षा और सामाजिक ईर्ष्या जैसे सामाजिक व्याधियों (Social Pathologies) से भी मुक्ति दिलाती है। जाति के सदस्यों में सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समानताएं पायी जाती है। इन समानताओं के कारण प्रजातान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) की स्थापना में मदद मिलती है।

(d) शिक्षा और प्रशिक्षण की स्थापना जाति-प्रथा सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था में सहायक है। जाति अपने सदस्यों की मनोवृत्ति (Attitudes) का निर्धारण करती है। जाति-प्रथा इस तथ्य का भी निर्धारण करती है कि व्यक्ति को किस प्रकार की शिक्षा मिलेगी। उदाहरण के लिये ब्राह्मण सन्तान को धर्म पर आधारित शिक्षा तथा वैश्य सन्तान को व्यापार और वाणिज्य पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था करना। इसके साथ ही साथ जाति अपने सदस्यों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने की आधारशिला है।

(e) सुप्रजनन की शुद्धता जाति सुप्रजनन की शुद्धता (Purity of genetics) को भी निर्धारित करती है। सेजविक (Sedgwick) ने लिखा है कि जाति प्रथा में वैवाहिक निषेध पाये जाते हैं। इन वैवाहिक निषेधों के कारण किसी भी जाति के सदस्य को अपनी जाति से बाहर विवाह करने की अनुमति नहीं होती है। यही कारण है कि जाति समूह में वंशानुगत दोष नहीं हो पाते हैं।

(f) राजनैतिक स्थिरता - जाति-प्रथा देश में राजनैतिक स्थिरता की स्थापना में महत्वपूर्ण कार्य करती है। यदि हम भारतीय इतिहास के पन्नों पर नजर डाले तो स्पष्ट होता है कि यहाँ अत्यन्त ही प्राचीन काल से विदेशियों के आक्रमण होते आये हैं। मुसलमान और अंग्रेज इसके ज्वलन्त उदाहरण है। भारत में इसकी संस्कृति की रक्षा करने में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इसी ने भारतीय संस्कृति को नष्ट होने से बचाया है और इस प्रकार राजनैतिक एकता को स्थायी रखने में मदद की है। अबे डुबोइस (Abbe Dubois) ने लिखा है कि जब यूरोप बर्बरता में डूबा था, उस समय भी भारत का मस्तक ऊँचा था तथा भारत ने उस समय भी कला, विज्ञान और संस्कृति का विकास तथा संरक्षण किया था। इन

सबका श्रेय श्री डुबोइस ने भारतीय जाति-प्रथा को दिया है। इसीलिए श्री हिल ने "जाति-प्रथा को एक ऐसी सामाजिक प्रथा माना है, जिसका आधार दैवीय शक्ति से भी दृढ़ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जाति-प्रथा ने हिन्दू समाज के विकास और संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जाति-प्रथा ने विभिन्न सामुदायिक संगठनों को एक सूत्र में बाँधा, तथा सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को स्थायीबनाया। जाति-प्रथा ने जहाँ विभित्र समूहों को एकता के सूत्र में बाँधा, वहीं जातीय प्रतिस्पा और संघर्ष को भी समाप्त किया है। जाति-प्रथा ने श्रम-विभाजन को सरल बनाकर व्यक्तियों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का बोध कराया है।

9.7 जाति-प्रथा के अकार्य या दोष या हानियाँ (*Dysfunctions or Demerits or Disadvantages of Caste System)*

भारत वर्ष में जाति-प्रथा के भले ही अपने लाभ रहे हों तथा यह व्यक्तिगत, सामुदायिक तथा सामाजिक दृष्टि से कितनी ही उपयोगी क्यों न रही हो, वर्तमान भारत की बदलती हुई परिस्थितियों में जाति-प्रथा देश के लिए वरदान की अपेक्षा अभिशाप बन गई है। यही कारण है कि जाति-प्रथा के कारण देश को अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। डॉ. राधाकृष्णन ने ठीक ही लिखा है कि "दुर्भाग्यवश यही जाति- प्रथा जिसे सामाजिक संगठन को नष्ट होने से बचाने के लिए साधन के रूप में विकसित किया गया था, आज उसकी उन्नति में बाधक बन रही है।" भारतीय संविधान के निर्माता तथा स्वतन्त्र भारत के प्रथम विधिमन्त्री डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा है कि भारतीय सभ्यता को अत्यन्त कठिनता के साथ सभ्यता कहा जा सकता है। इसलिये रिजले ने जाति-प्रथा को निम्न स्तर का संगठन कहा है, जो विभक्त होकर उत्पन्न होती है विकास के प्रत्येक पग पर उन्नति की शक्ति को या उसी को या उसी कार्य शैली को जिसे वह मानने को कहती है, घटाती है। जाति-प्रथा के प्रमुख अकार्य, दोष या हानियाँ निम्नलिखित हैं-

(1) सामाजिक दृष्टिकोण से (From social point of view) -सामाजिक दृष्टिकोण से जाति-प्रथा के प्रमुख दोष निम्नलिखित है -

(a) सांस्कृतिक उन्नति में बाधा जाति-प्रथा अनेक विभाजन और ऊँच-नीच की भावना पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था है। प्रत्येक जाति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती है। ये सांस्कृतिक विशेषताएँ एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इस भिन्नता के कारण सांस्कृतिक एकता की स्थापना में कठिनाई होती है। इस भेदभाव और भिन्नता के कारण एक समूह दूसरे समूह से अलग हो जाता है, उनमें सामाजिक दूरी का विकास हो जाता है। अनेक अवसरों पर सांस्कृतिक समूहों से घृणा और द्वेष की भावना का विकास हो जाता है। यह भावना एक दूसरे की संस्कृति को समाप्त करने का प्रयास करती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि देश की संस्कृति की उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है।

(b) धर्म-परिवर्तन- जाति प्रथा के कारण धर्म-परिवर्तन को प्रोत्साहन मिलता है। निन्न दो कारण धर्म- परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं -

(i) कठोर जातीय प्रतिबन्ध, और
(ii)उच्च जातियों का अहम तथा अत्याचार।

जाति-प्रथा ने निम्न जातियों की स्थिति को अत्यन्त ही दयनीय बना दिया है तथा उन्हें अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अयोग्यताओं का सामना करना पडता है। इस कठोरता के कारण हजारों हिन्दूओं ने अपने धर्म को त्याग कर ईसाई और मुसलमान धर्म को स्वीकार कर लिया है। इससे जहाँ एक ओर जातीय संगठन शिथिल होता है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता में भी बाधा उत्पन्न होती है।

(c) अस्पृश्यता को प्रोत्साहन जाति प्रथा के कारण अस्पृश्यता को भी प्रोत्साहन मिलता है। हिन्दू समाज की यह अस्पृश्यता अत्यन्त ही अमानुषिक है जो मानव-मानव में भेद तथा शोषण पर आधारित है। अस्पृश्यता में सिर्फ छूने का ही निषेध नहीं है, अपितु इसमें अप्रवेश्यता और अदर्शनीयता के नियम भी पाये जाते हैं। जाति- प्रथा ने जिस थोड़े आदर्शों का प्रतिपादन किया है, उसने समाज के नागरिकों को अनेक अधिकारों और कर्तव्यों से वंचित कर दिया है। इसका

परिणाम यह होता है कि मानव समाज में घृणा और द्वेष का बीजारोपण होता है।

(**d) स्त्रियों की निम्न स्थिति** भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा के लिए जाति-प्रथा को दोषी हराया जा सकता है। इसका कारण यह है कि जाति प्रथा ने भारतीय समाज में नागरिकों के जीवन में अनेक कठोर प्रतिबन्धों का प्रतिपादन किया है। इन प्रतिबन्धों में बाल-विवाह, अशिक्षा, दहेज प्रथा और विधवा विवाह पर रोक आदि प्रमुख है। इन प्रतिबन्धों ने भारतीय समाज में नारी के व्यक्तित्व को कुण्ठित कर दिया है। इन प्रतिबन्धों ने जहाँ एक ओर स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न की है, वहीं दूसरी ओर उन्हें आर्थिक दृष्टि से पराश्रित भी बनाया है। इन प्रतिबन्धों के कारण स्त्री पति की दासी, चूल्हा फूकने वाली, घर की चारदीवारी में बन्द बच्चे पैदा करने की यन्त्र मात्र बनकर रह गयी है।

(f) उच्च जाति की तानाशाही जाति प्रथा भारतीय सामाजिक स्तरीकरण की वह व्यवस्था है, जिसमें उच्च जाति के सदस्यों को अनेक प्रकार के विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं। समाज में जब किसी वर्ग-विशेष को विशेष अधिकार प्रदान किये जाते हैं, तो उनका परिणाम समाज के सामने निम्न वर्ग के साथ अन्याय के रूप में प्रकट होता है। जाति-प्रथा ही वह कारण है जिसने निम्न जाति के सदस्यों को पशुत्व जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया है। समाज में "देवदासी" नामक कुप्रथा का प्रचलन उच्च जाति के सदस्यों के कुकर्मों का ही परिणाम है।

(g) भाग्यवाद को प्रोत्साहन जाति-प्रथा ने भाग्यवाद और कर्मफल जैसे सिद्धांतों का प्रतिपादन करके मानव समाज के एक भाग को अकर्मण्य और निठल्ला बना दिया है। यही कारण है। कि भारतीय समाजवाद रुढिवाद, परम्परा और अन्धविश्वास का शिकार है। जाति-प्रथा में सभी व्यक्तियों के कार्य और व्यवसाय पूर्व-निर्धारित होते हैं तथा उनका एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरण होता रहता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति के प्रयासों को कोई खास महत्व नहीं दिया जाता है। यह व्यवस्था व्यक्ति को आलसी बनाती है तथा सारा समाज भाग्यवाद के शिकंजे में जकड़ जाता है।

(h) सामाजिक समस्याओं का जन्म जाति प्रथा अनेक कठोर प्रतिबन्धों पर आधारित है। इन प्रतिबन्धों में अन्तर्विवाह प्रमुख है। इस प्रतिबन्ध के कारण विवाह की अनेक समस्याओं का जन्म होता है। इस समस्याओं में बाल-विवाह, विधवा-विवाह पर रोक, कुलीन विवाह तथा दहेज-प्रथा प्रमुख है। कुलीन विवाह की प्रथा के कारण माता-पिता अपनी कन्या का विवाह कुलीन परिवार में करना चाहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कुलीन परिवार के "वर" की माँग बढ़ जाती है। मांग अधिक हो जाने से तथा पूर्ति के साधन सीमित होने के कारण दहेज प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है। दहेज प्रथा बाल-विवाह को प्रोत्साहित करती है। उपर्युक्त समस्याएं अनेक, सामाजिक बुराइयों को जन्म देती है। इन बुराइयों के कारण हिन्दू समाज में विघटनकारी शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती है।

(i) प्रगति में बाधक प्रजातन्त्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता सामाजिक प्रगति के आधार स्तम्भ है। निश्चित रूप से जाति प्रथा अप्रजातान्त्रिक व्यवस्था है, जो भेदभाव पर आधारित है। जाति प्रथा जीवन को रुढ़िवाद और परम्परा की ओर ले जाती है। इसके साथ जीवन में अनेक प्रतिबन्धों का प्रतिपादन करती है। इससे सदस्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नये जीवन आदर्शों का पालन नहीं हो पाता है। जातीय संस्तरण की व्यवस्था सदस्यों में भेदभाव को विकसित करती है। उपर्युक्त दुर्गुणों को कारण जाति प्रथा भारतीय समाज को दुर्गुणों से भर देती है। इससे समाज की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।

(2) आर्थिक दृष्टिकोण से (From economic point of view) आर्थिक दृष्टिकोण से जाति प्रथा के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

(a) कृषि की उन्नति में बाधक जाति प्रथा और कृषि भारतीय परम्परात्मक ग्रामीण समाज की आधारशिलाएँ है। जाति प्रथा की परम्परात्मक प्रकृति ने कृषि की प्राचीन पद्धति को प्रोत्साहित किया है। खाद को अपवित्र मानकर इसका उचित रूप से उपयोग नहीं किया जाता है। इसके साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण भी खेती की उन्नत विधियों को नहीं अपनाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कृषि की उन्नति नहीं हो पाती है। कृषि की उन्नति न होने से देश का आर्थिक विकास नहीं हो पाता है।

(b) श्रम की गतिशीलता मे बाधक जाति निश्चित व्यवसायों पर आधारित है जो परम्परात्मक रूप से एक पीढी से दूसरे पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। जातीय प्रतिबन्धों के कारण व्यक्ति जातीय व्यवसायों का बहिष्कार नहीं कर सकते हैं। इसमें व्यक्ति जहाँ एक ओर गतिहीन एवं रुढिवादी हो जाता है, वहीं दूसरी ओर उसमें नवीन आविष्कारों के प्रति बाहरी प्रेरणा समाप्त हो जाती है। जाति व्यक्ति की योग्यता को महत्व प्रदान नहीं करती है। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य व्यक्तियों की जीवन के प्रति उच्च आकांक्षाएँ समाप्त हो जाती है। इस प्रकार जाति प्रथा श्रम की गतिशीलता में सबसे बड़ी बाधा है।

(c) श्रम की कुशलता में बाधक जाति प्रथा जहाँ एक ओर श्रमिकों में गतिशीलता की भावना को समाप्त करती है, वहीं दूसरी ओर श्रमिकों की व्यावसायिक कुशलता में भी बाधा उपस्थित करती है। जाति प्रथा अपने प्रतिबन्धों पर आधारित है। भारत एक निर्धन देश है। यहाँ श्रमिकों को पर्याप्त मात्रा में दूध, घी नहीं मिल पाते है। इसके साथ ही जाति के अनेक सदस्यों को भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध के द्वारा अण्डा, माँस आदि खाने पर प्रतिबन्ध लगाती है। इससे श्रमिकों का स्वास्थ्य गिर जाता है, जिससे उनकी कार्यकुशलता पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

(d) आर्थिक प्रगति में बाधक जाति प्रथा देश की आर्थिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। जाति प्रथा प्रतिबन्धात्मक श्रम विभाजन पर आधारित है। इसमें आर्थिक गतिशीलता एवं प्रगति को कोई स्थान नहीं है।

देश कुलीन श्रमिक के श्रम से वंचित रह जाता है। जाति प्रथा ने देश को अलग अलग समूहों में बाँट कर सामुदायिक भावना को समाप्त किया है। जाति प्रथा के कारण देश के सभी नागरिकों को एक साथ आर्थिक विकास की ओर सोचने का मौका नहीं मिलता। जातीय भावना पक्षपात और जातीय हितों को प्रोत्साहित करती है। अनेक औद्योगिक संस्थान ऐसे हैं, जहाँ जाति के आधार पर व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। इससे आर्थिक प्रगति रुकती है तथा देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(3) राजनैतिक दृष्टिकोण से (From Political Point of View) राजनैतिक दृष्टिकोण से जाति प्रथा के निम्नलिखित दोष है -

(a) राष्ट्रीयता में बाधक जाति प्रथा में ऊंच और नीच की भावना होती है, जिससे व्यक्ति विभिन्न संस्तरणों मे विभाजित हो जाते हैं। यह संस्तरण एक व्यक्ति को दूसरे से अलग कर देता है जिससे सदस्यों में भेदभाव की भावना का विकास हो जाता है। इससे सदस्यों में हम की भावना (We Feeling) का विकास नहीं हो पाता है। देश खण्डों तथा उपखण्डों में विभाजित हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय एकता और समानता की भावना का विकास नहीं हो पाता है। यही कारण है कि जाति प्रथा सुसंगठित राष्ट्रीयता के विकास
में बाधा उत्पन्न करती है।

(b) राजनैतिक एकता में बाधक जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जातिप्रथा समाज को खण्डों और उपखण्डों विभाजित कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि राजनैतिक एकता समाप्त हो जाती है। यही वह विभाजन था, जिसका लाभ उठाकर विदेशियों ने शताब्दियों तक देश को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखा। आज भी भारत में जातिप्रथा के दुष्परिणामों को देखा जा सकता है।

(c) प्रजातन्त्र के विकास में बाधक वास्तव में जाति प्रथा और प्रजातन्त्र दो विरोधी आदर्शों पर आधारित अवधारणाएं है। प्रजातन्त्र स्वतन्त्रता, समानता और भाई-चारे पर आधारित शासन व्यवस्था है। जाति प्रथा इन आदर्शों को कोई महत्व नहीं देती है। जाति प्रथा में जहाँ एक ओर भोजन, व्यवसाय और वैवाहिक प्रतिबन्ध है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से असमानतायें हैं। इनसे जातीय सदस्यों के बीच घृणा और द्वेष की भावना का विकास होता है। इन परिस्थितियों में जाति और प्रजातन्त्रीय आदर्श मात्र कोरी कल्पना प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार जाति प्रथा अनेक गम्भीर बुराइयों से ओत प्रोत है। इन बुराइयों के कारण जहाँ एक ओर समाज का वातावरण दूषित होता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक संगठन भी शिथिल होता है। जाति प्रथा भले ही अनेक बुराइयों से परिपूर्ण हो, किन्तु इसे एक झटके में समाप्त नहीं किया जा सकता है। शायद

ऐसा करना भी अत्यन्त ही कठिन कार्य होगा। जाति प्रथा में अनेक दोषों के बावजूद भी व्यावसायिक सुरक्षा तथा श्रम-विभाजन जैसे सिद्धांतों को स्थान प्रदान किया गया है। यही कारण है कि हट्टन (Hutton) ने जाति प्रथा को उपयोगी कहा है। फिर भी आज इसमें अनेक बुराइयों का समावेश हो गया है, जिसको समाप्त करना देश के हर नागरिक का मौलिक कर्तव्य होना चाहिए तथा इस कार्य को अत्यन्त ही पवित्र भावना से सम्पादित किया जाना चाहिए।

9.8 जाति व्यवस्था में परिवर्तन *(Changes in Caste System)*

अनेक शताब्दियों में जाति प्रथा भारतीय समाज और संस्कृति के आधार में रही है। इससे यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गयी। वर्तमान भारतीय जीवन में परिवर्तन हो रहे हैं। इस परिवर्तनों के कारण जाति प्रथा के परम्परात्मक स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। यही कारण है कि समकालीन भारतीय समाज में जाति प्रथा की वर्तमान प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हो रही है। समकालीन भारतीय समाज में जाति में जो प्रमुख परिवर्तन हो रहे हैं, वे निम्नलिखित है -

(1) जातीय प्रभुत्व में कमी- जाति प्रथा जातीय प्रभुत्व पर आधारित होती है। इसमें कुछ जातियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए भारतीय जाति संरचना में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भले ही ब्राह्मणों की प्रभुता में कम परिवर्तन हुए हों, किन्तु नगरीय जीवन में इस प्रभुता में गिरावट आई है। समकालीन भारत में जातीय प्रभुत्व में यह कमी निम्न कारणों से आई है-

> (a) औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, (b) प्रजातन्त्रीकरण एवं धर्मनिरपेक्षीकरण, (c) फैशन और आधुनिकता, (d) देश की आर्थिक संरचना में परिवर्तन, तथा नये वर्गों का उदय।

(2) जातीय प्रतिबन्धों में गिरावट- जाति प्रथा की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है जाति प्रथा के प्रतिबन्धों समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष में गिरावट का होना। जाति प्रथा के जिन प्रतिबन्धों में गिरावट आई है वे निम्नलिखित है-

(a) वैवाहिक प्रतिबन्धों में गिरावट-समकालीन भारतीय समाज में निम्न वैवाहिक परिवर्तन हो रहे है-

(1) विवाह के पवित्र आधार में परिवर्तन, (2) अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन,

(3) प्रेम-विवाह की ओर अधिक रुझान, (4) पुनर्विवाह में वृद्धि, (5) विलम्ब विवाह, और

(6) अविवाह की ओर प्रवृत्ति।

(b) व्यावसायिक प्रतिबन्धों में गिरावट जाति का दूसरा महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध निश्चित व्यवसाय का होना है। ये निश्चित व्यवसाय वंश-परम्परागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते थे। समकालीन भारतीय सामाजिक जीवन में निम्न व्यावसायिक परिवर्तन हो रहे है

(1) धन के प्रति अधिक लगाव, (2) परम्परात्मक व्यवसायों के प्रति उदासीनता,

(3) कृषि की उन्नति, (4) नये व्यवसायों का जन्म और (5) औद्योगीकरण तथा नवीनीकरण।

व्यावसायिक संरचना में उपर्युक्त परिवर्तन के कारण व्यवसाय सम्बन्धी प्रतिमानों में परिवर्तन हो रहे है।व्यवसाय में इन परिवर्तनों के बावजूद भी जाति के व्यावसायिक संरचना में आमूल परिवर्तन नहीं हुए हैं। डॉ. योगेश अटल ने इस प्रकार का अध्ययन किया था। मध्य प्रदेश और राजस्थान के गाँवों का अध्ययन करने के बाद उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि परम्परागत व्यवसायों को छोड़ने के उदाहरण नहीं मिले हैं।

(c) भोजन-निषेधों में परिवर्तन प्रत्येक जाति के भोजन सम्बन्धी निश्चित नियम और निषेध होते थे। किन्तु समकालीन भारतीय समाज में इन निषेधों के महत्व में भी कमी होती जा रही है। नगरीकरण और औद्योगीकरण ने नई सामाजिक परिस्थितियों को जन्म दिया था। होटल और जलपान गृहों के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। सहभोज और प्रीतिभोज निरन्तर लोकप्रिय होते जा रहे है। इन परिस्थितियों के कारण जाति के भोजन सम्बन्धी निषेध भी शिथिल हो रहे है।

(3) जाति पंचायत के महत्व में कमी- भारत में प्रत्येक जाति की अपनी जातीय पंचायत होती थी। इसे बिरादरी पंचायत के नाम से जाना जाता था। पंचायतें आदिकाल से जातीय झगडों का निपटारा करती आ रही थी। आज जातीय पंचायतों के महत्व में कमी होती जा रही है। जातीय नियम और कानून शिथिल होते जा रहे है। न्यायालयों के विकास के कारण जातीय फैसलों का आज कोई महत्व नहीं रह गया है।

(4) छुआछूत की भावना में कमी- छुआछूत की भावना जातीय व्यवस्था का आधार था। समकालीन भारतीय समाज में निम्न परिवर्तन हुए हैं, जिनसे छुआछूत की भावना में कमी आई है-

(i) अस्पृश्यों की अयोग्यताओं का निवारण,
(ii) नौकरियों, शिक्षा तथा प्रशिक्षणों में स्थानों का संरक्षण,
(iii) धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलन ।

(5) जातिवाद की भावना का विकास- जातिप्रथा की सबसे भयंकर प्रवृत्ति जातिवाद है। आज भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में जातिवाद की बीमारी के दर्शन हो रहे हैं। जहाँ एक ओर जाति की बाहरी संरचना शिथिल हुई है, वहीं दूसरी ओर जातिवाद की भावना का विकास हुआ है।

जाति प्रथा को स्थायी रखने वाले तत्व

(Factors for stability of Caste System)

जाति प्रथा के गुण-दोषों के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि ऐसे कौन से तत्व है जिनके कारण जाति प्रथा स्थायी रहती है। संक्षेप में निम्न तत्व जाति प्रथा को स्थायित्व प्रदान करते हैं-

(1) यह समाज को स्थिर रखती है, जहाँ सामाजिक परिवर्तन कम होते है वहाँ जाति प्रथा को स्थायित्व मिलता है।

(2) आवागमन के साधनों का अभाव भी जाति प्रथा को स्थिरता प्रदान करता है।

(3) भौगोलिक परिस्थितियाँ-बीहड़ जंगल, नदी-नाले आदि भी जाति व्यवस्था को स्थायी रखते हैं।

(4) उस समय में जाति व्यवस्था अधिक स्थायी रहेगी- जहाँ शिक्षा का अभाव होगा अधिकांश जनता अशिक्षित होगी।

(5) जिन समाजों में विभिन्न प्रजाति के लोग पाये जायेंगे, तो स्वाभाविक रूप से समाज के व्यक्तियों में विभिन्न शारीरिक लक्षण होंगे। अतः जाति प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है।

(6) जहाँ समाज का ढाँचा ग्रामीण होगा, वहाँ जाति व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलेगा, क्योंकि ग्रामीण लोग अन्धविश्वासी होते हैं।

जाति प्रथा के विरोधी तत्व (Factors Against Caste System)

(1) शिक्षा और बढ़ता हुआ ज्ञान जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायक है। वास्तव में शिक्षा ही एक ऐसा तत्व है जिसने सम्पूर्ण जाति व्यवस्था में हलचल पैदा कर दी है।

(2) आवागमन और संदेशवाहन के साधनों की वृद्धि के कारण भी जाति व्यवस्था का पतन हो रहा है।

(3) औद्योगिक समाज ने कल कारखानों की वृद्धि के साथ मानव सम्पर्क को बढ़ा दिया है, इससे जाति का महत्व कम हो गया है।

(4) विज्ञान ने जाति प्रथा के उस आधार को असत्य कर दिया जिस पर जाति प्रथा टिकी थी, उदाहरण के लिए शुद्ध रक्त का सिद्धांत, जिससे यह सिद्ध हो गया है कि कोई रक्त शुद्ध और श्रेष्ठ नहीं है।

(5) भारतीय स्वतन्त्रता ने जाति प्रथा को समाप्त करने में योग दिया है। भारतीय संविधान के अनुसार सब नागरिक समान है।

(6) देशी राज्यों की समाप्ति के साथ जाति-प्रथा भी समाप्ति, की ओर है।

(7) धार्मिक सुधारकों स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, विवेकानन्द आदि ने जाति-प्रथा को व्यर्थ बताया है।

(8) आज समाज में धन का महत्व बढ़ रहा है और जैसे जैसे धन का महत्व बढ़ रहा है जाति-व्यवस्था समाप्त होती जा रही है।

(9) महात्मा गाँधी व कांग्रेस सरकार के प्रयत्नों से भी जाति-प्रथा का महत्व कम हो गया है।

(10) साम्यवाद के कारण भी जाति प्रथा का महत्व कम हो रहा है। पणिक्कर ने साम्यवाद की चर्चा करते हुए लिखा है कि साम्यवाद जाति प्रथा को हिन्दू धर्म में रहते हुए मिटाने की चेष्टा कर रहा है।

(11) जाति प्रथा को प्रत्रय ग्रामीण ढाँचे मे ही मिलता है। नगरीकरण के बदलते हुए चरण के कारण भी जाति प्रथा समाप्ति की ओर है।

(12) पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भी जाति व्यवस्था प्रभावहीन हो रही है।

(13) जाति-विरोधी प्रचार भी जाति-प्रथा की स्थिरता को समाप्त करने में सहायक है।

(14) शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति के परिणामस्वरूप आज प्रेम-विवाहों की संख्या में वृद्धि हो रही है, इससे भी जाति प्रथा समाप्त हो रही है।

(15) संयुक्त परिवार का विघटन भी जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायक है।

(16) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अनेक अधिनियमों का निर्माण किया गया। इन अधिनियमों के प्रभाव ने भी जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायता की है। अधिनियमों में प्रमुख निम्न है-

(a) विशेष विवाह अधिनियम, 1954, (b) हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1955, (c) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, (d) दहेज निरोधक अधिनियम, 1961, (e) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955

जाति का भविष्य

(Future of the Caste)

चूंकि समाजशास्व भविष्यवाणी करने वाला विज्ञान नहीं है, अतः किसी संस्था अथवा सामाजिक घटना के बारे में भविष्यवाणी करना उचित नहीं है। जाति प्रथा भारत की विशेषता है। यह सार्वभौमिक घटना नहीं है।

इस दृष्टि से भारतीय परिवेश में जाति प्रथा में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन्हें दृष्टि में रखते हुए यह कहना उचित समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष है कि जाति का भविष्य क्या है ?

आधुनिक भारतीय समाज तीव्र गति से बदल रहा है। नगरीकरण तथा औद्योगीकरण, संवैधानिक प्रावधान तथा प्रजातंत्रीकरण, पश्चिम का प्रभाव,

आधुनिकीकरण तथा संस्कृतीकरण और इसी प्रकार संस्कृति के अनेक वाहक भारतीय जाति प्रथा को प्रभावित कर रहे हैं। इस प्रभाव के कारण जाति प्रथा में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन परिवर्तनों के आधार पर जाति प्रथा के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों के मद्देनजर यह कहा जा सकता है कि जाति की संरचना में परिवर्तन हो रहे है, किन्तु कार्यों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो रहा है। भारतीय समाज में आज भी जाति का महत्व है और यह विवाह, खानपान, आदि में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। प्रोफेसर श्रीनिवास का विचार है कि "मैं आपको स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूं कि यदि आप सोच रहे हैं कि जाति से सरलता से मुक्ति पा सकते हैं, तो आप गंभीर त्रुटि कर रहे हैं। जाति एक बहुत ही शक्तिशाली संस्था है और यह समाप्त होने के पूर्व बहुत ही खून खराबा करेगी।"

स्व -प्रगति परिक्षण

1. "जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रमण पर आधारित होता है तो हम उसे जाति कहते है।" जाति की उपर्युक्त परिभाषा है-

(अ) कूले की (ब) रिजले की (स) हावेल की (द) केतकर की

2. जाति की सबसे प्रमुख विशेषता निम्न में से कौन है-

(अ) जाति का आधार जन्म होता है (ब) जाति एक बन्द वर्ग है

(स) जाति के निश्चित व्यवसाय होते हैं (द) जाति अन्तर्विवाही होती है

3. निम्न में से किस समाजशास्त्री ने जाति-प्रथा की दो विशेषताओं- (i) जन्मजात सदस्यता और (ii) वैवाहिक प्रतिबन्ध का उल्लेख किया है-

(अ) केलकर (ब) रिजले ने (स) सेनार्ट ने (द) केतकर ने

4.जाति प्रथा का कार्य निम्न में से क्या है-

(अ) सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना (ब) मानसिक सुरक्षा प्रदान करना

(स) व्यवहारों का नियंत्रण रखना (द) उपर्युक्त सभी कार्य जाति के है

9.9 सारांश

जाति भारतीय समाज की एक प्राचीन और जटिल सामाजिक व्यवस्था है, जो जन्म के आधार पर व्यक्तियों को वर्गीकृत करती है। इसका अध्ययन समाजशास्त्र में यह समझने के लिए किया जाता है कि जाति व्यवस्था की ऐतिहासिक उत्पत्ति, संरचना और प्रभाव कैसे समाज में ऊँच-नीच, छुआछूत, और असमानता को जन्म देती है। जाति आधारित भेदभाव न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर भी व्यापक प्रभाव डालता है। आधुनिक समय में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और शिक्षा के प्रसार के बावजूद जाति व्यवस्था अभी भी सामाजिक और राजनीतिक संरचना को प्रभावित करती है। जाति पर आधारित पहचान और अधिकारों की माँग ने सामाजिक न्याय और समानता की ओर प्रयासों को बल दिया है।

*9.*10 *मुख्य शब्द*

1. जाति: जन्म पर आधारित सामाजिक वर्गीकरण।
2. छुआछूत: एक प्रथा जिसमें निचली जातियों को अशुद्ध मानकर उनसे सामाजिक दूरी बनाई जाती थी।
3. आरक्षण: सरकारी नीतियों के तहत सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को विशेष लाभ देना।

9.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. (अ). 2. (अ). 3. (द). 4. (द)

9.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, जाति का विनाश (1936)
2. एम.एन. श्रीनिवास, सोशल स्ट्रक्चर इन इंडिया (1952)

3. गोपाल गुरु, जाति, वर्ग और राजनीति (2001)

9.13 अभ्यास प्रश्न

(अ) निवन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. जाति प्रथा के कार्यों को लिखिए ।
2. जाति के गुण-दोष लिखिए ।
3. जाति प्रथा में आधुनिक परिवर्तन को लिखिए।
4. जाति प्रथा के भविष्य पर एक लेख लिखिए।
5. "जाति में परिवर्तन" विषय में संक्षेप में निबन्ध लिखिए।
6. "बदली हुई परिस्थितियों में जाति के परम्परागत स्वरूप भी बदल गये है।" समझाइए।
7. जाति के कार्यों में परिवर्तन से आप क्या समझते हैं।
8. जाति के प्रभुत्व में परिवर्तन को स्पष्ट कीजिए।
9. जाति के वैवाहिक प्रतिबन्धों में परिवर्तन को समझाइए।
10. जाति के व्यावसायिक प्रतिबन्धों में परिवर्तन को संक्षेप में समझाइए।
11. जाति प्रथा के विरोधी तत्वों को समझाइए।

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Type Questions)

1. जाति के अर्थ को स्पष्ट कीजिये।
2. जाति की दो प्रमुख परिभाषा लिखिए।
3. जाति की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
4. जाति-प्रथा के तीन प्रमुख कार्य लिखिए।
5. सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जाति के प्रमुख कार्य लिखिए।
6. जाति-प्रथा के पाँच प्रमुख दोष लिखिए।
7. जाति-प्रथा अपने सदस्यों को किस प्रकार मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है?
8. जाति-प्रथा व्यक्ति के व्यवहारों को किस प्रकार नियंत्रित करती है?

9. स्थिति के निर्धारण में जाति के महत्व को समझाइए।

10. राजनैतिक स्थिरता की स्थापना में जाति के कार्यों को स्पष्ट कीजए।

11. सामाजिक उन्नति में जाति-प्रथा के योगदान को समझाइये।

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. हिन्दु समाज की वह व्यवस्था है जिसके आधार पर व्यक्तियों के पदों एवं कार्यों का निर्धारण होता है, उसे कहते हैं -

(अ) प्रजाति (ब) वर्ग (स) जाति (द) समाज

2. जाति शब्द अंग्रेजी के किस शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है -

(अ) कास्टा (Casta) का (ब) कास्ट (caste) का

(स) कैस्टो (casto) का (द) कोष्ट (coste) का

3. जब सामाजिक स्तरीकरण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर होता है, तो उसे कहते हैं-

(अ) वर्ग (ब) धर्म (स) प्रजाति (द) जाति

4. "जाति एक बन्द वर्ग है।" जाति की उपर्युक्त परिभाषा निम्न में से किस विद्वान की है-

(अ) रिजले की (ब) मजूमदार और मदन की

(स) सेघना की (द) ऑगबर्न और निमकॉफ की

उत्तर 1. (स). 2. (ब). 3. (द). 4. (ब).

इकाई -10

धार्मिक विश्वास, व्यवहार एवं सांस्कृतिक प्रतिमान (RELIGIOUS BELIEFS, PRACTICES AND CULTURAL PATTERN)

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 धर्म की परिभाषा
10.4 धर्म की विशेषतायें
10.5 सामाजिक नियंत्रण में धर्म की भूमिका
10.6 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त
10.7 धर्म और विज्ञान
10.8 ग्रामीण धर्म
10.9 प्रथाएँ, परम्पराएँ, भाग्यवाद एवं अंधविश्वास
10.10 सारांश
10.11 मुख्य शब्द
10.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
10.13 संदर्भ ग्रन्थ
10.14 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

सामाजिक विकास की प्रक्रिया से धर्म अछूता नहीं रहा है। समाज का घटक होने के कारण धर्म भी क्रमिक रूप से विकसित हुआ। विकास के प्रारंभिक चरण में मनुष्य को अनेक प्रकार के संकटों (या समस्याओं) का सामना करना पड़ता था।

इन सभी संकटों का स्वरूप भौतिक था जिन्हें हम भोजन, वस्त्र और आवास से जोड़ सकते हैं। इसके साथ ही मनुष्य ने प्रकृति के बाढ़, बिजली, आँधी, तूफान, सूखा, ठंड, गर्मी, बरसात आदि-रूपों का सामना भी किया। तत्कालीन मानव ने इन शक्तियों से रहस्य एवं आश्चर्य मिश्रित भय का अनुभव किया। यहीं से 'धर्म' की अवधारणा का जन्म हुआ।

मनुष्य में मस्तिष्क में इस प्रकार के स्वाभाविक प्रश्न पैदा होते थे कि इन प्राकृतिक घटनाओं का संचालन कौन करता है? पानी क्यों गिरता है? बिजली क्यों कौंधती है? आदि इसके साथ ही वह ऐसे प्रयास भी करता था जिनसे प्राकृतिक शक्तियों से अपनी रक्षा कर सके। इन सबका परिणाम यह हुआ कि वह परिस्थितियों के मध्य अपने को असहाय मानने लगा। ज्ञान के अभाव में वह इस प्रकार की धारणायें विकसित करने लगा कि इन घटनाओं का संचालन एक ऐसी शक्ति के माध्यम से होता है जो मनुष्य से परे है। शक्ति का रूप स्वीकार करने के बाद मनुष्य ने उस शक्ति में पूजा, आराधना, जैसे कार्यों को विकसित किया और इस प्रकार धर्म नामक संस्था का जन्म हुआ।

10.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का इतिहास और इसकी संरचना को समझना।
2. जाति आधारित भेदभाव और इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. जाति प्रथा को समाप्त करने और सामाजिक समानता स्थापित करने के प्रयासों और नीतियों को जानना।

10.3 धर्म की परिभाषा *(Definition of Religion)*

साधारण तौर पर धर्म का तात्पर्य मानव-समाज से परे अलौकिक तथा सर्वोच्च शक्ति पर विश्वास है जिसमें पवित्रता, भक्ति, श्रद्धा, भाव आदि तत्व सम्मिलित हैं। इन्हीं तत्वों को दृष्टि में रखकर विभिन्न विद्वानों ने धर्म की परिभाषाएँ दी है, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न है-

(1) फ्रेजर - "धर्म से मेरा तात्पर्य मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि अथवा आराधना से है जिनके बारे में व्यक्तियों का यह विश्वास हो कि वे प्रकृति और मानव जीवन को नियंत्रित करती हैं तथा उनको निर्देश देती है।"।

(2) टेलर "धर्म का अर्थ किसी आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है।"

(3) मजूमदार और मदन "धर्म किसी भय की वस्तु अथवा शक्ति का मानवीय परिणाम है, जो पारलौकिक है, इन्द्रियों से परे है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति तथा अनुकूलन का रूप है जो लोगों को अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित करता है।"3

(4) दुर्खीम "धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की समग्रता है जो इन पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय के रूप में संयुक्त करती है।"*

(5) हाबेल "धर्म अलौकिक शक्ति के ऊपर विश्वास पर आधारित है जो आत्मवाद और मानव को सम्मिलित करता है।"

(6) डॉ. राधाकृष्णन् - "धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन स्वरूपों और प्रतिक्रियाओं को लाते हैं जो मानव-जीवन का निर्माण करती है और उसके धारण करती है।"।

(7) मैलिनोवस्की "धर्म क्रिया का एक ढंग है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी और धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।"।

(8) होनिंगशीम "प्रत्येक मनोवृत्ति जो इस विश्वास पर आधारित या इस विश्वास से सम्बन्धित है कि अलौकिक शक्तियों का अस्तित्व है और उनसे सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव व महत्वपूर्ण है, धर्म कहलाती है।"

(9) आगवर्न और निमकॉफ "धर्म मानवोपरि शक्तियों के प्रति अभिवृत्तियाँ है।"
(10) गिलिन और गिलिन "धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत एक समूह में अलौकिक से सम्बन्धित उद्देश्यपूर्ण विश्वास तथा इन विश्वासों से सम्बन्धित बाह्य व्यवहार, भौतिक जस्तुएँ और प्रतीक आते हैं।"
(11) जॉनसन "एक धर्म, प्राणियों, शक्तियों, स्थानों अथवा अन्य वस्तुओं की अलौकिक व्यवस्था से सम्बन्धित विश्वासों एवं व्यवहारों की अधिक या कम साम्यपूर्ण व्यवस्था है।"
(11) पॉल टिलिक "धर्म वह है, जो अन्ततः हमेशा सम्बन्धित है।"?
इस प्रकार 'धर्म को सामाजिक प्राणी के उन व्यवहारों और क्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध अलौकिक शक्ति या सत्ता से होता है।'

10.4 धर्म की विशेषतायें *(Characteristics of Religion)*

विभिन्न विद्वानों ने धर्म की जो परिभाषायें दी हैं, उन परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए धर्म की निम्न प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है -
(1) धर्म का सम्बन्ध प्राकृतिक शक्तियों से होता है।
(2) इन प्राकृतिक शक्तियों का चरित्र दिव्य होता है अर्थात् इस प्रकार की शक्ति मानव-समाज से परे होती है।
(3) धर्म में पवित्रता का तत्व पाया जाता है।
(4)प्रत्येक धर्म की एक सैद्धान्तिक व्यवस्था होती है। इस सैद्धांतिक व्यवस्था के द्वारा धर्म की सैद्धान्तिक विवेचना की जाती है और इसको व्यावहारिक रूप दिया जाता है।
(5) धर्म के माध्यम से मनुष्य और दैवीय शक्तियों के बीच सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं।

(6) प्रत्येक धर्म में धार्मिक व्यवहार करने के कुछ निश्चित प्रतिमान होते हैं। ये प्रतिमान ईश्वरीय इच्छा को प्रकट करते हैं।

(7) धर्म में सफलता और असफलता दोनों ही तत्व पाये जाते हैं। इन तत्वों के आधार पर व्यक्ति को धार्मिक पुरस्कार और दण्ड मिलता है।

धर्म के मौलिक लक्षण

(Fundamental Characteristics of Religion)

इससे पहले धर्म की विशेषताओं की विवेचना की गई है। इस विवेचना के द्वारा धर्म की अवधारणा स्पष्ट होती है। मौलिक विशेषताओं के अन्तर्गत धर्म के उन तत्वों या लक्षणों का विवेचन किया जाएगा जो सभी समाजों के विभिन्न धर्मों के सार्वभौमिक रूप से पाये जाते हैं। ये आधारभूत लक्षण निम्नलिखित भागों में विभाजित है-

(1) अलौकिक शक्ति में विश्वास धर्म का आधार एक ऐसी शक्ति है, जो मानवीय शक्ति अथवा इस लोक की शक्ति से परे है। प्रत्येक समाज का धर्म इसी अलौकिक शक्ति के आधार पर टिका हुआ है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार इस शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है। इस शक्ति की व्यक्ति आराधना करते हैं और इस आराधना का आधार भी धर्म में विश्वास का होना है।

(2) मानसिक भावनाएँ धर्म का आधार तर्क न होकर मनोवैज्ञानिक तत्व होते हैं। तर्क के आधार पर धर्म को समझना अत्यन्त कठिन है। धर्म जिन मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित है, उनमें श्रद्धा, प्रेम, आतंक, भय, वेदना और विह्वलता प्रमुख है। इन्हीं मानसिक शक्तियों के आधार पर व्यक्ति अलौकिक शक्ति के नजदीक पहुँचने का प्रयास करते हैं।

(3) धार्मिक आधार - धर्म का आधार अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करना है। इस शक्ति को प्रसन्न करने के लिए व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं। इन व्यवहारों में व्यक्ति अपने को पतित एवं तुच्छ कहता है तथा भगवान को दयालु, पापविनाशक और ब्रह्म की संज्ञा देता है। इसके अतिरिक्त नृत्य, शारीरिक कष्ट,

कर्म- काण्ड, यात्रा आदि के माध्यम से इस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न कर वह इसके साथ ही अनेक प्रकार के संस्कारों का सम्पादन करता है।

(4) धार्मिक प्रतीक प्रत्येक सामाजिक संस्थाओं के अपने अलग-अलग प्रतीक होते हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से इस संस्था को पहचाना जाता है। धर्म भी एक सामाजिक संस्था है। धर्म नामक सामाजिक संस्था को पहचानने के लिए कुछ निश्चित प्रतीकों का समाज में प्रचलन हुआ है। इन प्रतीकों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं, जैसे- मूर्ति भगवान का प्रतीक, धूपबत्ती सुगन्ध की प्रतीक, आसन और रेशमी वस्त्र पवित्रता के प्रतीक, रामायण और गीता ईश्वरीय ज्ञान के प्रतीक हैं।

(5) धार्मिक श्रेणियाँ प्रत्येक समाज में सामाजिक संस्तरण पाया जाता है। इस संस्तरण का आधार व्यक्ति का ऊँचे और नीचे पदों के आधार पर भिन्न-भिन्न पदों पर विभाजित होना है। धर्म में भी इस प्रकार का संस्तरण पाया जाता है। यह संस्तरण देवताओं के अतिरिक्त धार्मिक मनुष्यों में भी पाया जाता है। उदाहरण के लिये धार्मिक दृष्टि से पुरोहित सबसे ऊँचे संस्तरण में होते हैं। इसके बाद अन्य व्यक्ति आते हैं।

10.5 सामाजिक नियंत्रण में धर्म की भूमिका (*Role of Religion in Social Control)*

जैसा कि इसकी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है, धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास का नाम है। इस विश्वास के आधार पर मनुष्य में अनेक सामाजिक और मानसिक गुणों का विकास होता है। इसका कारण यह है कि धर्म की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में धर्म का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक नियंत्रण के दो प्रकार है -

(a) औपचारिक सामाजिक नियंत्रण (Formal Social Control),

(b) अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण (Informal Social Control)।

धर्म अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण का साधन है। सामाजिक महत्व की दृष्टि से धर्म की भूमिका को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) धार्मिक समाजीकरण धर्म का सम्बन्ध भावनाओं से होता है। इस दृष्टि से धर्म व्यक्ति के अन्दर अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करता है। इन गुणों में सहिष्णुता, दया, धर्म, स्नेह, सेवा और सहयोग प्रमुख हैं। व्यक्ति में इन सामाजिक गुणों के विकास के परिणामस्वरूप समाज की व्यवस्था में शक्ति एवं क्षमता का विकास होता है। धर्म व्यक्ति के व्यवहारों को भी नियंत्रित करता है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि धर्म सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(2) धार्मिक संगठनों की प्रेरणा सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य हैं कि इसके माध्यम से समाज में विभिन्न प्रकार की धार्मिक संस्थाओं का विकास होता है। ये धार्मिक संगठन और संस्थाएँ समाज में स्थिरता की स्थापना करते हैं। इसका कारण यह है कि धर्म का आधार विश्वास और आस्था है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बदलती हुई परिस्थितियों में भी इन संगठनों और संस्थाओं की उपेक्षा नहीं करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में सदस्यों के व्यवहारों में नैतिकता का विकास होता है और सामाजिक संगठन अधिक शक्तिशाली बनता है।

(3) सद्‌गुणों का विकास धर्म एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसके माध्यम से मनुष्यों के सद्‌गुणों का समुचित विकास होता है। हाफडिंग ने लिखा है "धर्म बनाया नहीं जाता, इसका विकास' तो मानव-संघर्षों की उमंगों से होता है। विकास की परम्परा में अपने अनुभवों के आधार पर मनुष्य अपने जिन मूल्यों को उचित समझता है, प्रत्येक परिस्थिति में उन्हीं मूल्यों पर अटल रहने की प्रेरणा से धर्म का जन्म होता है।" इसका तात्पर्य यह है कि समाज के अधिकांश व्यक्ति धर्म पर विश्वास करते हैं। इससे उनका जीवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। व्यक्ति अपने धार्मिक आदर्शों के अनुसार जीवन को ढालने का प्रयास करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके अन्दर अनेदा मानवीय गुणों का विकास होता है।

(4) व्यक्ति के अपूर्व शक्ति का अनुभव धर्म का सम्बन्ध एक सत्ता से है जो सर्वशक्तिमान और अलौकिक है। इस दृष्टि से धार्मिक व्यक्ति सभी कार्यों को ईश्वरीय इच्छा प्रतीक मानते हैं। इसके साथ ही उनमें ऐसा विश्वास रहता है कि भगवान अच्छा-बुरा जो भी करता है, व्यक्ति के कल्याण की दृष्टि से ही करता है। जीवन में जो भी कष्ट और विपत्तियाँ आती है, वे मात्र परीक्षा के लिए होती है। इन्हीं विपत्तियों के आधार पर भगवान व्यक्ति की धार्मिक परीक्षा करता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के अन्दर अपूर्व शक्ति का विकास होता है।

(5) सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक यदि हम मानव-समाज के इतिहास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव-जीवन अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त था। इन समस्याओं के समाधान के लिए समाज में अनेक संगठनों और संस्थाओं का जन्म हुआ। धर्म के माध्यम से हम अनेक सामाजिक समस्याओं से मुक्ति पाते हैं। जैसे भक्त दुःखों से मुक्ति के लिये भगवान से प्रार्थना करता है और ऐसा करने से उसे मानसिक शान्ति मिलती है। इस प्रकार संक्षेप में, धर्म में वही शक्ति है जिससे व्यक्ति में आत्म-विश्वास पैदा होता है। इस आत्म-विश्वास के कारण सामाजिक जीवन में स्थिरता का विकास होता है।

(6) पवित्रता की भावना का विकास प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुर्खीम ने धर्म के अनेक सामाजिक कार्यों की विवेचना की है। धर्म का जो मौलिक कार्य है, वह यह है कि इससे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में पवित्रता की भावना का विकास होता है। इसके साथ ही धर्म अपवित्र और भ्रष्ट कार्यों पर रोक भी लगाता है। धार्मिक दृष्टि से समाज में सिर्फ उन्हीं कार्यों को सम्पन्न किया जाता है, जो शुद्ध समझे जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज एक संगठन में बंध जाता है।

(7) धर्म समाज का आधार है धर्म एक ऐसा तत्व है, जिस पर सम्पूर्ण समाज का ढाँचा आधारित होता है, इसका कारण यह है कि धर्म के अन्तर्गत अनेक उच्च आदर्श और मूल्य होते हैं। इसके साथ ही, धर्म का आधार अलौकिक शक्तियों में विश्वास भी होता है। इस अलौकिक शक्ति के डर से व्यक्ति आदर्शों और मूल्यों

की उपेक्षा नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में शान्ति-व्यवस्था और एकता का विकास होता है।

(8) नैतिकता और मूल्यों का विकास धर्म समाज का वह आधार है जिसके माध्यम से समाज में मानवीय मूल्यों और नैतिक भावनाओं का विकास होता है। संक्षेप में, धर्म निम्न माध्यमों से समाज में मूल्यों और नैतिकता का विकास करता है-

(a) धर्म वह साधन है जिससे व्यक्तिवाद की भावना समाप्त होती है और समूहवाद की भावना का विकास होता है। जब व्यक्तिवाद, स्वार्थ और सामाजिक हितों में संघर्ष होता है तो मूल्य और नैतिकता सामाजिक हितों की रक्षा करते हैं।

(b) मूल्य धर्म के वे आधार हैं जिन्हें व्यक्ति अन्तःकरण से स्वीकार करता है। इस कारण मूल्यों के आधार पर व्यक्तियों का जीवन निर्देशित होता है।

(c) धर्म नैतिक भावनाओं की वृद्धि में भी सहायता करता है।

(d) धर्म वह शक्ति है जिससे मनुष्य में निराशा की भावना कम होती है। साथ ही साथ मनुष्य में उत्साह और नैतिकता की वृद्धि होती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अनेक प्रकार के संकटों, दुःखों और निराशाओं में भी नैतिकता एवं आत्मबल बनाये रखने का प्रयास करता है।

(e) धर्म के माध्यम से समाज में मूल्यों का निर्माण होता है और इन मूल्यों की प्रतिस्थापना की जाती है। इन मूल्यों के आधार पर धर्म समाज में महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है।

(9) सामाजिक तनाव को रोकना धर्म एक ऐसा साधन है जो मनुष्य को चिन्ता और निराशा से मुक्ति दिलाता है। धर्म के अभाव में मनुष्य अनेक प्रकार के मानसिक तनावों का शिकार हो जाता है। ये तनाव समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देते हैं, जैसे अपराध, मद्यपान, जुआ आदि। धर्म व्यक्ति को इन मानसिक तनावों से मुक्ति दिलाता है।

(10) सुरक्षा की भावना धर्म के माध्यम से व्यक्ति में सुरक्षा की भावना का भी विकास होता है। धार्मिक लोगों में ऐसा विश्वास है कि जन्म और मृत्यु भगवान के हाथ हैं। वह सभी प्राणियों का पालन-पोषण भी करता है। इसके साथ-साथ

भगवान समदर्शी भी हैं। व्यक्ति में ऐसा विश्वास रहता है कि जब भगवान इतने गुणों से सम्पन्न हैं तो वह व्यक्ति के साथ किसी प्रकार का असुरक्षात्मक कार्य नहीं कर सकते। इससे सभी व्यक्ति धर्म और भगवान के आगे सुरक्षा का अनुभव करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म का सम्बन्ध अलौकिक शक्ति से है। वह अलौकिक शक्ति विश्व में सदैव विद्यमान है। समाज में जब भी संकट आये हैं, धर्म ने इन संकटों से व्यक्ति की रक्षा की है। आधुनिक युग विज्ञान का होते हुए भी सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में धर्म का महत्व कम नहीं हुआ है, चाहे भले ही अनेक व्यक्ति धर्म की उपेक्षा की दृष्टि से देखते हों। साम्यवादी देशों में तो धर्म को अफीम की गोली कहकर सम्बोधित किया है, इसके बावजूद भी धर्म के महत्व को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है। संक्षेप में, धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति को नियंत्रण में रखकर उसके नैतिक और मानवीय मूल्यों को विकसित करके व्यक्ति के विकास में सहायता प्रदान करता है।

10.6 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त*(Theories of Origin of Religion)*

धर्म समाज की महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। मौलिक प्रश्न यह है कि समाज में धर्म की उत्पत्ति क्यों हुई? वे कौन-सी परिस्थितियाँ और दशाएँ थीं, जिन्होंने समाज में धर्म के उद्भव और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। धर्म की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख विचार और सिद्धान्त निम्नलिखित है-

(1) भय का सिद्धान्त (Theory of Fear) मानव का प्रारम्भिक समाज का इतिहास उसकी कठिनाइयों का इतिहास रहा है। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त वह प्राकृतिक शक्तियों के आगे पूर्णतया असमर्थ था। अपनी इस असमर्थता के कारण मानव प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत रहता था। परिणामतः मानव ने प्राकृतिक शक्तियों की पूजा प्रारंभ की। प्राकृतिक शक्तियों की पूजा के कारण ही धर्म नामक संस्था का जन्म और विकास हुआ है।

इस सिद्धान्त का समर्थन और प्रतिपादन रोम के प्रसिद्ध दार्शनिक और कवि लुक्रेटियश (Lucretius) ने किया था। आधुनिक युग में डेविड ह्यूम ने अपनी पुस्तक 'Natural History of Religion में इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। गिडिंग्स और मैक्समूलर ने भी भय को धर्म की उत्पत्ति का कारण माना है। भय के कारण ही मनुष्य ने दैवी शक्तियों पर विश्वास करना प्रारंभ किया और दैवी शक्तियों पर विश्वास ने धर्म को जन्म दिया।

(2) आत्मवाद का सिद्धान्त (Theory of Animism) प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर (Tylor) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री स्पेंसर (Herbert Spencer) ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। इन विद्वानों के अनुसार यद्यपि धर्म की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं, किन्तु सब में 'आत्मा में विश्वास' ही सर्वोच्च महत्वपूर्ण है। आत्मा में विश्वास करने के कारण ही इस सिद्धान्त को आत्मवाद के नाम से जाना जाता है। टायलर ने तो यहाँ तक लिखा है कि "आदिम युग से सभ्य मनुष्यों तक के धर्म के दर्शन का आधार आत्मवाद ही है।" इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा अमर होती है। आत्मा की इस अमरता के कारण पूर्वजों के प्रति गहरी आस्था का जन्म हुआ। पूर्वजों के प्रति यह आस्था इतनी अधिक बढ़ गई कि उनकी पूजा होने लगी। कालान्तर में यहीं पूजा और श्रद्धा की भावना ने धर्म का रूप धारण कर लिया।

(3) मानावाद का सिद्धान्त (Theory of Manaism) इस सिद्धान्त को "जीव सत्तावाद" (Animatism) के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मेरेट (Merret) ने किया है। माना का अर्थ है कोई रहस्यमय शक्ति। नानावाद वह विचारधारा है जो किसी रहस्यमय शक्ति में विश्वास पर आधारित है। यह किसी भी वस्तु में विद्यमान हो सकती है। इस शक्ति की पूजा के कारण ही धर्म की उत्पत्ति हुई।

मैक्समूलर (Max Muller) का विचार है कि प्रत्येक जड़ या चेतन में किसी न किसी प्रकार की शक्ति विद्यमान है। यह शक्ति अलौकिक होती है, अतः मानव स्वभावतः इस शक्ति से डरता है। इस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने के लिए पूजा और आराधना की प्रक्रियाओं ने धर्म को जन्म दिया।

(4) प्रकृतिवाद का सिद्धान्त (Theory of Naturalism) मैक्समूलर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मैक्समूलर के अनुसार धर्म की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण कारक प्रकृति है। आँधी, ओला, पानी, गरज, भूकम्प, बाढ़ आदि प्रकृति के विभिन्न स्वरूप है, प्रकृति के इन विभिन्न स्वरूपों को देखकर मानव मस्तिष्क में भय (Fear) उत्पन्न होता था। इस युग का मानव बौद्धिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में था। बुद्धि की कमी और भय के कारण उसके मन में प्रकृति के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव जागृति हुए। आदर और र श्रद्धा के कारण "पूजा" का जन्म हुआ और यहीं से धर्म की उत्पत्ति हुई। मैक्समूलर ने लिखा है कि 'यह असीम प्रकृति की उत्तेजना और अनुभूति है, जिसमें धर्मों की उत्पत्ति हुई है।"

(5) संक्रमण का सिद्धान्त (Theory of Transition) प्रसिद्ध मानवशास्त्री जेम्स फ्रेजर (Sir James Frazer) इस सिद्धान्त का प्रतिपादक है। फ्रेजर का विचार है कि समाज में धर्म के पहले जादू और टोने का अस्तित्व था। जादू-टोने की सहायता से मानव अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों पर नियंत्रण स्थापित करता था। अनेक अवसरों पर जादू-टोने की सहायता से मानव अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों पर नियंत्रण स्थापित करने में असफल हो जाता था। इस असफलता के कारण मनुष्य में अज्ञात अलौकिक शक्तियों पर आस्था उत्पन्न हुई। इसी आस्था के कारण धर्म का जन्म हुआ।

(6) समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (Sociological Theories) प्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम (Emile Durkheim) ने अपनी पुस्तक "Elementary Forms of Religious Life" में धर्म की उत्पत्ति के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रतिपादन किया है।

10.7 धर्म और विज्ञान *(Religion and Science)*

इस शताब्दी के वैचारिक विषयों में धर्म और विज्ञान का सम्बन्ध महत्वपूर्ण विषय है। धर्म और विज्ञान के सम्बन्धों को लेकर अनेक विरोधी प्रश्न किये जाते हैं। क्या विज्ञान और धर्म एक दूसरे के पूरक है? क्या वैज्ञानिक प्रगति के कारण धर्म

का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा? क्या धर्म विज्ञान की प्रगति में बाधा है? क्या विज्ञान और धर्म में किसी प्रकार का संघर्ष है? अन्य शाखा के विद्वानों के अनुसार धर्म और विज्ञान भले ही विरोधी अवधारणायें हो, समाजशास्त्रियों का विचार है कि धर्म और विज्ञान में जो प्रमुख समानतायें है, वे इस प्रकार हैं-

(1) धर्म और विज्ञान दोनों का ही जन्म मानव आवश्यकताओं के कारण हुआ है।

(2) धर्म और विज्ञान दोनों की मानव समाज के कल्याण के पोषक और सहायक है।

(3) धर्म और विज्ञान दोनों ही सामाजिक वस्तुएँ हैं तथा सामाजिक जीवन में इनका गहरा सम्बन्ध है।

यही कारण है कि आलपोर्ट धर्म को विज्ञान का सहायक मानता है। जोड के अनुसार धर्म और विज्ञान में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है। कुछ भी हो धर्म और विज्ञान दो अलग-अलग अवधारणाएँ है। इस कारण इन दोनों में अन्तर का होना भी नितान्त स्वाभाविक है। धर्म और विज्ञान में जो प्रमुख अन्तर है, वह इस प्रकार है-

(1) धर्म प्राचीन है, जब कि विज्ञान नवीन,

(2) धर्म का सम्बन्ध अध्यात्मवाद से है, जब कि विज्ञान का सम्बन्ध भौतिकवाद से है,

(3) धर्म आस्था पर आधारित है, जबकि विज्ञान तथ्य पर,

(4) धर्म में ईश्वर एवं आराधना का महत्व है, विज्ञान में सत्य एवं प्रयोगों (Experiments) का,

(5) धर्म समाज का गुणात्मक पहलू है, जबकि विज्ञान गणनात्मक।

कुछ भी हो विज्ञान और धर्म में इतना विरोध नहीं है, जितना कि विद्वान समझते हैं। 1945 में ब्रिटिश एसोसिएशन की सभा में प्रोफेसर कुलत्तन (Prof. Culson) ने ठीक ही कहा था कि "वास्तविक धर्म व वास्तविक विज्ञान एक समान महान् उद्देश्य की तरफ ही ले जाते हैं।"।

मानव-जीवन में धर्म का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। प्रत्येक समाज में धर्म का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य मानव-जीवन में धर्म का स्थान बड़ा

महत्वपूर्ण है। प्रत्येक समाज में धर्म का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। समाज चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, आदिम हो या सभ्य, धर्म के प्रति लोगों की आस्था अवश्य देखने को मिलती है। विशेषकर नगर-निवासियों की तुलना में ग्रामीण लोग अधिक धार्मिक होते हैं। इसका मुख्य कारण ग्रामीण व्यवसाय कृषि है। कृषि की सफलता प्रकृति पर निर्भर है। इस निर्भरता के कारण प्राकृतिक शक्ति मानव-जीवन में महत्वपूर्ण बन जाती है। इनको प्रसन्न करने के लिए व्यक्ति पूजा और आराधना प्रारम्भ करता है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि ग्रामीण धर्म प्रकृति पूजा के ही रूप में प्रारम्भ करता है।

यद्यपि आज के युग में शिक्षा के प्रभाव के साथ ही धर्म का रूढ़िवादी प्रभाव कम होता जा रहा है। ग्रामीण लोग अशिक्षित होते हैं जिनके कारण उनके अन्दर अनेक रूढ़ियों और धार्मिक अन्धविश्वास घर कर जाता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत से विश्वास काम करते हैं। इनको भली प्रकार समझने के लिए ग्रामीण धर्म का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

10,8 **ग्रामीण धर्म** *(Rural Religion)*

वास्तव में ग्रामीण जीवन बड़ा पवित्र होता है। यही पवित्रता की धारणा धर्म की ओर संकेत करती है। वैसे ग्रामीण जीवन में जितनी भी संस्थाएँ हैं, उन पर धर्म की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। प्रायः गाँवों में रहने वाले लोग जिससे भय और लाभ समझते हैं, उसी को पूजने लगते हैं। चूंकि प्रकृति द्वारा उन्हें लाभ प्राप्त होता है, इसलिये ग्रामीण जनता प्रकृति की आराधना और उपासना पर अधिक विश्वास रखती है। ग्रामीण लोगों में धार्मिक भावना अत्यधिक रूप में पाई जाती है साथ ही ग्रामीण-धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना स्थान रखता है। वास्तविकता यह है कि ग्रामीण धर्म में रूढ़िवादिता भले हो लेकिन तर्क के बिना ही वे उसे स्वीकार करते हैं। मैलिनोवस्की का विचार है कि "धर्म के अन्तर्गत व्यवहार के वे सभी प्रतिमान आते हैं जिनमें मानव दैनिक जीवन की अनिश्चितताओं को कम करने और अप्रत्याशित एवं आकस्मिक संकटों की क्षतिपूर्ति का प्रयास करते हैं।" जॉन आर. क्यूबर के अनुसार "धर्म सांस्कृतिक रूप

से वह व्यवहार प्रतिमान है जिसमें (1) पवित्र विश्वास, (2) विश्वासों से संलग्न सांवेगिक भावनाएँ और (3) मान्य विश्वासों एवं भावनाओं का बाह्य आवरण से सम्पादित कार्यान्वयन होता है।""

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर ग्रामीण धर्म की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(1) धर्म में पवित्रता का तत्व पाया जाता है।

(2) ग्रामीण समाज को संगठित करने में धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण है।

(3) धर्म के माध्यम से मनुष्य और दैवी शक्तियों के बीच सम्बन्ध स्थापित किये जाते है।

(4) धर्म में सफलता और असफलता दोनों ही तत्व पाये जाते हैं। इस तत्व के आधार पर ही व्यक्ति को धार्मिक पुरस्कार और धार्मिक दण्ड भी मिलता है।

(5) ग्रामीण जीवन में प्रायः यह देखने को मिलता है कि धार्मिक व्यवहार करने के कुछ निश्चित प्रतिमान होते हैं और ये प्रतिमान ईश्वरीय इच्छा को प्रकट करते हैं।

धर्म के विभिन्न पहलू (Different Aspects of Religion)

धर्म के एक ही नहीं अनेक पहलू हैं। मोटे तौर पर इन पहलुओं को दो भागों में विभक्त कर आसानी से समझा जा सकता है :-

(a) व्यावहारिक पहलू। (b) संस्थागत पहलू।

(a) व्यावहारिक पहलू (Practical Aspect) धर्म में व्यावहारिक पहलू का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन की जो क्रियाएँ हैं, वे व्यवहार के रूप में देखी जा सकती हैं। ये व्यक्ति को कुछ कार्यों के लिए प्रेरित करती है और कुछ का निषेध करती हैं। प्रत्येक धर्म अपनी मान्यता के अनुसार लोगों में विश्वास, मनोवृत्ति बनाने • में सहायक होता है, क्योंकि यही विश्वास एवं भावनाएँ उसके व्यवहार के रूप में प्रकट होती है। उसका यह व्यवहार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभाव डालता है। साथ ही व्यक्ति का जीवन-क्रम भी निश्चित होता है। धर्म के व्यावहारिक पहलू के विभिन्न अंग निम्न है:-

(i) प्रार्थना एवं पूजा ग्रामीण समाज में देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए साथ ही अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए लोग पूजा-पाठ करते हैं। प्रातः काल स्नान करने के पश्चात् भगवान का स्मरण करते हैं। रामायण, गीता, हनुमान चालीसा आदि धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करते हैं।

(ii) शुभ-अशुभ का विचार ग्रामीणों के कुछ ऐसे विचार हैं जो किसी घटना या वस्तुओं को देखकर शुभ और अशुभ का अनुमान लगा लेते हैं। किसी आवश्यक कार्य के लिए प्रस्थान करते समय किसी का छींकना, खाली घड़ा मिलना, बिल्ली रास्ता काटना अपशकुन है। अगर यात्रा-काल में मृतक का शव दिखाई दे, धोबी और मछली मिले तो वह शुभ है।(iii) पाप-पुण्य का विचार प्रायः गाँवों में लोग शुभ और अशुभ से अधिक विचार पाप और पुण्य का रखते हैं। कुछ कामों को करना वे पाप समझते हैं। जैसे परस्त्रीगमन करना, हिंसा करना आदि पाप है। गरीबों पर दया करना, जलाशय, कुएँ, मन्दिर आदि बनवाना पुण्य है। मानव इस धरती पर बार-बार नहीं आयेगा। अतः मोक्ष के लिए यह आवश्यक है कि वह पुण्य का काम करे, अनेक जीवों के रूप में इस धरती पर आना होगा और अपने कर्म का भोग भुगतना होगा।

(iv) पवित्र विश्वास ग्रामीणों में धर्म के प्रति पवित्र विश्वास होता है। वे आपस में धर्म की चर्चा का विषय बनाते हैं और यह मान्यता प्रस्तुत करते हैं कि धर्म के अनुकूल आचरण करने पर मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। इस विश्वास से वे अनेक देवी-देवताओं की आराधना करते हैं।

(v) संस्कार- मानव-जीवन में संस्कार का महत्व सर्वोपरि है। जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार व्यक्ति को करना पड़ता है। इन संस्कारों का सम्पादन धार्मिक व्यवस्था द्वारा मान्य निश्चित विधियों के ही अनुसार होता है।

(vi) मेले एवं त्यौहार प्रायः गाँवों में मेले-त्योहारों के अवसर पर ही लगते हैं। जैसे- दशहरा, शिवरात्रि, रक्षाबन्धन, रामनवमी, जन्माष्टमी, दीवाली आदि। इन विभिन्न त्योहारों की अपनी धार्मिक मान्यता है। इस मान्यता के ही आधार पर लोग एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

(b) संस्थागत पहलू (Institutional Aspect) धर्म के संस्थागत पहलू का अभिप्राय है, धर्म का स्थायित्व एवं संगठन की सुदृढ़ता। धर्म के स्थायित्व के लिए प्रचार और प्रसार का होना अत्यावश्यक है। धार्मिक संस्थाओं में काम करने वाले वाले लोगों लोगों का व्यक्तित्व वास्तव में धर्म के प्रतीक के रूप में समझा जाता है। धर्म के संस्थागत पहलू निम्न है :-

(i) धार्मिक प्रतिनिधि धर्म से सम्बन्धित सन्देश पहुँचाने वाले को धार्मिक प्रतिनिधि के रूप में जाना जाता है। देश में अनेक धार्मिक सम्प्रदाओं के प्रतिनिधि घूमा करते हैं और अपने धार्मिक विचारों एवं मान्यताओं का प्रचार-प्रसार करते हैं। सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाने के लिए लोगों का मार्गदर्शन करते हैं।

(ii) धार्मिक संस्था धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक धार्मिक संस्थाएँ भी देखने को मिलती हैं। अनेक आश्रम के अलावा छोटे-बड़े मठ भी होते हैं। प्रत्येक संस्थाओं के आराध्य देव भी अलग-अलग होते है। साथ ही पूजा के ढंग भी भिन्न होते हैं। अनेक स्थानों पर तो ये संस्थाएँ स्कूल व चिकित्सालय भी चला रही

(iii) मन्दिर वास्तव में प्रत्येक गाँवों में धार्मिक संस्था के रूप में मन्दिर होते है। धार्मिक उत्सवों के अवसर पर लोग वहाँ पर जाते हैं। लोग सामूहिक रूपों से भगवत भजन, कीर्तन आदि करते हैं। वे मन्दिर सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र भी होते हैं।

ग्रामीण जीवन एवं धर्म (Rural Life and Religion)

वास्तव में ग्रामीण जीवन बड़ा सीधा और सरल होता है। धार्मिक व्यवस्था के ही अनुकूल समाज में वह व्यवहार करता है। दूसरों शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण जीवन में धर्म का प्रभाव सर्वोपरि है। धर्म ग्रामीण जीवन को व्यवस्थित एवं निर्देशित करता है। ग्रामीणों में अलौकिक शक्ति के प्रति दृढ़ विश्वास होता है। जब व्यक्ति को सफलता प्राप्त नहीं होती और अपने उद्देश्य की प्राप्ति में वह असफल रहता है तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति धर्म एवं भगवान का सहारा लेता है। साथ ही, वह मानसिक सन्तोष का भी अनुभव करता है। व्यक्ति निर्बल होते हुए भी शक्ति का आभास करता है। यदि मनुष्य किसी समस्या को सुलझाने में समर्थ नहीं होता तो ऐसी स्थिति में उसे धार्मिक संबल

मिल जाता है तथापि उसके जीवन में कार्य के प्रति लगन एवं विश्वास बना रहता है।

धर्म ग्रामीणों को समाजीकृत करता है। साथ ही जो धार्मिक संगठन होते हैं, उनसे व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। ये धार्मिक संगठन और संस्थाएँ ग्रामीण जीवन को संगठित करते हैं, स्थिरता प्रदान करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में सदस्यों के व्यवहारों में नैतिकता का विकास होता है और सामाजिक संगठन अधिक शक्तिशाली बनता है। धर्म का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीणों को सामूहिक जीवन में भाग लेने को प्रेरित करना है, साथ ही धर्म व्यक्ति और समाज के साथ समन्वय स्थापित करता है।

ग्रामीण धर्म के अध्ययन के कारण

धर्म भारतीय ग्रामीण समाज की जीवन-प्रक्रियाओं के निर्धारण में निर्णायक भूमिका निभाता है। ग्रामीण भारतीय समाज के अध्ययन के लिए धर्म का सांगोपांग अध्ययन अत्यावश्यक है। इसके मुख्य तीन कारण निम्नलिखित है:-

सर्वप्रथम, समस्त संसार के समाजशास्त्रियों द्वारा यह मान लिया जाता है कि नगरीय जनता की अपेक्षा ग्रामीण जनता की धर्म की ओर अधिक है। ग्रामीण क्षेत्र के आधारभूत व्यवसाय कृषि की मानवता द्वारा अब होती है। ग्रामीण क्षेत्र के आधारभूत व्यवसाय कृषि का मानवता द्वारा अब तक अविजित वर्षा जैसी प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर होना तथा ऐसी वैज्ञानिक संस्कृति का ग्रामीण जनता में अभाव होना जो प्राकृतिक तथा सामाजिक जगत् की सही व्याख्या प्रस्तुत करती है- यही दो मुख्य कारण है जो उनमें अधिकाधिक धार्मिकता उत्पन्न करते हैं। जगत् की अत्यन्त रूढ़िवादी धारणाओं से निर्मित परंपरागत धर्म ने ही उनके मस्तिष्क को जकड़ रखा है। आत्मवाद (Animism), जादू-टोना, बहुदेववाद (Polytheism), भूत-प्रेत विश्वास तथा आदिकालीन धर्मों के अन्य रूप नगरीय जनता की अपेक्षा ग्रामीण जनता में अत्यधिक सीमा तक प्रबल रूप से व्याप्त है।

द्वितीय, ग्रामीणजनों का धार्मिक दृष्टिकोण उनके बौद्धिक, भावनात्मक तथा क्रियात्मक जीवन पर अत्यन्त प्रबल रूप से प्रभुत्व जमाए हुए है। जीवन के किसी

ऐसे अंग को खोज निकालना कठिन है जो धर्म से ओत- प्रोत तथा अनुरंजित न हो। उनका पारिवारिक जीवन, जातीय जीवन, सामान्य सामाजिक जीवन, उनका आर्थिक तथा आमोद-प्रमोद जीवन की न्यूनाधिक रूप में धार्मिक प्रवेश-विधिक (उपागम, Approach) तथा धार्मिक नियमों (नैतिक मानदण्डों, Norms) से शासित हैं। धार्मिक धारणा ही अधिकतर उनके नैतिक स्तरों, उनकी चित्रकला, मूर्तिकला, भवन निर्माण-कला, लोकगीत तथा अन्य ऐसी ही कलाओं के रूप तथा सामग्री पर और साथ ही उनके सामाजिक तथा आर्थिक पर्वों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखती है।

ग्रामीण जीवन में धर्म का सांगोपांग वर्चस्व पूँजीवादी युग के भरण-पोषणात्मक आर्थिक प्रणाली पर आधारित होता है।

तृतीय, उपर्युक्त भरण-पोषणात्मक अर्थव्यवस्थाओं पर आधारित ग्रामीण समाज का नेतृत्व पुरोहित अर्थात् ब्राह्मण वर्ग करता था। ब्राह्मण वर्ग द्वारा प्रस्तुत सामाजिक लोकाचार अथवा रूढ़ियाँ सामाजिक नियंत्रण तथा व्यक्तिगत व्यवहार के मानदंड होते थे। इसलिए सभी क्षेत्रों में ग्राम समष्टि का जीवन धार्मिक विचारों तथा मतों (Dogmas) की भावना में ढाला जाता था तथा धार्मिक नेताओं द्वारा नियंत्रित किया जाता था।

चतुर्थ, ब्रिटिश शासन के प्रभावस्वरूप भारत के ग्रामीण समाज की जीवन-प्रक्रिया में आमूलचूल प्रगतिशील परिवर्तन हुआ। पूँजीवादी आर्थिक प्रविधियों के विकास तथा प्रसार ने आत्मनिर्भर ग्राम की भरण-पोषणात्मक अर्थव्यवस्था को विश्रृंखलित कर दिया। इसके अतिरिक्त, एक नवीन तथा धर्मनिरपेक्ष केन्द्रीय राज्य ने ग्राम-प्रशासन को उन

ग्राम पंचायतों तथा जातीय समितियों से अपने हाथों में ले लिया जिनका दृष्टिकोण मूलरूप से धार्मिक था और जिनका पथ-प्रदर्शन लौकिक मामलों में भी धार्मिक धारणाओं एवं कसौटियों द्वारा होता था।

नवीन आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण में से मूलरूपेण धर्मनिरपेक्षता तथा उदार जनतांत्रिक तत्वज्ञान से निर्मित नियम (Norms) उद्भूत हुए तथा अधिकाधिक रूप से अधिकारवादी धार्मिक नियमों का स्थान लेने लगे जो युगों से

ग्रामीण जनता के लौकिक जीवन पर भी शासन करते थे। इतिहास में सबसे पहली बार ग्रामीण लोगों ने लौकिक तथा जनतांत्रिक तथा समानतावादी विचारों का संघाव अपनी चेतना पर अनुभव किया। उनमें एक नवीन हलचल फैलने लगी जो लगातार उनके उस जीवन तथा दृष्टिकोण को प्रभावित करती है जो अब तक धर्म से अनुरंजित रही। इसके अतिरिक्त, नवीन लौकिक संस्थाएँ तथा समितियों, नवीन लौकिक नेतृत्व तथा सामाजिक नियंत्रण का उद्‌भव ग्रामीण समाज में होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि धीमे-धीमे किन्तु लगातार ग्रामीण जनता पर धर्म एवं धार्मिक नेताओं (पुरोहितों या ब्राह्मणों) का नियंत्रण क्रमशः कमजोर पड़ने लगा।

भारत का समसामयिक ग्रामीण समाज दो शक्तियों के मध्य संघर्ष का रणक्षेत्र बन गया है। इन शक्तियों में से एक ओर तो धार्मिक कट्‌टरता तथा आविष्कारवादी सामाजिक धारणाओं की शक्ति है और दूसरी ओर लौकिक जनतांत्रिक उन्नति की शक्ति है। भारतीय ग्रामीण-समाज के अध्येता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह इस संघर्ष को समझ सके।

भारत के ग्रामीण धर्म का स्वरूप

भारत के ग्रामीण धर्म के निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण अंग होते हैं-

1. जगत् के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण के रूप में,
2. धार्मिक क्रियाओं की संहिता के रूप में,
3. संस्थात्मक संकुल के रूप में।

जगत के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण में सम्मिलित तत्व है जैसे- (a) जादू-टोना सम्बन्धी धारणाएँ, (b) पुराण विद्‌या, (c) आत्मवाद, (d) पूजनीय मृतक पूर्वजों की मरणोपरान्त जगत्-सम्बन्धी धारणा तथा, (e) भूत-प्रेत युक्त विलक्षण जगत् की धारणा।

ग्रामीण धर्म का सबसे अद्‌भुत लक्षण विश्व की गतिशील धारणा है। इसका अभिप्राय ऐसे विश्व से है जो चेतन तथा स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने वाले तत्वों की पारस्परिक क्रीड़ा का रंगमंच है। ग्रामीण धर्म ऐसे लोकों का उद्‌घाटन करता है जैसे- पितृ लोक, प्रेत लोक, देव लोक तथा बैकुंठ धाम। इसका आशय होता है,

मृत पूर्वजों का जगत, अशरीरी आत्माओं का जगत्, देवी-देवताओं का जगत् तथा दिव्य जगत्। इसके अतिरिक्त यह इस प्रकार के जगत् की भी कल्पना करता है जिसमें ऐसे देवता वास करते हैं जैसे उर्वरता, विभिन्न महामारियों, नदियों तथा वनों के देवता। वास्तव में, ग्रामीण धर्म लगभग सभी दृश्यमान पदार्थों के पीछे अशरीरी आत्माएँ देखता है और आत्माओं के रहस्यमय लोकों के मायाजाल (Phantasmagoria) की रचना कर डालता है।

इस प्रकार का जगत् सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रकृति तथा मानव की शक्तियों की अगाध अज्ञानता से ही मौलिक रूप में ही उत्पन्न हुआ है। अज्ञानता भय उत्पन्न करती है और ये दोनों असंस्कृत ग्रामीण धर्म द्वारा निर्मित जगत- सम्बन्धी दृष्टिकोण के दो परस्पर सम्बन्धी स्रोत हैं।

चूँकि इस प्रकार का जगत्-सम्बन्धी दृष्टिकोण चेतन अथवा अचेतन रूप से अधिकतर व्यक्ति तथा सामाजिक समष्टि के नैतिक तथा अन्य विचार और उनके आचरण को निर्धारित करता है इसलिए यह ग्रामीण समाज का एक अत्यावश्यक भाग है।

धार्मिक क्रियाओं की संहिता के रूप में ग्रामीण धर्म द्वारा निश्चित धार्मिक क्रियाओं की संहिता बहुत प्रभावशाली है। ये क्रियाएँ इन तीन समूहों में विभक्त की जाती है- 1.प्रार्थनाएँ, 2.यज्ञ,
3. विधि-विधान।

संस्थात्मक संकुल के रूप में

हिन्दू धर्म, जिसके अनुयायियों का अत्यधिक भाग ग्रामीण जनता है, अनेक उपधर्मों तथा धार्मिक मतों का एकीकरण है।

इन अनेक उपधर्मों तथा धार्मिक मतों की संस्थात्मक रूप से दिया गया है। इन संस्थात्मक उपधर्मों तथा धार्मिक मतों के अनुरूप ही अनेक धार्मिक संगठन विद्यमान है।

इनमें से कुछ धार्मिक संगठन राष्ट्रीय स्तर पर, कुछ प्रान्तीय स्तर पर तथा अन्य स्थानीय आधार पर कार्य करते हैं वे अपने मठ, आश्रम तथा मन्दिर रखते हैं।

जहाँ उनके अनुयायी विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करने तथा धार्मिक प्रबन्धन सुनने के लिए एकत्रित होते हैं।

इन धार्मिक संस्थाओं की अपनी सम्पत्ति होती है जो कभी-कभी पर्याप्त मात्रा में होती है। वे पुरोहितों तथा प्रचारकों का स्थायी कार्यकर्ता-मंडल रखते हैं जो उन उपधर्मों तथा धार्मिक मतों के सिद्धान्तों का प्रसार करते हैं।

इस प्रकार हमारे देश में ऐसे धार्मिक संगठन हैं, जैसे शंकराचार्य की अध्यक्षता में और रामानुज, वल्लभ, सहजानन्द तथा अन्यों के वंशजों की अध्यक्षता में हैं और इन सबमें दार्शनिक तथा विधि-विधान सम्बन्धी अति सूक्ष्म भेद होते हैं।

कुछ उपधर्म तथा धार्मिक मतों ने संस्थाओं का रूप नहीं धारण किया है। उनके नेता तथा प्रचारक अभी नियमित संगठनों के सूत्र में नहीं बंध पाये हैं।

भारत में राजकीय धर्मों का यहाँ के धर्म का विशिष्ट लक्षण है। यह ईसाई धर्म तथा इस्लाम के विपरीत है जो यूरोप और एशिया के अनेक देशों में राजकीय धर्म बन गये हैं। भारत में धर्म समुदाय से, न कि राज्य से संबंधित माना गया। धार्मिक संगठन सदा ही राज्य से पृथक तथा विशिष्ट ही रहा, चाहे हिन्दू अथवा मुस्लिम राजा अपने किसी भी धर्म का क्यों न समर्थन करता हो।

प्राचीन भारतीय समाज के जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह था कि यहाँ बड़े-बड़े जनतांत्रिक सार्वजनिक आन्दोलनों ने धार्मिक आन्दोलनों का रूप धारण किया और महान धार्मिक नेताओं अर्थात् भक्तों ने उन आन्दोलनों का नेतृत्व किया। इन आन्दोलनों का उद्देश्य लोगों को अपने कार्यक्रमों की ओर आकर्षित करना था और उनके नेतृत्व तथा कार्य द्वारा समाज का सुधार करना था।

इन भक्ति आन्दोलनों के लोकप्रिय जनतांत्रिक लक्षण का प्रमाण इस तथ्य से प्राप्त होता है कि साधारणतया वे हिन्दु समाज के जनतंत्रीकरण का अर्थात् जाति अथवा जातिगत समानताओं की समाधि का समर्थन करते थे जिससे समस्त हिन्दुओं को, जिनमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं, ब्राह्मण पुरोहित, वर्ग की मध्यस्थता के बिना ईश्वर की उपासना तथा धार्मिक संस्कृति का लाभ प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त, इन भक्तों में देशी भाषाओं का विकास किया जिसको सामान्यजन जानते और बोलते थे और उन्होंने स्वयं विशाल साहित्य की रचना

इन भाषाओं में की। इस प्रकार उन्होंने सामान्य जनता तक संस्कृति को पहुँचा दिया।

फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि हिन्दू, बौद्ध अथवा मुस्लिम राजा प्रायः अपनी राज्य की शक्ति तथा साधनों को जिस धर्म विशेष को वे मानते थे, उसके प्रसार के लिए उपयोग में लाते थे। फिर भी राज्य का रूप हिन्दू अथवा मुस्लिम नहीं था। धर्म राज्य का विभाग नहीं था।

धार्मिक कार्यकर्त्ता समूह - यह समूह दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम, पुरोहित जिनका निश्चित निवास होता है तथा दूसरे, संन्यासी जो स्थान-स्थान पर भ्रमण करते रहते हैं।

पुरोहित- यह अनेक प्रकार के होते हैं जैसे परिवार के पुरोहित जो परिवार की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। जाति तथा उपजाति के पुरोहित होते हैं जो विभिन्न जातियों तथा उपजातियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ग्राम पुरोहित ग्राम के मन्दिर की देखभाल करते हैं और सम्पूर्ण ग्राम समुदाय के धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

पुरोहित समूह ग्रामीण जनता के धार्मिक तथा लौकिक जीवन पर प्रबल प्रभाव रखते हैं, क्योंकि लौकिक जीवन की प्रक्रियाएँ भी धर्म से अनुरंजित रहती हैं और उन्हें प्रारंभ करने से पूर्व विधि-विधान के द्वारा धार्मिक दृष्टि से उन्हें पवित्र बनाया जाता है। अब भी ग्रामीण जनता के लौकिक जीवन के ताने-बाने में धर्म अधिकतर गुँथा हुआ है।

इसके बावजूद ऐतिहासिक प्रवृत्ति यह बतलाती है कि ग्रामीण जनता के लौकिक जीवन पर पुरोहित वर्ग का जो प्रभुत्व था, वह पतनोन्मुख है।

संन्यासी भारत में पुरोहितों के साथ-साथ संन्यासी भी अधिक संख्या में हैं। यह ग्रामीण क्षेत्र में प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इनमें से कुछ अपने-अपने धार्मिक मतों/संप्रदायों के प्रचारक हैं। अन्य संन्यासी पवित्र मानव हैं जो अपनी यात्रा द्वारा ग्राम को पवित्र बनाते है और कुछ समय के प्रादेशिक स्थानीय ग्रामीणों का आतिथ्य स्वीकार करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में धर्मस्थान (मन्दिर) का महत्व

ग्रामीण जीवन में ग्राम-मन्दिर केवल पूजा-अर्चना के स्थान में ही नहीं कार्य करता, वरन् वह ग्रामीण क्रियाकलापों का मुख्य केन्द्र होता है। आज भी उसका ग्रामीण जीवन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन्हें निम्न शीर्षकों में व्यक्त किया जाता है -

1. ग्रामों में मन्दिर शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों से भी जुड़ा होता है। युगों तक वहाँ पाठशालाएँ चलाई जाती रहीं जहाँ उच्च जाति के अल्पवयस्क धार्मिक तथा लौकिक शिक्षाएँ प्राप्त करते थे। वहाँ ग्रामीण लोगों के लिए धार्मिक प्रवचन तथा कथाओं का आयोजन होता था जिनमें भारतीयों के प्राचीन इतिहास का वर्णन किया जाता था।
2. ग्राम-मन्दिर ग्रामवासियों से धन-सामग्री एकत्र कर और उससे असहायों की सहायता करता।
3. ग्राम-मन्दिर सामूहिक, सामाजिक तथा धार्मिक समारोहों का आयोजन करता था। इनसे ग्राम के सामूहिक, धार्मिक तथा लौकिक जीवन की पुष्टि होती थी।
4. मंदिर में परंपरागत साहित्य तथा कलात्मक संस्कृति का संरक्षक था। कभी-कभी इसके अपने गायक, नर्तक और संगीतज्ञ भी रहते थे।
5. ग्राम मन्दिर नैतिक मूल्यों का स्रोत था तथा ग्रामीण जनता के जीवन को नियंत्रित करता था।
6. ग्राम मन्दिर ग्राम जीवन के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता रहा है।
7. कभी-कभी मन्दिर न्याय भी करता है। वह ग्रामीण लोगों के मध्य जो झगड़े अथवा विवाद होते हैं, उन्हें धर्म की सत्ताधारी वाणी के द्वारा निपटाता है। भीषण लौकिक अपराधों के लिए भी वह प्रायश्चित के धार्मिक तरीके निश्चित करता है।
8. ग्राम-मन्दिर अपने पुरोहित प्रतिनिधि के द्वारा भावी घटनाओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणियाँ भी करता है।

ग्रामीण धर्म पर आधुनिक शक्तियों का प्रभाव

आधुनिक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा बुद्धिवादी शक्तियों के प्रभाव के कारण वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में क्रमिक एवं शनैः शनैः परिवर्तन हो

रहा है। यह परिवर्तन ग्रामीण जीवन के सभी क्षेत्रों में हो रहा है, जिसमें ग्रामीण धर्म का क्षेत्र भी सम्मिलित है। ग्रामीण धर्म की विचारधारा, संस्थाओं, विधि-विधान, नीति, सौन्दर्यशास्त्र (Aestheties) में नवीन पाश्चात्य आर्थिक भौतिक एवं सांस्कृतिक शक्तियों के दबाव के कारण क्रमिक परिवर्तन हो रहा है। यह ग्रामीण समाजशास्त्री का दायित्व है कि वह इस प्रक्रिया का अध्ययन करे ताकि ग्रामीण धर्म के विषय में जो ग्रामीण जनता के मस्तिष्क को तथा ग्रामीण समाज की जीवन-प्रक्रियाओं को प्रबल रूप से प्रभावित कर रहा है, वह भविष्यवाणी कर सके।

ग्रामीण धर्म वैज्ञानिक भारतीय इतिहास के निर्माण में सहायक

समसामयिक ग्रामीण धर्म का अध्ययन बहुत आवश्यक है, क्योंति, यह भारतीय जनता के प्राचीन सांस्कृतिक विकास का समन्वित चित्र प्रस्तुत करता है। भारतीय संस्कृति का इतिहास अब भी खंड-खंड में बिखरा हुआ है तथा अपूर्णावस्था में है। भारतीय संस्कृति की उत्पत्ति तथा परवर्ती विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध में अब भी वाद-विवाद चल रहा है। इस विषय पर विभिन्न विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी समस्याएँ भी विवाद का क्षेत्र बनी हुई हैं जैसे- भारतीय संस्कृति का उद्‌भव कहाँ हुआ और कैसे भारत के विभिन्न भागों में वह प्रसारित हुई।

इसके अतिरिक्त, भारतीय ग्रामीण धर्म का समाजशास्त्रीय विश्लेषण अपने प्रतीकात्मक रूप में भारत के प्राचीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और नृवंश-सम्बन्धी (Ethnic) इतिहास को व्यक्त करता है। यह परस्पर विरोधी प्राचीन सामाजिक समूहों के आर्थिक तथा अन्य प्रकार के संघर्षों और विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सम्मिश्रण को भी प्रकट करता है। इसका कारण यह है कि धार्मिक जगत की छाया समाज की वास्तविक गतिविधि को प्रतिबिम्बित करती है।

भारत में ग्रामीण धर्म की विचारधारा तथा पुराण विद्‌या के अध्ययन से भारतीय समाज के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में जो परिवर्तन हुए, उनसे उनके रहस्य का उद्‌घाटन हो जाता है। इसी प्रकार विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों यथा- मिस्र,

बेवीलोनिया, यूनान तथा अन्य देशों के मोरेट, मेसपरो, ब्रेस्टेड, फ्रैंकफुर्त, गार्डन चाइल्ड, चामसन और अन्य प्रख्यात विद्वानों द्वारा जो अध्ययन किये गये हैं, उन्होंने यह बताया है कि किस प्रकार जनजातियों के समाज से प्रादेशिक राजनैतिक समाज के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया का प्रदर्शन होता है।

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्री को ऐसी समस्याओं का अध्ययन करना चाहिए जैसे भारत के विशेष भागों में शैवभूत का विस्तार क्यों हुआ, शान्त मन ने विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूप क्यों धारण कर लिए आदि। देवियों और देवताओं का प्रव्रजन जनता के प्रव्रजन का भी संकेत करता है। देवियों तथा देवताओं का सम्मिश्रण लोगों के सम्मिश्रण की ऐतिहासिक प्रक्रिया को प्रकट करता है। देवियों और देवताओं की श्रेणी-विभक्त संस्था का होना तथा कुछ देवी- देवताओं को दुष्ट करना और दूसरों को परोपकारी के रूप की प्रशंसा करना पौराणिक संज्ञा में विभिन्न नृवंशीय समूह में तथा जनता में संघर्ष एवं वास्तविक ऐतिहासिक संघर्षों में कुछ का दूसरों के अधीन होना प्रदर्शित करता है।

ध्यातव्य है कि हिन्दू धर्म का ग्रामीण जनसंख्या में हिन्दू धर्म की बहुलता होने के कारण ग्रामीण धर्म की व्याख्या की जाती है। साथ ही साथ, इस्लाम, ईसाई धर्म तथा पारसी धर्म भी भारतीय ग्रामीण समाज में विद्यमान थे। इसलिए ग्रामीण समाजशास्त्री के लिए यह भी आवश्यक है कि इनका भी इसी प्रणाली के अनुसार अध्ययन करें जिससे ग्रामीण जनता के जीवन में धर्म की भूमिका का पूर्ण मूल्यांकन हो सके।

10.9 प्रथाएँ, परम्पराएँ, भाग्यवाद एवं अंधविश्वास*(Customs, Traditions, Fatalism and Blind Faith)*

प्रथाए (Customs)

समूह की आदत को जनरीति कहा जाता है। जब इन जनरीतियों को एक समूह लम्बे अर्से से अपनाता रहता है और इसका हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हो जाता है, तो इसे प्रथा कहते हैं। दूसरे शब्दों में जब जनरीतियाँ अधिक

स्थायित्व प्राप्त कर लेती हैं तो इन्हें प्रथा कहते हैं। विभिन्न विद्वानों ने प्रथा की निम्न परिभाषाएँ दी हैं-

मैकाइवर और पैज के अनुसार "सामाजिक मान्यता प्राप्त व्यवहार ही समाज की प्रथाएँ हैं।"।

बोगार्डस के अनुसार - "प्रथाएँ समूह द्वारा स्वीकृत सामाजिक नियंत्रण की विधियों है जो जब सुव्यवस्थित हो जाती है, जिनको मान्यता दे दी जाती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती हैं, तो इसे प्रथा कहते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब जनसमूह की आदत सुव्यवस्थित हो जाती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती रहती है, तो इसे प्रथा कहते हैं।

प्रथा की विशेषताएँ - प्रत्येक प्रथा में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं-

(1) प्रथा की पहली विशेषता यह है कि इसका स्वतः विकास होता है,

(2) प्रथा के पीछे विशिष्ट उद्देश्य होता है जिसमें सामूहिक कल्याण की भावना पाई जाती है,

(3) प्रथा समाज में नियंत्रण रखती है,

(4) प्रथाएँ सामाजिक विरासत का रूप होती हैं,

(5) ये अत्यधिक शक्तिशाली होती है,

(6) जनरीति की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित होती हैं।

प्रथा और जनरीति में अन्तर (Distinction Between Custom and Folkways) प्रथां और जनरीलि में निम्न अन्तर है -

(i) जनरीतियों की तुलना में प्रथाएँ अधिक व्यवस्थित होती हैं।

(ii) जनरीतियों की तुलना में प्रथाएँ अधिक स्थायी होती है।

(iii) जहाँ तक सामूहिक कल्याण का सवाल है, प्रथाओं का निर्माण सामूहिक कल्याण के लिये विशेष तौर से होता है।

(iv) एक प्रथा को क्रियात्मक रूप देने के लिये अनेक जनरीतियों को कार्यान्वित करना पड़ता है।

(v) जनरीति समूह की आदत का नाम है, प्रथाएँ समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार के तरीकों का नाम है।

(vi) संस्था के विकास में विचार, आदत और समूह की आदत या जनरीति तीसरा चरण है, प्रथा उससे भी आगे चौथा चरण है।

परम्परायें(Traditions)

परम्परा, प्रथा और जनरीति तीनों ही शब्द ऐसे हैं जिनसे सामान्य व्यक्ति को भ्रम होता है। इस प्रकार के भ्रम का होना स्वाभाविक है, किन्तु प्रथा और परम्परा एक दूसरे से भिन्न होते हैं। परम्परा का शब्द 'सामाजिक विरासत' (Social Heritage) से घनिष्ठ सम्बन्ध है। माता-पिता से मिलने वाली भौतिक और अभौतिक सम्पत्ति को विरासत कहते हैं। सामाजिक विरासत का अर्थ माता-पिता से प्राप्त होने वाली अभौतिक वस्तुओं से है। विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परम्परा की निम्न परिभाषाओं से इसका आशय स्पष्ट हो जाएगा।

रॉस ने लिखा है, 'विश्वास और विचार करने की विधि के हस्तान्तरण को ही परम्परा समझना चाहिए।"

गिन्सबर्ग के अनुसार, 'परम्परा का अर्थ व्यक्तियों के विचारों, आदतों और प्रथाओं के योग से है जो एक समाज में पाई जाती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है।

समाज सामाजिक सम्बन्धों का एक संजाल (Network) है। समाज में पौराणिक कथाओं और कहानियों का संग्रह होता है, यह संग्रह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जाता है। इन्हीं हस्तान्तरित प्रथाओं और पौराणिक कथाओं के संग्रह को परम्पराएँ कहते हैं।

परम्परा की विशेषताएँ परम्परा की निम्न विशेषताएँ होती है -

(1) परम्परा का सम्बन्ध सामाजिक विरासत से है।

(2) परम्परा का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण होता रहता है।

(3) परम्परा का सम्बन्ध भावात्मक और आदर्शात्मक विशेषताओं से है जैसे- गुरुजनों की सेवा, बड़ों का आदर, अहिंसा, अध्यात्मवाद आदि।

(4) परम्परा का निर्वाह अनेक प्रथाओं और लोकरीतियों के माध्यम से होता है।

परम्परा का महत्व (Importance of Tradition)

परम्पराओं का सामाजिक जीवन में निम्न महत्व होता है-

(1) परम्पराओं से आत्म-विश्वास और दृढ़ता की भावना का विकास होता है। परम्पराएँ न हों तो हमें दूसरों का अनुकरण करना पड़े, इसके द्वारा अतीत की घटनाओं की स्मृतियाँ वर्तमान जीवन के सम्मुख लायी जाती हैं।

(2) परम्पराएँ सामाजिक संगठन, एकता और एकीकरण में सहायक हैं,

(3) परम्पराओं के माध्यम से 'सामाजिक विरासत' की रक्षा की जाती है और इसका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी समाजशास्व: बी.ए. प्रथम वर्ष को हस्तान्तरण किया जाता है,

(4) परम्पराओं के द्वारा भावनात्मक एकता का विकास होता है।

भाग्यवाद (Fatalism)

कर्म और भाग्य जीवन के दो छोर है, मानव समाज की दो विचारधाराएँ हैं। कर्म जीवन की वह विचारधारा है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने कार्यों द्वारा सामाजिक प्रतिदिन की इच्छा व्यक्त करता है। उसे इस बात का विश्वास रहता है कि व्यक्ति को जो कुछ भी मिलता है, वह उसके कर्मों का परिणाम होता है। कहा भी गया है कि -

"कर्मप्रधान विस्व करि राखा। जो जस करे, सो तस फल चाखा।।"

यह जीवन का कर्म-प्रधान दृष्टिकोण है। जीवन का भाग्यवादी दृष्टिकोण बिलकुल इसके विपरीत है। भाग्यवादी दृष्टिकोण यह है कि व्यक्ति को अपने से कुछ भी नहीं करना है। वह जो कुछ प्राप्त कर सका है, उसका कारण उसका भाग्य (Fate) ही है। जीवन से मृत्यु तक की समस्त घटनाएँ भाग्यवाद का परिणाम है। भाग्य पर केन्द्रित विचारधारा ही भाग्यवाद है।

भाग्यवाद उन समाजो में अधिक है, जो तुलनात्मक रूप से कम विकसित हैं या विकास की प्रक्रिया में पीछे हैं। भारतीय जीवन में भाग्यवाद का बोलबाला है, क्योंकि यहाँ शिक्षा का अभाव है। व्यक्ति कृषि अर्थव्यवस्था पर आश्रित है। ग्रामीण जनता में अशिक्षा और अज्ञान की मात्रा अधिक पाई जाती है। यही कारण

है कि भाग्यवाद उनके जीवन का केन्द्र-बिन्दु बनकर रह जाता है। यही कारण है कि ग्रामीण जनता विधि-विधान को अमिट मानती है तथा हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती है। भाग्यवाद ही वह तत्व है, जो मानव को अकर्मण्य तथा आलसी बना देता है। भाग्यवाद के कारण ही जनता विपत्तियों के कारण उस कारागार में बन्द हो जाती है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। ग्रामीण जनता ईश्वर को सबसे बड़ी उपलब्धि मानती है और सब कुछ ईश्वर के भरोसे ही छोड़ देती है। भाग्यवाद के कारण ही ग्रामीण जनता सदियों से चली आ रही रीति-रिवाज और प्रथाओं का आदर करती है। वे भाग्यवाद से इतने बँधे होते हैं कि वे नवीन परिवर्तनों को किसी भी प्रकार से स्वीकार नहीं करते हैं।

अंधविश्वास (Blind Faith)

भाग्यवाद अंधविश्वास की जननी है। संस्कृति के विकास में अंधविश्वासों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सभ्य समाज से लेकर असभ्य समाज तक के लोगों के जीवन में अंधविश्वासों की विचित्र प्रथाएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिये -

(i) अंग्रेजी में घोड़ी की नाले इकट्ठा करना शुभ माना जाता है,

(ii) भारतीयों में छींक का आना, बिल्ली का रास्ता काट जाना अशुभ माना जाता है,

(iii) चूल्हे का हँसना, नांद का उफनना भी कुछ विशिष्ट अर्थ रखते हैं,

(iv) प्रातः कौए का बोलना किसी मेहमान के आने का संकेत करना है।

भारतीय ग्रामीण जीवन को इसी प्रकार के अनेक अंधविश्वासों का यदि अजायबघर कहा जाये, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ग्रामीण जीवन भाग्यवादी भी अधिक होता है। वहाँ विज्ञान का प्रभाव नहीं होता है। इस कारण भी वहाँ अनेक अंधविश्वासों का बोलबाला पाया जाता है। ग्रामीण जीवन में परम्पराओं के प्रति घोर आस्था पाई जाती है। जो बात आदिकाल से चली आ रही है, वही सत्य है। अंधविश्वासों के कारण जादू-टोना का विकास होता है। ग्रामीण जीवन में स्वास्थ्य और बीमारी का इलाज आधुनिक दवाइयों द्वारा न होकर जादू यन्त्र की सहायता से होता है।

भाग्यवाद एवं अंधविश्वास के दुष्परिणाम
(Evil Effects of Fatalism and Blind Faith)

अंधविश्वास और भाग्यवाद का ग्रामीण जीवन पर जो प्रमुख दुष्परिणाम पड़ते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है

1. भाग्यवाद और अंधविश्वास के कारण ग्रामीण प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है,
2. भाग्यवाद और अंधविश्वास प्रतियोगिता (Competition) की भावना जो भी कम करते हैं,
3. भाग्यवाद और अंधविश्वास स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है,
4. भाग्यवाद और अंधविश्वास के कारण रहन-सहन का स्तर नीचा हो जाता है।
5. भाग्यवाद और अंधविश्वास सामाजिक जागरूकता को कम करते हैं, जिससे मानव जीवन कूपमण्डूक हो जाता है।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. किसने कहा- 'धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।'
(अ) फ्रेजर (ब) टेलर (स) हावेल (द) मैलिनोवस्की
2. The Golden Bough पुस्तक के लेखक कौन है-
(अ) जानसन (ब) गिलिन और गिलिन (स) फ्रेजर (द) मैकाइवर
3. आत्मावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया-
(अ) मैक्समूलर (ब) डेविड हाम (स) टेलर (द) जानसन
4. प्रकृतिवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है-
(अ) मेरेट (ब) फ्रेजर (स) मैक्समूलर (द) टेलर
5. Elementary Forms of Religious Life के लेखक कौन है-
(अ) मैक्सवेबर (ब) दुर्खीम (स) स्पेंसर (द) आगस्त कॉम्टे

10.10 सारांश

धार्मिक विश्वास, व्यवहार, और सांस्कृतिक प्रतिमान समाज के संरचनात्मक और सांस्कृतिक पहलुओं को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह धार्मिक

विश्वासों और अनुष्ठानों के माध्यम से व्यक्तियों और समाज पर उनके गहरे प्रभावों को उजागर करता है। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि धार्मिक व्यवहार किस प्रकार सामाजिक सामंजस्य और कभी-कभी संघर्ष का कारण बनते हैं। सांस्कृतिक प्रतिमान समाज की परंपराओं और मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करते हुए समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह अध्याय सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के इन पहलुओं की गहरी समझ प्रदान करता है।

10.11 मुख्य शब्द

1. धार्मिक विश्वास: ऐसी मान्यताएँ जो ईश्वर, आत्मा, या अलौकिक शक्तियों में आस्था को दर्शाती हैं।

2. अनुष्ठान: धार्मिक क्रियाकलापों का निर्धारित क्रम।

3. सांस्कृतिक प्रतिमान: समाज में प्रचलित परंपराएँ, मान्यताएँ और आचार-व्यवहार।

10.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. (ब).2. (स). 3. (स). 4. (स). 5. (ब)

10.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. मैक्स वेबर, द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म (1905)
2. एमिल दुर्खीम, द एलीमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलिजियस लाइफ (1912)
3. क्लिफोर्ड गीर्ट्ज़, रिलिजन एज अ कल्चरल सिस्टम (1966)

10.14 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.ग्रामीण भारत में प्रथाओं और परम्पराओं पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write Short essay on Customs and Traditions in rural India.

2. भाग्यवाद और अंधविश्वास क्या है? भारतीय ग्रामीण जीवन में इसके दुष्परिणाम लिखिए।

What is Fatalism and Blind Faith? Write its evil effects on Indian rural life.

3. भारत के ग्रामीण धर्म के स्वरूप पर एक लेख लिखिए।

Write a short note on rural religion.

4. धर्म की व्याख्या कीजिए। धर्म के मौलिक लक्षण लिखिए।

Define religion. Write the fundamentals of religion.

5. सामाजिक नियंत्रण में धर्म की भूमिका लिखिए।

Write the role of religion in social control.

6. धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

Discuss the theories of origin of religion.

7. धर्म की व्याख्या कीजिए। धर्म और विज्ञान में भेद कीजिए।

Define religion. Differentiate between religion and science.

8.ग्रामीण धर्म पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

Write short note on rural religion.

9. ग्रामीण जीवन और धर्म पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write short note on 'rural life and religion."

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. धर्म का अर्थ लिखिए।

Write the Meaning of Religion.

2. धर्म की दो विशेषताएँ लिखिए।

Write two characteristics of Religion

3. आत्मावाद का सिद्धान्त लिखिए।

Write Theory of Animism

4. मानावाद का सिद्धान्त समझाइए।

Explain Theory of Manaism

5. धर्म और विज्ञान समझाइएं।
   Explain Religion and Science.
6. धर्म में पुरोहित का स्थान बताइए।
   Write Position of Priest in Religion.

इकाई -11
नातेदारी(KINSHIP)

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 नातेदारी की परिभाषा
11.4 नातेदारी के प्रकार
11.5 नातेदारी की श्रेणियाँ
11.6 नातेदारी का महत्व
11.7 नातेदारी से संबंधित अवधारणाएँ
11.8 वंशानुक्रम
11.9 पदाधिकार एवं उत्तराधिकार
11.10 गोत्र
11.11 सारांश
11.12 मुख्य शब्द
11.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
11.14 संदर्भ ग्रन्थ
11.15 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

समाज सामाजिक संबंधों की व्यवस्था का नाम है और व्यक्ति अभिनेता है, जो इन संबंधों की स्थापना और निर्धारण करता है। चूंकि समाज में अनेक प्रकार के संगठन और समूह पाए जाते हैं, इसलिए सामाजिक संबंधों में विविधता का होना नितान्त स्वाभाविक है। अनेक सामाजिक संबंधों में रक्त पर आधारित मानव संबंध अत्यंत ही शक्तिशाली और महत्वपूर्ण होते हैं। रक्त ही वह आधार है,

जिसके द्वारा व्यक्ति समस्त सामाजिक प्राणियों को निम्न दो भागों में विभाजित कर देता है-

(i) अपने या हम, और
(ii) पराये या 'वे'।

सम्बन्ध भी दो प्रकार के होते हैं-

(i) समीप या निकट के सम्बन्ध, और
(ii) दूर के सम्बन्ध।

सामाजिक मानवशास्त्र के अन्तर्गत नातेदारी शब्द अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसी की सहायता से समाज के समस्त प्राणियों के बीच स्थापित सम्बन्धों की विवेचना की जाती है। वैसे तो सामाजिक प्राणी समाज में रहने के कारण अनेक प्रकार के सूत्रों से आबद्ध होते हैं, किन्तु इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे सम्बन्ध होते हैं जो रक्त या खून (Blood) की आधारशिला पर कायम होते हैं। रक्त ही वह आधार है जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने और पराये के बीच भेद स्थापित करता है।

11.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. नातेदारी की परिभाषा, प्रकार और सामाजिक संरचना में इसकी भूमिका को समझना।
2. परिवार और समाज में नातेदारी के संबंधों और उनके महत्व का विश्लेषण करना।
3.नातेदारी के माध्यम से सामाजिक सहयोग और समर्थन की प्रक्रिया को पहचानना।

11.3 **नातेदारी की परिभाषा** *(Definition of Kinship)*

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशारित्रयों ने नातेदारी की जो परिभाषाएँ दी है, वे इस प्रकार है-

(1) मजूमदार और मदन- "सभी समाजों में मनुष्य विभिन्न प्रकार के बन्धनों से समूह में बंधे हुए होते है। इन बन्धनों में सबसे अधिक सार्वभौम और सबसे अधिक मौलिक वह बन्धन है, जो कि सन्तानोत्पति पर आधारित है, जो कि आन्तरिक मानव प्रेरणा है, यही नातेदारी कहलाता है।"।

(2) चार्ल्स विनिक "नातेदारी व्यवस्था कल्पित तथा यथार्थ आनुवांशिक बन्धनों पर आधारित समाज- स्वीकृत समस्त सम्बन्धों को सम्मिलित कर सकता है।"

(3) "लेवी स्ट्रास" "नातेदारी प्रणाली वंश अथवा रक्त संबंधी कर्म विषयक सूत्रों से निर्मित नहीं होती, जो कि व्यक्ति को मिलाती है, यह मानव चेतना में विद्यमान रहती है, यह विचारों की निरंकुश प्रणाली है, वास्तविक परिस्थिति का स्वतः विकास नहीं है।"

(4) ब्राउन - "नातेदारी सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश सम्बन्ध से है, जो कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है।"

(5) नोट्स एण्ड क्वैरीज आन एन्थ्रापोलॉजी "नातेदारी वह संबंध है, जिसकी जानकारी माता-पिता, भाई-बहन या बच्चों के निकट संबंधों द्वारा प्राप्त होती है और जिसे सामाजिक कार्य के लिए मान्यता मिली होती है।"

(6) लूसी मेयर "बन्धुत्व में सामाजिक संबंधों को जैविक शब्दों में व्यक्त किया जाता है।"

(7) राबिन फाक्स "नातेदारी केवल मात्र स्वजन अर्थात् वास्तविक ख्यात अथवा कल्पित समरक्तता वाले व्यक्तियों के मध्य रक्त संबंध है।"

संक्षेप में "नातेदारी समाज में पाई जाने वाली सामाजिक संबंधों की वह स्वीकृत व्यवस्था है जो या तो यथार्थ वंशानुगत संबंधों पर आधारित हो या कल्पित पूर्वजों पर।"

11.4 नातेदारी के प्रकार *(Types of Kinship)*

फर्थ ने लिखा है कि "यह एक छड़ है, जिसके सहारे प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर रहता है।"। प्रत्येक समाज की दो मूलभूत आवश्यकताएँ होती है- विवाह और रक्त

सम्बन्ध। इन्हीं आधारों पर नातेदारी को भी निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(i) रक्त सम्बन्धी नातेदारी (Consanguineous Kinship)- यह नातेदारी व्यवस्था का वह प्रकार है, जो रक्त-सम्बन्धों पर आधारित होता है। इसमें प्राणिशास्त्रीय रक्त-सम्बन्धी और गोद लिये हुए दोनों ही प्रकार के सम्मिलित किये जाते हैं। अनेक जनजातियों में जहाँ पिता का कोई निश्चय नहीं होता है, ऐसी स्थिति में भी बालक और पिता के बीच नातेदारी इस आधार पर मानी जाती है कि वह व्यक्ति सामाजिक संस्कारों द्वारा बालक का पिता बन जाता है।

(ii) विवाह सम्बन्धी नातेदारी (Affinal Kinship) पति और पत्नी में विवाह के कारण दोनों पक्षों के अनेक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों में आबद्ध हो जाते हैं। ये सभी व्यक्ति एक स्वी और एक पुरुष के विवाहबन्धनों के कारण नातेदार बन जाते हैं।

(iii) काल्पनिक नातेदारी काल्पनिक नातेदारी कल्पना पर आधारित होती है। जब कोई व्यक्ति किसी को गोद लेता है, तो वह उसका असली बेटा न होकर, रक्त संबंधी न होकर गोद लिया होता है। यही कारण है कि इस प्रकार नातेदारी वास्तविक न होकर काल्पनिक होती है।

11.5 नातेदारी की श्रेणियाँ *(Categories of Kinship)*

श्रेणियों का तात्पर्य सम्बन्ध के उन अंशों से है, जिनके द्वारा नातेदारी व्यवस्था में सभी व्यक्ति आबद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में इसे नातेदारी का विस्तार कहकर भी सम्बोधित किया जा सकता है। संक्षेप में नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन प्रकार की श्रेणियाँ पायी जाती है-

(i) प्राथमिक नातेदारी (Primary Kinship)- इस श्रेणी के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जो प्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर आबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए माता-पिता और बच्चे, पति-पत्नी आदि जो परस्पर प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

(ii) द्वैतीयक नातेदारी (Secondary kinship)- इसके अन्तर्गत वे नातेदार आते हैं, जो व्यक्ति के प्राथमिक श्रेणी के सम्बन्धों द्वारा सम्बन्धित होते हैं। इनसे व्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वे प्रथम श्रेणी के सम्बन्धों से सम्बन्धित होते हैं। इसके अन्तर्गत विमाता और साले-सालियों आदि आते हैं।

(iii) तृतीयक नातेदारी (Tertiary Kinship)- इसके अन्तर्गत द्वैतीयक श्रेणी के सम्बन्धियों से प्राथमिक रिश्तेदार आते हैं। इस व्यवस्था के कारण विशिष्ट प्रकार के व्यवहार प्रतिमानों का निर्धारण होता है।

नातेदारी के नियामक व्यवहार या रीतियाँ (Kinship usages)

समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। ये संबंध अत्यंत ही विस्तृत और निशान है। समाज में जब किसी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंध बनता है तो प्रश्न यह पैदा होता है कि वह व्यक्ति जिसका दूसरे व्यक्ति से संबंध बनता है, किस प्रकार का व्यवहार करे या किस प्रकार का व्यवहार न करे। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंधों के इसी व्यवहार को नातेदारी के नियामक व्यवहार अथवा नातेदारी की रीतियों के नाम से जाना जाता है। समाज में व्यक्तियों के व्यवहार अनन्त और असीमित होते है। इन्हों अनंत और असीमित व्यवहारों के आधार पर व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। व्यवहारों के अनेक प्रकार होते हैं। उदाहरण के लिए दूसरो के प्रति श्रृद्धा का व्यवहार, मधुरता का व्यवहार, हास-परिहास का व्यवहार, प्रतिबंधों का व्यवहार आदि। इस प्रकार समाज में व्यक्तियों का दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यवहार को ही नातेदारी की रीतियों या नियामकों के नाम से जाना जाता है। नातेदारी के जो प्रमुख नियामक व्यवहार या रीतियों है, उन्हें निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत परिभाषित तथा उनकी व्याख्या का प्रयास किया गया है, जो इस प्रकार है:-

निकटाभिगमन (Incest)

इसे परिहार (Avoidance) भी कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि नातेदार आपस में यौन संबंध स्थापित न करें। रेडक्लिफ ब्राउन ने इसको परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'सही शब्दों में कहें, तो निकटाभिगमन यौन संबंधी पाप या अपराध है, जो परिवार के निकट संबंधियों, जैसे पिता-पुत्री, मां-पुत्र, भाई-बहन के

बीच यौन संबंधों के कारण पनपता है।' इस प्रकार के संबंधों को निषिद्ध करना निकटाभिगमन निषेध कहलाता है। संसार के प्रायः सभी समाजों में निकट संबंधियों के बीच यौन संबंधों को स्थापित करने का निषेध है। इस संबंध में कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न है-

1. पुत्र वधू तथा सास-ससुर के मध्य अनेक जनजातियों और यहाँ तक कि कुछ से अन्य समाजों में भी पुत्रवधू, सास-ससुर तथा जेठ से पर्दा करती है तथा उनसे सीधा वार्तालाप नहीं करती है और न ही उनके कमरों में सोती है।

2. दामाद और सास के मध्य कुछ जनजातियों में दामाद तथा सास के मध्य बातचीत नहीं होती है। दामाद तथा सास एक दूसरे को नहीं छूते हैं और न ही देखते हैं तथा एक दूसरे का नाम भी नहीं लेते हैं।

3. भाई-बहन के मध्य अनेक जनजातियों में भाई तथा बहन के बीच कुछ व्यवहारों पर प्रतिबन्ध है। उदाहरण के लिए वे एक दूसरे से बातचीत नहीं कर सकते हैं, भाई बहन दोनों एक ही कमरे में नहीं रह सकते है, दोनों एक साथ भोजन नहीं कर सकते तथा अपने शरीर को बैंककर रखते हैं।

4. पुत्रवधू एवं जेठ के मध्य अनेक जनजातियों तथा हिन्दू समाज में भी छोटे भाई की पत्नी जेठ के सामने घूंघट में रहती है तथा जेठ के लिए छोटे भाई की पत्नी का मुँह देखना वर्जित है। वे दोनों एक दूसरे से आपस में बातचीत भी नहीं कर सकते हैं।

निकटाभिगमन के कारण

(Causes of incest)

निकटाभिगमन के क्या कारण है? इसमें मानवशास्त्रियों के विचारों में भिन्नता है। फिर भी कुछ सामान्य कारण हैं, जो इस प्रकार हैं-

(a) प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर ने इसके मूल कारणों में मातृसत्तात्मक परिवार की प्रथा को माना है। मातृसत्तात्मक परिवार के कारण इस प्रथा को बल मिलता है।

(b) फ्रेजर का विचार है कि यौन संबंधों को नियंत्रित करने के लिए निकटाभिगमन पर रोक लगाई गई है।

(c) फ्रायड का विचार है कि पारस्परिक यौन संबंधों को रोकना इसके मूल कारणों में है।

(d) लोवी के अनुसार पुत्रवधू बाहरी तथा भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की होने के कारण परिवार के प्रभावों से बचाने के लिए ऐसा किया जाता है।

(c) टर्नी हाई के अनुसार पत्नी को परिवार में सास-ससुर तथा पति को संतुष्ट करने के लिए ऐसा करना पड़ता है। इससे पारिवारिक संघर्ष से बचा जा सकता है।

(f) ब्राउन का विचार है कि परिवार के सदस्यों में अधिक सम्पर्क होने से जहाँ एक ओर प्रेम की प्रगाढ़ता बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर सदस्यों में आपसी द्वेष की भावना का विकास भी होता है। ये दोनों ही बातें पारिवारिक भावना के लिए हानिकारक होती हैं। इसलिए परिवार के सदस्यों के बीच परिहार आवश्यक है।

(g) मैलिनोवस्की का विचार है कि निकटाभिगमन का कारण सदस्यों के बीच एक दूसरे के लिए सम्मान की भावना है। परिहार के कारन ही सदस्यों में एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना का विकास होता है। डॉ. मजूमदार ने भी मैलिनोवस्की के विचारों से अपनी सहमति जताई है।

(h) चेपल तथा कून का मत भी इसी प्रकार है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना के विघटन को रोकने एवं कुछ व्यक्तियों के बीच अंतः क्रिया को प्रतिबंधित करने के लिए ही परिहार की प्रथा का जन्म और विकास हुआ।

(i) रिवर्स का मत है कि द्वेष संगठनों के कारण समाज में निकटाभिगमन के नियमों का जन्म और विकास हुआ। उसके अनुसार विषम लिंगियों में यौन संबंधों को रोकने के लिए निकटाभिगमन का जन्म हुआ। साथ ही समलिंगियों (प्रमुख रूप से पुरुषों में) में निक्टाभिगमन का कारण यह है कि वे विद्वेषी अद्धार्थों (Moieties) के सदस्य रहे होगें।

इस प्रकार निकटाभिगमन सार्वभौमिक नियामक रीतियाँ है, जो प्रायः सभी समाजों में समान रूप से पाई जाती है। चाहे वह समाज शिक्षित हो या अशिक्षित, आदिम हो या आधुनिक। इतना अवश्य है कि देश काल और परिस्थितियों के अनुसार इनमें भिन्नता पाई जाती है। इसका उद्देश्य समाज में व्यवस्था की स्थापना है। जिससे सामाजिक संगठन बना रहे तथा इसको विघटित होने से रोका भी जा

सके। इसके साथ ही पशु जगत की मूलप्रवृतियों के स्थान पर मानव जगत की मूलप्रवृतियों को स्थापित किया जाये।

परिहास या हंसी-मजाक के संबंध

(Joking Relations)

परिहार और परिहास एक दूसरे के विरोधी संबंध है। परिहार जहाँ संबंधों को रोकना है वही परिहास संबंधों को स्थापना करना है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह मनोरंजनात्मक संबंध है, जिसके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ हंसी मजाक के संबंध स्थापित करता है। इसका उद्देश्य संबंधों में घनिष्ठता का विकास करना है इस प्रकार के संबंध प्रायः विवाह संबंधियों के बीच पाए जाते है। जिसके द्वारा विवाह संबंधी आपस में हंसी मजाक करते हैं। इसमें गाली-गलौज को भी सम्मिलित किया जाता हैं एक दूसरे के प्रति भद्दे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए -

1. भारत में ओराँव और बैगा जनजाति में दादी तथा पोते के बीच परिहास संबंध पाया जाता है।
2. जीजा तथा साली के बीच परिहास आधुनिक समाजों में भी पाया जाता है। जनजातियों में भी इसी प्रकार के परिहास पाए जाते हैं।
3. देवर तथा भाभी के बीच परिहास के उदाहरण सामान्य है।
4. जीजा और साला के बीच परिहास,
5. ननद भाभी परिहास,
6. मामा-भांजा परिहास,
7. मामी-भांजा परिहास,
8. दादा-पोती परिहास,
9. चाचा-भतीजा परिहास,
10. फूफा-भतीजा परिहास आदि।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि आदिम समाजों में सामाजिक प्रथाओं और मर्यादाओं के अनुसार परिहास संबंध जाए जाते हैं। इन संबंधों का प्रचलन विशेष अवसरों पर होता है। उदाहरण के लिए होली, विवाह तथा अन्य त्यौहार आदि। हंसी मजाक के

इन संबंधों के कारण अनेक अवसरों पर यौन संबंध भी स्थापित हो जाता है। इन परिहासों के माध्यम से एक दूसरे की खिल्ली उड़ाना, नीचा दिखाना, पानी छिड़कना, कपड़े फाड़ देना, रंग डालना, काली वस्तु फेकना, चेहरे पर किसी प्रकार की आकृति बना देना आदि सम्मिलित है।

इस प्रकार संबंध प्रायः सभी समाजों में पाए जाते है। वैरियर एलविन के अनुसार वैगा जनजाति में पोता- दादी के बीच विवाह संबंध पाए जाते थे। शरतचंद्रराय के अनुसार उरांव जनजाति में दादी और पोते के बीच विवाह संबंधों का उल्लेख है। दक्षिण अफ्रीका की अनेक जनजातियों में मामा-भान्जे के बीच परिहास के संबंध होते हैं। अनेक पितृवंशीय परिवार ऐसे हैं, जहाँ एक व्यक्ति अपनी बुआ से परिहास कर सकता है। होपी जनजाति में भी इसी प्रकार की प्रथा पाई जाती है। अफ्रीका की सौगा (Tsonga) जनजाति में यह प्रथा है कि यदि मामा खाना बन जाने के बाद देर से पहुँचता है, तो भांजा पूरा खाना खा सकता है। इस प्रकार हास परिहास के ये संबंध सार्वभौमिक हैं।

परिहास संबंधों के कारण
(Causes of Joking Relations)

परिहास संबंध क्यों ? इसके प्रमुख कारण क्या हैं? इस संबंध में कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है, जिनके आधार पर इसके कारणों का पता लगाया जा सके और न ही ये सार्वभौमिक है, जो सभी समाजों, कालों और परिस्थितियों में समान रूप से लागू हो। इस संबंध में कुछ विद्वानों ने विभिन्न जातियों और जनजातियों का अध्ययन करने के उपरांत कुछ निष्कर्ष निकाले है। इन विद्वानों के निष्कर्षों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

(1) ब्राउन - रेडक्लिफ ब्राउन ने परिहास के कारणों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार परिहास एक ऐसी मित्रता का प्रतीक है, जिसे शत्रुता पूर्ण व्यवहार के रूप में व्यक्त किया जाता है। आपसी गाली-गलौज, एक दूसरे के साथ मारपीट, अपमानजनक शब्द आदि का दिखावटी प्रयोग किया जाता है। मामा-भांजे के परिहास संबंध को विवाह से संबंधित कुलाशो के बीच समावित वैमनस्य को मिटाने के एक साधन के रूप में किया जाता है।

(2) वेस्टरमार्क का विचार है कि जिन व्यक्तियों के बीच परिहास के संबंध होते हैं, उनमें पारस्परिक संबंध, समानता और घनिष्ठता इतनी अधिक होती थी, कि अनेक अवसरों पर वे विवाह के संबंधों में भी बंध जाते थे। उदाहरण के लिए जीजा-साली और देवर-भाभी के ऐसे परिहास संबंध है, जो अनेक अवसरों पर विवाह के सूचक बन जाते हैं।

(3) डॉ. रिवर्स का विचार है कि परिहास संबंध ममेरे, फुफेरे विवाह संबंध के कारणों के प्रतीक है।

(4) डॉ. चेपल तथा कून का विचार है कि इस प्रथा को कुछ व्यक्तियों के बीच अंतः क्रिया बढ़ाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

माध्यमिक संबोधन (Teknonymy)

अंग्रेजी का टेक्नोनिमी शब्द ग्रीक भाषा से बना है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर ने सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द के लिए हिंदी में प्रयुक्त शब्दों में अनुसंतति संबोधन, संताननामी व्यवहार, माध्यमिक संबोधन, अनुतामिता आदि का प्रयोग किया जाता है। भारत में आदिवासियों तथा गैर आदिवासी समाजों में आज भी एक प्रथा पाई जाती है। इस प्रथा के अनुसार विवाहित स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती है। जब उसे पति को संबोधित करना होता है, तो इसके लिए पुत्र या पुत्री के नाम के संबोधन से अपने पति को बुलाती हैं। उदाहरण के लिए रानी के पापा सुनते हो। ऐसा कहते ही उसका पति अपनी पत्नी की बात की ओर ध्यान देता है।

टायलर के अतिरिक्त फ्रेजर, लोवी आदि मानवशास्त्रियों ने दुनिया के विभिन्न भागों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि इस प्रकार के सम्बन्ध प्राय- दक्षिणी अफ्रीका, पश्चिमी कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, मलाया, चीन, उत्तरी साइबेरिया, ब्रिटिश कोलम्बिया, लंका, फिजी द्वीप समूह, मलेशिया, आदि की अनेक जनजातियों में पाए जाते हैं।

माध्यमिक संबोधन के कारण
(Causes of Teknonymy Relations)

माध्यमिक संबोधन क्यों किया जाता है? इस प्रकार के संबोधन के क्या कारण है। इस संबंध में भी विद्वानों न अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस संबंध में टायलर का विचार है कि माध्यमिक संबोधन की उत्पत्ति का कारण मातृसत्तात्मक परिवार है। मातृसत्तात्मक परिवारों में स्वियों की प्रधानता होती है तथा सर्वोच्च सत्ता उन्हीं के हाथों में होती है। पति बाहरी व्यक्ति होता है। स्वाभाविक तौर पर उसकी परिवार में स्थिति द्वैतीयक संबंधों की होती थी। यही कारण है कि उसको पुकारने के लिए बच्चों को माध्यम बनाया जाता था। कालांतर में जब इस प्रथा का विस्तार हुआ, तो पत्नी अपने पति के नाम को पुकारने के लिए बच्चों के नाम का सहारा लेने लगीं।

लोवी टायलर के इन विचारो से सहमत नहीं है। उसका तर्क है कि यदि माध्यमिक संबोधन का कारण मातृसत्ता है तो पितृसत्ता परिवारों में भी इस संबोधन का प्रयोग क्यों किया जाता है। कुछ समाज ऐसे हैं, जहाँ स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निम्न है, जब कि कुछ समाज ऐसे भी है, जहाँ पुरुषों की सामाजिक स्थिति निम्न है। उसका कहना है कि समाज में भाषा का विकसित न होना तथा शब्दावली की कमी और अज्ञानता के कारण समाजशास्त्र वी.ए. प्रथम वर्ष इस प्रकार क संबोधनों का जन्म और विकास हुआ।

मातुलेय (Avunculate)

इसे मातुल प्रधान व्यवहार के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रथा मातृसत्तात्मक समाजों में पाई जाती है। यहाँ भाँजे-भौजियों के लिए पिता की अपेक्षा माता का अधिक महत्व होता है। इसका कारण यह है कि भाँजे- भौजियों का लालन-पालन माता के घर पर ही होता है। इसके साथ ही माता के स्थान पर मामा ही उनका अभिभावक और संरक्षक होता है तथा भाँजे ही मामा की संपत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं। भारत की खासी और टोडा जनजातियों में मातुल संबंधी व्यवहार पाया जाता है।

मातुलेय का तात्पर्य यह है कि सभी पुरुष संबंधियों की तुलना में मामा का भांजे एवं भांजियों के लिए परिवार में पहला स्थान होता है। इस प्रकार की सत्ता को मातुल सत्तात्मक सत्ता के नाम से जाना जाता है। यदि भांजे, भांजी मामा के घर

रहकर बड़े होते है, तो इस प्रथा का मातृस्थानीय निवास कहा जाता है। मातुलेय प्रथा मातृसत्तात्मक समाज की प्रमुख विशेषता है। यदि इस प्रकार की प्रथा किसी पितृसत्तात्मक परिवार में पाई जाती है, तो ऐसा माना जा सकता है, कि यह पूर्वव पूर्ववर्ती मातृप्रधान सामाजिक संरचना का ही अवशेष है। इस प्रथा के कारण अनेक अवसरों पर मामा और भांजे के बीच संघर्ष की स्थिति का निर्माण हो जाता है। संघर्ष की इस स्थिति का कारण यह होता है कि कभी-कभी मामा अपने भान्जों की तुलना में पुत्रों को अधिक महत्व देने लगता है। मैलिनोवस्की ने ट्रोब्रिमाण्डा द्वीप का उदाहरण देकर इस प्रकार के संघर्षों का उल्लेख किया है।

पितृश्वश्रेय (Amitate)

सत्ता के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते है मातृसत्ता और पितृसत्ता। मातृसत्ता परिवारों में मामा का अधिक महत्व तथा विशेषाधिकार होता है। ठीक इसके विपरीत पितृसत्ता परिवारों में बुआ का अधिक महत्व और विशेषाधिकार होता है। इन परिवारों में पिता की बहन को पितृश्वसा कहा जाता है। डॉ. रिवर्स ने बैक्सद्वीप में इस प्रथा के प्रचलन को पाया है। वहाँ बुआ ही भतीजे क लिए वधु ढूढ़ती है तथा भतीजा मां से अधिक अपनी बुआ का सम्मान करता है। बुआ की संपत्ति का उत्तराधिकारी भी वही होता है। दक्षिणी अफ्रीका की अनेक जनजातियों में इस प्रकार की प्रथा का प्रचलन है। भारत में टोडा जनजाति में बच्चों को नामकरण बुआ ही करती है। इस संबंध में चैपल और कून का विचार है कि जिन संबंधियों से विवाह के बाद सामाजिक अंतः क्रिया के शिथिल होने की संभावना होती है, उन्हें निरंतर बनाए रखने के लिए इस प्रथा का प्रचलन हुआ है। बुआ विवाह के बाद दूसरे परिवार में चली जाती है। अतः इस प्रथा को बनाए रखने के लिए ही पितृश्वश्रेय प्रथा का प्रचलन हुआ।

सह प्रसविता या सहकष्टी (Couvade)

इसे कूवाद या सहकष्टी के नामे से भी जाना जाता है। इस प्रथा का संबंध प्रसवकाल से है। इस प्रकार की प्रथा भारत के खासी और टोडा जनजातियों में पाई जाती है। इसमें प्रसूता स्त्री के साथ उसके पति को भी कष्ट साध्य जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। उसे प्रसूता की तरह नियत भोजन दिया जाता

है तथा प्रसूता की भाँति ही अछूत माना जाता है। वह उन सभी निषेधों का पालन करता है, जिन्हें प्रसूता को करना पड़ता है।

प्रथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या (Psychological Interpretation of Custom)

अनेक विद्वान इस प्रथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते है। उनका कहना है कि इस प्रथा के कारण पति- पत्नी में परस्पर प्रेम का विकास होता है। पत्नी को यह जानकर मानसिक प्रसन्नता होती है कि उसका पति उसके कष्टों में सहभागी है।

सहप्रसविता के कारण (Causes of Couvade) सहप्रसविता क्यों? इसके कारण क्या है? अनेक मानवशास्त्रियों ने इसके कारणों के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विचारों को दिया गया है -

1. मैलिनोवस्की का विचार है कि वैवाहिक संबंधों को अधिक दृढ़ बनाने और पैतृक प्रेम को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के संबंधों का जन्म और विकास हुआ।
2. रेगलन ने इसे विवाह नामक संस्था के उद्विकास में एक सहयोगी कारक के रूप में स्वीकार किया है।
3. डॉ. एस.पी. दुबे के अनुसार इस प्रथा का प्रचलन पितृत्व निर्धारण करने के लिए हुआ होगा।
4. बहुपति विवाही और मातृसत्तात्मक परिवारों में जहाँ संतान के जैविक पिता का निर्धारण करना कठिन रहा होगा, वहाँ वही व्यक्ति संतान का पिता माना जाता रहा होगा, जो सहकष्टी रीति का पालन करता रहा होगा।
5. कुछ विद्वानों का विचार है कि सहप्रसविता का कारण मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक संकुल की संक्रमण की अवस्था का एक अवशेष है। दोनों अवस्थाओं में जब संक्रमण की स्थिति का जन्म हुआ होगा, तो सहप्रसविता की रीति का जन्म और विकास हुआ होगा।

11.6 नातेदारी का महत्व *(Importance of Kinship)*

नातेदारी का महत्व निम्नलिखित कारणों से है-

1. मानवशास्त्र के अध्ययन में उपयोगी मानवशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान है। इस विज्ञान के ज्ञान की प्राप्ति के लिए नातेदारी का ज्ञान आवश्यक है। इसके आधार पर समाज की संरचना को समझाने में मदद मिलती है।

2. मानसिक संतुष्टि - नातेदारी के ज्ञान से व्यक्ति को मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। साथ ही व्यक्ति स्वयं को अकेला नहीं समझता है। उसका भी कोई अपना है, ऐसा अहसास उसे मानसिक संतुष्टि देता है।

3. सामाजिक दायित्वों का निर्वहन मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके अनेक सामाजिक दायित्व है। इन दायित्वों के निर्वहन में नातेदारी मदद करती है। नाते-रिश्तेदार पर्व, त्यौहार तथा सांस्कृतिक कार्यों में सम्मिलित होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं।

4. आर्थिक सहयोग सदस्यों को आर्थिक सहयोग प्रदान करने में भी नातेदारी की महत्वपूर्ण भूमिका है। नातेदारी व्यक्ति को आर्थिक संकट से उबारती है।

5. अन्य महत्व नातेदारी के अन्य महत्व निम्न है

(a) विवाह तथा परिवार का निर्धारण।
(b) वंशावली, उत्तराधिकार तथा पटाधिकार का निर्धारण।
(c) समाज के विकास के स्वरों को समझने में मदद करना।
(d) व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित करना।
(c) व्यक्ति के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का निर्धारण।
(f) व्यक्तियों को सम्मान और प्रतिष्ठा देना।

11.7 नातेदारी से संबंधित अवधारणाएँ *(Concepts relating of kinship)*

मानव समाज के अध्ययन में नातेदारी एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है, जो व्यक्ति और समाज को अनेक दृष्टिकोणों से जोड़ती है। जहाँ यह विवाह बंधनों से व्यक्ति को जोड़ती है वही दूसरे व्यक्तियों से संबंधों की एक विशिष्ट श्रेणी का निर्माण करती है। केवल इतना ही नहीं, यह परिवार की आधारशिला भी रखती है। ये अवधारणाएँ समूहों की बाहरी सीमा के साथ ही उनकी आंतरिक सीमाओं का भी

निर्धारण करती है। नातेदारी व्यक्ति के लिए अनेक प्रणालियों का भी निर्धारण करती हैं। इन प्रणालियों के कारण जहाँ सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण होता है, वही अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता है। इस दृष्टिकोण से अनेक अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। इन अवधारणाओं की व्याख्या अनिवार्य है। इस दृष्टि से नातेदारी की जो प्रमुख अवधारणाएँ हैं, वे इस प्रकार है-

1. पीढ़ी (Generation) नातेदारी अनेक पीढ़ियों का समूह है। ये पीढ़ियों आपस में संबंधित रहती है। उदाहरण के लिए पिता-पुत्र की पीदी। इन पीढ़ियों के स्थान पर व्यक्ति के संबंधों का निर्धारण होता है तथा श्रेणियों में स्पष्टता रहती है। चचेरा, ममेरा, बाबा, परबाबा, प्रपौत्र, बुआ आदि पीढ़ियों के नाम है। संक्षेप में पीढ़ियों सोपान क्रम है, जो संबंधों की व्याख्या करते हैं।

2. वंश (Lineage) - यह वंशानुक्रमण (Heredity) की एक व्यवस्था है। सरल शब्दों में यह रिश्तेदारों का एक समूह है, जिसके सभी सदस्य अपने को एक ही वंशानुक्रमण से मानते हैं। वंश के माध्यम से अपने पूर्वजों को जानने में मदद मिलती है। ये वंश वास्तविक और काल्पनिक दोनों ही प्रकार के हो सकते है। यह गोत्र (Clan) का छोटा रूप है। इसमें कई पीढ़ियों के सदस्य होते हैं। इससे सदस्यों को एक पहचान मिलती है। अनेक बार इनके अपने टोटम होते हैं।

3. फ्रैटरी (Phratry)- फैटरी भी वंश समूह का एक विस्तृत स्वरूप है, जिसमें दो या दो से अधिक इकाईयों का सम्मिश्रण होता है। उदाहरण के लिए 'मुण्डा', 'उरांव' और 'हो'। इस प्रकार फैटरी संबंधित गोत्रों और बड़े समूह को कहते हैं। इनमें वंशानुक्रम की कड़ी अवर्गीकृत (Unspecified) होती है।

4. मोइटी (Moiety) - मोइटी वह प्रणाली है, जिसमें समाज दो एकान्विक वंशानुक्रम (Unilineal Descent) समूह में बंट जाता है। ये दोनों समूह एक समान होते है तथा दोनों को मोइटी कहते है। मोइटी का निर्माण कई गोत्रों (Clans) और वंशों (Lineges) से होता है। मोइटी को इसीलिए द्वैद्य व्यवस्था समूहों (Dual Organization Group) के नाम से भी जाना जाता है। उदाहरण के लिए टोडा में तारथारांल और तेइवाली, मोइटी तथा बोडों में ऑधांल और किल्लों मोइटी पाई जाती है।

5. विवाह संबंध (Affinity) व्यक्तियों, परिवारों और समूहों के बीच जो संबंध (Relations) विवाह के परिणामस्वरूप बनते हैं, उन्हें Affinity के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए माता और सास में अन्तर है, किन्तु इस अंतर को जब विवाह के दायरे में देखा जाता है, तो समाप्त हो जाता है। इस प्रकार Affinity वह संबंध है, जो व्यक्तियों, परिवारों और समूहों को विवाह के माध्यम से आपस में जोड़ते हैं।

6. रक्त संबंध (Consanguinity) व्यक्ति, परिवार और समूहों को जोड़ने वाले संबंध दो प्रकार के होते है- वैवाहिक और रक्त संबंधी। जो व्यक्ति परिवार और समूह रक्त संबंधों के आधार पर जुड़े होते हैं, वे आपस में विवाह नहीं करते है। इसकी व्याख्या वैवाहिक संबंधों के संदर्भ में की जाती है। इसका सीधा संबंध वंशानुक्रम (Descent) से होता है।

7. लिंग (Sex) लिंग का प्रयोग रिश्तेदारों को पृथक करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए मामा शब्द का प्रयोग माता के भाई के लिए और मौसी शब्द का प्रयोग माता की बहन के लिए किया जाता है। लिंग के माध्यम से रिश्तेदारों की जानकारी होती है तथा उसके आधार पर संबंधों की स्थापना की जाती है। लिंग का वैवाहिक संबंधों को स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण स्थान होता है।

8. संबंध जोड़ने वाले रिश्तेदार का लिंग (Sex of linking Relative) इसके अनुसार रिश्तेदार दो प्रकार के होते है -

a. क्रास रिश्तेदार b.समानान्तर रिश्तेदार

क्रास रिश्तेदार के अंतर्गत, ममेरे, चचेरे और फुफेरे आते है, जब कि समानान्तर रिश्तेदार के अंतर्गत वे आते है जो एक दूसरे दो भाइयों या दो बहनों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए पिता के भाई की संताने। विवाह संबंधों में इसे भी महत्व दिया जाता है। माता-पिता की लाइन के रिश्तेदार समानान्तर है, जब कि सास-ससुर के रिश्तेदार समानान्तर नहीं है।

9. द्विभाजन (Bifurcation) जब माता की ओर के रिश्तेदारों को पिता की ओर के रिश्तेदारों से अलग किया जाता है, तो इसे द्विभाजन कहते है।

10. तुलनात्पक आयु (Relative Age)- इसका आधार आयु है। इसका प्रयोग एक ही वर्ग के व्यक्तियों को विभाजित करने के लिए किया जाता है। इसका आधार वक्ता की उम्र है। वे वक्ता की उम्र से छोटे है या बड़े। इस प्रकार आयु का भी व्यक्ति के सामाजिक जीवन में महत्व है।

11. भिन्नशाखीय संबंध (Collaterality) रिश्तेदारों के विभाजन की दो रेखाएँ हैं-

a. सीधी रेखा, और b. समानान्तर रेखा।

इन्हीं रेखाओं के आधार पर मामा, मौसी और चाचा-चाची में भेद किया जाता है।

नातेदारी शब्दावली
(Kinship terminology)

समाज सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था है। संबंध अनेक प्रकार के होते है। संबंधों की जितनी विविधता है, उतनी ही जटिलता है। समाज में अनेक व्यक्ति हैं। ये अनेक व्यक्ति संबंधों की विविधता और जटिलता के कारण किस प्रकार से संबोधन करे? जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के संपर्क में आता है, तो वह उस व्यक्ति अथवा उन व्यक्तियों का संबोधन किस प्रकार करे? नातेदारी संबंधों की एक छोटी व्यवस्था है। उस छोटी व्यवस्था में भी जब एक नातेदार दूसरे नातेदार से मिले, तो वह उसे किस प्रकार से संबोधित करे? नातेदारी के बीच संबोधन की इस जटिल व्यवस्था को सरल और स्पष्ट बनाने के लिए कुछ शब्दों का निर्माण किया गया है। शब्दों के इसी समूह को नातेदारी शब्दावली के नाम से जाना जाता है।

नातेदारी एक सामाजिक व्यवस्था तो है ही, यह सार्वभौमिक भी है। संसार में ऐसा कोई समाज नहीं होगा, जहाँ नातेदारी की व्यवस्था किसी न किसी रूप में विद्यमान न हो। मानव समाज का उविकास हुआ है। यह उद्विकास अनेक स्तरों से गुजरा है। प्रारम्भ में मानव पशुवत जिन्दगी बिताता था। एक समूह के सभी पुरुष उस समूह की सभी स्वियों से यौन संबंध स्थापित करते थे। इस स्थिति को यौन साम्यवाद (Sex Communism) या कामाचार (Promiscuity) के नाम से जाना जाता था। इस अवस्था में बच्चा मां की पहचान तो कर लेता था, किन्तु

पिता की पहचान करना कठिन था। इस स्थिति के कारण समाज में मातृसत्ता परिवार अस्तित्व में आए। क्रमशः मानव समाज उद्विकास की प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ आगे बढ़ा। समाज बदला। परिवार और विवाह के स्वरूपों में भी परिवर्तन हुए। इन अनेक स्तरों से गुजरने के कारण व्यक्ति में चेतना का विकास हुआ। आखेट अवस्था का समाज आगे बढ़कर पशुपालन और खेती की अवस्था में आया। अस्थायी जीवन की प्रवृत्ति स्थिरता की ओर अग्रसर हुई। संस्थाओं का ढ़ाचागत विकास हुआ, जिसमें व्यक्तियों के पदों (Status) और भूमिकाओं (Roles) का निर्धारण हुआ। व्यक्तियों के पदों और भूमिकाओं के निर्धारण के कारण ही व्यक्ति का संबोधन प्रारम्भ हुआ। यह संबोधन अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हुआ। कालान्तर में जब यही संबोधन परिवार और विवाह के आधार पर किया जाने लगा, जो कालान्तर में नातेदारी शब्दावली के नाम से जानी गई।

प्रत्येक समाज में रिश्तों की एक परम्परा है। रिश्तों के द्वारा समाज में व्यक्ति को एक नाम दिया जाता है। जब ये नाम रक्त संबंधों पर आधारित होते हैं तो इन्हें नातेदारी कहा जाता है। नातेदारी के लिए प्रयुक्त शब्द अनेक है। इन्हीं अनेक शब्दों के समूह को नातेदारी शब्दावली के नाम से जाना जाता है।

नातेदारी शब्दावली की अवधारणा (Concept of Kinship Terminology)

नातेदारी शब्दावली क्या है? इस संबंध में कुछ विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, जो इस प्रकार

1.रिवर्स (Rivers) का विचार है कि नातेदारी शब्दावली विभिन्न संज्ञा सूचक है, जो सामाजिक प्रकार्यों पर आधारित होती है।

2.मैलिनोवस्की का विचार है कि नातेदारी में बीजगणित की उपेक्षा की है, क्योंकि यह मात्र संज्ञा शब्दों का अध्ययन है। उन्होंने सुझाव दिया है कि नातेदारी शब्दावली के अन्तर्गत व्यवहारों और नियमों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

3.लेबी स्ट्रास का मत है कि नातेदारी शब्दावली को 'बिवाह योग्य' और 'विवाह के लिए अयोग्य' में वर्गीकृत करने की एक प्रणाली है।

4.ब्राउन के अनुसार नातेदारी शब्दावली संज्ञा शब्द ने अहं (Ego) के अधिकारों और कर्तव्यों को समानान्तर करने की एक प्रणाली कहा है।

5. मैक्लैनन का विचार है कि नातेदारी शब्दावली संज्ञा व्यवस्था के संबोधन की एक तालिका मात्र है।

6. क्रोबर का मत है कि नातेदारी शब्दावली वर्गात्मक संज्ञाएँ हैं, जिनके द्वारा विशेष स्वजनों के बीच संबंधों समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष की स्थापना की जाती है।

7. एण्डूलेंग का विचार है कि वर्णात्मक संबंध संज्ञाएं प्रतिष्ठा, सम्मान और कर्तव्य की द्योतक होती है।

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि नातेदारी शब्दावली रक्त संबंधियों की संज्ञासूचक स्थितियां है, जो व्यक्ति को विशेष अधिकार और कर्तव्यों के निर्वहन के लिए प्रेरित करती हैं।

नातेदारी वंशावली की विशेषताएँ
(Characteristics of Kinship Terminology)

नातेदारी वंशावली की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. वंशावली वंश से संबंधित शब्दों का एक समूह है।
2. वंश से संबंधित इन शब्दों का आधार नातेदारी होती है।
3. नातेदारी का निर्धारण विवाह और परिवार के आधार पर होता है।
4. विवाह और परिवार से संबंधित सभी सदस्य वंशावली के माध्यम से आपस में जुड़े रहते है।
5.वंशावली का निर्धारण निम्न दो आधारों पर होता है-

अ. पितृवंश के आधार पर, और

ब. मातृवंश के आधार पर।

6.नातेदारी वंशावली के दो प्रमुख आधार और है जो वंश के सदस्यों को निकटता और दूरी के आधार पर निर्धारित होते हैं।

अ. वंश समूह के वे सदस्य, जो आपस में निकटता के आधार पर परिभाषित होते हैं, तथा

आ. वंश समूह के वे सदस्य जो एक दूसरे से दूरी के आधार पर परिभाषित होते है।

7. वंशावली के माध्यम से वंश के सदस्यों को एक नाम प्राप्त होता है, जिस नाम के आधार पर उस सदस्य को संबोधित किया जाता है।

8. इस प्रकार वंशावली नातेदारी, विवाह और परिवार के मिलन का एक केन्द्र बिंदु है।

नातेदारी शब्दावली के आधार
(Basis of Kinship Terminology)

नातेदारी शब्दावली वह सीमारेखा है, जो समूहों की बाहरी सीमा का निर्धारण करती है, जिससे एक समूह दूसरे समूह से अपनी अलग पहचान बनाए रखता है। इसके अतिरिक्त यह आंतरिक, नियोजन का कार्य भी करती है यहां प्रश्न यह पैदा होता है, कि इस विभाजन का आधार क्या है? वे कौन से मापदण्ड हैं, जिनकी सहायता से सदस्यों का आंतरिक तथा बाहरी विभाजन होता है। इस विभाजन के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं -

1. पीढ़ी (Generation) - नातेदारी शब्दावली का पहला आधार पीढ़ी है। पिता की एक पीढ़ी और पुत्र की एक अलग पीढ़ी। इसी पीढ़ी के आधार पर एक वंशावली के सदस्यों के अलग नाम प्रदान किया जाता है।

2. लिंग (Sex) वंशावली के निर्धारण का दूसरा आधार है लिंग। स्वी और पुरुष दो अलग-अलग लिंग है और इन्हीं लिंगों के आधार पर एक वंशावली के सदस्यों की पहचान की जाती है।

3. वैवाहिक बंधन (Affinity) वैवाहिक संबंध भी नातेदारो के बीच वंशावली से संबंधित आधारों का निर्धारण करते हैं। उदाहरण के लिए पिता और ससुर, माता और सास के बीच के अंतर का निर्धारण वैवाहिक संबंधों द्वारा होता है तथा यही वैवाहिक संबंध सास-ससुर को एक नाम प्रदान करते हैं।

4. शाखीय संबंध (Collaterality)- नातेदारी शब्दावली के विभाजन की भी रेखाएँ (Lines) हैं। ये रेखाएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है-

a सीधी रेखा, और b- समानान्तर रेखा।

उदाहरण के लिए माता और पुत्र का रिश्ता सीधी रेखा में है, जब कि पुत्र का मौसी से संबंध सीधी रेखा में नहीं है। चाचा, चचेरे भाई-बहन, मौसेरे भाई-बहन तथा इसी प्रकार के अन्य संबंध।

5. विभाजन (Bifurcation) विभाजन के माध्यम से भी संबंधों का निर्धारण होता हैं उदाहरण के लिए माता की ओर के रिश्तेदार तथा पिता की ओर के रिश्तेदार। इन दोनों प्रकार के रिश्तेदारों के लिए पृथक- पृथक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है।

6. आयु (Age)- नातेदारी शब्दावली के निर्धारण में आयु की महती भूमिका होती है। आयु के आधार पर वंशावली के व्यक्तियों का संबोधन किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी बुजुर्ग का संबोधन समाज में एक युवक के संबोधन से अलग प्रकार का होगा। अफ्रीका में एक जनजाति है, जिसका नाम 'कुंग' है। इस जनजाति में बड़े भाई के लिए 'को' (Ko) तथा छोटे भाई के लिए 'सिन' (Tsin) शब्द का प्रयोग किया जाता है। अनेक समाजों में बड़े भाई के लिए 'दादा' और छोटे भाई के लिए 'दादू' शब्द का प्रचलन आम है।

7. रिश्तेदार (Relatives) रिश्तेदारियाँ दो प्रकार की होती है-

a. प्रत्यक्ष रिश्तेदारी, औरअप्रत्यक्ष रिश्तेदारी।

b. इन दोनों प्रकार के रिश्तेदारों के लिए संबोधन करते सपय अलग-
अलग शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

11.8 वंशानुक्रम *(Descent)*

वंशानुक्रम नातेदारी का ही एक स्वरूप है। इसका सरल शाब्दिक अर्थ है- वंश अनुक्रम। अर्थात वंश का निर्धारण और उसकी श्रेणियां। वंश का सम्बन्ध पूर्वजों से होता है, जो व्यक्ति को पूर्वज-परम्परा के आधार पर एक दूसरे से जोड़ती है।

वंशानुक्रम वह सिद्धांत है, जो सन्तान को अपने माता या पिता के समूह से जोड़ती है। समूह सदस्यता के संचरण के सिद्धांत को वंशानुक्रम के नाम से जाना जाता है। आदिम तथा सरल समाजों में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण उसके प्रदत्त पद से होता है। ऐसे समाजों में व्यक्ति के पद के निर्धारण के जो प्रमुख आधार है, वे इस प्रकार है- अधिकार और कर्तव्य, सम्पत्ति पर अधिकार, दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध, आदि। ये सम्बन्ध जन्म पर आधारित होते हैं। वहां व्यक्ति प्राथमिक समूहों और प्राथमिक सम्बन्धों से जुड़े हुए होते हैं। इस कारण अधिकांशतः उनकी सदस्यता वंशानुक्रम के माध्यम से निर्धारित होती है। इस प्रकार वंशानुक्रम और नातेदारी एक ही शब्द नहीं है। यद्यपि अनेक अवसरों पर इनमें अन्तर करना अत्यंत ही कठिन होता है। यही कारण है कि वंशानुक्रम की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और जैविक आधारों का सहारा लिया जाता है। रिवर्स ने वंशानुक्रम शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है-
पहला- एक विधि (Method) के रूप में, जिससे किसी समूह की सदस्यता का निर्धारण किया जा सके, और दूसरा- उन रीतियों (Usage) के रूप में, जिनके द्वारा सम्पत्ति, पद और अधिकारों का संचरण होता है।

वंशानुक्रम की परिभाषा (Definition of Descent)

अनेक विद्वानों ने वंशानुक्रम को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इन विद्वानों द्वारा दी गई वंशानुक्रम की प्रमुख परिभाषाओं में कुछ निम्नलिखित है-

(1)पिडिग्टन 'वंशानुक्रम के नियम वे नियम है, जो एक व्यक्ति की सामाजिक समूह में जन्मजात सदस्यता को नियमित करते हैं। यद्यपि इस प्रकार की सदस्यता विशिष्ट स्थितियों में गोद लेने की प्रथा द्वारा प्राप्तकी जाती है।"

(2) बोहनन- 'जब एक विवाहित जोड़े से एक सन्तान पैदा होती है, तो उसका उन दोनों से सम्बन्ध वंशानुक्रम सम्बन्ध के नाम से पुकारा जाता है।'

(3) मुरडाक 'वंशानुक्रम पूर्णतः एक सांस्कृतिक सिद्धांत की ओर संकेत करता है, जिसमें एक व्यक्ति को समाजशास्त्र: बी. ए. प्रथम वर्ष सामाजिक दृष्टि से एक विशिष्ट रक्त सम्बंधी बन्धुत्व से जोड़ा जाता है।"

(4) फोरटेस- 'एक वंशानुक्रम समूह व्यक्तियों की ऐसी व्यवस्था है जो वैध सामाजिक और वैयक्तिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है।'

(5) रिवर्स 'वंशानुक्रम का तात्पर्य ऐसे समूह से है, जिसकी सदस्यता जन्मजात है, जहां लोग यह निश्चित कर सकते हैं कि वे माता-पिता में से किस पक्ष के हैं।"

(6) ब्राउन 'वंशानुक्रम एक कानूनी अवधारणा है।'

(7)इस प्रकार स्पष्ट है कि वंशानुक्रम एक जैविक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था का नाम है, जो उसकी संतानों को माता-पिता तथा पूर्वजों से जोड़ती है।

वंशानुक्रम की विशेषताएँ
(Characteristics of Descent)

वंशानुक्रम की जो परिभाषाएँ दी गई है, उन्हें ध्यान में रखते हुए इसकी विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. वंशानुक्रम का सम्बन्ध जन्म स्रोत या एक पूर्वज से होता है।
2. यह पूर्वज काल्पनिक न होकर वास्तविक होता है।
3. एक ही वंश के आधार पर बने संगठनों के सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध पाए जाते हैं।
4. वंशानुक्रम व्यक्ति को वह अधिकार प्रदान करता है, जिसकी सहायता से विवाह, यौन सम्बन्ध तथा सम्पत्ति के अधिकारों का निर्धारण होता है।

वंशानुक्रम के प्रकार (Types of Descent)

वंशानुक्रम के प्रकारों को वंशानुक्रम की श्रेणियों (Categories of Descent) के नाम से भी जाना जाता है। वंशानुक्रम की श्रेणियों या प्रकारों को निम्न तालिका द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है-

वंशानुक्रम के प्रकार

1. **एकरेखीय वंशानुक्रम**

- (a) साधारण एकरेखीय
- (b) जटिल एकरेखीय

© संदिग्ध वंशज

2. **द्विपक्षीय वंशानुक्रम**

- (a) द्विगुण
- (b) मातृवंशक
- (c) पितृवंशक
- (d) द्विवंशज

उपर्युक्त तालिका में वंशानुक्रम के जिन प्रकारों का उल्लेख है, उनका विवरण निम्न है-

1.एकरेखीय वंशानुक्रम (Unilineal Descent)- यह वंशानुक्रम अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के वंश समूह अनेक कार्यों का सम्पादन करते हैं। इन कार्यों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक कार्य महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के वंश समूहों के दो प्रकार है-

(a) साधारण एकरेखीय वंशानुक्रम (Simple Unilineal Descent)- साधारण एकरेखीय वंशानुक्रम जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, ऐसा वंशानुक्रम है, जो अधिक स्पष्ट है तथा इसमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं है। इस प्रकार का वंशानुक्रम निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- या तो पिता के वंश के आधार पर या तो माता के वंश के आधार पर। यह साधारण तथा एकरेखीय इसलिए है, क्योंकि इसमें अन्य वंशजों का कोई महत्व नहीं है। इस प्रकार इसे साधारण एकरेखीय वंशानुक्रम के नाम से जाना जाता है। इन दोनों प्रकार के साधारण एकरेखीय वंशानुक्रम की विवेचना निम्न है-

(i) मातृवंशक (Matrilineal)- जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस वंशानुक्रम का निर्धारण माता के वंश के आधार पर होता है। इसमें माता की अहम भूमिका होती है और वंश का निर्धारण भी माता के ही नाम से होता है। इस प्रकार के वंशानुक्रम मातृसत्तात्मक समाजों में पाए जाते हैं। इस वंश समूह में स्वियों का विवाह समूह से बाहर के पुरुषों के साथ किया जाता है। इसमें पति अपनी पत्नी

के घर में रहता है, किन्तु पारिवारिक मामलों में उसकी भूमिका नगण्य होती है। इसमें पति का अपनी पत्नी और बच्चों पर कोई अधिकार नहीं होता है। इस वंशानुक्रम के निम्न दो प्रकार है-

माता-पुत्री-बहन की भूमिका पर आधारित समूह। इसमें मातृस्थानिक नियम लागू होते हैं। यहां समूह की निरन्तरता स्त्रियों द्वारा होती है। यही कारण है कि इन समाजों में स्वियों की अहम भूमिका होती है।

भाई-बहन-भान्जे की भूमिका पर आधारित समूह। यहां मातुल स्थानिक नियम लागू होते हैं इस प्रकार के वंश समूहों में माता के भाई का अपने भान्जों पर नियंत्रण होता है। इसमें माता का भाई ही महत्वपूर्ण होता है।

(ii) पितृवंशक (Patrilineal)- पितृवंशक समूह मातृवंशक समूह के बिलकुल विपरीत होता है। मातृवंशक समूहों की तुलना में इस समूह में स्थायित्व अधिक होता है। इसका कारण यह है कि इसमें वंश, आवास तथा अधिकार संयुक्त तथा स्थायी रहते हैं यहां वैवाहिक सम्बन्धों में भी स्थायित्व पाया जाता है। यहाँ सामाजिक पिता (Social Father) जैवकीय पिता (Biological Father) से अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसमें पिता, भाई, पुत्र का समूह अधिक महत्वपूर्ण होता है। यहाँ स्त्री केवल पत्नी के रूप में वंश का प्रजनन करती है। पुरुष अपनी पत्नी की लैंगिक, प्रजनन तथा घरेलू कार्यों में सहायता करता है। यह समूह-सन्तान इकाई। भाई-बहन इकाई की श्रृंखला के रूप में कार्य करता है। सन्तान की प्रजननता में स्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं होती है।

(b) जटिल एकरेखीय वंशानुक्रम (Complex Unilineal Descent)- जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह वंशानुक्रम साधारण एकरेखीय वंशानुक्रम से भिन्न जटिल प्रकार का होता है। इस वंशानुक्रम के प्रमुख दो प्रकार है-

(i)द्विगुण वंशानुक्रम (Double Descent)- यह वंशानुक्रम भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए अलग- अलग वंशानुक्रम का चयन करता है। किसी एक प्रयोजन के लिए माता के वंशानुक्रम का चयन करता है, जबकि दूसरे प्रयोजन के लिए पिता के वंशानुक्रम का चयन करता है। इस प्रकार इसमें एक ही व्यक्ति के लिए दो सिद्धांत काम करते हैं। उदाहरण के लिए अफ्रीका की अशान्ति जनजाति । इस

जनजाति में मातृस्थानिक नियम कार्य करता है। यह मातृस्थानिक समूह भूमि पर स्वामित्व प्राप्त करने वाली इकाई है तथा एक राजनैतिक संगठन भी। इस इकाई में पितृवंशक समूह धार्मिक प्रयोजनों के लिए महत्वपूर्ण होता है।

(ii) द्विवंशज वंशानुक्रम (Bilineal Descent) द्विवंशज का तात्पर्य है माता और पिता दोनों के आधार पर वंशानुक्रम का निर्धारण। इस सिद्धांत का निर्माण मोइटी (Moiety) प्रणाली द्वारा होता है। इसमें पितृवंशक समूह पितृमोइटी का निर्माण करते हैं और मातृवंशक समूह मातृमोइटी का निर्माण करते हैं। मातृमोइटी और पितृमोइटी मिलकर मोइटी संगठन का निर्माण करते हैं। इस प्रकार द्विवंशज समूहों में उन्हीं मातृवंशकों को ही रखा जाता है, जो पितृवंशक भी होते हैं। इस समूह में अन्य रिश्तेदारों को नहीं सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार द्विवंशज वंशानुक्रम से चार समूहों का निर्माण होता है। यही कारण है कि इसे चार अंश प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। इस नातेदारी व्यवस्था में माता-पिता और सन्तान एक ही समूह के सदस्य नहीं होते, परन्तु दादा- दादी एवं उनके पोते-पोतियाँ एक ही समूह के सदस्य होते हैं। इनमें विवाह सम्बन्ध वही तय होते हैं, जो द्विवंशज समूह से बाहर के होते हैं।

एकरेखीय वंशानुक्रम की विशेषताएँ (Characteristics of Unilineal Descent)

एकरेखीय वंशानुक्रम की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) यह समूह नामांकित, पृथक तथा सीमाबद्ध होता है।

(ii) इन समूहों की सदस्यता का निर्धारण जन्म के आधार पर होता है।

(iii) इस समूह के सभी सदस्य एक ही स्थान पर आवासीय नियमों के अनुसार रहते हैं।

(iv) सम्पत्ति, उपाधि और प्रतिष्ठा का उत्तराधिकार एक ही रेखा के आधार पर होता है।

(v) इस समूह के सभी सदस्य सामूहिकता के रूप में कार्य करते हैं।

(vi) यहाँ प्राधिकरण प्रणाली का निर्धारण लिंग और आयु के आधार पर होता है।

(vii) ये एक राजनैतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं।

(viii) ये बहिर्विवाही इकाई के रूप में कार्य करते हैं अर्थात विवाह पर इनका नियंत्रण होता है।

(ix) ये धार्मिक समूह के रूप में कार्य करते हैं।

(x) इनका टोटम (Totem) में विश्वास होता है तथा उसी से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

(xi) इनकी अपनी स्पष्ट पहचान होती है।

एक रेखीय वंशानुक्रम के स्वरूप
(Forms of Unilineal Descent)

एकरेखीय वंशानुक्रम के प्रमुख स्वरूप निम्नलिखित है-

(1) वंश (Lineage)- यह रिश्तेदारों का एक समूह है, जो अपने वंश का निर्धारण एक ही पूर्वज से करते है। सामान्यत- ये पांच पीढ़ियाँ सम्मिलित होती हैं। वंश या तो मातृवंशक या पितृवंशक होते हैं।

(2) गोत्र (Clan)- एक ही पूर्वज से पैदा हुए वंशजों के विश्वास को गोत्र कहा जाता है। ये पूर्वज सामान्यतः काल्पनिक होते हैं। गोत्र का आकार वंश से बड़ा होता है। यही कारण है कि अनेक वंश समूहों के व्यक्ति एक ही गोत्र के सदस्य हो सकते हैं।

(3) फ्रैटरी (Phratry)- फैटरी किसी समाज में दो या दो से अधिक सम्मिलित इकाइयों के सम्मिश्रण को कहा जाता है। इसमें वंशानुक्रम अवर्गीकृत (Unspecified) होती है। यही कारण है कि इसका आकार बड़ा होता है। सम्बन्धित गोत्रों और बड़े समूहों को फैटरी कहा जाता है।

(4) मोइटी (Moiety)- इसमें समाज दो एकरेखीय वंशानुक्रम में बटा हुआ होता है। ये समूह एक समान होते हैं तथा इन्हें मोइटी कहा जाता है। इसका निर्माण कई गोत्रों और वंशों से होता है।

2. अरेखीय या कागनेटिक वंशानुक्रम (Non-Unilineal or Cognatic Descent)- इस सिद्धांत का आधार यह है कि एक व्यक्ति दोनों लिंगों में अपने वंशानुक्रम की तलाश करता है। इगो के पूर्वज के सभी वंशज इस समूह में शामिल होते हैं।

इस सिद्धांत के अनुसार एक व्यक्ति एक ही समय में कई समूहों का सदस्य होता है। इस सिद्धांत के कारण अस्पष्ट (Indescent) इकाइयों का निर्माण होता है। यहाँ स्वी और पुरुष दोनों ही प्रजनन की इकाइयों के सदस्य होते हैं। इस समूह के सदस्य कभी-कभार ही बहिर्विवाह के नियम का पालन करते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर सौतेले भाई-बहनों में विवाह की इजाजत होती है। यह वंशज समूह काफी विस्तृत होता है। अतः इसमें आवासीय नियमों का निर्धारण अत्यन्त ही कठिन होता है। कागनेटिक समूह दो प्रकार के होते हैं-

(a) संदिग्ध वंशानुक्रम (Ambilineal Descent)- जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह वंशानुक्रम इसलिए संदिग्ध होता है, क्योंकि इस सिद्धांत के आधार पर व्यक्ति को दोनों लिंगों (माता या पिता) में अनुमान के आधार पर किसी भी पूर्वज से अपने वंश के चुनाव की आज्ञा होती है। जैसे दक्षिण प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र की समोआ (Samoa) जनजाति में दो प्रकार के वंश समूह पाए जाते हैं। ये दोनों की वंश समूह गोत्र के समान होते हैं। इस समूह में गोत्र का एक मुखिया होता है और वंश इसी मुखिया के नाम से चलता है।

(b) द्विपक्षीय वंशानुक्रम (Bilateral Descent)- यह दोतरफा होता है। इस समूह में माता और पिता दोनों ही पक्षों के लोग महत्वपूर्ण होते हैं। इसमें नातेदारी प्रथा समतल रेखीय होती है। अर्थात नातेदारी का निर्धारण नजदीक से दूर की ओर होती है। यह समूह ईगो केन्द्रित होता है। इस सिद्धांत से बिरादरी (Kindered) का निर्धारण होता है। यही कारण है कि इस वंश समूह में माता-पिता, दादा-दादी, चचेरे भाई बहन को सम्मिलित किया जाता है। यही कारण है कि इस वंशानुक्रम से जो समूह बनता है, उसमें स्पष्टता नहीं होती है। यही कारण है कि यह वंश समूह अत्यन्त ही विस्तृत होता है। इसके तीन प्रकार होते हैं-

(i) असीमित इसमें एक पूर्वज के सभी वंशज सम्मिलित होते हैं।

(ii) सीमित इसमें भी सभी वंशजों को सम्मिलित किया जाता है, वे अपने इस अधिकार का तभी प्रयोग कर सकते हैं, जब वे अपने पूर्वजों के इलाके में रहने का चुनाव करते हैं।

(iii) क्रियाशील सीमित- इसमें सभी वंशज इस समूह के सदस्य हो सकते है, पर वे उन सभी समूहों की सदस्यता प्राप्त नहीं कर सकते हैं, जिनसे उनका सम्बन्ध होता है।

वंशानुक्रम का महत्व
(Importance of Descent)

वंशानुक्रम समाज में अनेक महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है। वंशानुक्रम द्वारा सम्पादित कार्यों के कारण ही इनका समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से वंशानुक्रम जिन कार्यों का सम्पादन करता है, संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है-

1. वंशानुक्रम संगठन की एक महत्वपूर्ण इकाई है और इसके माध्यम से समाज के विभिन्न पहलुओं को संगठित किया जाता है तथा उन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।
2. वंशानुक्रम वह व्यवस्था है, जिसके आधार पर समाज में व्यक्ति के पद का निर्धारण होता है।
3. सम्पत्ति के उतराधिकार के निर्धारण में भी वंशानुक्रम की अहम भूमिका होती है।
4. वंशानुक्रम के द्वारा संयुक्त परिवार को अधिक नियंत्रित और शक्तिशाली बनाया जा सकता है।
5. वंशानुक्रम व्यक्ति को समाज में आदर और सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करता है।
6. धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में भी वंशानुक्रम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।
7. एक राजनैतिक इकाई के रूप में भी वंशानुक्रम महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है।
8. वंशानुक्रम के माध्यम से स्वियों की प्रजनन शक्ति और यौन सम्बन्धी अधिकारों को नियमित करने में मदद मिलती है।

9. वंशानुक्रम ही वह आधार है, जिसकी सहायता से आगे आने वाली पीढ़ी को अपने समूह के साथ जोड़ने में मदद मिलती है।
10. यह व्यक्तियों का वर्गीकरण करता है तथा उनके सम्बन्धों का निर्धारण करता है।
संक्षेप में वंशानुक्रम समाज में व्यक्तियों के जीवन को नियमित करता है, जिसके द्वारा समाज एक संगठित इकाई के रूप में कार्य करता है।

वंशावली पद्धति

(Genealogical method)

सामाजिक मानवशास्त्र के अध्ययन के लिए अनेक पद्धतियाँ (Methods) है। इन पद्धतियों में वंशावली पद्धति एक है। रैडक्लिफ ब्राउन (Radclilfe Brown) ने लिखा है कि " सामाजिक मानवशास्त्र एक सैद्धांतिक प्राकृतिक विज्ञान है, जो समाज का अध्ययन करता है।" उनका विचार है कि सामाजिक मानवशास्त्र में सामाजिक घटनाओं (Social Phenomenon) के शोध की पद्धति ठीक उसी प्रकार होनी चाहिए, जिस प्रकार की पद्धतियों भौतिक और जैविक विज्ञानों की है। अब प्रश्न यह है कि वैज्ञानिक पद्धति है क्या? वैज्ञानिक पद्धति की मूल धारणा यह है कि प्राकृतिक संसार में एक नियमितता तथा एक निश्चित व्यवस्था है। इसका तात्पर्य यह है कि-
1. प्राकृतिक घटनाओं पर प्रकृति के नियम लागू होते है और
2. प्राकृतिक घटनाओं की भांति ही मनुष्य भी प्राकृतिक संसार का एक हिस्सा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को समझने के लिए उन पद्धतियों का प्रयोग क्यों नहीं किया जा सकता है, जिनका प्रयोग प्राकृतिक घटनाओं को समझने के लिए किया जाता है। वैज्ञानिक शोध की दूसरी मुख्य धारणा यह है कि प्राकृतिक घटनाओं का ज्ञान अनुभवजन्य होना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान अनुभव, अवलोकन और अनुभूति पर आधारित होना चाहिये। अनुभवजन्य सबूतों से एकत्र किया गया ज्ञान अनुभवजन्य घटनाओं का वर्णन करने में, पूर्वानुमान लगाने में और समझने में सहायक होता है। इस प्रकार हमें किसी भी घटना के घटित होने

के कारणों का ज्ञान होता है। शोध प्रक्रिया के प्रमुख चरणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है

1. समस्या का निर्धारण
2. उपकल्पना का निर्धारण
3. शोध की रूपरेखा का निर्धारण
4. प्राप्त तथ्यों की माप
5. तथ्यों का एकत्रीकरण
6. तथ्यों का विश्लेषण, और
7. सामान्यीकरण।

सामाजिक मानवशास्त्र के अंतर्गत जिन शोध पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. क्षेत्रकार्य (Field Work)
2. अवलोकन (Observation)
3. साक्षात्कार (Interview)
4. व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति (Case-Study Method)
5. वंशावली पद्धति (The Genealogical Method)

उपर्युक्त पद्धतियों में से यह केवल वंशावली पद्धति की विवेचना की जाएगी। वंशावली उस साररूप चार्ट (Synoptic Chart) को कहते हैं, जिसकी सहायता से नातेदारी के कई रिश्तों का निर्धारण किया जाता है। शोध के एक उपकरण के रूप में उसका महत्व इसलिए है, कि इसके माध्यम से शोधकर्ता उन प्रश्नों को आसानी से निरूपित कर लेता है जो काल्पनिक तौर पर उसके दिमाग में तो हैं, किन्तु वह उन्हें स्थानीय सूचकों के सामने रख नहीं पाता है। इस पद्धति के माध्यम से प्रमाणित जानकारी प्राप्त होती है, जिसकी प्रस्तुति वैज्ञानिक आधार पर वर्गीकरण के माध्यम से की जा सकती है।

वंशावली पद्धति का प्रयोग सरल समाजों में किया जाता है और उसका परीक्षण भी किया जाता है। अनेक अवसरों पर वंशावली का स्वरूप अत्यन्त ही विस्तृत होता है। यही कारण है कि व्यक्ति अपने पूर्वजों की अनेक पीढ़ियों से परिचित

होते हैं। वंशावली के माध्यम से जीवित और पूर्वजों के बीच संबंधों की स्थापना में मदद मिलती है। वंशावली में सदस्यों के बीच स्थापित भावनात्मक लगाव महत्वपूर्ण होता है। वंशावली के माध्यम से किसी वंश या पूर्वजों के बारे में जो जानकारी प्राप्त होती है, उनमें से कुछ इस प्रकार है-

1. समुदाय की सामाजिक व्यवस्था और इसकी प्रकृति की जानकारी,
2. संबंधों की स्थापना में की जाने वाली पद्धति के प्रयोग की जानकारी,
3. विवाह, आदि संबंधों को किस प्रकार नियंत्रित किया जाये।

वंशावली का महत्व केवल शोधकर्ता के लिए ही नहीं है, अपितु इसका महत्व स्थानीय लोगों के साथ- साथ इस वंशावली से संबंधित लोगों के लिए भी है। इसकी सहायता से स्थानीय लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए रास्ते तलाशते हैं। इस प्रकार अपने बारे में तथा समाज के बारे में जानने के लिए वंशावली महत्वपूर्ण पद्धति है। वंशावली में प्रयोग किए जाने वाले चिन्हों में से कुछ निम्नलिखित है-

अक्षर/शॉर्टफॉर्म	अर्थ (English)	अर्थ (Hindi)
S	Son	पुत्र
D	Daughter	पुत्री
Z	Sister	बहन
+Z	Elder Sister	बड़ी बहन
-Z	Younger Sister	छोटी बहन
B	Brother	भाई
+B	Elder Brother	बड़ा भाई
-B	Younger Brother	छोटा भाई

F	Father	पिता
M	Mother	माता
H	Husband	पति
W	Wife	पत्नी
Sibling	Brother/Sister	भाई-बहन
C	Child	बच्चा

MS पुरुष की तरफ का संकेत WS स्त्री की तरफ का संकेत

वंशावली सूची
(Genealogical List)

वंशावली का एक निश्चित उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य का आधार एक ऐसी सूची तैयार करना, जो वंशावली के विभिन्न नातेदारों के संबोधन के लिए प्रयोग में लाई जाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology) तैयार करना आवश्यक है-

1. पिता - Father
2. माता Mother
3. बड़ा भाई - Elder Brother-MS
4. बड़ा भाई - Elder Brother - WS
5. बड़ी बहन - Elder Sister-MS
6. बड़ी बहन - Elder Sister - WS
7. पिता का भाई - Father's Brother
8. पिता के भाई की पत्नी Father's Brother's wife
9. पिता के भाई का बच्चा Father's Brother's child आदि।

वंशावली पद्धति के लाभ
(Merits of Genealogical Method)

वंशावली पद्धति के अनेक लाभ है। इसका कारण यह है कि वंशावली पद्धति अनेक कार्यों का सम्पादन करती है। इस पद्धति से जो प्रमुख लाभ (कार्य) हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. वंशावली पद्धति के माध्यम से काल्पनिक समस्याओं का ठोस आधार पर अध्ययन करना संभव होता है।

2. वंशावली पद्धति के माध्यम से सामाजिक जीवन को नियंत्रित करने वाले नियमों का आसानी से निरूपण किया जा सकता है।

3. रिवर्स (Rivers) का विचार है कि वंशावली पद्धति उन लोगों के लिए उपयोगी है, जो आदिम समाजों के बीच अध्ययन करने के लिए कम समय के लिए रह पाते हैं।

4. वंशावली पद्धति उन लोगों के लिए भी उपयोगी है, जो आदिम समाजों की भाषा को ठीक से नहीं समझ पाते है।

5.वंशावली पद्धति वह विधि है, जिसकी सहायता से जटिल आदिम समाजों के संगठन (organisation) को समझने में मदद मिलती है।

6. यदि किसी समाज की नातेदारी व्यवस्था (Kinship System) को समझना हो, तो इसके लिए वंशावली सर्वोत्तम विधि है।

7. वंशावली पद्धति के माध्यम से विवाह के नियंत्रण के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

8. वंशावली पद्धति वह आधार है, जिसकी सहायता से इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति अपने तथ्यों को अधिक प्रमाणिक ढंग से पूरा कर सकते हैं।

9. वंशावली वह व्यवस्था है, जिसकी सहायता से प्राप्त तथ्यों की विभिन्नता को यथार्थता प्रदान करने में मदद मिलती है।

10. वंशावली शोध का ठोस उपकरण (Tool) है, जिसकी सहायता से तथ्यों को समझने में मदद मिलती है।

11. इस पद्धति की सहायता से शोधकर्ता अपने प्रमाणकर्ताओं में विश्वास प्राप्त कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह शोध निष्कर्षों के अधिक नजदीक होता है तथा उसे शोधकार्य में सफलता प्राप्त होती है।

12. वंशावली पद्धति के द्वारा शोधकर्ता और उत्तरदाता आपस में घुल मिल जाते है तथा शोधकार्य अधिक आसान हो जाता, है।

रिवर्स (Rivers) का विचार है कि वंशावली आदिम मनोविज्ञान (Primitive Psychology) को समझने महत्वपूर्ण आधार है। इस दृष्टि से रिवर्स ने वंशावली पद्धति के निम्न दो गुणों का उल्लेख किया है।

1. योरोपीय सभ्यता का प्रभाव प्रायः सभी समाजों पर है। वंशावली पद्धति की सहायता से हमें उस समय के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, जब कि योरोपीय सभ्यता का प्रभाव सरल समाजों पर नहीं था। इसकी सहायता से डेढ़ दो सौ सालों के सामाजिक संगठन और संस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। अनेक अवसरों पर इसकी सहायता से उन कारकों और परिस्थितियों का भी ज्ञान होता है, जिनके कारण आदिम और सरल समाजों में परिवर्तन हुए है।

2. इस पद्धति का दूसरा महत्वपूर्ण गुण यह है कि इससे न केवल तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है, अपितु इन तथ्यों की सत्यता को भी प्रमाणित करने में मदद मिलती है। साथ ही, इस पद्धति की सहायता से एक विज्ञान के ज्ञान को दूसरे विज्ञानों तक पहुंचाने में भी मदद मिलती है।

वंशावली पद्धति का प्रयोग
(Usage of Genealogical Method)

वंशावली का प्रयोग क्यों किया जाता है। वे कौन से क्षेत्र है, जहाँ वंशावली का प्रयोग किया जाता है? इन प्रश्नों के उत्तर में वंशावली प्रयोग के कारण छिपे हुए है। वंशावली का प्रयोग जीवन के विविध क्षेत्रों में किया जाता है। इन क्षेत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. संबंधों की व्यवस्था (System of Relations) समाज सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था है। सामाजिक संबंधों की इस व्यवस्था को किस प्रकार समझा जाये? सरल और जटिल समाजों में संबंधों की व्यवस्था में भिन्नता पाई जाती है।

जटिल समाजों की संबंधों की व्यवस्था के आधार पर सरल समाजो के संबंधों को समझने में कठिनाई होती है। वंशावली पद्धति इस कठिनाई को दूर करता है। इस प्रकार वंशावली व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न आयामों को समझने में मदद करती है। वंशावली सामाजिक व्यवस्था के संबोधन का आधार हैं। इन संबोधनों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

a. वे संबोधन जिनके बारे में वंशावली के आधार पर पता लगाया जा सकता है।

b. वे संबोधन जिनका पता रक्त और विवाह के संबंधों के आधार पर तो नहीं लगाया जा सकता है, किन्तु वंशावली पर आधारित होते है।

c. ऐसे संबोधन जो सामाजिक विभाजन पर आधारित होते हैं।

d. किसी कृत्रिम बंधन पर आधारित संबोधन, जिनका निरूपण शोधार्थी द्वारा किया जाता है।

2. वैवाहिक व्यवस्था (Marital System) वैवाहिक व्यवस्था के लिए भी वंशावली का प्रयोग किया जाता है। इसके दो प्रकार है -

(a) वैवाहिक स्वीकृति, और

(b) वैवाहिक अस्वीकृति।

किस वंश में विवाह किया जा सकता है और किस वंश में विवाह नहीं किया जा सकता है। इसके लिए भी वंशावली का प्रयोग किया जा सकता है। संक्षेप में वंशावली का प्रयोग विवाह के नियमन और विवाह के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

3. वंशानुक्रम का ज्ञान (Knowledge of Descent) वंशावली पद्धति की सहायता से वंशानुक्रम का भी ज्ञान हो जाता है। इस पद्धति से व्यक्ति को यह जानने में मदद मिलती है कि उसका गोत्र क्या है तथा उसके पूर्वज कौन है।

4. सम्पति का उत्तराधिकार (Inheritance of Property) उत्तराधिकार सभी समाजों और समुदायों में पाया जाता है। किन्तु उत्तराधिकारी कौन है? इसका ज्ञान कैसे हो? इसका पता लगाने के तरीके क्या हो? ऐसा इसलिए आवश्यक है कि

विवाद की स्थिति का निर्माण न हो। प्रत्येक समाज यह चाहता है कि उत्तराधिकार स्पष्ट हो। इसके लिए वंशावली पद्धति सबसे सशक्त आधार है। इसकी सहायता से अपने पूर्वजों का निर्धारण सरल हो जाता है और इस प्रकार उत्तराधिकार के निर्धारण में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती है।

5. प्रवास का अध्ययन (Study of Migration)- प्रवास के अध्ययन में भी वंशावली का प्रयोग किया जाता है। अनेक समुदाय एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रवासित हो जाते है। सामान्य अवस्था में प्रवास का नियम सरल से जटिल की ओर होता है। इसकी जानकारी भी वंशावली के माध्यम से सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

6. धार्मिक पहलुओं का अध्ययन (Study of Religious Aspect)- धर्म जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं। धर्म का पालन और अनुष्ठानों का संपादन धर्म के अंग हैं। वंशावली के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त होती है कि किस वंश का धर्म क्या है तथा इन धार्मिक क्रियाओं के अनुष्ठानों का संपादन कौन करेगा। इस प्रकार इस पद्धति से नातेदारों के अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है।

7. जैविक समस्याओं का अध्ययन (Study of Biological Problems)- जैविक समस्याओं के अध्ययन में भी वंशावली पद्धति का प्रयोग किया जाता है। मनुष्य की अनेक जैविक समस्याएँ होती है। इन जैविक समस्याओं का सामाजिक सरोकार होता है। जैविक समस्याओं के अंतर्गत जिन बिंदुओं को सम्मिलित किया जा सकता है, वे इस प्रकार हैं -

a. लिंगों का अनुपात,

b. परिवार का माप,

c. प्रथम बच्चे का लिंग,

d. कुल पैदा हुए बच्चों में से उन बच्चों का अनुपात जो बड़े होते है,

e. विवाह, आदि की सांख्यिकीय जानकारी तथा समाज पर इसका प्रभाव।

8. शरीरशास्त्र का अध्ययन (Study of Physiology)- वंशावली और शरीरशास्त्र का गहरा संबंध है। इसका कारण यह है कि वंशावली वंश से संबंधित है, जिसका संबंध 'जीन्स' से है। मनुष्य का शरीर जीन्स का ही प्रतिरूप है। इस दृष्टि से शरीर को समझने के लिए वंशावली को समझना आवश्यक है। वंशावली के माध्यम से अनुवांशिकता की समस्याओं (Problems of Hereditary) का अध्ययन किया जा सकता है। आज शरीर की बीमारियों का अध्ययन करने में विश्व के अनेक भागों में जीन्स के अध्ययन को महत्व दिया जा रहा है।

11.9 पदाधिकार एवं उत्तराधिकार *(Succession and Inheritance)*

प्रसिद्ध अमेरिकन समाजशास्त्री मैकाइवर का यह कथन है कि 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।' सारा समाज सम्बन्धों के इसी जाल में पिरोया हुआ है और सभी प्राणी इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर आपस में आलिंगनबद्ध है। मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं अतः वह अपने सम्बन्धों को अधिक परिभाषित और व्याख्यायित करता है और ये सम्बन्ध एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। सम्बन्ध ही वह आधार है, जो व्यक्ति को जीवन्तता प्रदान करते हैं तथा उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करते हैं। मानव समाज के इन सम्बन्धों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. वे सम्बन्ध जो रक्त (Blood) पर आधारित होते हैं, और
2. वे सम्बन्ध जो रक्त पर आधारित नहीं होते हैं।

प्रत्येक समाज की एक निश्चित सामाजिक संरचना (Social Structure) होती है। यह सामाजिक संरचन समाज में व्यक्ति को प्राप्त पद (Status) और कार्यों (Roles) पर आधारित है। पद और कार्य ही वह आधार हैं, जो व्यक्ति को समाज में एक निश्चित 'स्थान' प्रदान करते हैं।, जिनके आधार पर जहाँ एक ओर वह अपने अधिकारों के प्रति जागरुक रहता है तथा दूसरी ओर अपने कर्तव्यों के प्रति

अधिक उत्तरदायी होता है। ये पद और कार्य स्थायी होते हैं तथा इनकी समाज में निरन्तरता बनी रहती है। यही कारण है कि ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं।

प्रकृति परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशीलता के कारण 'सामाजिक सम्बन्ध' और इसकी 'संरचना' परिवर्तित होती रहती है। व्यक्ति चेतन प्राणी होने के नाते इन सम्बन्धों को स्थायी रखना चाहता है। इसका कारण यह है कि इन सम्बन्धों के कारण जहाँ समाज में उसका स्थान स्पष्टतः निश्चित रहता है, वहीं दूसरी ओर उसे अपने अधिकारों की प्राप्ति होती है। आदिकाल से लेकर आज तक समाज की यह व्यवस्था जीवन्त तथा प्रभावशाली है। इससे समाज में न किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न होता है और न ही व्यक्ति में किसी असामन्जस्य की स्थिति निर्मित होती है। इसी व्यवस्था को संक्षेप में नातेदारी कहते हैं। नातेदारी की इसी व्यवस्था के अंतर्गत 'पदाधिकार' (Succession) और उत्तराधिकार (Inheritance) आते हैं। इन दोनों व्यवस्थाओं की इस अध्याय में विवेचना की जाएगी।

पदाधिकार (Succession)

पदाधिकार दो शब्दों से मिलकर बना है- पद (Status) और अधिकार (Right)। सरल शब्दों में पदाधिकार पद का अधिकार है। प्रायः सभी समाजों में इस प्रकार की स्पष्ट व्यवस्था है। आदिम समाजों में परम्पराएँ प्रबल थीं। अतः पदाधिकार का निर्धारण परम्पराओं के आधार पर होता था। आधुनिक समाज में अनेक नियम और कानून हैं, जो समाज में व्यक्ति के पदाधिकार की व्याख्या करते हैं और इसका निर्धारण करते हैं। नातेदारी की अनेक व्यवस्थाओं में पदाधिकार भी एक व्यवस्था है जो समाज के सुचारु संचालन में मदद करती है तथा समाज को भ्रान्ति और अराजकता की स्थिति से अलग करती है।

पदाधिकार की परिभाषा (Definition of Succession)

विद्वानों ने पदाधिकार की जो परिभाषाएँ दी है, उनमें से कुछ निम्नलिखित है-

1. पिडिग्टन 'पदाधिकार के नियम वे हैं, जो पद अथवा पदवी के संचारण को नियमित करते हैं।।

2. रिवर्स- अन्य उपयुक्त शब्द मिलने तक वे पदाधिकार के लिए पदोत्तराधिकार के प्रयोग को ही स्वीकार करते हैं।' सरल शब्दों में पदाधिकार वह अधिकार है, जो माता तथा पिता की ओर से अपनी सन्तानों को प्राप्त होता है तथा इसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है।

पदाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Succession)

पदाधिकार की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. इसका सम्बन्ध पद से है।
2. इस पद का एक वैधानिक आधार होता है।
3. इस वैधानिक आधार को समाज की मान्यता प्राप्त होती है।
4. इस सामाजिक मान्यता को चुनौती नहीं दी जा सकती है।
5. यह परम्परा पर आधारित होती है।
6. यह निम्न में से किसी एक आधार पर होती है-

(A) मातृवंशीय या (B) पितृवंशीय

7. इससे व्यक्ति को समाज में एक निश्चित स्थान प्राप्त होता है।
8. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।

पदाधिकार के प्रकार
(Types of Succession)

पदाधिकार को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. मातृवंशीय, और 2. पितृवंशीय

मातृवंशीय पदाधिकार मातृसत्तात्मक समाजों में पाया जाता है, जबकि पितृवंशीय पदाधिकार पितृसत्तात्मक समाजों में पाया जाता है। मातृवंशीय में पुरुष का कोई पद उसके किसी मातृवंशीय बन्धु को हस्तान्तरित होता है, जो सामान्यतया उसकी बहन का पुत्र होता है। अनेक बार ऐसा भ्रम होता है कि मातृवंशीय समाजों

में सम्पत्ति का अधिकार स्त्रियों को दे दिया जाता होगा, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अनेक अवसरों पर स्त्रियाँ परिवार और समाज में अपना प्रभाव रखती हैं, किन्तु प्रशासन के वास्तविक अधिकार पुरुषों के ही हाथ में होता है। पिडिग्टन ने लिखा है 'मातृवंशीय पदाधिकार का वास्तविक अर्थ है, उपाधि अथवा पद का स्त्री के माध्यम से पुरुषों से पुरुषों को संचारण।।

परिवार चाहे मातृसत्ता हो या पितृसत्ता पद या पदवी का अधिकार पहले एक परिवार के बड़े भाइयों को दिया जाता है, फिर वंशानुक्रम में वरिष्ठता के आधार पर छोटे भाइयों को दिया जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ति के स्वामी अथवा पदाधिकारी की मृत्यु के पश्चात उसकी सम्पत्ति अथवा स्वामी का अधिकार अधिकांशतः आयु के हिसाब से बड़े भाई से छोटे भाइयों को दिया जाता है। अंतिम भाई की मृत्यु या उसके कोई सन्तान न होने की स्थिति में यह पद या पदवी का अधिकार बहन की सन्तान को दिया जाता है।

मातृवंशीय और पितृवंशीय परिवारों में पदाधिकार में अन्तर (Difference Between Matrilineal and Patrilineal Family in Succession)

मातृवंशीय और पितृवंशीय परिवारों में पद या पदवी या पदाधिकार में निम्नलिखित अन्तर है-

1. पितृवंशीय परिवारों में नातेदार अधिकारी होते हैं, जबकि मातृवंशीय परिवारों में उसके नातेदार अधिकारी होते हैं।

2. पदाधिकार एक लचीली व्यवस्था है, जिसका निर्धारण वर्तमान स्थिति के आधार पर होता है।

3. जब कोई उत्तराधिकारी अयोग्य, अप्रतिष्ठत और अपरिपक्व होता है, तो उसके स्थान पर किसी भी वंश के प्रतिष्ठित, योग्य और परिपक्व व्यक्ति को यह अधिकार दे दिया जाता है।

4.अनेक बार मुखिया अपनी मृत्यु के पहले ही अपने पदाधिकारी की नियुक्ति कर देता है।

5. अनेक स्थितियों में समकालीन विकल्पों के आधार पर पदाधिकारी का चुनाव कर लिया जाता है।

6. अनेक समाजों में पदाधिकारी के चुनाव में किसी भी प्रकार के पद (Rank) का ध्यान नहीं दिया जाता है।

उत्तराधिकार (Inheritance)

इस तथ्य को समझ लेना आवश्यक है कि पदाधिकार और उत्तराधिकार में अन्तर है

पदाधिकार = पद का संचारण, और

उत्तराधिकार = सम्पत्ति का संचारण या अधिकार।

उत्तराधिकार की परिभाषा करते हुए पिडिग्टन ने लिखा है कि 'एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारण को नियमित करने वाले नियम उत्तराधिकार है।' कुछ इसी प्रकार के विचार रिवर्स के भी हैं, उसने लिखा है कि 'उत्तराधिकार से मेरा आशय सम्पत्ति के संचारण से है।"

उत्तराधिकार

↓

वंश एवं लिंग स्वेच्छा एवं वसीयत आयु एवं वरीयता अन्य आधार

↓ ↓

पितृवंशीय मातृवंशीय मिश्रित ज्येष्ठाधिकार कनिष्ठाधिकार मिश्रित

इन सभी आधारों का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है-

1. वंश एवं लिंग- वंश एवं लिंग के आधार पर उत्तराधिकार के निम्न तीन प्रकार होते हैं-

पितृवंशीय- इस प्रकार के परिवारों में सम्पत्ति का अधिकार केवल वंशज पुत्रों को होता है। स्वियों अथवा पुत्रियों को परिवार की सम्पत्ति में किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं होता है।

b. मातृवंशीय- जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस प्रकार के परिवारों में सम्पत्ति का अधिकार केवल माता तथा वंशज पुत्रियों को होता है। पिता अथवा पुत्रों को परिवार की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता है।

c. मिश्रित वंश और लिंग के आधार पर उत्तराधिकार का एक और प्रकार है, जो न पितृवंशी है और न ही मातृवंशी। इसीलिए इसे मिश्रित कहा जाता है। अनेक परिवार ऐसे होते हैं, जिनमें अचल सम्पत्ति का अधिकार पुरुषों का होता है, जबकि चल सम्पत्ति का अधिकार स्त्रियों का होता है। उदाहरण के लिए भूमि पर पुरुषों का अधिकार होता है, जबकि पशु, मुद्रा, हथियार, औजार तथा अन्य घरेलू सामानों पर स्त्रियों का अधिकार होता है।

स्वेच्छा एवं वसीयत - आधुनिक सभ्य समाजों में उत्तराधिकार के लिए स्वामी की स्वेच्छा को भी महत्व दिया जाता है और इसका खूब चलन है। इसके लिए न कोई वंश का नियम है और न ही लिंग का बंधन। सम्पत्ति का स्वामी अपनी इच्छा से अपनी सम्पत्ति की वसीयत (Will) किसी को भी कर सकता है।

आयु एवं वरीयता- उत्तराधिकार का तीसरा आधार है- आयु और वरीयता। इस प्रकार के उत्तराधिकार निम्न है-

a. ज्येष्ठाधिकार- ज्येष्ठाधिकार (Primogeniture) वह अधिकार है, जब सम्पत्ति का संचारण सम्पत्ति के स्वामी की सबसे बड़ी सन्तान को किया जाता है।

b. कनिष्ठाधिकार- कनिष्ठाधिकार (Ultimogeniture) वह अधिकार है, जब सम्पत्ति का संचारण स्वामी की सबसे छोटी सन्तान को किया जाता है।

c. मिश्रित- मिश्रित जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, जब सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति का संचारण न तो ज्येष्ठ और न ही कनिष्ठ को करे। वह अपनी इच्छा से ज्येष्ठ और कनिष्ठ तथा अन्यों को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना दे। अर्थात दोनों को सम्पत्ति का संचारण कर दे।

अन्य आधार- उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त उत्तराधिकार के कुछ और आधार हैं। जैसे मंत्रों और जादू का संचारण। दवाइयों तथा इसके ज्ञान का संचारण। देवी-देवताओं, धार्मिक विधियाँ और अनुष्ठानों का संचारण। घर-गृहस्थी आदि के कार्यों तथा इसके सामानों का संचारण। ऐसी अनेक स्थितियाँ आती है, जब स्वामी

अपने इन गुणों और विशेषताओं को अपनी इच्छा से परिवार के किसी भी सदस्य को, जिसे वह योग्य समझे संचारण कर सकता है।

11.10 **गोत्र** (*Clan)*

गोत्र अंग्रेजी के क्लैन (Clan) का हिन्दी रूपान्तर है। क्लैन वंश समूह (Linguage) का ही विस्तृत रूप है जो कि एकवंशीय सिद्धान्त पर आधारित है। साधारणतया गोत्र या तो मातृवंशीय होते हैं या पितृवंशीय। बच्चे या तो अपनी माता के गोत्र के सदस्य होते हैं या पिता की गोत्र के। कई वंश समूह मिलकर गोत्र का निर्माण करते हैं। इसकी सदस्यता जन्म के आधार पर निश्चित होती है और इसके सदस्यों को कुछ निश्चित अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है।

परिभाषाएँ - प्रमुख विद्वानों ने गोत्र को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है- (1) डॉ. श्यामाचरण दुबे "सीधे अर्थों में हम गोत्र को कई वंश समूहों का योग कह सकते हैं। इसका निर्धारण पिता या माता किसी ओर से किया जाता है। अलग-अलग वंश समूहों के होते हुए भी एक ही गोत्र के सदस्य अपने को किसी दूरस्थ पूर्वज के वंशज ही मानते हैं। यह पूर्वज पुरावृत्त पर आधृत भी हो सकता है। सम्बन्धुता का यह भाव इस समूह को भी बहिर्विवाही बना सकता है।""

(2) हट्टन - "गोत्र बहिर्विवाह समूह है, जो अन्तर्विवाह करने वाली जाति के अन्तर्गत एक सामान्य वंशक्रम में है।"

(3) मजूमदार और मदान "एक गोत्र अधिकांश रूप से कुछ वंशों का योग होता है और ये अपनी उत्पत्ति एक कल्पित पूर्वज से मानते हैं, जो कि मानव, मानव के समान पशु, पेड़, पौधा या निर्जीव वस्तु तक हो सकता है। ""

संक्षेप में 'गोत्र मातृपक्षीय या पितृपक्षीय परिवारों का संकलन है। इस संकलन के सभी व्यक्ति अपने को एक ही वंशज की संतान मातने है। अतः आपस में वैवाहिक सम्बंध स्थापित नहीं किए जाते हैं।'

एक गोत्र के सदस्य एक ही पूर्वज के वंशज माने जाते हैं। इसलिए इनमें परस्पर विवाह सम्बंध निषिद्ध होते हैं। अतः ये अपने समूह से बाहर विवाह करते हैं।

गोत्र का नाम पशु, पक्षी तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के नाम पर होता है। जैसे पीपल, गणुल, सूर्य, चन्द्र आदि। गोत्र परिवार के किसी कल्पित या पौराणिक पूर्वज से शुरू होता है। प्रमुख तथा प्रतिष्ठित होने के कारण उस पूर्वज को उस परिवार का प्रवर्तक या संस्थापक माना जाता है। उसी के नाम से परिवार के सभी वंशजों का परिचय दिया जाता है। गोत्र सदैव एक पक्षीय होता है। वह कभी भी माता-पिता दोनों के वंशजों को मिलाकर नहीं बनता है। उसके वंशज या तो मातृवंशीय या पितृवंशीय वंश समूहों के होते हैं।

गोत्र की विशेषताएँ

(Characteristics of Clan)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर गोत्र की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती है-

(1) बहिर्विवाही - गोत्र एक बहिर्विवाही समूह (Exogamous group) है। गोत्र के सदस्यों को यह विश्वास होता है कि वे एक ही पूर्वज की सन्तानें हैं। अतः कुछ अपवादों को छोड़कर गोत्र एक ऐसा समूह है, जिसके सदस्य अपने गोत्र से बाहर विवाह करते हैं।

(2) एकपक्षीय गोत्र या तो माता की ओर से या पिता की ओर से वंशों का संग्रह है। दोनों ओर से गोत्र की गणना कभी नहीं होती है। इसकी प्रकृति एक पक्षीय (Unilateral) होती है।

(3) रक्त सम्बंध - गोत्र के सभी सदस्य एक दूसरे को रक्त सम्बंधी मानते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सभी सदस्यों में एक ही पूर्वज का रक्त है।

(4) जन्मजात सदस्यता जो भी गोत्र में पैदा होता है अनिवार्यतः उस गोत्र का सदस्य हो जाता है समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष और आजीवन वह उसी गोत्र का सदस्य बना रहता है।

(5) एकता गोत्र के सभी सदस्यों में एकता रहती है, क्योंकि एक ही पूर्वज की सन्तान होने के कारण उनके जीवन में भी एकता रहती है।

(6) कल्पित पूर्वज अधिकांशतः पूर्वज काल्पनिक होते हैं कुछ अपवादों को छोड़कर। गोत्र के सभी सदस्य इस पूर्वज में विश्वास करते हैं। यह पूर्वज, पुरुष, समान अथवा कोई प्राकृतिक चिह्न होता है।

(7) टोटम टोटम गोत्र के सदस्यों का चिह्न है, इसमें दृढ़ विश्वास किया जाता है। गोत्र के सदस्य इस टोटम को अपना रक्षक मानते हैं। यह टोटम, पशु, पेड़, पक्षी तथा कुछ और हो सकता है।

(8) नाम - गोत्र का एक सामान्य नाम होता है जैसे शांडिल्य गोत्र, कश्यप गोत्र, जौनपुरिया गोत्र आदि। बिना नाम के कोई भी गोत्र नहीं है।

(9) निवास कुछ मानवशास्त्रियों ने सामान्य निवास को गोत्र की विशेषता कहा है, किंतु सार्वभौमिक नहीं है। कुछ भी हो सभ्यता के पहले चरणों में गोत्र के सभी सदस्य एक सामान्य निवास में रहते रहे हों।

गोत्रों के नाम साधारणतया गोत्र के नाम निम्न आधार पर होते हैं-

(i) माता-पिता के नाम पर माता-पिता से जो गोत्र चलता है, उसका आधार वंश परम्परा होता है। मातृसत्तात्मक परिवारों में गोत्र माता के नाम से चलता है और पितृसत्तात्मक परिवारों में पिता के नाम पर।

(ii) ऋषियों के नाम पर विद्यागृहण करने या उस ऋषि के यजमान जो होते थे। वे ही उसी ऋषि को अपने पूर्वज के रूप में स्वीकार करते थे, जैसे कश्यप-शांडिल्य गोत्र।

(iii) व्यक्ति विशेष के नाम पर कभी-कभी गोत्र व्यक्ति की किसी खास विशेषता के कारण चल पड़ता है, जैसे गोंड, वन्य जाति में एक 'लोन चटिया' गोत्र है। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले कोई ऐसा व्यक्ति रहा होगा जो नमक चाटता रहा होगा और उससे जो वंशज चली वह 'लोन चटिया' गोत्र के नाम से जानी गई।

(iv) भू-भाग के नाम पर किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने के कारण भी अनेक गोत्रों के नाम हो गए जैसे जौनपुरिया, रतनपुरिया, महानदियाँ आदि।

(v) टोटम के नाम पर रामायण में ऐसा मिलता है कि वानरों ने राम पक्ष की ओर से लड़ाई लड़ी थी। क्या यह सत्य है? वास्तविकता तो यह है कि वानर गोत्र ने राम पक्ष से लड़ाई लड़ी थी। नागवंशी 'नाग' देवता को अपना पूर्वज मानते हैं।

बाघ, गोह, रीछ, आग, लोहा आदि गोत्र समूहों के वंशज हैं। घुमक्कड़ होने के कारण एक गोत्र का नाम 'जगत' है।

गोत्र के कार्य

(Functions of Clan)

गोत्र के प्रमुख कार्य इस प्रकार है-

(1) पारस्परिक सहायता और सुरक्षा गोत्र का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अपने सदस्यों की सहायता करना और सुरक्षा का बीमा देना है। पारिवारिक सुरक्षा ही व्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। परिवार तो समाज का भाग है। गोत्र के सदस्यों में हम की भावना (We feeling) होती है। उनका तो यह सिद्धांत होता है कि यदि कोई उनके सगोत्रीय भाई को मारता है तो उनको मारता है (i) Strike my clan brother and you strike me. (ii) The blood of the clan is my blood. गोत्रीय भाग गलती पर क्यों न हो, परंतु गोत्र सदैव इसका पक्ष लेगा। इसी प्रकार गोत्र अपने हर एक कार्य के लिए उत्तरदायी है। यदि योत्र का कोई एक सदस्य गलती करता है तो गोत्र उसके लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है।

(2) बहिर्विवाह गोत्र बहिर्विवाह समूह है, इन नियमों के अनुसार गोत्र विवाह की व्यवस्था करता है। गोत्र के सदस्य के साथ यौन सम्बंध स्थापित करने पर कठोर दण्ड दिया जाता है।

(3) सदस्यों पर नियंत्रण गोत्र सदस्य पर नियंत्रण रखता है, ऐसे अनेक उदाहरण हैं जबकि निरन्तर गोत्र के नियमों की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति गोत्र से अलग कर दिये गये हैं। अधिकांशतः गोत्र में एक समिति होती है तो प्रशासन, न्याय और नियंत्रण रखती है।

(4) कानूनी कार्य गोत्र का सुरक्षा का कार्य उसे कानूनी क्षेत्र में प्रवेश करता है। गोत्र का यह कार्य है कि वह वन्य जातीय (Tribal) कानूनी प्रणाली में एक कानूनी उपकरण की भाँति कार्य करें, अपराधियों को दण्ड दे और समूह में शांति स्थापित करे।

(5) गोत्र सरकार गोत्र का दूसरा कार्य सरकार से सम्बंध रखता है। विभिन्न गोत्रों के मुखिया मिलकर एक वन्य जातीय समिति बनाते हैं। यह समिति राजनैतिक निर्णय लेती है। एक न्यायपालिका के रूप में झगड़ों का निपटारा करती है।

(6) सम्पत्ति - सम्पत्ति का हर एक देश और कार्य में महत्व रहा है। गोत्र एक समाजवादी राज्य पर आधारित है गोत्र यह निगरानी रखता है कि सम्पत्ति का विभाजन ठीक से हो रहा है या नहीं। सम्पत्ति का बराबर विभाजन और उचित उपभोग की देखरेख गोत्र करता है। अन्य भौतिक पदार्थ जिन पर व्यक्ति का स्वामित्व नहीं होता है, गोत्र का स्वामित्व नहीं होता है।

(7) धार्मिक कार्य आदिम लोगों में गोत्र का अपना टोटम होता है और समस्त लोगों में अपने-अपने गोत्र की कुछ विशिष्ट प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ होती है। टोटम की पूजा तथा अन्य धार्मिक कार्यों में भाग लेना सभी सदस्यों का कर्तव्य है। ये धार्मिक कार्य सब सदस्यों के कल्याण के लिए किए जाते हैं।

(8) अंतिम रूप से गोत्र सदस्यों को एकता के सूत्र में बाँधने और समाज को संगठित करने का प्रयत्न करता है।

डॉ. दुबे के शब्दों में "संक्षेप में गोत्र सदस्यों के संगठन शक्ति को पारस्परिक सहायता, सुरक्षा की सुविधाएँ देकर और विविध शासकीय अधिकारों का उपयोग कर बनाए रखने में सहायता देते हैं। रक्त सम्बंध की भावना से मुखर बहिर्विवाह का पालन भी इसी का ध्येय और कार्य है। इसके अतिरिक्त कतिपय विविध शासकीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सांसारिक कार्य भी हैं, जो गोत्र द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। गोत्र सामाजिक संगठन की इकाई है, जो पूरे समुदाय की व्यवस्था में महत्वपूर्ण योग देती है और सामाजिक शक्ति के स्रोत प्रवाहित करती है।"

स्व -प्रगति परिक्षण

प्रश्न 1: नातेदारी का प्रमुख आधार क्या है?

प्रश्न 2: नातेदारी में 'सगोत्रीयता' का क्या अर्थ है?

प्रश्न 3: भारतीय समाज में नातेदारी प्रणाली का मुख्य उद्देश्य क्या है?

11.11 सारांश

नातेदारी समाज का आधारभूत अंग है जो व्यक्तियों को आपसी संबंधों, कर्तव्यों, और अधिकारों से जोड़ती है। यह मुख्यतः रक्त संबंधों, विवाह, और गोत्रीय संबंधों पर आधारित होती है। नातेदारी प्रणाली विभिन्न समाजों में उनके सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार भिन्न होती है। यह केवल व्यक्तिगत रिश्तों को परिभाषित नहीं करती, बल्कि समाज में सामाजिक नियंत्रण, वंश परंपरा, और अधिकार वितरण के माध्यम के रूप में भी कार्य करती है। उदाहरण के लिए, भारतीय समाज में नातेदारी का स्वरूप विशेष रूप से गोत्रीय और जातिगत नियमों पर आधारित है, जो विवाह और उत्तराधिकार के नियमों को प्रभावित करता है। इस प्रकार नातेदारी सामाजिक ढांचे को संगठित और नियमित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

11.12 मुख्य शब्द

1. सगोत्रीयता (Endogamy): एक ही गोत्र या समूह के भीतर विवाह की परंपरा।

2. विषगोत्रीयता (Exogamy): अपने गोत्र के बाहर विवाह करने का नियम।

3. आधिपत्य (Patriliny): पिता की वंशावली के आधार पर सामाजिक और संपत्ति अधिकारों का स्थानांतरण।

4. सहजातीयता (Consanguinity): रक्त संबंधों पर आधारित नातेदारी।

11.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:1 नातेदारी का प्रमुख आधार रक्त संबंध, विवाह, और गोत्रीय संबंध हैं।

उत्तर:2 सगोत्रीयता (Endogamy) का अर्थ है एक ही गोत्र या समूह के भीतर विवाह करना।

उत्तर:3 भारतीय समाज में नातेदारी प्रणाली का मुख्य उद्देश्य सामाजिक नियंत्रण बनाए रखना और परंपराओं का संरक्षण करना है।

11,14 संदर्भ ग्रन्थ

1. मैकलैन्डन, एच.एम.: Kinship in Urban Society, Oxford University Press, 1981।

2. मिन्स्की, डी.एम.: Theoretical Perspectives on Kinship and Marriage, Routledge, 1999।

3. गिडेंस, एंथनी: Sociology, Polity Press, 2006।

4. मजूमदार और मदान: Indian Social Structure, National Book Trust, 1956।

11.15 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.नातेदारी की व्याख्या कीजिए। इसके प्रकार लिखिए।

Define kinship write its types.

2. नातेदारी की श्रेणियाँ लिखिए।

Write categories of kinship.

3. नातेदारी का महत्व लिखिए।

Write importance of kinship.

4. नातेदारी की रीतियों को समझाइए।

Explain usages of kinship.

5. वंशावली पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write short essay on Genealogy.

6. वंशावली पद्धति क्या है? समझाइए।

What is genealogical method. Explain.

7. वंशावली की अवधारणा को समझाइए। उपयुक्त उदाहरण दीजिए।

Explain the concept of genealogy. Give suitable example.

8. वंशावली के लाभ या गुण तथा इसके उपयोग को समझाइए।

Explain the merits and uses of genealogy.

9. नातेदारी शब्दावली की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
Describe the concept of kinship terminology.

10.नातेदारी शब्दावली क्या है? इसके प्रमुख आधारों की विवेचना कीजिए।
What is kinship terminology. Describe its main basis.

11.नातेदारी शब्दावली पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on kinship terminology.

12. वंशानुक्रम की अवधारणा को समझाइए।
Explain the Concept of Descent.

13. वंशानुक्रम की व्याख्या कीजिए। इसके प्रकार लिखिए।
Define Descent. Write its types.

14. वंशानुक्रम के प्रमुख स्वरूपों को लिखिए।
Write main forms of Descent

15. नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन में वंशानुक्रम के महत्व को समझाइए।
Explain the importance of Descent in kinship system.

16. पदाधिकार पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an Eassy on Succession

17. पदाधिकार की व्याख्या कीजिए। पदाधिकार के प्रकार लिखिए।
Define Succession. Write types of succession.

18. उत्तराधिकार पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an Essay on Inheritance.

19. उत्तराधिकार की व्याख्या कीजिए। इसके आधार लिखिए।
Define Inheritance. Write its types.

20. गोत्र की व्याख्या कीजिए। इसका महत्व लिखिए।
Define Clan. Write its importance.

21. गोत्र की अवधारणा को समझाइए। इसके कार्यों को लिखिए।
Explain the concept of clan. Write its functions.

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions) निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write short note on following:

1. निकटाभिगमन

Incest.

2. परिहास सम्बन्ध

Joking Relations

3. सहकष्टी या सहप्रावासिता

Couvade

4.विवाह सम्बन्ध

Affinity

5. वंशानुक्रम

Descent.

6.पदाधिकार

Succession

इकाई -12
परिवार
(FAMILY)

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 परिवार की परिभाष
12.4 परिवार की विशेषताएँ
12.5 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धांत
12.6 परिवार के प्रकार
12.7 परिवार के कार्य
12.8 परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व
12.9 परिवार परिवर्तन
12.10 संयुक्त परिवार
12,11 सारांश
12.12 मुख्य शब्द
12.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
12.14 संदर्भ ग्रन्थ
12.15 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

यदि परिवार को मानव समाज के इतिहास की धुरी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका कारण यह है कि समस्त मानव समाज का इतिहास परिवार का

इतिहास है। मनुष्य अपने जन्म के साथ से ही परिवार का सदस्य हो जाता है और अपने जीवन के अन्तिम काल तक वह किसी रूप में परिवार का सदस्य रहता है। मानव समाज का इतिहास उसकी विरासत (Heritage) का भी इतिहास होता है। परिवार वह महत्वपूर्ण संस्था है जो मानव समाज की विरासत की रक्षा करता है और उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में मदद करता है। परिवार एक ऐसी संस्था है जिसके अभाव में मानव अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। समाजशास्त्री लुण्डबर्ग ने लिखा है कि "सामाजिक व्यवस्था में यदि सन्तानोत्पादन की क्रिया रुक जाय, यदि बच्चों का पालन पोषण न किया जाय और उन्हें अपने विचारों को आगामी पीढ़ी के लिए संचारित करना तथा एक दूसरे से सहयोग करना न सिखाया जाय, तो संभवतः समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा।" परिवार समाज की ऐसी मूलभूत संस्था है, जो मानव अस्तित्व की रक्षा करती है तथा उसकी सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है।

परिवार शब्द अंग्रेजी के Family शब्द का हिन्दी रूपांतर है। Family लैटिन भाषा के Famulus शब्द से निकला है जिसका अर्थ होता है 'नौकर'। इस प्रकार परिवार के अन्तर्गत माता-पिता, बच्चे, नौकर और यहाँ तक कि गुलामों को भी सम्मिलित किया जाता था। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में परिवर्तन होते रहते हैं। परिवार बिना बच्चों के भी हो सकते हैं या माता-पिता और बच्चों को मिलाकर हो सकते हैं। परिवार व्यक्ति पर जबरन लादी गई संस्था नहीं है, बल्कि वह सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जन्म से ही स्वेच्छा से इसकी सदस्यता स्वीकार करता है।

12.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. परिवार की संरचना, प्रकार और इसके विभिन्न रूपों को समझना।

2. परिवार में सदस्यों की भूमिकाओं और आपसी संबंधों का महत्व जानना।
3. समाज में परिवार की भूमिका और इसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

12.3 परिवार की परिभाष *(Definition of Family)*

परिवार की सार्वभौमिक और सर्वसम्मत परिभाषा देना असम्भव है। इसका कारण यह है कि देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूप भी भिन्न-भिन्न है। फिर भी कुछ विद्वानों ने परिवार की परिभाषा दी है, जिससे परिवार शब्द की आत्मा का बोध लगाया जा सकता है। परिवार की कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं:

(1) मैकाइवर और पेज "परिवार वह समूह है जिसके अन्तर्गत स्त्री पुरुष यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और उसका सम्बन्ध ऐसा हो जिससे सन्तान उत्पन्न हो और उनका पालन-पोषण भी किया जाये।"2

(2) इलियट और मेरिल "परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों की एक जीवकीय सामाजिक संस्था है। यह एक सामाजिक संगठन है जिसके द्वारा कुछ मानवीय आवश्यकताएँ पूर्ण की जाती है।"3

(3) डी.एन. मजूमदार "परिवार व्यक्तियों का समूह है जो कि एक ही छत के नीचे रहते हैं, रुधिर सम्बन्धी गाँठों से बँधे होते हैं। तथा स्थान, स्वार्थ एवं कृतज्ञता की अन्योन्याश्रिता के आधार पर जाति की जागरुकता रखते हैं।"4

(4) बर्जेस और लॉक "परिवार व्यक्तियों का एक समूह है जिसमें व्यक्ति विवाह, पैतृक, रक्त अथवा समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष अनुकूलन के द्वारा एक-दूसरे से बंधे होते हैं, एक साथ एक घर में रहते हैं तथा उनके पति-पत्नी माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन आदि के रूपों में अपने सामाजिक कर्तव्यों के अनुसार एक-दूसरे के प्रति अपनी अन्तः क्रियायें एवं विचार संचालित करते रहते हैं और उनकी रक्षा करते हैं।"2

(5) ऑगबर्न और निमकॉफ "परिवार पति-पत्नी का थोड़ा बहुत स्थायी संघ है, जिनके बच्चे हों या न हों या एक पुरुष या एक स्त्री या अकेले ही अपने बच्चों के साथ वाला संघ हो।"3

(6) थॉमस "परिवार से हमारा तात्पर्य सम्बन्धों की उस व्यवस्था से है, जो माता-पिता एवं उनकी सन्तानों के बीच पायी जाती है।"4

(7) डेविस "परिवार ऐसे व्यक्तियों का वह समूह है, जिनके आपस के सम्बन्ध गोत्र व्यवस्था पर आधारित होते हैं और जो इस प्रकार एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते हैं।"5"

इस प्रकार "परिवार में सिर्फ माता-पिता एवं बच्चे ही नहीं आते, अपितु वे सभी व्यक्ति आते हैं, जो रक्त सम्बन्धी हों गोद लिए हुए हों तथा जिन्हें परिवार या समाज ने परिवार में रहने की अनुमति प्रदान की हो।"

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने परिवार की अलग-अलग परिभाषा प्रस्तुत की है। यदि इन परिभाषाओं की व्याख्या की जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होता है। कि मैकाइवर और पेज द्वारा प्रस्तुत समाजशास्त्र की परिभाषा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मैकाइवर और पेज ने परिवार के जिन कार्यों की विवेचना की है, वे आज के प्रत्येक परिवार के मूलभूत आधार है। ये आधार इस प्रकार है:

(i) यौन सम्बन्ध (Sex Relationship)
(ii) सन्तानोत्पत्ति (Procreation), और
(iii) बच्चों का लालन-पोषण (Upbringing of the Children) 1

इस प्रकार विषमलिंगीय व्यक्तियों के सहवास से उत्पन्न बच्चों और माता-पिता के समूह को परिवार की संज्ञा दी जा सकती है।

12.4 परिवार की विशेषताएँ *(Characteristics of Family)*

मैकाइवर और पेज ने परिवार की आठ विशेषताएँ बतलायी है। ये विशेषताएँ हर एक समाज में पाई जाती हैं। ये विशेषताएँ निम्नलिखित है -

(1) सार्वभौमिकता (Universality) परिवार निम्न कारणों से सार्वभौमिक संस्था है:

(a) हर एक युग और समाजों में पाया जाता है, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक।

(b) भविष्य में भी परिवार का अस्तित्व बना रहेगा।

(c) दूसरी संस्थाएँ परिवार की तुलना में इतनी सार्वभौमिक नहीं है।

(d) परिवार की इस सार्वभौमिकता के दो मूल कारण है -

(i) परिवार के माध्यम से व्यक्ति अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(ii) इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कार्य है जो परिवार के ही माध्यम से संपादित किये जाते हैं।

(2) भावनात्मक आधार (Emotional Basis) समाज में जितनी संस्थाएँ है वे किसी न किसी आधार पर टिकी हुई हैं। परिवार का भी इसी प्रकार एक निश्चित आधार है। परिवार जिस आधार पर टिका हुआ है, उसका सम्बन्ध भावनाओं से है। कानून या नींव से नहीं। जैसे पति-पत्नी के मानसिक संबंध, माँ का बच्चों के प्रति स्नेह, पालन-पोषण की व्यवस्था, सहायता और सुरक्षा आदि ऐसी अनेक भावनाएँ है, जिन भावनाओं के आधार पर परिवार टिका हुआ है।

(3) रचनात्मक प्रभाव (Formative Influence) अरस्तू के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसके साथ ही परिवार को शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। परिवार के क्रियात्मक प्रभाव के दो कारण है:

(a) परिवार के सदस्यों के व्यवहारों में दिखावटीपन नहीं रहता।

(b) परिवार के सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर ध्यान न देकर सामूहिक स्वार्थों की ओर ध्यान देते हैं।

(4) सीमित आकार (Limited Size) परिवार प्राणिशास्त्रीय दशाओं पर आधारित होते हैं। इसलिये परिवार का सदस्य सिर्फ वही व्यक्ति हो सकता है -

(a) जिसने परिवार में जन्म लिया हो।

(b) जिसने उस परिवार के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये हों।

(c) जो अन्य सामाजिक सम्बन्धों या रक्त सम्बन्धों के माध्यम से परिवार से जुड़े हुए हों।

इन सबके अतिरिक्त यदि हम अन्य समाजों से परिवार की तुलना करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका आकार अत्यन्त ही सीमित और छोटा होता है।

(5) सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति (Nuclear Position in the Social Structure) - यूनान के

प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के अनुसार समुदाय परिवारों का एक यन्त्र मात्र है। सामाजिक ढाँचे का निर्माण अनेक छोटी बड़ी संस्थाओं के माध्यम से होता है। ये सभी संस्थाएँ समाज के ढाँचे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थायी रहती है। परिवार भी इसी प्रकार की सामाजिक संस्था है किन्तु इस सामाजिक संस्था की मौलिक विशेषता यह है कि इसकी स्थिति सामाजिक ढाँचे में है।

(6) सदस्यों का असीमित उत्तरदायित्व (Unlimited Responsibility of Members) - परिवार के संगठन का आधार कानून न होकर मानवीय भावना और मूल प्रवृत्तियों होती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति पारस्परिक सहायता और सुरक्षा से प्रेरित रहते हैं। परिवार के सदस्यों में व्यक्तिवाद की भावना नहीं पाई जाती। इसका परिणाम यह होता है कि सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होकर सामूहिक स्वार्थ का अनुसरण करते हैं। भावनाओं के आधार पर परिवार का निर्माण होने के कारण इसके सदस्यों का उत्तरदायित्व असीमित रहता है।

(7) सामाजिक विधान (Social Regulations) सामाजिक नियन्त्रण परिवार की मौलिक इकाई है। प्रत्येक समाज में सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर कुछ विशिष्ट प्रकार के नियमों का निर्माण किया जाता है। इसी प्रकार के नियम परिवार में भी होते हैं। परिवार में नियन्त्रण का यह आधार कानून पर आधारित न होकर मानवीय नियन्त्रण पर आधारित होता है। प्रत्येक परिवार में पारिवारिक

निषेध पाये जाते हैं और प्रत्येक सदस्य इन निषेधों का पालन करता है। इस प्रकार परिवार में नियन्त्रण बना रहता है।

(8) परिवार की स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति (Permanent and Temporary Nature) - परिवार के दो स्वरूप है- पहला स्वरूप संस्था के रूप में है जबकि दूसरा स्वरूप समिति के रूप में है। समिति के रूप में परिवार पति-पत्नी, बच्चों तथा अन्य सदस्यों का समूह है। इस अवस्था में परिवार अस्थायी है। विवाह-विच्छेद जन्म और - मृत्यु के कारण होता रहता है यह परिवार का समिति रूप है। संस्था के रूप में परिवार नियमों और कार्यप्रणालियों का समूह है। व्यक्तियों के बदलने के बावजूद भी परिवार के नियम सदैव स्थायी रहते हैं। इस प्रकार संस्था के परिवार स्थायी है, जबकि समिति के रूप में परिवार अस्थायी हैं। इसलिए परिवार की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा जाता है कि परिवार स्थायी भी है और अस्थायी भी।

मैकाइवर और पेज के द्वारा बतलायी हुई उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकताहै कि परिवार -

(1) मानव की मूलभूत यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति के लिए निर्मित हुआ है।

(2) मानव की यौन-सम्बन्धी इच्छाओं को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिये विवाह नामक संस्था का विकास हुआ। विवाह को यह संस्था भी समाजों में किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है।

(3) विवाह के बाद वंश-नाम परिवार की तीसरी मौलिक विशेषता है। प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की एक व्यवस्था होती है।

वंश-नाम की दृष्टि से परिवार दो प्रकार के हैं :

(a) मातृवंशीय परिवार।

(b) पुत्रवंशीय परिवार।

(4) विवाह के परिणामस्वरूप माँ की असहाय अवस्था में परिवार के लिये अर्थव्यवस्था को अनिवार्य बना दिया। प्रत्येक परिवार में पालन-पोषण के लिये एक निश्चित आर्थिक व्यवस्था पाई जाती है।

(5) प्रत्येक परिवार का एक सामान्य निवास स्थान होता है। इस निवास स्थान को परिवार के सदस्य अपना घर कहकर सम्बोधित करते हैं।

12.5 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धांत *(Theories of Origin of Family)*

प्रसिद्ध समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि समाज का उद्विकास सरल से जटिल की ओर हुआ है। समाज में जितनी भी संस्थाएँ और संगठन है, वे सभी सामाजिक उद्विकास के परिणाम है। परिवार भी एक सामाजिक संस्था है। अतः इसका भी उद्विकास होना स्वाभाविक है।

परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों मानवशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों में विवाद है। किसी. भी संस्था का उद्भव सदैव ही अस्पष्ट और अनिश्चित होता है। परिवार किस तरह विकसित हुआ? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो प्रमुख सिद्धान्त है, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) शास्त्रीय सिद्धान्त (Classical Theory) परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त की व्याख्या करने वाला शास्त्रीय सिद्धांत सबसे प्राचीन है। इस सिद्धांत के प्रवर्तकों में यूनान के प्रमुख दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू का नाम मुख्य है। इन विद्वानों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति पुरुष की शक्ति के परिणाम से हुई है। आदिकाल में परिवार पुत्रसत्तात्मक, पुत्रवंशी और पुत्रस्थानीय होते थे। इन विचारकों का कहना है कि शक्ति के परिणामस्वरूप पुरुष का स्त्री पर पूर्ण अधिकार होता था और यही कारण है कि परिवारों का जन्म हुआ।

इन विचारकों के अनुसार अठारहवीं शताब्दी तक पुरुष की पूर्ण सत्ता के कारण इस प्रकार के परिवार स्थायी रहे, बाद में अन्य परिवर्तनों से परिवार के स्वरूप में परिवर्तन प्रारम्भ हो गये, इसके साथ ही अनेक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पुरुष की शक्ति का ह्रास होने लगा और

अन्य प्रकार के परिवारों का जन्म हुआ। प्रसिद्ध मानवशास्त्री मार्गन ने भी इन्हीं तथ्यों का समर्थन किया है।

(2) यौन-साम्यवाद का सिद्धांत (The Theory of Sex Communism) परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसे यौन साम्यवाद के सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का जन्म समाज में प्रचलित यौन-साम्यवाद के कारण हुआ है। इस सिद्धांत के समर्थकों में मार्गन, लूबाक, फेजर और ब्रीफाल प्रमुख है।

इन विद्वानों के अनुसार अत्यन्त प्राचीनकाल में न तो परिवार का अस्तित्व था और न ही विवाह का। मनुष्य जानवरों की भांति अनियमित यौन सम्बन्ध स्थापित करते थे। उस समय न कोई किसी का पति होता था और न ही पत्नी। मार्गन ने आदिवासियों के त्यौहारों और सामाजिक उत्सवों के समय का कुछ ऐसा उदाहरण दिया है जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि स्त्रियों को किसी भी पुरुष के साथ यौन-संबंध स्थापित करने की पूरी छूट होती थी, आज भी अनेक समाजों में विवाह से पूर्व यौन संबंधों की स्वतंत्रता है। मध्य आस्ट्रेलिया के अनेक आदिवासी यौन-सम्बन्धों की स्वतंत्रता के कारण अपने माता-पिता को नहीं जान पाते हैं।

यौन-साम्यवाद की इस परम्परा के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए मानव-समाज ने परिवार नामक संस्था को विकसित किया।

(3) उद्विकासवादी सिद्धांत (Evolutionary Theory) परिवार की उत्पत्ति का तीसरा सिद्धांत उद्विकासवादी सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का, अन्य संस्थाओं की भाँति उद्विकास हुआ है। इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थकों में स्पेन्सर, टेलर, मार्गन और बैक्रोफन प्रमुख है। इन विचारकों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किसी भी एक निश्चित समय में नहीं हुई है, बल्कि परिवार का देश या काल के अनुसार क्रमिक विकास हुआ है। बैक्रोफन के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किसी समझौते के अधीन नहीं हुई, बल्कि

इसका विकास कुछ स्तरों से होकर हुआ है। बैक्रोफन ने परिवार के विकास के स्तरों को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा है-

(a) प्रथम अवस्था (First Stage) परिवार के विकास की प्रारंभिक अवस्था स्त्री और पुरुषों के बीच पशुओं की भाँति यौन-साम्यवाद था। जो कुछ भी पारिवारिक यौन सम्बन्ध के चिन्ह थे वे अत्यन्त ही शिथिल थे। इस अवस्था में बालक का संबंध माँ से होता था, पिता के बारे में उसे किसी भी प्रकार की जानकारी नहीं रहती थी।

(b) द्वितीय अवस्था (Second Stage) वैक्रोफन के अनुसार समाज और परिवार का निरन्तर विकास होता गया। इस विकास के परिणामस्वरूप जीवन संघर्षों की मात्रा में वृद्धि होने लगी। आर्थिक कठिनाईयों के परिणामस्वरूप समाज में बहुपति-विवाह का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार बैक्रोफन के अनुसार दूसरी अवस्था में बहु-पति विवाह परिवार का जन्म हुआ।

(c) तृतीय अवस्था (Third Stage) बैक्रोफन के अनुसार परिवारों के उद्विकास की तीसरी अवस्था तब से प्रारम्भ होती है, जब से मानव-समाज ने व्यवसाय के रूप में कृषि का सूत्रपात किया। कृषि के प्रारम्भ हो जाने से मानव समाजों की जीविका सरल हो गई, साथ ही कृषि कार्यों में स्त्रियों का महत्व बढ़ने लगा, बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई, इन सबका परिणाम यह हुआ कि पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने लगा। इस प्रकार तीसरी अवस्था में बहुपत्नी विवाही-परिवारों की स्थापना हुई।

(d) चतुर्थ अवस्था (Fourth Stage) ज़िझकास की परम्पराओं के साथ ही मानव-मस्तिष्क में नैतिक विचारों का जन्म हुआ। इस नैतिकता के परिणामस्वरूप विवाह को एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया जाने लगा। साथ ही स्त्रियों के अधिकारों में वृद्धि हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक परिवार जिसे हम एक-विवाही परिवार कहते हैं, का जन्म हुआ। बैक्रोफन के विचारों से प्रभावित होकर मार्गन ने परिवार के उद्विकास की निम्न अवस्थाएँ बतलायी हैं :

(i) रक्त सम्बन्धी परिवार (Consanguine Family) परिवार के उद्विकास की पहली अवस्था रक्त-सम्बन्धी परिवारों की थी। परिवार में एक ही रक्त से सम्बन्धित व्यक्ति रहते थे और उसी परिवार के रक्त सम्बन्धियों से विवाह करते थे। आज भी अनेक समाजों में रक्त-सम्बन्धी विवाह के उदाहरण मिलते हैं।

(ii) समूह विवाह (Penalaum Family) परिवारों के उद्विकास की दूसरी अवस्था समूह-विवाहों की है। समूह-विवाहों का जन्म तब हुआ जब रक्त सम्बन्धी विवाह को अनुचित समझा जाने लगा। विवाह के पहले स्वरूप में एक पुरुष अपने रक्त-सम्बन्ध की एक स्त्री से विवाह करता था। इस अवस्था में आकर एक स्त्री और एक पुरुष का विवाह एक समूह की स्त्रियों और दूसरे समूह के पुरुषों के रूप में बदल गया। इस प्रकार एक समूह के सभी पुरुष दूसरे समूह की सभी स्त्रियों के साथ विवाह करने लगे। ये सभी स्त्री-पुरुष स्वतन्त्र रूप से यौन- सम्बन्ध स्थापित करते थे।

(iii) सिण्डेस्मियन परिवार (Syndasmian Family) मार्गन ने सिण्डेस्मियन परिवार को पारिवारिक उद्विकास की तीसरी अवस्था बतलाया है। इस अवस्था में आकर समूह एक विवाह के रूप में बदल गया। एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करने लगे। इन परिवारों की मौलिक विशेषता यह थी कि विवाह के बाद एक परिवार में आने वाली स्त्रियों से कोई भी पुरुष यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतंत्र रहता था समूह-विवाह में पिता की स्थिति अस्पष्ट रहती थी, सिण्डेस्मियन अस्पष्ट रहती थी।

(iv) पितृ-सत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family) इन परिवारों का जन्म माता पिता की सत्ता के परिणामस्वरूप हुआ परिवार में पुरुष की सत्ता को स्वीकार किया गया। इसके साथ पुरुष को अपनी इच्छानुसार अधिकार प्रदान किया गया। इस अधिकार के परिणामस्वरूप पुत्र-सत्तात्मक परिवार का जन्म हुआ और अन्त में एक-विवाही परिवार में अन्तिम अवस्था में एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करने लगा और इस प्रकार आधुनिक एक-विवाही-परिवार का जन्म हुआ।

(v) मातृसत्तात्मक सिद्धांत (Matriarchal Theory) इस सिद्धांत के समर्थक बैक्रोफन और ब्रिगफाल्ट हैं। इस सिद्धांत की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का

जन्म माता की सत्ता के कारण हुआ है। ब्रिगफाल्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बच्चे अपनी पिता के प्रति जानकारी नहीं रखते थे। इसे वह पैतृक अज्ञानता के नाम से सम्बोधित करता है। समाज में बच्चे को पिता का ज्ञान न होने से माता की सत्ता ही प्रधान होती थी। इसलिए परिवार मातृ-स्थानीय और मातृवंशी हुआ करते थे, परिस्थितियों के परिवर्तन साथ ही माता की सत्ता का ह्रास होने लगा।

(vi) एक-विवाही सिद्धांत (The Theory of Monogamy) इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक बेस्टरमार्क हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि परिवारों की उत्पत्ति एक विवाह के परिणामस्वरूप हुई है। एक-विवाही- परिवार वह है जहाँ पर एक पुरुष एक स्त्री से विवाह करता है। बेस्टरमार्क ने एक ही स्त्री से विवाह करने के दो कारण बतलाये है -

(a) स्त्री की तुलना में पुरुष शक्तिशाली होने के कारण उस पर अधिकार रखता है।

(b) साथ ही पुरुष में ईर्ष्या की भावना होती है। इन दोनों कारणों से एक विवाही-परिवारों का जन्म हुआ जो आज भी है।

12.6 परिवार के प्रकार *(Types of Family)*

परिवार सार्वभौमिक संस्था अवश्य है किन्तु देश, काल की परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है। किन्हीं समाजों में मातृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं तो किन्हीं समाजों में पुत्रसत्तात्मक परिवार। इसके अतिरिक्त संयुक्त, विस्तृत और व्यक्तिगत तथा अन्य अनेक प्रकार के परिवार भिन्न-भिन्न समाजों में पाये जाते है। परिवार के स्वरूपों में भिन्नताओं को देखते हुए समाजशास्त्रियों ने इसका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। संक्षेप में परिवार के प्रमुख स्वरूपों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सदस्यों की संख्या और संगठन के आधार पर परिवार का पहला वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है :

(a) सदस्यों की संख्या की दृष्टि से।

(b) परिवार के संगठन की दृष्टि में।

इन दोनों आधारों को सामने रखकर समाजशास्त्रियों ने परिवार को प्रमुख रूप से निम्न तीन भागों में विभाजित किया है -

(i) व्यक्तिगत परिवार यह परिवार का वह स्वरूप है जिसमें पति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित रहते हैं। व्यक्तिगत परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, एक व्यक्ति के परिवार को कहते हैं। आधुनिक सभ्यता और नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत परिवारों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

(ii) विवाही-सम्बन्धी परिवार विवाह सम्बन्धी परिवार को संक्षेप में दो परिवारों का मिलन कहा जा सकता है। यूरोप और अन्य पश्चिमों देशों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। विवाह-सम्बन्धी परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इस परिवार में विवाह-सम्बन्धों में बंधने वाले दोनों परिवारों के कुछ सदस्य सम्मिलित होते हैं।

(iii) संयुक्त परिवार संयुक्त परिवार कई परिवारों का मिला-जुला स्वरूप है। इसमें अनेक व्यक्तिगत परिवार सम्मिलित रहते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में संयुक्त परिवारों के सबसे अधिक उदाहरण देखने को मिलते हैं। इन परिवारों में पति-पत्नी तथा उनके बच्चों के अतिरिक्त अनेक पीढ़ियों के सदस्य तथा सम्बन्धी सम्मिलित रहते हैं। संयुक्त परिवारों के साथ-ही-साथ अब इसका स्वरूप विस्तृत परिवार के रूप में बदलता जा रहा है।

(2) सत्ता, स्थान तथा वंश परम्परा के आधार पर विद्वानों का जो दूसरा वर्गीकरण किया है, उसके आधार में मुख्य रूप से तीन तत्व सम्मिलित हैं-

(a) सत्ता या शक्ति का केन्द्रीकरण।

(c) वंश-परंपरा या वंश-नाम का आधार।

(b) स्थान का महत्व।

इन तीनों दृष्टिकोणों को सामने रखकर प्रमुख रूप से परिवारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) मातृ-सत्तात्मक परिवार मातृसत्तात्मक परिवार जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट होता है परिवार का वह स्वरूप है परिवार की पूरी सत्ता माता या पत्नी के हाथों में होती है। इन परिवारों की वंश परम्परा ही माता के नाम पर चलती है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार माता से पुत्री को हस्तांतरित होता है। विवाह उपरान्त पति को अपनी पत्नी के घर में रहना पड़ता है। संक्षेप में ये वे परिवार है जिनमें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की सत्ता पति के हाथों में रहकर पत्नी के हाथों में होती है। मातृसत्तात्मक समाज विकास की प्रारम्भिक अवस्था में भले ही रहे हों आज ये अत्यन्त ही कम समाजों में देखने को मिलते है। भारतवर्ष में खासी, गारो, नायर और कदार आदि वन्य जातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं।

(ii) पितृसत्तात्मक परिवार आधुनिक युग में सभ्य कहे जाने वाले सभी समाजों में पितृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं। पितृसत्तात्मक परिवार मातृसत्तात्मक परिवारों की उल्टी स्थिति वाले होते हैं। इन परिवारों में वंश-परंपरा पुरुष के नाम से चलती है। विवाह के पश्चात पत्नी को पति के घर में रहना पड़ता है। परिवार की पूरी सत्ता पुरुष के हाथों में होती है। परिवार का उत्तराधिकारी भी पुरुष ही होता है।

(3) विवाह के आधार पर विवाह के आधार पर सबसे पहले यह सिद्ध किया गया है कि परिवार एक समिति भी है और एक संस्था भी। यह इस प्रकार की समिति है, जिसका निर्माण वैवाहिक बन्धनों के आधार पर होता है। प्रत्येक समाजों में वैवाहिक बन्धनों में भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। जब विवाह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि परिवार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होंगे। इसी दृष्टि को सामने रखकर विवाह के आधार पर परिवारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) एक-विवाही-परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस प्रकार के परिवारों में पुरुष को केवल एक स्त्री से विवाह करने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यदि हम सामाजिक उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस

प्रकार के परिवार आधुनिक सभ्यता के परिणाम है। वर्तमान समाज अत्यधिक जटिल और तनावपूर्ण होता जा रहा है। इस तनाव और जटिलता से मुक्ति पाने के लिये इसे एक साधन के रूप में चुना जा रहा है। एक-विवाही-परिवार को साधन के रूप में चुना जा रहा है।

(ii) बहुविवाही परिवार ये वे परिवार हैं जिनमें पुरुष या स्वी एक से अधिक स्वियों या पुरुषों के साथ विवाह करते हैं। बहुविवाही परिवारों को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(a) बहुपति-विवाही-परिवार वे परिवार है जिनमें परिवार की एक स्त्री का विवाह अनेक पुरुषों के साथ होता है। इन परिवारों में माता की प्रधानता होती है। इसके साथ ही साथ ये परिवार मातृवंशी और मातृस्थानीय भी होते हैं। इस प्रकार के विवाह का मुख्य कारण विषम आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। बहुपति विवाह के प्रमुख दो प्रकार है -

(i) भ्राता सम्बन्धी बहुपति-विवाह इसमें एक पत्नी के जो अनेक पति होते हैं, वे सभी भाई होते हैं। (ii) अभ्राता सम्बन्धी बहुपति-विवाही-परिवार इन परिवारों में एक पत्नी के अनेक पतियों का भाई होना अनिवार्य नहीं है। तिब्बत के जोनसार बावर जाति और मालावार के नायर जाति तथा टोडा जातियों में इस प्रकार के विवाह पाये जाते हैं।

(b) बहुपत्नी विवाही-परिवार बहुपत्नी-विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें एक पुरुष अपने पत्नियों से विवाह करता है। इस प्रकार के परिवार पितृसत्तात्मक स्थानीय और पितृवंशीय होते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के परिवारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

12.7 परिवार के कार्य *(Functions of Family)*

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने इस प्रकार के विचार व्यक्त किये थे कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।'

इसका तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनना है तो इसके लिए समाज अनिवार्य है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में समाज की अनेक संस्थाओं का योगदान रहता है। इन संस्थाओं में परिवार, पड़ोस, शिक्षा संस्थाएँ, राजनैतिक संस्थाएँ आदि है।

इन सभी संस्थाओं की तुलना में परिवार का सबसे अधिक महत्व है। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि परिवार समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला है। सामाजीकरण का अर्थ है कि व्यक्तित्व का विकास करना, मानव व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति के लिये परिवार अनेक कार्यों का सम्पादन करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मोरेल ने परिवार के कार्यों को निम्न भागों में विभाजित किया है:

(1) प्राणिशास्त्रीय कार्य इनमें यौन-संबंधी इच्छाओं की पूर्ति, सन्तानोपत्ति और उपभोग के कार्य सम्मिलित हैं।

(2) आर्थिक कार्य इसमें उत्पत्ति और उपभोग के कार्य सम्मिलित है।

(3) शिक्षा संबंधी कार्य।

(4) व्यक्ति के सामाजिक पद का निर्धारण।

(5) व्यक्ति को धार्मिक मार्ग-दर्शन प्रदान करना।

(6) मनोरंजन सम्बन्धी कार्य।

(7) पारिवारिक स्नेह तथा सहानुभूति के कार्य।

बीरस्टीड ने परिवार के कार्यों को निम्न भागों में बाँटा है जिसे तालिका के द्वारा दिखलाया जा सकता है-

परिवार के कार्य (बीस्टिडी के अनुसार)

परिवार के कार्य

↓

बीस्टिडी के अनुसार

↓

व्यक्ति के लिये कार्य	**समाज के लिये कार्य**
↓	↓
1) जीवन और अति-जीवन	**1) प्राणियों का प्रजनन करना**
2) यौन-संबंधी अवसर देना	**2) यौन-संबंधों पर नियंत्रण स्थापित करना**
3) संरक्षण और समर्थन देना	**3) देख-रेख करना**
4) सामाजिकरण	**4) संस्कृति का प्रसार करना**
5) सामाजिक एकता स्थापित करना	**5) पद प्रदान करना**

कार्यों का तात्पर्य उन कार्यों से है जिनके अभाव में परिवार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। मौलिक कार्य सभी कालों और सभी समाजों में समान रूप से पाये जाते हैं। इन कार्यों का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं से है। परिवार के प्रमुख मौलिक कार्य निम्न हैं- (a) यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति परिवार का सबसे महत्वपूर्ण प्राणिशास्त्रीय कार्य यह है कि स्वी-पुरुष के विवाह-संस्कार के बाद उन्हें यौन सम्बन्धों की पूर्ण आजादी और अवसर दे। यौन-सम्बन्धी इच्छा मनुष्य की मूलभूत इच्छा है। और इस इच्छा की स्थायी पूर्ति परिवार में ही संभव हो सकती है। परिवार के बिना यौन- सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति वेश्यालयों के अलावा और कहीं भी नहीं हो सकती है। वेश्याओं द्वारा भी यौन इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। वेश्याएं तो पैसे के लिए दूसरे पुरुषों की यौन इच्छाओं की पूर्ति करती है। वहीं प्रेम और उद्वेग जैसी भावनाओं का अभाव होता है। जिन आदिम समाजों में परिवार के बाहर यौन सम्बन्ध स्थापित करने पर दण्ड नहीं दिया जाता है वहाँ भी

इस कार्य में निरन्तर सफलता प्राप्त करना संभव नहीं होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कोई भी व्यक्ति स्त्री के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो मनुष्य की यौन इच्छाओं को पूर्ण करती है।

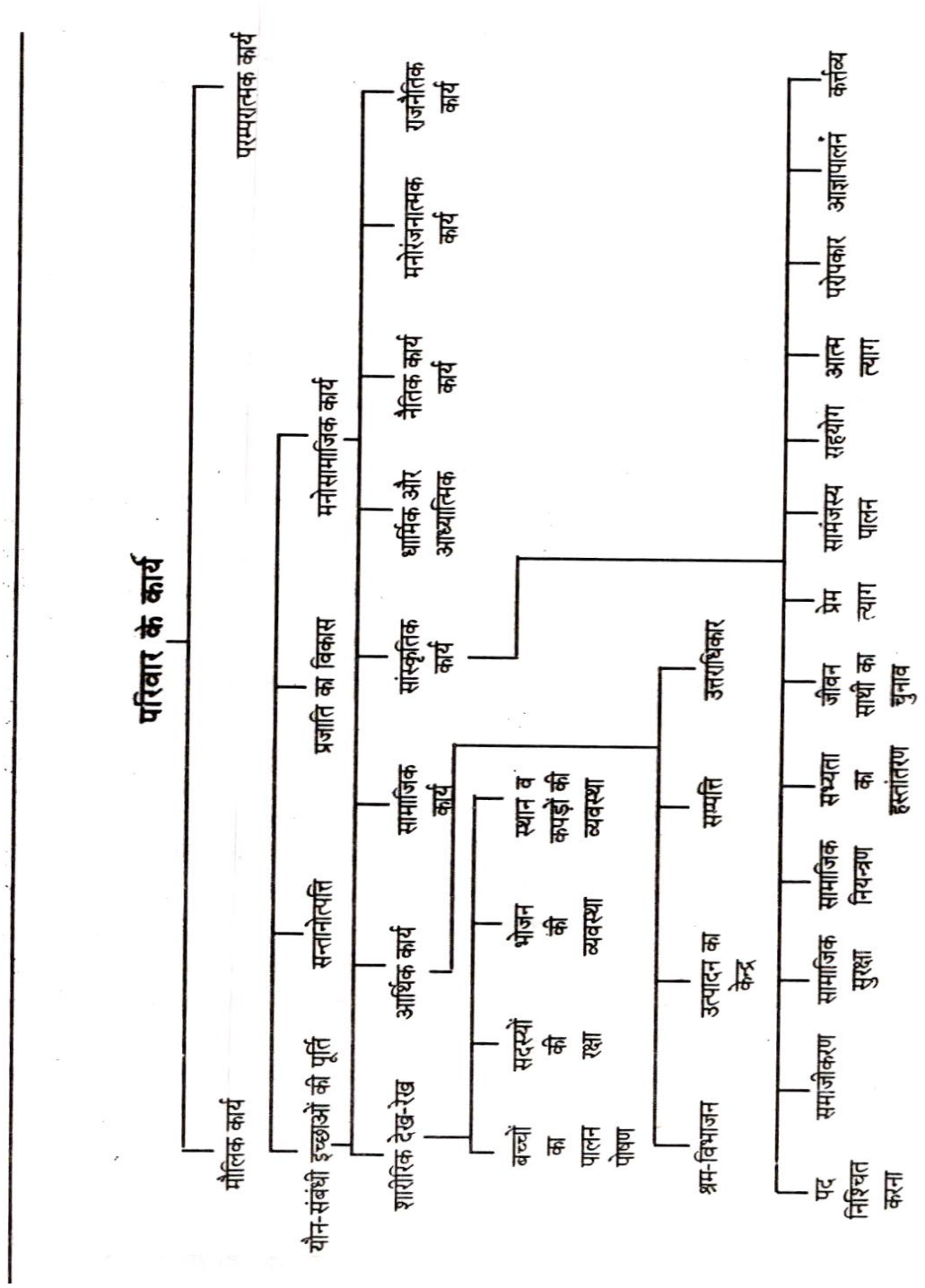
परिवार के कार्य
मौलिक कार्य
यौन-संबंधी इच्छाओं की पूर्ति
शारीरिक देख-रेख
बच्चों का पालन पोषण
सदस्यों की रक्षा
भोजन की व्यवस्था
स्थान व कपड़ों की व्यवस्था
आर्थिक कार्य
उत्पादन का केन्द्र
श्रम-विभाजन
सन्तानोत्पत्ति
प्रजाति का विकास
सामाजिक कार्य
सम्पत्ति
उत्तराधिकार
पद निश्चित करना
सामाजीकरण
सामाजिक सुरक्षा
सामाजिक नियन्त्रण
सभ्यता का हस्तांतरण
सांस्कृतिक कार्य
मनोसामाजिक कार्य
जीवन साथी का चुनाव
प्रेम त्याग
सामंजस्य पालन
सहयोग
धार्मिक और आध्यात्मिक कार्य
नैतिक कार्य
आत्म त्याग
परोपकार
आज्ञापालन
कर्त्तव्य
मनोरंजनात्मक कार्य
राजनैतिक कार्य
परम्परात्मक कार्य

(b) सन्तानोत्पत्ति कामेच्छा की पूर्ति का अन्तिम परिणाम सन्तानोत्पत्ति होता है। स्त्री और पुरुष में भी माँ-बाप बनने की एक स्वाभाविक भूल-प्रवृत्ति पाई जाती है। परिवार ही एक ऐसा साधन है जो इस मूल-प्रवृत्ति को पूर्ण करता है। यह जरूरी नहीं कि संतानोत्पत्ति परिवार के अन्दर हो ही। परिवार के बाहर भी संतान उत्पन्न हो सकती हैं, परन्तु समाज इन अवैध संतानों को स्वीकार नहीं करता है। केवल परिवार के अन्दर, विवाह के बाद कुछ, नियमों के अन्तर्गत माता-पिता के सन्तानों के प्रति कर्त्तव्यों को स्वीकार किया जाता है।

(c) प्रजाति का विकास मानव शरीर क्षणभंगुर है, इसका नाश अवश्य होता है, अगर परिवार उत्पादन का कार्य न करे तो एक समय ऐसा आ सकता है जब परिवार और मानव जाति पूरी तरह समाप्त हो जाये। परिवार ही एक ऐसा माध्यम है जो मानव-प्रजाति को नष्ट होने से बचाता है।

(d) मनो-सामाजिक कार्य मनुष्य जन्म से न तो मनुष्य होता है और न सामाजिक ही। ये दोनों गुण वह परिवार के द्वारा ही सीखता है। परिवार सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केन्द्र होता है व्यक्तित्व के विकास की पहली पाठशाला परिवार ही है, परिवार से ही व्यक्ति बनता या बिगड़ता है। बच्चा केवल सांस्कृतिक इकाई के रूप में ही नहीं पैदा होता है, परन्तु व्यक्तित्व की अन्तः क्रिया के एक पर्यावरण भी पैदा होता है। बालर और हिल ने इसीलिये परिवार को व्यक्तित्व की अन्तः क्रिया का अखाड़ा कहा है। डॉ. पी.एन. प्रभु का विचार है कि परिवार यौन-भावनाओं और इच्छाओं का एक स्थायी, सुव्यवस्थित और अनुशासित रूप है।

(2) परम्परात्मक कार्य

(a) शारीरिक देखरेख का कार्य

(i) बच्चों का पालन-पोषण यौन सम्बन्ध का परिणाम सन्तानोत्पादन होता है। बच्चा जब पैदा होता है तो वह अवस्था बड़ी नाजुक होती है अगर परिवार बच्चे का लालन-पोषण न करे, तो असहाय बालक वहीं समाप्त हो सकता है। बच्चों का पालन-पोषण का कार्य परिवार का महत्वपूर्ण कार्य है।

(ii) सदस्यों की शारीरिक रक्षा सहायता तथा रक्षा परिवार के मुख्य कार्य है। परिवार वृद्धावस्था में व्यक्ति को सहायता प्रदान करता है और आपत्तियों से सुरक्षा प्रदान करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति की सहायता और सुरक्षा का बीमा प्रदान करता है। इस कार्य के अन्दर शारीरिक चोट व बीमारी से रक्षा, घायल व अपाहिजों की सेवा और जन्म के समय और बाद में माँ और नवजात शिशु की देखभाल आदि सम्मिलित है।

(iii) भोजन की व्यवस्था भोजन की व्यवस्था करना परिवार का कार्य है। परिवार अपने सदस्यों के लिये भोजन प्रबन्ध करता है। परिवार सामूहिक उत्पादन का केन्द्र होता है, साथ ही एक चूल्हा का पका भोजन सभी सदस्य करते हैं।

(iv) स्थान तथा कपड़ों की व्यवस्था सदस्यों के रहने के लिए एक सामान्य मकान की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य है, जिसमें गर्म, वर्षा और ठण्डक से इसके सदस्य की शारीरिक रक्षा हो सके। मकान के साथ ही आवश्यकताओं के अनुसार वस्त्रों की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य है।

(c)आर्थिक कार्य

परिवार सिर्फ प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक इकाई ही नहीं, बल्कि एक आर्थिक इकाई भी है। परिवार के सभी सदस्य सामूहिक रूप से धनोपार्जन करते हैं और वह धन सामूहिक रूप से व्यय किया जाता है। परिवार के सदस्य केवल व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण ही धनोपार्जन नहीं करते बल्कि उनमें सामाजिकता की भावना पाई जाती है। संक्षेप में परिवार के आर्थिक कार्य निम्नलिखित है :

(i) श्रम-विभाजन ऐसा कोई भी परिवार नहीं है जिसमें श्रम-विभाजन न पाया जाता हो। स्त्रियों के कार्य पुरुषों के कार्यों से बिल्कुल भिन्न होते हैं और इसी प्रकार वृद्धों, युवकों और बच्चों के कार्यों में भिन्नता पाई जाती है। इस श्रम विभाजन के मुख्य आधार दो है- यौन और आयु।

(ii) उत्पादन केन्द्र आय के बिना परिवार के सदस्यों के भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य मिलकर उत्पादन करते हैं।

(iii) सम्पत्ति प्रत्येक परिवार में कुछ सम्पत्ति होती है जिस पर परिवार का नियंत्रण होता है। चाहे वह सम्पत्ति मकान, जमीन, आभूषण या अन्य किसी रूप से हो। इस सम्पत्ति का प्रबन्ध करना परिवार का कार्य है।

(iv) उत्तराधिकार प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की प्रथा पाई जाती है। परिवार मातृवंशीय और पितृवंशीय मुख्यतः दो प्रकार के होते है। मातृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकार पुत्रियों को मिलता है और पितृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकारी पुनः होते है। व्यक्तियों को उचित उत्त्राधिकार प्रदान करना परिवार का मुख्य कार्य है :

(c) सामाजिक कार्य

(i) पद निश्चित करना परिवार का सदस्य होने पर ही व्यक्ति अपना पद निश्चित करता है। यदि परिवार प्रतिष्ठित है तो समाज में व्यक्ति की स्थिति ऊंची होगी और अगर परिवार बदनाम होगा तो उसी के अनुसार व्यक्ति का पद भी होगा। इसलिए परिवार को सामाजिक स्थिति प्रदान करने वाला प्रतिनिधि कहा जाता है।

(ii) समाजीकरण परिवार समाजीकरण की पहली इकाई है। परिवार जैसा होगा उसी के आधार पर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामाजिक नियमों, व्यवहारों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर अमिट छाप पड़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि परिवार की छाप व्यक्तित्व पर अमिट होती है।

(iii) सामाजिक सुरक्षा अनेक सामाजिक दुर्घटनाओं से परिवार व्यक्ति की रक्षा करता है। किसी सदस्य का दिवालिया होना, बदनाम होना, अपमानित होना परिवार की प्रतिष्ठा पर आक्रमण समझा जाता है। व्यक्ति को परिवार इस प्रकार की सामाजिक सुविधाएँ प्रदान करता है।

(iv) सामाजिक नियन्त्रण परिवार प्राथमिक समूह है, अतः इसका नियंत्रण सदस्यों पर अत्यधिक कठोर होता है। कोई भी सदस्य पारिवारिक नियन्त्रण की अवहेलना नहीं कर सकता है। परिवार को एक संगठित इकाई बनाये रखने में नियन्त्रण का अत्यधिक महत्व है।

(v) सभ्यता का हस्तान्तरण परिवार आने वाली पीढ़ी को सभ्यता का हत्तांतरण करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो सभ्यता और संस्कृति की रक्षा, उसका सम्वर्धन और उसे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित करती है।

(vi) जीवन-साथी का चुनाव परिवार जीवन-साथी के चुनाव में सहायता प्रदान करने वाली संस्था है। परिवार की प्रतिष्ठा के आधार पर ही जीवन-साथी का चुनाव सम्भव होता है। परिवार-विहीन व्यक्तियों को जीवन साथी के चुनाव में काफी अड़चनें आती है वैसे शिक्षा के विकास के साथ इस ओर कम ध्यान दिया जाने लगा।

(vii) प्रेम बच्चे से माँ और परिवार के अन्य सदस्य प्रेम करते हैं। मनुष्य अनुकरणीय प्राणी है, अतः बालक इसका अनुकरण कर प्रेम की भावना को सीख जाता है। आगे चलकर उसका प्रेम परिवार, ग्राम, राष्ट्र से बढ़ते-बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। परिवार के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह विशुद्ध और स्वार्थ रहित होता है। प्रेम का यह रूप सामाजिक प्रेम में परिणत होकर समाज की शांति और व्यवस्था ठीक करने में सहायता करता है।

(viii) सामंजस्य परिवार में एक-दूसरे के सुख-दुख का ध्यान रखा जाता है। पति-पत्नी का सम्बन्ध सामंजस्य का एक उदाहरण है। बालक सामूहिक जीवन सीख जाता है और अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है।

(ix) सहयोग सहयोग पारिवारिक संगठन का आधार है। अगर सहयोग समाप्त हो जाय तो परिवार विघटित हो जाता है। बाल्यावस्था में ही बालक सहयोग की भावना का अनुकरण करता है और परिवार से सीखे हुए इस सहयोग का प्रयोग बालक समाज पर करता है जो शांति और व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

(x) आत्म-त्याग - परिवार में माँ बाप अपने बच्चों के लिए प्राणों का भी त्याग कर सकते हैं। यही आत्म- त्याग की भावना बच्चे के मन में घर कर जाती है और बालक सिर्फ परिवार के लिए ही नहीं बल्कि देश और मानवता की रक्षा के लिये आत्म-त्याग करना सीख जाता है। बाबर ने हुमायूँ के लिए अपने प्राण त्याग दिये थे।

(xi) परोपकार परिवार के सदस्य परोपकार की भावना से ओत-प्रोत रहते हैं। परिवार में अनेक सदस्य ऐसे होते हैं, जो शारीरिक या मानसिक कमियों के कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं, परिवार के अन्य सदस्य इसका उत्तरदायित्व लेते हैं और यही भावना बालक सीख जाता है।

(xii) आज्ञा-पालन बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है, वह देखता है कि लोग किस प्रकार अपने बड़ों की आज्ञा का पालन करते हैं, और बालक स्वयं आज्ञा-पालन करना सीख जाता है।

(viii) कर्तव्य-पालन - परिवार एक ऐसी संस्था है जो हर एक सदस्य के सुख और सुविधा का ख्याल समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष रखता है। इसके बदले लोग कर्तव्य पालन सीख जाते हैं। कर्तव्य-पालन की भावना व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनने में सहायता करती है।

इससे यह स्थष्ट हो जाता है कि परिवार अपने सदस्यों को अनेक सामाजिक गुण प्रदान करता है जो आदर्श नागरिक के लिए आवश्यक है। बालक नागरिकता का प्रथम पाठ माता के चुम्बन तथा पिता के आलिंगन से सीखता है।

(d) सांस्कृतिक कार्य संस्कृति शब्द संस्कार से बना है और संस्कार व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित होते हैं। शिष्टाचार का प्रभाव बच्चे के जीवन पर अमिट रूप से पड़ता है। परिवार संस्कृति के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो कार्य करता है, पहला संस्कृति की रक्षा और संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण करता है। लोक-रीतियाँ और रूढ़ियाँ संस्कृति की रक्षा करते हैं और सन्तानें उसे अपनाती हैं। परिवार का यह महत्वपूर्ण कार्य है।

(c) धार्मिक और आध्यात्मिक कार्य परिवार अनेक धार्मिक उत्सवों और विधियों का केन्द्र होता है। सभी धार्मिक कार्य परिवार के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं और सामूहिक उत्सव में परिवार के सभी व्यक्ति भाग लेते है। परिवार के सभी सदस्य एक ही देवता की पूजा करते हैं और समान धार्मिक कार्यों में भाग लेते हैं। एक ही प्रकार से व्रत और त्योहारों में भाग लेते हैं। परिवार में रहकर ही बच्चों में आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। माता-पिता के धार्मिक आचरण बालक के समान आदर्श होते हैं। बालक इन समस्त गुणों को परिवार में ही सीखते हैं।

(1) नैतिक कार्य - नैतिकता मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। जिस मनुष्य में नैतिक गुणों का अभाव होता है, वह मनुष्य नहीं है। सभ्य और सुसांस्कृतिक जीवन के लिए नैतिकता आवश्यक है। परिवार इन गुणों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(g) मनोरंजनात्मक कार्य काम, आराम और मनोरंजन मानव-जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ है। यदि मनुष्य को आराम और मनोरंजन न मिले और वह निरन्तर परिश्रम करता रहे, तो उसका शरीर शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा। मनोरंजन एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर लेता है और उसमें नई उमंग आ जाती है। परिवार मनोरंजन का एक ऐसा केन्द्र है जो बिना पैसे के ही स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन प्रदान करता है। जब व्यक्ति दिन भर के कार्य से थका-हारा घर लौटता है तो वह बच्चों को देख और उनके साथ खेलकर प्रसन्न हो जाता है। परिवार में होने वाले उत्सव, त्यौहार आदि भी मनोरंजन करते हैं।

(h) राजनैतिक कार्य परिवार एक प्रशासकीय इकाई है। इसलिये इसका राजनैतिक महत्व भी किसी हालत में कम नहीं है। परिवार में अनुशासन के अनुरूप में मुखिया होता है। परिवार में सदस्य जनसंख्या, निवास- स्थान और भूमि होते हैं। राज्य के तत्व परिवार में भी पाये जाते हैं। परिवार राजनैतिक कार्यों में महत्वपूर्ण योग देता है।

12.8 परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व *(Sociological Significance of Family)*

परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है और समाजीकरण के क्षेत्र में इसका योगदान सबसे अधिक है। परिवार समाज की मूलभूत संस्था है और इसी के चारों ओर सभी संस्थाएँ केन्द्रित और अन्तः सम्बन्धित हैं। इस दृष्टि से परिवार समाज की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण संस्था है। सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में परिवार के योगदान या इसके महत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) समाजीकरण के केन्द्र (Centre of Socialisation) जॉनसन ने लिखा है कि परिवार विशेष रूप से इस प्रकार संगठित रहता है जो समाजीकरण को संभव

बनाता है। इसका तात्पर्य यह है कि परिवारिक संगठन शिशु के समाजीकरण का आधारभूत तत्व है। अरस्तू ने इसीलिए परिवार को शिशु के समाजीकरण की आधारभूत संस्था कहकर सम्बोधित किया था। शिशु का सम्पूर्ण जीवन परिवार में बीतता है। वह परिवार में जन्म लेता है और समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज में रहने के योग्य बनाता है। परिवार ही व्यक्तित्व को निर्मित करता है। यहीं से प्राणिशास्त्रीय जीव सामाजिक जीव में परिवर्तित हो जाता है। परिवार ही व्यक्ति को सामाजिक बनाता है और उसमें गुणों का विकास करता है। इस प्रकार परिवार व्यक्ति का समाजीकरण करके उसे सामाजिक प्राणि बनाता है।

(2) सामाजिक गुणों का विकास (Development of Social Qualities) परिवार के सामाजिक कार्यों से स्पष्ट होता है कि इसका कार्य व्यक्ति में अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करता है। ये सामाजिक गुण व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज के सभी व्यक्ति नियन्त्रण में रहते हैं। इन सामाजिक गुणों में में भ्रातृत्व, स्नेह, सहयोग, परोपकार, त्याग सेवा, कर्तव्य-पालन, अनुकूलन, आज्ञा-पालन आदि प्रमुख हैं। ये सभी सामाजिक गुण व्यक्ति को समाज में व्यवस्था की स्थापना में सहायता करते हैं।

(3) व्यवस्थित यौन सम्बन्ध (Systematic Sex-relation) परिवार अपने सदस्यों के यौन सम्बन्धी व्यवहारों का निगमन और नियन्त्रण करता है। भूख और प्यास जैसे ही यौन-क्षुधा की पूर्ति भी व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। परिवार विवाह को कानूनी आधार प्रदान करके व्यक्ति की यौन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करता है। इस प्रकार व्यक्ति के यौन-व्यवहारों को नियंत्रित आवश्यकता करके सामाजिक जीवन में व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(4) वैवाहिक नियन्त्रण (Marital Control) परिवार अपने सदस्यों पर अनेक प्रकार के विवाह सम्बन्धी नियन्त्रण लगाता है। परिवार अपने सदस्यों के विवाह के बारे में सम्पूर्ण व्यवस्था करता है तथा निश्चित करता है कि विवाह का सम्पादन कब और कहाँ किया जाय? वैवाहिक आयु और कार्यों का निर्धारण भी परिवार के द्वारा ही होता है। परिवार विवाह की पद्धतियों का भी निर्धारण करता

है। इस प्रकार परिवार अनेक प्रकार से व्यक्ति के कार्यों और व्यवहारों को निश्चित करके समाज में व्यवस्था स्थापित करने में योग देता है।

(5) आर्थिक व्यवस्था का निर्धारण (Determination of Economic System) आर्थिक क्रियाएँ मानव जीवन का आधार है। अर्थ व्यवस्था के आधार पर ही समाज की व्यवस्था निर्धारित होती है। परिवार व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं और व्यवहारों को निर्देशित तथा संचालित करता है। परिवार ही सम्पत्ति की व्यवस्था करता है तथा उत्तराधिकार के नियमों का निर्धारण करता है। प्रत्येक परिवार में श्रम-विभाजन (Division of Labour) पाया जाता है और आयु तथा पद के आधार पर सदस्यों को आर्थिक क्रियायें निश्चित की जाती है। परिवार की आर्थिक क्रियाएं अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि परिवार के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना पाई जाती है। परिवार के परम्परागत व्यवसाय होते हैं और सदस्य इन्हीं व्यवसायों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनाते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बेरोजगारी की समस्या का भी समाज को सामना नहीं करना पड़ता है।

(6) सम्बन्धों और भावनाओं का विकास (Development of Relations and Emotions) - परिवार समाज की वह सामाजिक संस्था है जो अपने सदस्यों में स्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों और भावनाओं को विकसित करता है। जन्म से ही बालक परिवार के सम्बन्धों के अपने अहं को पराये में परिवर्तित कर देता है। विकास के साथ ही अनुभव करता है कि माता को निःस्वार्थ सेवा तथा परिवार के सदस्यों को स्वस्थ और कल्याणकारी भावनाएँ उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। परिवार के सदस्यों में पाई जाने वाली भावनाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करती है। परिवार में सदस्यों के साथ व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवहार करता है, उसी प्रकार का व्यवहार वह समाज के सदस्यों के साथ भी करता है और इसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक सदस्यों में भावनात्मक एकता स्थापित होती है। यह भावनात्मक एकता सामाजिक व्यवस्था में योग देती हैं।

(7) संस्कृति का ज्ञान (Knowledge of Culture) परिवार अपने सदस्यों को संस्कृति का भी ज्ञान कराता है। संस्कृति समाज की आधार वस्तु होती है और

इसी के आधार पर सामाजिक प्राणी अपने व्यवहारों को संचालित तथा निर्देशित करते हैं। यदि हम सामाजिक उद्विकास की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे-ही-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ है, परिवार के स्वरूप और कार्यों में भी परिवर्तन हुआ है। समाज और परिवार इस प्रकार से अन्तः सम्बन्धित है कि उन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। समाज का लघु आकार परिवार है और परिवार का वृहद् आकार समाज है। इसीलिए भारतीय समाजशास्त्रियों ने सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को व्यक्त किया। यही कारण है कि डॉ पी.एन. प्रभु ने परिवार को सामाजिक नियन्त्रण की महत्वपूर्ण संस्था माना था।'

(8) अनुशासनात्मक कार्य (Disciplinary Functions) परिवार अनुशासन की आधारशिला प्रस्तुत करता है। परिवार का यही अनुशासन सामाजिक और राष्ट्रीय अनुशासन में परिवर्तित हो जाता है। परिवार में रहकर बालक माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है और इस प्रकार अपने जीवन को अनुशासन में ढालने का प्रयास समाजशास्व: बी.ए. प्रथम वर्ष करता है। परिवार से बड़ा होकर जब व्यक्ति समाज में आता है, तो सामाजिक प्रशासन को स्वीकार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में एकता और नियन्त्रण की स्थापना होती है।

(9) मनोवैज्ञानिक भूमिका (Psychological Role) मनोविज्ञान मानव-जगत को सबसे अधिक प्रभावित करता है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे की मनःस्थिति या मनोदशा का अध्ययन करते हैं और उनके अनुरूप व्यवहारों तथा क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी मनोवैज्ञानिक लालसाएँ होती है, जिनकी पूर्ति परिवार में सम्भव है। उदाहरण के लिए दाम्पत्य प्रेम, पिता-पुत्र का स्नेह, माँ और पुत्री का स्नेह आदि। इन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के बाहर सम्भव नहीं है। । इससे स्पष्ट होता है कि परिवार मनोवैज्ञानिक सूत्रों से व्यक्ति की क्रियाओं को बाँधता है तथा उन्हें संशोधित करता है। इससे जीवन में एकता का विकास होता है और यही एकता सामाजिक नियन्त्रण के लिए आधार प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्य संस्थाओं की तुलना में परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व अत्यधिक है।

12.9 परिवार परिवर्तन *(The Changing Family)*

परिवार अवश्यम्भावी है। यह परिवर्तन न होता तो मानव अपरिवर्तित समाज में ऊब जाता और शायद आज वह आखेट अवस्था में पड़ा रहता। आज जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन हो रहे है और परिवार भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रह गया है। इन परिवर्तनों ने परिवार के ढाँचे और कार्यों को परिवर्तित कर दिया है। परिवार में जो परिवर्तन हो रहे है, गिलिन और गिलिन के अनुसार निम्न है:
(1) माता-पिता के नियन्त्रण में सत्ता का ह्रास, (2) पारिवारिक सम्बन्धों में ढील, (3) परिवार के कार्यों में कटौती, (4) समाजीकरण एवं प्रशिक्षण के कार्य में कमी, (5) सन्तानोत्पत्ति के कार्यों में विचलन, (6) विवाहं के पवित्र आधार का ह्रास, (7) परिवार के सामाजिक कार्यों में गिरावट, (8) अस्थिरता।

परिवर्तित परिवार का आधुनिक रूप
(Recent Features of Changing Family)

आधुनिक युग में परिवार के स्वरूप और कार्यों में जो परिवर्तन हो रहा है वह निम्न प्रकार है:
(1) परिवार के आकार में ह्रास (Decreasing Family Size) आज परिवार एक संगठित इकाई नहीं रह गये हैं। परिवार पहले समूह के रूप में होते थे, इसके बाद संयुक्त परिवार का रूप आया, आज परिवार के इस रूप में शीघ्रता से परिवर्तन हो रहा है। आर्थिक अस्थिरता व्यक्तिवादी विचारधारा, जनसंख्या में वृद्धि औद्योगिक विकास, नये कानून और अधिनियम, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत परिवारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप परिवार का आकार लघु से लघुतर होता जा रहा है।
(2) परिवार के मौलिक कार्यों में हस्तांतरण (Transfer of family's basic functions) - परिवार में मौलिक कार्य है, यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति, बच्चों का उत्पादन और पालन-पोषण, आर्थिक व्यवस्था आदि। परन्तु आज ये सभी कार्य

अन्य संस्थाओं के द्वारा किए जाते हैं। आज यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति का कार्य वेश्यालय (Brothels) बच्चों के उत्पादन का कार्य मातृत्व अस्पताल (Maternity Hospital)-और इनके पालन-पोषण, का कार्य स्कूल और नर्सरी द्वारा किया जाता है। इन कार्यों के अलावा अन्य कार्यों में भी परिवर्तन हो गये हैं तथा ये कार्य राज्य संस्थाओं द्वारा किये जाते हैं।

(3) सत्ता का ह्रास (Decline in Authority) किसी लेखक के ये शब्द अक्षरशः सत्य है कि "आज प्रजातन्त्र हो गया है, जिसमें प्रत्येक सदस्य का अपना मत होता है, पर वहाँ कभी कोई बहुमत नहीं होता है।"

(The modern family has become a democracy where in each member has his vote and there are never any majorities)। पहले परिवार में मुखिया होता था और परिवार उसकी सत्ता रहती थी। परन्तु आज परिवार में ऐसी कोई भी केन्द्रीय सत्ता दिखाई नहीं देती। व्यक्तिगत परिवार तलाक की मान्यता स्वतंत्रता और मनमानी की ओर उन्मुख है।

(4) स्थायित्व का अभाव (Lack of Stability) परिवार एक पूर्ण संस्था थी। उसके सभी सदस्य एक सूत्र में बंधे रहते थे, किन्तु आधुनिक परिवार परिवर्तनशील है। दम्पत्ति में निरन्तर संघर्ष तलाक में परिणित हो गया है। भारतवर्ष में संयुक्त परिवारों का शीघ्रता से विनाश होता जा रहा है। तलाक, औद्योगीकरण और नए कानूनों के परिणामस्वरूप परिवार अस्थिर हो गये हैं। परिवार के पवित्र आधार समाप्त हो चुके हैं।

(5) पुरुष के आधिपत्य का हास (Decline of Male Dominance) पुरुष का परिवार पर पूर्ण अधिकार होता था एवं उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन असम्भव होता था। परन्तु आधुनिक युग में स्त्री भी बराबरी के पद पर पहुंच गई है। उसे जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के बराबर अधिकार प्राप्त हैं। पुरुष को जितने अधिकार प्राप्त है स्वी भी उन अधिकारों का प्रयोग कर सकती है।

(6) नैतिकता में परिवर्तन (Changed Morality) पारिवारिक नैतिकता में आज भीषण परिवर्तन दिखाई दे रहे है। विवाह जहाँ धार्मिक कार्य समझा जाता था, वह एक समझौता (Contract) बनकर रह गया है। आज विवाह का उद्देश्य Sex रह

गया है। प्रेम विवाह ने धर्म को समाप्त कर दिया है और परिवार नियोजन की विधियों ने प्रजा-पुत्र को निरर्थक सिद्ध कर दिया है। पतिव्रता और पत्नीव्रता के आदर्श आज सिर्फ मजाक बन कर रह गये है। तलाक जो स्त्री के लिए कलंक था, कानूनी मान्यता प्राप्त करा दिया गया है। बलात्कार (Adultery) सिर्फ सामाजिक गलती (Social Wrong) मात्र बनकर रह गया है।

(7) राज्य का नियन्त्रण (Control of State) परिवार स्वतंत्र इकाई था किन्तु आज इस पर राज्य का नियन्त्रण हो गया है। परिवार अपने मौलिक कार्यों के लिए स्वतन्त्र था किन्तु राज्य द्वारा इस स्वतंत्रता का अपहरण किया जा चुका है। विवाह, तलाक, सन्तानोत्पादन, बच्चों की देखभाल, शिक्षा दिक्षा आदि राज्य की आज्ञा के अनुसार होते हैं।

(8) वैवाहिक महत्ता का ह्रास (Decline of the Importance of Marriage) आज का समाज अनेक अविवाहित नर-नारियों से पूर्ण है, उनका विश्वास धर्म से उठ गया है, जो रोमांस पर आधारित है और जैसे ही रोमांस की कमी होती है विवाह समाप्त हो जाते हैं।

परिवार में परिवर्तन के कारण

(Causes of Changes in Family)

आधुनिक परिवार परिवर्तन प्रक्रिया से गुजर रहा है। इसके स्वरूप, ढाँचे और कार्यों में परिवर्तन हो रहा है। इसका कारण क्या है? परिवार में परिवर्तन क्यों हो रहे हैं? गिलिन और गिलिन के अनुसार कोई भी एक कारण परिवर्तन के लिए उत्तरदायी नहीं है। अनेक कारण पारिवारिक परिवर्तन में योगदान दे रहे हैं। गिलिन और गिलिन ने परिवार में परिवर्तन के प्रमुख कारणों को चार भागों में बाँटा है- आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और दार्शनिक।

(1) आर्थिक कारण- परिवार में परिवर्तन के कारणों में आर्थिक कारण सबसे महत्वपूर्ण है। प्रमुख कारण, जो परिवार में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है, निम्न है:

(a) औद्योगिक क्रांति- औद्योगिक क्रांति का आगमन जीवन के महान क्षेत्रों में परिवर्तन के साथ हुआ। औद्योगिक क्रांति से पूर्व समुदाय और परिवार

आत्मनिर्भर थे। परिवार में कृषि के अतिरिक्त छोटे-छोटे उद्योग होते थे और इन्हीं से परिवार के सदस्यों की आवश्यकताएं पूरी हो जाती थीं। औद्योगिक क्रांति ने विशाल नगरों को जन्म दिया। अर्थ-व्यवस्था परिवर्तित हो गई। परिवार के सदस्य नौकरी की तलाश में घर से बाहर फैक्टरियों में जाने लगे। व्यापारिक उतार-चढ़ाव ने नौकरी को अस्थिर वना दिया। दिन-प्रति-दिन औरतें फैक्टरियों में काम की तलाश में जाने लगीं और परिवार का स्वरूप धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा।

(b) उच्च जीवन-स्तर- औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप परिवार के उत्पादन सम्बन्धी कार्यों में अवनति के साथ ही जीवन-स्तर की उन्नति हुई। औद्योगीकरण में धन की मात्रा में वृद्धि हुई और इससे आवश्यकताओं में वृद्धि हुई। भौतिक वस्तुओं के संग्रह को अधिक महत्व देने से पारिवारिक जीवन की स्थिरता पर भी प्रभाव पड़ा है। 'पारिवारिक आय या व्यय' परिवार के झगड़ों का मूल कारण है। जीवन-स्तर में वृद्धि के कारण माँ और पत्नी का पैसा कमाना पड़ता है और इससे पारिवारिक विघटन को जन्म मिलता है।

(c) स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता- आधुनिक पत्नी अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने पति की दास नहीं है। घर का काम आधुनिक स्वी के लिए पिछड़ेपन की निशानी समझा जाता रहा है और दूसरों की गुलामी करना सभ्य समाज का प्रमुख अंग बनता जा रहा है। विवाह उनके लिए धार्मिकी बन्धन नहीं है वे विवाह को आर्थिक सहायता, सहानुभूति और प्रेम के रूप में देखना चाहती है। वे सुखहीन वैवाहिक जीवन को कदापि स्वीकार नहीं कर सकती है। इसका कारण यह है कि अब ये स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होने लायक है। परिणामस्वरूप तलाकों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

(d) पत्नी को आर्थिक निर्भरता- आधुनिक युग में परिवार के कार्य राज्य तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा किये जाने लगे हैं। कार्यों के अभाव में आज की पत्नी सिर्फ अपने पति के मनोरंजन का साधन मात्र रह गई है और इसे वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती है। वह खाली समय का सदुपयोग करना चाहती है। वह पति के साथ कार्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में काम कर सकती है। इसका

परिणाम यह होता है कि संयुक्त परिवारों की संख्या में कमी होती है और वे व्यक्तिगत परिवारों में परिवर्तित हो जाते है। व्यक्तिगत परिवारों में तनाव और संघर्षों की संख्या में वृद्धि हो रही है। ऐसी परिस्थितियाँ परिवार की स्थिरता को नष्ट करने में सहायक हो रही है।

(c) नौकरी में लगी माताएँ- बहुधा कार्य करने वाली माताएं अपने बच्चों की देखभाल नहीं कर पाती हैं। इस कारण बच्चे नियन्त्रण से परे हो जाते हैं, उनमें अनेक बुराइयों का विकास हो जाता है। उनमें आवारापन और भगोड़ापन की भावना का विकास हो जाता है। और अन्त में इन सबकी परिणति बाल अपराध के रूप में होती है। काम करने वाली पत्नियों के स्वभावों में अहम् की भावना का विकास हो जाता है। पत्नी अपने को स्वेच्छापूर्ण परिस्थितियों में पाती है और इस प्रकार परिवार का विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

(f) मशीन, उद्योग और श्रम का सूक्ष्म विभाजन- औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व मनुष्य कृषि पर निर्भर था और उसकी सभी आवश्यकताएँ परिवार में ही पूरी होती थीं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद मशीन ने अनेक व्यवसायों को जन्म दिया इससे परिवार की आत्मनिर्भरता पर करारी चोट लगी। इसके कारण भी परिवार के कार्यों और स्वरूपों में परिवर्तन हुआ है।

(2) राजनैतिक कारक- राजनीतिक कारक भी परिवार में परिवर्तन लाने में सहायक हुए हैं। आज पारिवारिक सत्ता में महान परिवर्तन हुए हैं। प्रमुख राजनीतिक कारक निम्न है:

(a) माता-पिता के ऊपर राज्य की प्रभुसत्ता- आज राज्य सर्वसत्ता सम्पन्न है और वह माता-पिता के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। राज्य को अधिकार है कि वह लापरवाह, अज्ञानी और दुराचारी माता-पिता से सन्तानों की रक्षा करे। इस उद्देश्य से बाल न्यायालयों का गठन किया गया है। बाल न्यायालय बुद्धिमान माता-पिता की भाँति बालकों के विकास में सहायता करता है। राज्य ने शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था करके माता- पिता के अधिकारों में कमी कर दी है। आज भी माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने या टीका लगवाने से इन्कार नहीं कर सकता है।

(b) स्त्रियों का निर्वाचन का राजनैतिक अधिकार- आधुनिक युग स्वतन्त्रता और असमानता का है। इस युग में लिंग के आधार पर स्त्रियों को किसी कार्य से वंचित नहीं किया जा सकता है। वे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में समान रूप से भाग ले सकती है। उन्हें अनेक प्रकार के अधिकारों के उपभोग की छूट है। तलाक को कानूनी मान्यता प्राप्त है और इसे बुरा नहीं माना जाता है।

(3) सामाजिक कारण- परिवार के स्वरूप और कार्यों में परिवर्तन के लिए सामाजिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख सामाजिक कारक निम्न है:

(a) जनसंख्या की गतिशीलता- औद्योगीकरण, यातायात और सन्देश वाहन के साधनों में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या अत्यधिक गतिशील हो गई है। आधुनिक परिवार भी गतिशील हो गये हैं। काम की खोज में व्यक्ति घरों से दूर जाने लगे हैं, इससे परिवारों की स्थिरता समाप्त हो गई है। सदस्यों के दूर चले जाने से नियन्त्रण का अभाव हो गया है। पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल पड़ गये हैं।

(b) स्त्रियों की उच्च शिक्षा- स्त्रियों की उच्च शिक्षा के परिणामस्वरूप अब स्त्रियों परिवार के निर्णयों में स्वतन्त्र रूप से भाग ले सकती है। उच्च-शिक्षा के परिणामस्वरूप विवाह की आयु में वृद्धि हो गई है। अधिक आयु में विवाह करने से स्त्री और पुरुषों में सामंजस्य नहीं हो पाता है। अनेक पुरुष अपनी उच्चता बनाये रखने के लिए कम पढ़ी-लिखी लड़कियों से विवाह करते हैं। उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्रियाँ वर्तमान परिवारों से भी सामंजस्य नहीं कर पाती है। शिक्षित पत्नी होने से बच्चे कम होते है अतः इसका परिवार के आकार पर भी प्रभाव पड़ा है।

(c) यौन नैतिकता में परिवर्तन- पहले अविवाहित लड़कियों को 'सतीत्व' और विवाहित स्त्रियों को 'निष्ठा' की सीख दी जाती थी। आज यौन नैतिकता में मूल परिवर्तन हो गये हैं। यौन अपराधों की संख्या में वृद्धि हो गई है। अवैध बच्चों के जन्म की घटनायें बढ़ रही है। बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों को एक छोटी सी भूल की संज्ञा दी जा रही है। इसका कारण स्त्री और पुरुषों के जीवन-दर्शन में परिवर्तन का होना है।

(d) नगरीकरण- नगरीकरण परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे से दूर कर देता है। पिता परिवार से दूर फैक्ट्री या ऑफिस की चहारदीवारों में रहता है, माँ घर के

काम या फैक्ट्री के काम में व्यस्त रहती है। पति-पत्नी एक दूसरे की थकान और आराम का अनुभव नहीं कर पाते हैं। बच्चे नियन्त्रण से परे हो जाते हैं। माता-पिता में, संघर्ष और झगड़े बने रहते हैं और पारिवारिक विघटन को बल मिलता है।

(**c) शहरी मकान-** शहरों में मकानों की कमी के परिणामस्वरूप 'मकान विहीन परिवार' और 'मकान विहीन बच्चों' की संख्या में वृद्धि हो रही है। शहरी मकानों में गोपनीय स्थानों का अभाव रहता है। एक मकान में कई परिवारों के सदस्य रहते हैं और उसी में जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी कुछ होता है। इस प्रकार के मकानों में सबसे अधिक धक्का नव-दम्पत्तियों को लगता है और वैवाहिक विरोध का जन्म होता है।

(f) व्यावसायिक मनोरंजन- छोटे मकान और उनमें पूर्ण व्यवस्था न होने के कारण परिवार के सदस्य घर के बाहर पैसा देकर मनोरंजन करते हैं। माता-पिता इतने थके होते कि परिवार के लिए अधिक समय नहीं दे पाते हैं। बच्चे भी व्यावसायिक मनोरंजन में समान रूप से भाग लेते हैं। इसका बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(g) बिजली- विद्युत ने पारिवारिक व्यवहारों पर गहरा प्रभाव डाला है। विशेषकर टेलीफोन, रेडियो, लैप, टेलीविजन, विद्युत, इस्त्री, रेफ्रीजरेटर आदि का परिवार पर गहरा प्रभाव पड़ा है। नौकरों की संख्या में कमी हो गई है। धुलाई और सिलाई का काम घर पर होने लगा है। बिजली से खाना पकाया जाने लगा है।

(h) औषधियाँ- चिकित्सा के क्षेत्र में अपूर्व उन्नति हुई है, इससे व्यक्ति की औसत आयु बढ़ गई है,मनुष्य ने अक्षाध्य रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है, बच्चों की मृत्यु दर में कमी आई है। आज बुढ़ापा और बुढ़ापे की समस्या में वृद्धि हो गई है।

(4) दार्शनिक कारक- परिवार का परिवर्तन करने वाले प्रमुख दार्शनिक कारक निम्न है:

(**a) विवाह के धार्मिक सिद्धान्त का ह्रास**- आज विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर मात्र समझौता बनकर रह गया है। यह समझौता त्याग, अपहरण और

तलाक के द्वारा टूट सकता है। परिवार भंग हो जाने से सामाजिक अव्यवस्था, स्त्रियों का अनादर और यौन-व्यभिचार में वृद्धि हो रही है।

(b) भौतिकवादी और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण- आज व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधा पर अधिक ध्यान देता है। साथ ही वह 'स्वतः प्रदर्शन' को महत्व देता है। वह परिवार और समाज से दूर हटकर सिर्फ अपने बारे में सोचता है। इन विचारों ने पारिवारिक संगठन को प्रभावित किया है।

(c) **प्रस्तावित नवे दर्शन** पारिवारिक सम्बन्धों के बारे में प्रस्तावित दर्शन निम्न है:

(i) पहला दर्शन यह है कि प्रेम में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। स्वतन्त्रता के इस विचार ने परिवार में अनेक परिवर्तन किये हैं।

(ii) इस युग में वैयक्तिक सुख की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(iii) प्रायोगिक विवाहों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

(iv) 'संतान आवश्यक नहीं' इस प्रकार की धारणाओं का विकास हो रहा है।

(v) पारिवारिक जीवन में सन्तानोत्पत्ति की अपेक्षा 'काम' (Sex) को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

(vi) आजकल स्त्री और पुरुषों के मिलने-जुलने, साथ-साथ घूमने पढ़ने आदि की स्वतन्त्रता मिल गयी है।

उपर्युक्त सभी सामाजिक दर्शनों ने परिवार को परिवर्तित किया है।

परिवार का भविष्य

(Future of Family)

विभिन्न कालों (Periods) और परिस्थितियों में परिवार परिवर्तित होता जा रहा है। इन परिवर्तनों के कारण परिवार के स्वरूपों और कार्यों में परिवर्तन हो गये हैं आज परिवार वे परम्परागत कार्य (Traditional Functions) नहीं रह गये है बल्कि ये कार्य अन्य संस्थाओं द्वारा किये जाने लगे हैं। वे संस्थाएँ जो परिवार का कार्य कर रही है, इस प्रकार हैं-

(1) मातृत्व अस्पताल, (2) स्त्रियों के अस्पताल, (3) बच्चों के अस्पताल, (4)शिशु शालाएँ, (5) बालोद्यान, (6) बालपालक, (7) होटल और रेस्तरां, (8) परिवार को राजकीय सहायता, (9) क्लब, वेश्यालय, सिनेमा तथा अन्य मनोरंजन के साधन।
यह सत्य है कि परिवार के कार्य उपर्युक्त संस्थाओं द्वारा ले लिये गये हैं, दिन प्रतिदिन उसका महत्व कम होता जा रहा है, फिर भी परिवार को पूर्ण लोप असंभव ही है। परिवार के सन्तानोत्पत्ति, स्नेह और देखभाल के कार्य किसी अन्य संस्था में होना संभव नहीं है। विभिन्न कालों में परिवार का स्वरूप बदलता जा रहा है। आखेट अवस्था में परिवार का जो रूप था वह चारागाह और कृषि अवस्था में नहीं रह गया। कृषि अवस्था में परिवार का जो रूप था वह रूप आधुनिक युग में नहीं रह गया है। अनेक सामाजिक परिवर्तनों में पारिवारिक दृढ़ता पर प्रहार किए है, फिर भी परिवार अपने स्थान में दृढ़ खड़ा है। उसने नई परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करने का सदैव प्रयास किया है। **बर्जेस और लॉक** ने कहा है कि "बदलती हुई दशाओं को अनुकूल करने के इस लम्बे इतिहास और इसके स्नेह के कार्य को देखते हुए भविष्यवाणी करना सुरक्षित है कि परिवार जीवित रहेगा - व्यक्तिगत संतोष और व्यक्तित्व के विकास में देता और लेता रहेगा।"।
रे बेकर ने परिवार के भविष्य के बारे में बहुत ही सुन्दर लिखा है। "परिवार के दुर्दिन अवश्य है, परन्तु इसके लोप का कोई खतरा नहीं है। व्यक्तिगत परिवार इतने अधिक टूट जाएँगे कि उनकी कभी मरम्मत नहीं की जा सकेगी, परन्तु उनका स्थान लेने के लिए नये परिवार उत्पन्न हो जाएंगे। अनेक बाधाओं और प्रहारों के बावजूद विवाह भी लोकप्रिय रहेगा, युवा लोगों का यह दृढ़-विश्वास है कि वे सफल होंगे चाहे दूसरे लोग उसमें असफल हों। सामाजिक कार्य की वृद्धि, शिक्षा की विधियों का सुधार, अच्छी पैतृक शिक्षा और पारिवारिक विषयों पर सलाह देने वाली अनगिनत संस्थाओं के होने से परिवार का लोप असम्भव है।"

12.10 संयुक्त परिवार *(Joint Family)*

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की 'वसुधैव कटुम्बकम्' की धारणा का प्रतीक है तथा भारतीय संरचना में इसका अत्यधिक महत्व है। हिन्दू धर्म-शास्त्रों में

सम्पत्ति-विभाजन के सम्बन्ध में इसका अत्यधिक महत्व है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में सम्पत्ति-विभाजन के संबंध में यह नियम है कि संयुक्त परिवार का कोई ऐसा भी सदस्य जो सामान्य पूर्वज से तीन पीढ़ी दूर है तो उसे संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अपने हिस्से के विभाजन का अधिकार है। साधारण तौर पर एक संयुक्त परिवार में तीन या चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ रहते हैं। परिवार में जो सबसे अधिक आयु का व्यक्ति होता है, वह परिवार का मुखिया होता है। स्त्रियों में मुखिया की पत्नी या अन्य वृद्ध औरत होती है। परिवार के प्रधान की आज्ञा का उल्लंघन भयंकर सामाजिक अपराध माना जाता है।

संयुक्त परिवार की परिभाषा
(Definition of Joint Family)

संयुक्त परिवार की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है-

(1) इरावती कर्वे- "एक संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो सम्पत्ति के स्वामी होते है और जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा जो सामान्यतः एक भवन में रहते हैं, जो एक रसोई में भोजन करते हैं, जो किसी न किसी प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं।"3

(2) मेले- "एक संयुक्त परिवार ज्वाइन्ट स्टाफ कम्पनी के समान एक सहकारी संस्था है जिसमें संयुक्त पूँजी होती है।"*

(3) देसाई- हम उस परिवार को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें मूलभूत परिवार की अपेक्षा अधिक पीढ़ियों के सदस्य सम्मिलित है और जिसके सदस्य सम्पत्ति, आय तथा पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों से एक-दूसरे से सम्बन्धित है।

(4) प्रभु "सामान्यतः हिन्दू परिवार में चार पीढ़ियों के लोग हो सकते हैं तथा सदस्यों की संख्या कुछ भी हो सकती है। ये समस्त सदस्य एक ही घर में रहते हैं और परिवार की सामान्य सम्पत्ति के भागीदार होते हैं।

(5) जौली- "न केवल माता-पिता और सन्तान, भाई तथा सौतेले भाई सामान्य सम्पत्ति पर रहते हैं, बल्कि कभी-कभी इसमें कई पीढ़ियों तक की सन्तानें, पूर्वज तथा समानांतर सम्बन्धी भी सम्मिलित रहते हैं"

संयुक्त परिवार की विशेषताएँ
(Characteristics of Joint Family)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संयुक्त परिवार की निम्न विशेषताएँ बताई गई है-

(1) सामान्य निवास- संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी विशेषता है कि कई पीढ़ियों के सदस्य एक ही घर में रहते हैं। संयुक्त परिवार की संख्या चाहे कितनी ही क्यों न हो, वे एक सामान्य निवास को अंगीकृत करते हैं।

(2) एक संगठित इकाई-संयुक्त परिवार एक संगठित सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और ऐतिहासिक इकाई है। इस परिवार का मुख्य उद्देश्य होता है, सभी सदस्यों की बहुमुखी उन्नति करना एवं उनके लिए ऐसी सुविधाओं और साधनों का प्रबन्ध करना जिससे वे एक प्रकार की उन्नति कर सकें। साथ ही संयुक्त परिवार अपने सभी सदस्यों को उचित व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और पारस्परिक सहयोग का अवसर भी प्रदान करता है।

(3) आकार की विशालता- व्यक्तिगत परिवार की अपेक्षा संयुक्त परिवार का आकार विशाल होता है, क्योंकि इसमें अनेक पीढ़ियों के सदस्य एक ही घर में रहते हैं। भारतवर्ष में काफी बड़े-बड़े संयुक्त परिवार होते हैं जिनकी सदस्य संख्या सौ से भी अधिक होती है।

(4) संयुक्त रसोई- संयुक्त परिवार के सभी व्यक्तियों का भोजन एक ही रसोई में बनता है और सभी एक ही चौके में भोजन करते हैं।

(5) संयुक्त पूँजी- संयुक्त परिवार-प्रणाली में सम्पत्ति का उत्पादन, उपभोग और स्वामित्व संयुक्त रूप से होता है, परिवार की जितनी सम्पत्ति होती है, सब पर सभी सदस्यों का संयुक्त अधिकार होता है। आवश्यकता पड़ने पर इस सम्पत्ति का बँटवारा भी किया जा सकता है। परिवार का धन संयुक्त होता है और उस पर कर्ता का अधिकार होता है।

(6) सामान्य भरण पोषण-परिवार के सदस्यों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है, चाहे वे धनोपार्जन करते हों अथवा नहीं; सभी का परिवार भरण-

पोषण करता है। लँगड़े-लूले, अपाहिजों और वृद्धों की सामाजिक सुरक्षा का भार परिवार वहन करता है।

(7) गृहस्थी का महत्वपूर्ण स्थान- संयुक्त परिवार का एक स्वामी या मुखिया होता है, परिवार में इसका स्थान काफी महत्व का होता है। कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। अगर कोई मुखिया की आज्ञा का उल्लंघन करता है तो उसकी प्रतिष्ठा पर चोट लगती है।

(8) स्त्रियों का निम्न- स्थान संयुक्त परिवारों में सामान्यतः स्वियों का स्थान पुरुषों से सदा नीचा माना जाता है। उन पर कठोर नियन्त्रण रहता है और उनके अधिकार सीमित रहते हैं।

(9) सामान्य वर्ग- संयुक्त परिवार के सदस्य सामान्यतः एक ही धर्म में आस्था रखते हैं और उसी धर्म से सम्मिलित कर्तव्यों को सम्मिलित रूप से ही निभाते हैं। सभी व्यक्ति सामान्य देवी-देवताओं की पूजा करते है और एक प्रकार के कार्यों में भाग लेते हैं।

(10) सहयोग की भावना- संयुक्त परिवार में सबसे उपयोगी सहयोग की भावना पाई जाती है। दुःख- सुख में सभी सदस्य साथ रहते हैं। संयुक्त परिवार सहयोग पर आधारित है। सहयोग के अभाव में संयुक्त परिवार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

संयुक्त परिवार के गुण
(Merits of Joint Family)

(1) समुचित पालन-पोषण-संयुक्त परिवार की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि बच्चों का समुचित पालन-पोषण होता है। इसका कारण यह भी है कि संयुक्त परिवार में अनेक सदस्य होते हैं, उनमें से कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो कार्य करने के योग्य नहीं होते हैं, वे बच्चों की समुचित देख-रेख करते हैं।

(2) चरित्र-निर्माण- संयुक्त परिवार व्यक्तियों के आपसी प्रेम, त्याग और बलिदान पर चलता है। सदस्यों में असीमित सहनशक्ति होती है। बालक इन सभी गुणों को सीखता जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि बच्चों में सहयोग, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, अनुशासन, न्याय, दया, क्षमा आदि गुणों का

विकास हो जाता है। यह सभी शिक्षा परिवार से मिलती है; किन्तु व्यक्तिगत परिवारों में इन गुणों के विकास के लिए उतने अवसर नहीं मिलते हैं, क्योंकि माता-पिता आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में ही व्यस्त रहते हैं।

(3) अधिक आय-संयुक्त परिवार में पैतृक व्यवसाय चलता है तथा इसके सदस्य जन्म से ही इस कार्य में कुशलता प्राप्त कर लेते हैं। अतः इनकी आय अधिक हो जाती है।

(4) कम खर्च- संयुक्त परिवार में व्यक्ति को काफी सुरक्षा रहती है। एक जगह खाना बनाने में भी खर्च कम होता है। इसके साथ ही नौकरी, स्वास्थ्य, शिक्षा, मकान आदि में कम खर्च पड़ता है।

(5) आपत्तियों से रक्षा- मानव जीवन में अनेक आपत्तियों आती रहती है और संयुक्त परिवार ही एक ऐसा स्थान है जो व्यक्ति की इन आपत्तियों से रक्षा करता है। यदि किसी व्यक्ति की नौकरी छूट जाये, मृत्यु हो जाये, अन्य दुर्घटनाएँ हो जाये तो संयुक्त परिवार व्यक्ति की इन आपत्तियों से रक्षा करता है और पालन-पोषण की व्यवस्था करता है।

(6) वृद्धावस्था में सुरक्षा- वृद्धावस्था में मनुष्य असहाय हो जाता है। इस समय उसे सुरक्षा की आवश्यकता होती है और यह सुरक्षा उसे संयुक्त परिवार में ही मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति इस सुरक्षा का अनुभव करता है कि वृद्धावस्था में उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।

(**7) सुरक्षा की भावना**- संयुक्त परिवार सिर्फ वृद्धावस्था में व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान नहीं करता, अपितु आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षाएँ भी प्रदान करता है। व्यक्ति अपने को हर प्रकार से सुरक्षित समझता है।

(8) समष्टिवाद की भावना- संयुक्त परिवार सामाजिक जीवन में समष्टिवाद की भावना उत्पन्न करता है। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का रूप समाज में एकाकार हो जाता है। प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त होता है तथा इसके लिए उसकी आय का मापदण्ड नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के लिए कार्य करता है। फलस्वरूप समष्टिवाद की भावना का विकास हो जाता है।

(9) नवीन पति-पत्नियों का हल्का भार- संयुक्त परिवार के कारण नवीन पति-पत्नियों पर परिवार का भार नहीं पड़ता, क्योंकि परिवार का उत्तरदायित्व अन्य बड़े-बूढ़ों पर होता है। नवीन दम्पत्ति अधिक सुखी एवं प्रसन्न रहते हैं।

(10) ज्ञान में वृद्धि- संयुक्त परिवार में बूढ़े और बच्चे, ज्ञानी तथा अज्ञानी सभी रहते हैं। यह स्वाभाविक है कि सारा परिवार बूढ़ों के अर्जित ज्ञान से ओत-प्रोत हो और सारा परिवार उन गलतियों को करने से बच जाये, जो लोग अज्ञानतावश कर डालते हैं। बड़े-बूढ़ों से ज्ञानकोष में वृद्धि होती रहती है, इससे आने वाली पीढ़ियों मेधावी होती है।

(11) श्रम का सरल विभाजन- संयुक्त परिवार में अधिक व्यक्ति होते हैं। अतः श्रम का विभाजन हो जाता है और एक ही व्यक्ति को सभी प्रकार के कार्य नहीं करने पड़ते हैं।

(12) निःशुल्क मनोरंजन - बाल-लीलाओं से माँ-बाप तथा परिवार के अन्य सदस्य आनन्द उठाते हैं, इससे जीवन भार नहीं मालूम होता है। संयुक्त परिवार की यह विशेषता है कि वहाँ सदा ही मनोरंजन बना रहता है। अवकाश के समय या त्यौहारों-संस्कारों में परिवार के सदस्य मिलकर गीत, संगीत, कहानियाँ अथवा धार्मिक कार्यों से समय का उपयोग करते हैं। इस प्रकार संयुक्त परिवार और स्वस्थ परिवार का रूप धारण कर लेता है।

(13) चिन्ता की कमी- संयुक्त परिवार में सभी प्रकार की परिस्थितियों को सहन करने की अपूर्व शक्ति होती है, अतः उनमें साहस का विकास होता है। वे परोपकारी हो जाते हैं, उनमें दूसरों के लिए कष्ट सहन करने की शक्ति आ जाती है और यही कारण है कि संयुक्त परिवार के सदस्य अपनी मातृभूमि के लिए हँसते-हँसते प्राण तक दे देते हैं। हर व्यक्ति को अपनी पत्नी, बच्चों तथा स्वयं के लिए आश्रय का विश्वास होता है, व्यक्तिगत परिवार में यह सम्भव नहीं हो सकता है।

(14) विरासत की रक्षा- संयुक्त परिवार में पारिवारिक विरासत और संस्कृति की रक्षा की जाती है। अनेक पीढ़ियों के सदस्य साथ-साथ रहते हैं, इससे बच्चे-बड़े-

बूढ़ों के आदेशों का अनुसरण करते हैं, फलस्वरूप पारिवारिक परम्पराओं का नियमित रूप से पालन होता है जिससे वे अमिट रहती है।

(15) सामूहिक बैंक व्यवस्था-यह तो पहले ही लिखा गया है कि संयुक्त परिवार में आय अधिक होती है, इसके साथ ही सभी का धन एक साथ इकट्ठा करके परिवार एक छोटे से बैंक का काम करता है। सभी का धन कर्ता के पास इकट्ठा रहता है। काम पड़ने पर आवश्यकता के अनुसार खर्च किया जाता है।

(16) पैतृक भावना- संयुक्त परिवार को बनाये रखने में पितृ-पूजा प्रथा महत्वपूर्ण है। इसी पितृ-पूजा के कारण संयुक्त परिवार में पैतृक भावना का विकास व्यक्तिगत परिवार की अपेक्षा अधिक होता है।

(17) मानवीय भावनाओं का विकास- संयुक्त परिवार की अन्तिम उपयोगिता यह है कि इसमें मानवीय भावनाओं के विकास के लिए अधिक अवसर रहते हैं। अनुशासन, सहनशीलता, स्वाभिमान और आत्मविश्वास की भावनाओं का विकास संयुक्त परिवार में ही संभव होता है। इसके साथ ही व्यक्ति सहयोगी जीवन बिताना सीख जाते हैं। संयुक्त परिवार इन्हीं मानवीय भावनाओं पर टिका हुआ है। और इन भावनाओं के समाप्त होते ही संयुक्त परिवार नष्ट हो जाता है।

संयुक्त परिवार के दोष
(Demerits of Joint Family)

(1) समाज का विभाजन- संयुक्त परिवार-प्रणाली का यह सबसे बड़ा दोष है कि इसने उपजातिवाद को प्रोत्साहन देकर जीवन तत्व को ही खण्ड-खण्ड कर दिया है जिससे इतनी छोटी-छोटी इकाइयाँ बन गई है कि उनका साधारण समाज में कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। संयुक्त परिवार समाज में फैले हुए छिन्न-भिन्न अंग हैं जो न तो पारस्परिक सम्बन्ध बना सकते हैं और न उसमें अपनी रूढ़ियों के घेरे को तोड़ कर एक बड़ा सा समाज बना सकने की शक्ति रह गई है। अतः रक्त-सम्बन्ध तो दूर रहा, खान-पान रुकावटें भी नहीं टूट पाती हैं।

(2) औपचारिक सम्बन्ध- संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है। इसका परिणाम यह होता है कि सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते हैं। वहाँ आत्मीयता का प्रभाव पड़ता है, इससे परिवार में मनोवैज्ञानिक असुरक्षा

को स्थान मिलता है, इस कारण परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध औपचारिक मात्रा रह जाते हैं।

(3) द्वैष एवं क्लेश का केन्द्र- यह तो स्पष्ट हो चुका है कि संयुक्त परिवार में औपचारिक सम्बन्ध पाये जाते हैं और इन औपचारिक सम्बन्धों के कारण सदस्यों के हितों एवं स्वार्थों में संघर्ष होता रहता है। स्त्रियों में जो हमेशा तनाव और मनमुटाव पाया जाता है, परिवार कलह का केन्द्र बन जाता है। पारिवारिक संघर्ष यहाँ तक पहुँच जाता है कि न्यायालयों की शरण तक लेनी पड़ती है।

(4) गोपनीयता का अभाव- संयुक्त परिवार के सदस्यों की संख्या विशाल होने से पति-पत्नी विशेषकर नवविवाहित दम्पत्ति का एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से मिलना कठिन हो जाता है, इसका प्रभाव बहुत बुरा होता है। ऐसी अवस्था में नवविवाहित दम्पत्ति में एक-दूसरे के प्रति प्रेम का विकास तो दूर रहा, वे एक-दूसरे को निकट से जान भी नहीं पाते है इससे सामंजस्य में कठिनाई होती है।

(5) जातिवाद को प्रोत्साहन- संयुक्त परिवार के सदस्य एक संकुचित घेरे में रहते हैं, इस कारण उनमें सुधारवादी दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है। वे जब भी सोचते हैं, जाति को लक्ष्य करके सोचते हैं। अलगाव के आधार पर स्थापित इन संस्थाओं ने बहुत अधिक नुकसान किया है।

(6) सदस्यों में आलस्य- प्राचीन आदर्श जिसमें बैठे-बैठे खाना पाप समझा जाता था, समाप्त हो जाने समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष के कारण संयुक्त परिवार काहिली और आलस्य के पोषक हो गये हैं। सदस्यों में इस भावना का आ जाना ही चाहे वह काम करे या नहीं, बराबर खाना-कपड़ा मिलता ही रहेगा, परिवार की आर्थिक दशा के लिये घातक होता है। परिवार-भर के खर्च का भार एक कुछ सदस्यों पर आ जाता है, इससे भी झगड़ों को बढ़ावा मिलता है।

(7) आर्थिक निर्भरता - संयुक्त परिवार के कारण परिवार के अधिकांश सदस्य आर्थिक दृष्टि से परिवार पर निर्भर रहते हैं। इसका स्वाभाविक फल यह होता है कि लोग कामचोरी का स्वभाव बना लेते हैं।

(8) कमाने वाले में असन्तोष- संयुक्त परिवार के कमाने वाले सदस्यों में अधिकांशतः असन्तोष बना रहता है, क्योंकि उनकी गाढ़ी कमाई दूसरों पर व्यय

होती है तथा निठल्ले आनन्द करते हैं। कई बार तो ऐसा होता है कि कमाने वाले सदस्य कम परिश्रम करने लगते हैं, क्योंकि उस कमाई का फल उन्हें नहीं मिलता है।

(9) भय का वातावरण- संयुक्त परिवार में भय का वातावरण सदैव बना रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि सदस्यों में पारिवारिक सम्बन्धों का अभाव हो जाता है। सदस्यों के सम्बन्ध मात्र औपचारिक रह जाते हैं।

(10) कुशलता में कमी- साधारणतया यह देखा जाता है कि संयुक्त परिवार के कुछ ही सदस्य धनोपार्जन का कार्य करते हैं और उन्हें काफी बड़े परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है। इससे अत्यधिक श्रम के कारण इनका स्वास्थ्य गिर जाता है और उनकी कार्य-कुशलता कम हो जाती है।

(11) निर्धनता- संयुक्त परिवार के सदस्यों में सहयोग का अभाव पाया जाता है, सदस्य अकर्मण्य हो जाते हैं, कमाने वाले सदस्यों की कुशलता में कमी हो जाती है, आवश्यकताएँ बढ़ती जाती है, इससे निर्धनता
का वातावरण बना रहता है।

(12) स्त्रियों पर कठोर नियन्त्रण- संयुक्त परिवार में स्वियों की दशा अत्यन्त ही खराब रहती है, स्वतन्त्रता तो नाममात्र की भी नहीं होती है। उनके सामने अनेक प्रतिबन्ध होते हैं। घूमने, बातचीत करने, अपने पति से मिलने, इच्छानुसार घर का संचालन करने तथा मनोरंजन आदि पर इतना कठोर प्रतिबन्ध होता है कि अगर यह कहा जाये कि रूढ़िवादी संयुक्त परिवार में उसकी स्थिति दासी से जरा भी अच्छी नहीं है तो अत्युक्ति नहीं होगी। सास प्रतिबन्ध की संज्ञा होती है, ननद उसकी माध्यम और बहू प्रतिबन्ध का केन्द्र।

(13) मुकदमेबाजी - सम्मिलित परिवारों में सम्पत्ति भी सम्मिलित होती है अतः जब भी कलह या अन्य कारणों से बँटवारा होता है तो बड़े-बड़े मुकदमें चलते हैं और इसमें रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। इतना ही नहीं, बाद में जब वे बड़े होते हैं तब शत्रुओं जैसे सम्बन्ध हो जाते हैं। इसके कारण आर्थिक विषमता उत्पन्न हो जाती है और अक्सर व्यक्ति ऋणग्रस्त हो जाते हैं।

(14) तानाशाही संयुक्त- परिवार का मुखिया ही परिवार के सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है, उसकी आज्ञा के बिना अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं हो सकता है। अतः देखने में यही आता है कि अधिकांशतः संयुक्त परिवार में तानाशाही को प्रोत्साहन मिलता है। सदस्यों की राय का कोई महत्व नहीं होता है।

(15) रुचि पर प्रतिबन्ध- संयुक्त परिवारों में पैतृक व्यवसाय को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, प्राकृतिक रुचि और इच्छा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति व्यवसाय को मन से नहीं करते हैं जो अक्सर पारिवारिक कलह का भी कारण हो जाता है।

(16) अन्धविश्वास का बोलबाला- संयुक्त परिवार में पैतृक भावना का पोषक होता है। अतः वहाँ पर जीवन के हर एक क्षेत्र में कुरीतियों का बोलबाला पाया जाता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य को इन कुरीतियों और अन्धविश्वासों का शिकार होना पड़ता है।

(17) बाल-विवाहों को प्रोत्साहन- संयुक्त परिवार बाल-विवाहों को प्रोत्साहित करता है। बाल-विवाह हर एक दृष्टि से हानिकारक है परन्तु बड़ा परिवार होने के कारण बच्चों का विवाह बहुत ही छोटी आयु में कर दिया जाता है। विवाह करने वाले व्यक्ति को विवाह योग्य तथा पत्नी के पालन करने की क्षमता को विकसित करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। जब तक वह विवाह के अर्थ को समझ पाता है तब तक अपने को अत्यधिक भार से दबा हुआ, अनेक बच्चों का बाप पाता है।

(18) अत्यधिक सन्तान उत्पन्न- संयुक्त परिवार में दो मुख्य कारणों से अधिक सन्तान होती है। प्रथम बाल-विवाह होने के कारण और द्वितीय, कोई जिम्मेदारी न होने के कारण।

(**19) व्यक्तिगत विकास में बाधक**- संयुक्त परिवार व्यक्ति के विकास में भी अनेक बाधाएँ उत्पन्न करता है। बाल्यावस्था में परतन्त्र तथा परोपजीवी रहने से परिवार के सदस्यों में अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता नहीं विकसित होती। स्वावलम्बन का विकास नहीं हो पाता है। वह अपनी आत्मा का विकास और वैयक्तिक योग्यताओं की वृद्धि भी नहीं कर पाता है। एक निरंकुश सत्ता के नीचे रहते हुए उनका विकास कैसे सम्भव हो सकता है? परिवार के सदस्यों की संख्या

अधिक होने के कारण किसी सदस्य की और व्यक्तिगत ध्यान देना असम्भव हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता है। कठोर अनुशासन के कारण व्यक्ति की क्षमताएँ समाप्त हो जाती है।

(20) अप्राकृतिक- संयुक्त परिवार में अनेक गुण और दोष हैं। संयुक्त परिवार कृषि युग तक भले ही अच्छा रहा हो, आज औद्योगिक युग में यह अप्राकृतिक प्रतीत होता है, क्योंकि जो प्रेम बच्चों के प्रति माता और पिता का होता है वह दूसरों का नहीं हो सकता है, परन्तु संयुक्त परिवार का वातावरण ही कुछ ऐसा होता है कि व्यक्तियों को इन सड़ी-गली रूढ़ियों पर विश्वास करना ही पड़ता है। वे अपने बच्चों की देख-रेख तो दूर रही, न तो बातें कर सकते हैं और न उनकी तरफ देख ही सकते हैं। पति और पत्नी केवल मैथुन भर के साथी रह जाते हैं। इस प्रकार का परिवार बड़ा अस्वाभाविक प्रतीत होता है।

संयुक्त परिवार में आधुनिक परिवर्तन
(Recent changes in Joint Family)
या
संयुक्त परिवार में विघटन के लक्षण
(Symptoms of Disorganization in Joint Family)

संयुक्त परिवार में गुण के साथ अनेक दोष भी पाये जाते हैं। इन दोषों के कारण ही संयुक्त परिवार में तीव्रता से परिवर्तन हो हो रहे हैं। इ इन परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवार की संरचना और कार्यों में परिवर्तन हो रहे हैं। संयुक्त परिवार में जो प्रमुख परिवर्तन हो रहे हैं, वे इस प्रकार है-

(1) आकार में परिवर्तन (Change in the Size)- आकार का तात्पर्य सदस्यों की संख्या से है। पहले संयुक्त परिवारों में सदस्यों की संख्या 50-60 तक होती थी, किन्तु अब इस संख्या में कमी आई है। आज संयुक्त परिवारों के सदस्यों की संख्या 10-12-15 तक हो गई है। संयुक्त परिवारों के सदस्यों की संख्या परिवारों की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती थी, किन्तु आज व्यवसाय और शासकीय नौकरियों का महत्व बढ़ता जा रहा है।

(2) मुखिया की निरंकुशता में कमी (Decline in the Dictatorship of Head of the Family)- संयुक्त परिवार का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण मुखिया (कर्ता) की तानाशाही में कमी का होना है। परम्परात्मक परिवारों में मुखिया का सर्वोच्च स्थान होता था तथा कोई भी सदस्य उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था। वर्तमान समय में मुखिया की इस स्थिति में परिवर्तन आया है। आज मुखिया परिवार के अन्य सदस्यों के हितों और आकांक्षाओं को ध्यान में रखता है। आज के संयुक्त परिवारों का मुखिया निरंकुश न होकर राजनैतिक नेता की भाँति होता है, जो अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए सभी सदस्यों की भावनाओं की कद्र करता है।

(3) धर्म का कम महत्व (Less Importance of Religion)- मौलिक रूप से संयुक्त परिवारों का सारा जीवन धर्म-प्रधान था और इसकी अभिव्यक्ति अनेक सदस्य धर्म की उपेक्षा नहीं कर सकता था, किन्तु आज स्थिति बदली हुई नजर आ रही है। कर्मकाण्डों का समाज में कोई स्थान नहीं रह गया है। संस्कारों और त्योहारों की उपेक्षा आम बात है। नई पीढ़ी धर्म के प्रति कम रुचि ले रही है। यही कारण है कि संयुक्त परिवारों की एकता समाप्त होती जा रही है।

(4) प्राथमिक सम्बन्धों का कम महत्व (Less Importance of Primary Relations)- संयुक्त परिवार प्राथमिक सम्बन्धों के आधार पर ही टिके थे, किन्तु अब इन प्राथमिक सम्बन्धों में घनिष्ठता का अभाव दिखाई देता है। प्राथमिक संबंधों में घनिष्ठता के अभाव के कारण ही सहयोग की भावना कम होती जा रही है। व्यक्तिवादिता का विकास होता जा रहा है। सदस्यों के सम्बन्धों में औपचारिकता विकसित होती जा रही है। इससे प्राथमिक सम्बन्ध शिथिल होते जा रहे हैं।

(5) स्थिति व अधिकार में परिवर्तन (Change in Status and Rights) वर्तमान समय में स्त्रियों, बच्चों और युवकों के अधिकार तथा स्थिति में परिवर्तन हो रहे हैं। संयुक्त परिवारों में पत्नी, माता और पुत्रों के रूप में स्त्रियों की की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय थी। पत्नी न तो अपने पति की तरफ देख सकती थी और न ही उससे कोई बात ही कर सकती थी। उनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं था।

स्त्रियों का सारा जीवन खाना पकाने, बच्चे पैदा करने और उनके पालन-पोषण में बीत जाता था। वह घर की चहारदिवारी में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देती थी। संयुक्त परिवारों में बच्चों और युवकों को कोई विशेष स्थान प्रदान नहीं किया जाता था। परिवारों के महत्वपूर्ण कार्यों में उसकी राय नहीं ली जाती थी। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार के इन सदस्यों की स्थिति ऊँची ही रही है तथा परिवार के कार्यों में इनकी भूमिका को स्वीकार किया जाने लगा है।

(6) व्यवसाय में परिवर्तन (Change in Occupations) संयुक्त पारेवारों के व्यवसाय परम्परागत होते थे तथा परिवार के सदस्य इन व्यवसायों को परम्परागत रूप से करते रहते हैं। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार के परम्परागत व्यवसायों में परिवर्तन हो रहे हैं। कृषि का महत्व घट रहा है। संयुक्त परिवार के सदस्य व्यवसायों की खोज में शहरों की ओर जा रहे है तथा जो कार्य वहाँ पाते है, उसे ही स्वीकार कर लेते हैं। आज संयुक्त परिवार की आवश्यकताओं में वृद्धि तथा रोजगार के अवसरों की विविधता के कारण भी व्यवसायों में परिवर्तन हो रहे हैं।

(7) सम्पत्ति अधिकारों में परिवर्तन (Change in Property Rights) संयुक्त परिवार की समस्त प्रकार की चल और अचल सम्पत्ति पर मुखिया का पूर्ण अधिकार होता था। किसी भी व्यक्ति को सम्पत्ति प्रदान करना या उसे इस अधिकार से वंचित कर कर देन देना मुखिया का अधिकार था। इससे परिवार की सम्पत्ति संयुक्त बनी रहती थी तथा परिवार संगठित रहता था। 1929 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में इस आशय की व्यवस्था की गई थी, कि अगर कोई व्यक्ति संयुक्त परिवार को छोड़कर चला जायेगा, तब भी उसका सम्पत्ति पर अधिकार बना रहेगा। 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के पास हो जाने से स्त्रियों का भी परिवार की सम्पत्ति में अधिकार हो गया है।

(8) सहयोग में परिवर्तन (Change in Co-operation) संयुक्त परिवार इसके सदस्यों की सहायता और सहयोग पर टिका हुआ था। वर्तमान समय में इस स्थिति में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि सदस्यों में व्यक्तिवादिता की भावना का विकास होता जा रहा है। संयुक्त परिवार के सदस्य

अपने हितों की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं। संयुक्त परिवार के सदस्यों की प्रतिष्ठा का निर्धारण धन और व्यक्तिगत गुणों के आधार पर होने लगा है। यही कारण है कि संयुक्त परिवार के सदस्यों में सहयोग की जो भावना पहले पाई जाती थी, अब उसका ह्रास होता जा रहा है।

(9) अन्य परिवर्तन (Other Changes) संयुक्त परिवार के जिन परिवर्तित लक्षणों की विवेचना की गई है उनके अतिरिक्त संयुक्त परिवार में परिवर्तन के कुछ लक्षण और दिखाई दे रहे हैं, जो निम्नलिखित प्रकार के हैं-

(i) पारिवारिक अशांति में वृद्धि,

(ii) वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर बल,

(iii) सदस्यों द्वारा अधिक से अधिक अधिकारों की माँग,

(iv) कर्तव्य के प्रति उपेक्षा-भाव,

(v) पारस्परिक अविश्वास,

(vi) परिवार से पवित्र विचारों का ह्रास,

(vii) एकमत का अभाव,

(viii) सदस्यों के पद और कार्यों की अनिश्चितता।

क्या संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं
(Is Joint Family Disintegrating)

वर्तमान समय में संयुक्त परिवारों में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनके आधार पर यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि क्या संयुक्त परिवार टूट रहे हैं या विघटित हो रहे हैं? भारत एक कृषि प्रधान देश है। अधिकांश जनता खेती करती है और गाँवों में निवास करती है। भारत में ग्रामीण जनता की आजीविका का आधार कृषि था और आज भी है। प्रारम्भिक समाजों में खेती परिवार के सदस्यों के श्रम पर आधारित थी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में संयुक्त परिवारों के महत्व को स्वीकार किया गया। संयुक्त परिवार के सभी सदस्य कृषि-कार्यों का सम्पादन करते थे। अतः मजदूरों की आवश्यकता और इससे उत्पन्न समस्या का समाधान अपने आप ही हो जाता था। शिक्षा, आवागमन के साधन, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का अभाव था। जनसंख्या बढ़ी और इससे समाज में गतिशीलता का

विकास हुआ। शिक्षा का प्रसार तथा औद्योगीकरण एवं नगरीकण का विकास हुआ। व्यवसाय के नये अवसर बढ़े। इन परिस्थितियों ने ग्रामीण जनसंख्या को नगरों की ओर गतिशील कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवारों में परिवर्तन की प्रक्रिया गतिशील हो गई। इन परिवर्तनों को ही संयुक्त परिवारों का विघटन कहा जाता है।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. किसने कहा- 'संयुक्त परिवार वह समूह है, जिसके अन्तर्गत स्वी पुरूष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो।'

(अ) मैकाइवर और पेज (ब) इलियट और मेरिल

(स) आगवर्त और निमकाफ (स) बर्जेस और लाभ

2. किसने कहा- 'एक संयुक्त परिवार ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनी के समान एक सहकारी संस्था है।'

(अ) इरावती कर्वे (ब) मेले (स) देसाई (द) प्रभु

3. Society नामक पुस्तक के लेखक कौन है?

(अ) इलियट और मेरिल (ब) डी. एन. मजूमदार

(स) मैकाइवर और पेज (द) जानसन

4. Family and marriage in India पुस्तक के लेखक कौन है?

(अ) जी. एस. घुरिए (ब) के. एम. कपाड़िया

(स) ए. आर. देसाई (द) एस. सी. दुबे

5.Kinship organization in India, पुस्तक के लेखक कौन है?

(अ) इरावर्ती कर्वे

(ब) पी. एन. प्रभु

(स) ए. आर. देसाई

(द) एम. एन. श्रीनिवास

...

12.11 सारांश

परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है, जहाँ व्यक्ति का जन्म, पालन-पोषण और सामाजिकरण होता है। यह विभिन्न प्रकार के जैसे नाभिकीय, संयुक्त, मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक रूपों में पाया जाता है। परिवार का मुख्य कार्य अपने सदस्यों को संरक्षण देना, आर्थिक स्थिरता प्रदान करना, और सांस्कृतिक परंपराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाना है। आधुनिक युग में औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण परिवार की संरचना और कार्यों में परिवर्तन आया है। उदाहरण के लिए, संयुक्त परिवारों का स्थान अब नाभिकीय परिवार लेने लगे हैं। फिर भी, परिवार समाज में भावनात्मक और सांस्कृतिक एकता का महत्वपूर्ण माध्यम बना हुआ है।

12.12 मुख्य शब्द

1. नाभिकीय परिवार (Nuclear Family): माता, पिता और बच्चों से मिलकर बना छोटा परिवार।

2. संयुक्त परिवार (Joint Family): एक छत के नीचे कई पीढ़ियों का साथ रहना।

3. मातृसत्तात्मक परिवार (Matrilineal Family): वह परिवार जहाँ संपत्ति और अधिकार माता की वंशावली के आधार पर चलते हैं।

4. पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family): वह परिवार जहाँ अधिकार और निर्णय पितृप्रधान होते हैं।

5. विविध-विवाहिता (Polygamy): एक व्यक्ति का एक से अधिक विवाह करना।

12.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (अ), 2. (ब), 3. (स), 4. (ब), 5. (अ)।

12.14 संदर्भ ग्रन्थ

1. गिडेंस, एंथनी: Sociology, Polity Press, 2006।

2. मजूमदार और मदान: Indian Social Structure, National Book Trust, 1956।

3. मैकाइवर और पेज: Society: An Introductory Analysis, Macmillan, 1949।

4. शर्मा, के.एल.: Sociology of Family in India, Sage Publications, 1995।

12.15 अभ्यास प्रश्न

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. परिवार की व्याख्या कीजिए तथा इसकी विशेषताओं को लिखिए।

Define family and write its characteristics.

2. परिवार की अवधारणा की विस्तृत विवेचना कीजिए।

Describe in brief the concept of family.

3. परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त लिखिए।

Write theories of origin of family.

4. परिवार की उत्पत्ति के उद्विकासवादी सिद्धान्त को समझाइए।

Explain evolutionary theory of origin of family.

5. परिवार के प्रमुख स्वरूपों को लिखिए।

Write main forms of family.

6. परिवार के कार्यों को लिखिए।

Write functions of family.

7. समाजीकरण में परिवार की भूमिका लिखिए।

Write role of family on socialization.

8. परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व लिखिए।

Write sociological importance of family.

9. परिवार में आधुनिक परिवर्तनों को लिखिए।

Write modern changes in the family.

10. संयुक्त परिवार की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए। Define joint family. write its characteristics.

11. संयुक्त परिवार के गुण-दोष लिखिए।

Write merits and demerits of joint family.

12. संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं। समझाइए।

Joint families are disintegrating. Explain.

13. संयुक्त परिवार की वर्तमान में उपयोगिता का मूल्यांकन कीजिए। Evaluate Joint family in contemporary context.

(व) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. परिवार की परिभाषा लिखिए।

Write definition of family.

2. परिवार की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।

Write any two characteristics of family.

3. परिवार की उत्पत्ति का मातृसत्तात्मत सिद्धान्त समझाइए।

Explain the Matriarchal theory of the origin of family.

निम्न पर संक्षिप्त नोट लिखिए : Write a short note on the following:

1. व्यक्तिगत परिवार Individual family
2. परिवार के मौलिक कार्य Fundamental functions of the family.
3. परिवार में परिवर्तन Change in family

4. परिवर्तित परिवार का आधुनिक रूप Recent Features of changing family
5. परिवार का भविष्य Future of family
6. संयुक्त परिवार का अर्थ Meaning of Joint family
7. संयुक्त परिवार में परिवर्तन Change in joint family

ब्लॉक - IV

इकाई -13
विवाह
(MARRIAGE)

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 विवाह की परिभाषा
13.4 विवाह की उत्पत्ति
13.5 विवाह का समाजशास्त्रीय महत्व
13.6 विवाह के सामान्य स्वरूप
13.7 हिन्दू विवाह
13.8 बाल-विवाह
13.9 विधवा पुनर्विवाह
13.10 दहेज प्रथा
13.11 तलाक की समस्या
13.12 सारांश
13.13 मुख्य शब्द
13.14 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
13.15 संदर्भ ग्रन्थ
13.16 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

नर और नारी सृष्टि के सफल संचालन के आधार हैं। शरीर की रचना कुछ ऐसी है कि ये दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं और सृष्टि के संचालन के लिए दोनों अपने

में अपूर्ण हैं। इस अपूर्णता को समाप्त करने के लिए स्वी- पुरुष-संसर्ग स्थापित करते हैं और सृष्टि का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

जैवकीय परिपक्वता (Biological Maturity) प्राप्त करने पर नर और नारी विपरीत लिंगीय एक साथी की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। हर परिपक्व जोड़ा अपनी काम-व्यवस्था चाहता है। आदिकाल में मानव अपनी लैंगिक आवश्यकताओं की पूर्ति पशुओं की भाँति करता था। सभ्यता का उदय हुआ, यह महसूस किया गया कि पशुवत् लैंगिकता पर नियन्त्रण होना चाहिये, फलस्वरूप विवाह जैसी संस्था का विकास हुआ।

भारतीय विचारकों ने व्यक्ति के जीवन में चार भागों में विभाजित किया है- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को विवाह करना पड़ता है। जब तक विवाह नहीं किया जाता, गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ नहीं हो सकता है।

पुरुष और नारी दोनों में सामाजिक प्राणी होने के नाते कुछ मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) होती है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन मानव समाज की मौलिक आवश्यकताएँ है। यौन सम्बन्ध (Sex Relations) नर और नारी की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। इसकी पूर्ति होना अनिवार्य है। मौलिक प्रश्न यह कि ऐसे कौन से माध्यम है, जिनकी सहायता से नर और नारी के यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया जाय? विवाह (Marriage) ऐसी संस्था है, जिसकी सहायता से नर और नारी के यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित रूप दिया जाता है। इस प्रकार विवाह वह मान्यता प्राप्त संस्था है, जो नर-नारी की यौन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। विवाह की संस्था का प्रत्येक समाज में महत्व है। इतना अवश्य है कि विभिन्न समाजों में विवाह के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है।

13.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. विवाह के विभिन्न रूपों (अरेंज मैरिज, प्रेम विवाह आदि) और उनसे जुड़े रीति-रिवाजों को समझेंगे।
2. छात्र यह जानेंगे कि विवाह कैसे समाज और परिवार को जोड़ने का कार्य करता है और इसकी भूमिका सामाजिक स्थिरता में कितनी महत्वपूर्ण है।
3. वर्तमान समय में बदलते सामाजिक परिवेश के संदर्भ में विवाह की प्रासंगिकता और परंपराओं के महत्व पर विचार कर पाएंगे।

13.3 विवाह की परिभाषा *(Definition of Marriage)*

(1) बोगार्डस - "विवाह स्वी और पुरुष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करवाने की एक संस्था है।"।
(2) वेस्टरमार्क "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह यौन सम्बन्ध है, जो प्रथा या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त होता है तथा जिस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों तथा उनके बच्चों के अधिकार व कर्तव्यों का समावेश होता है।"2
(3) लाबी "विवाह स्पष्टतः उन स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है जो इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष के उपरान्त भी स्थिर रहते हैं और पारिवारिक जीवन की आधारशिला बनाते हैं।"
(4) हावेल "विवाह सामाजिक नियमों का जाल है, जो वैवाहिक जोड़े के पारस्परिक रक्षा सम्बन्धी तथा बाल-बच्चों व समाज के प्रति उनसे सम्बन्धों को नियंत्रित एवं परिभाषित करता है।"*
(5) एलिस "विवाह उन दो व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध को कहते हैं, जो एक से यौन सम्बन्ध एवं समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष सामाजिक सहानुभूति के बन्धनों से आपस में बँधे रहते हैं और यदि संभव हो, तो वे इन बन्धनों को अनन्तकाल तक चलाने के लिए इच्छुक हों।"।
संक्षेप में "विवाह समाज की वह मान्यता प्राप्त संस्था है, जो स्त्री और पुरुष के यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित करती है तथा जिसका उद्देश्य परिवार का स्थायी निर्माण करना तथा बच्चों का लालन-पालन करना होता है।"

13.4 विवाह की उत्पत्ति *Origin of marriage*

विवाह की उत्पत्ति (Origin of Marriage)

विवाह जैसी पवित्र संस्था की उत्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। काम-भावना पुरुष में स्त्री से अधिक होती है, ऐसा विद्वानों का मत है। अब एक ओर तो एक स्वी और दूसरी ओर अनेक पुरुष और दूसरी ओर इन अनेकों पुरुषों में स्वियों से अधिक कामुकता। स्वी साधन बन गई काम-वासना की पूर्ति की। वह इस अनियमित कामवासना से ऊब गई होगी और इसके परिणामस्वरूप यह सोचा गया होगा कि स्त्री के साथ एक ही पुरुष यौन सम्बन्ध स्थापित करे। यौन सम्बन्धों की इस व्यवस्था से विवाह जैसी पवित्र संस्था का जन्म हुआ होगा।

भारत में वैदिक युग के बाद महाभारत, जातक कथाओं आदि से स्पष्ट होता था कि स्त्रियों के साथ स्वच्छन्द रूप से यौन सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। जातक कथा में एक वर्णन है कि किसी राजा के रनिवास को किसी अमात्य ने दूषित कर दिया। जब राजा को इस बात का पता चला तो उसने दूसरे पण्डित अमात्य से पूछा 'पर्वत की गोद में एक सुरम्य तालाब है, सिह ने पानी पीने के लिये उसे सुरक्षित रखा है, यह जानते हुए भी गीदड़ ने उस तालाब में मुँह कैसे डाल दिया।' पण्डित अमात्य को सारी कथा मालूम थी, वह बोला-

पिबन्ति वे महाराज, सायदानि महानंदि।
न तैन अनदि होति, समस्यु यदि ते पिया ॥

अर्थात्, "महाराज, महानदी में सभी जल पीते हैं, उससे नदी अनदी नहीं होती है। यदि वह आपकी प्रिय है, तो क्षमा करें।" यह था उस युग की नारी का जीवन। ऐसा विश्वास था यौन सम्बन्ध स्थापित करने से स्त्री अपवित्र नहीं होती है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से अधिक सभ्य कहलाता है, क्योंकि

पाश्चात्य सभ्यता में भी यौन सम्बन्ध को एक छोटी-सी सामाजिक त्रुटि (Social wrong) के रूप में स्वीकार किया गया है। कुछ भी हो इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य सदैव चिन्तनशील प्राणी रहा है। अतः यौन सम्बन्ध को अपराध करार देकर एक पुरुष को एक स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा दी और विवाह जैसी पवित्र संस्था का जन्म हुआ।

कामवासना मानव की ही नहीं प्राणि जगत की मूल प्रवृत्ति है। कामवासना की पूर्ति स्त्री अर्थात् और पुरुष के संसर्ग के दो परिणाम हो सकते हैं (1) कामवासना के परिणामस्वरूप संतान उत्पन्न हो जाए, और (2) कामवासना से संतान उत्पन्न न हो। जहाँ तक दूसरी दशा का सम्बन्ध है जब कामवासना से सन्तान उत्पन्न नहीं होते हैं तो समाज में आगे कोई समस्या ही पैदा नहीं होती है। जब कामवासना से सन्तान पैदा हो जाती है तो समाज और उस असहाय स्त्री तथा नवजात शिशु के सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है। समस्या यह खड़ी हो जाती है कि इस असहाय स्त्री और नवजात शिशु की देखभाल कौन करे। क्योंकि उत्पन्न शिशु किसी एक पुरुष का नहीं है, अनेक पुरुषों का है। पुरुष अपनी जिम्मेदारी से मुकर भी सकते हैं। यह भी कह सकते हैं कि उत्पन्न शिशु हमारा नहीं है। अब इस समस्या का समाधान कैसे किया जाय? चिन्तनशील मानव ने यह सोचा कि समस्या सामूहिक यौन सम्बन्ध के कारण उत्पन्न हुई है, अतः इस समस्या को उत्पन्न करने वाले कारणों का निराकरण कर देने से समस्या का भी अन्त हो जायेगा। अतः उन्होंने सामूहिक यौन सम्बन्ध को अपराध करार दिया और व्यक्तिगत यौन सम्बन्ध की व्यवस्था की। इस व्यक्तिगत यौन सम्बन्ध के परिणामस्वरूप विवाह जैसी पवित्र संस्था का जन्म हुआ होगा। अतः स्पष्ट है कि विवाह का जन्म मानव की आदिम प्रवृत्तियों पर आधारित है जिसका समर्थन वेस्टरमार्क ने यह कहकर किया है कि "विवाह की उत्पत्ति के लिए मैं सोचता हूँ कि यह सम्भवतः आदिकालीन व्यवहार से ही विकसित हुआ है।"

13.5 विवाह का समाजशास्त्रीय महत्व*(Sociological Importance of Marriage)*

विवाह की उत्पत्ति से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त ही प्राचीन काल में जब मानव जंगली जानवरों की भाँति रहता था, विवाह जैसी किसी भी प्रकार की संस्था नहीं थी। विवाह नामक संस्था का बाद में विकास हुआ। मौलिक प्रश्न यह है कि विवाह की संस्था का विकास क्यों हुआ? इसके उत्तर में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि समाज की प्रत्येक संस्था के विकास के पीछे कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। विवाह संस्था का विकास भी मानव समाज के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हुआ है। समय और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न देशों में विवाह के उद्देश्यों में भिन्नता पाई जाती है। फिर भी प्रत्येक समाज में विवाह से इन उद्देश्यों में समानता है कि इससे समाज विशेष के मूल्यों, धारणाओं, रीतिरिवाजों व आदर्शों का निर्धारण होता है। संक्षेप में विवाह के समाजशास्त्रीय उद्देश्यों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) व्यवस्थित यौन सम्बन्ध विवाह का मौलिक उद्देश्य इसमें निहित है कि इसकी सहायता से यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित किया जाता है। लैंगिक व्यवस्था विवाह का मूल उद्देश्य है। यदि विवाह की उत्पत्ति पर विचार करें तो ऐसा स्पष्ट होता है कि इसकी उत्पत्ति का आधार भी यौन सम्बन्धी व्यवस्था ही है। विवाह एक ऐसी संस्था है, जो समाज में लैंगिक स्वेच्छाचारिता को समाप्त करती है। इसके साथ ही विवाह संस्था का दूसरा उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्धों को सामाजिक और कानूनी स्वीकृति प्रदान की जाती है। विवाह के द्वारा मानव को बर्बर प्रवृत्तियों से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है।

(2) प्रजाति की निरन्तरता विवाह का उद्देश्य प्रजाति की निरन्तरता को बनाये रखना है यदि विवाह संस्था इस कार्य को न करे, तो सृष्टि का क्रम ही समाप्त हो जाय।

(3) बच्चों की देखभाल विवाह के अलावा भी स्त्री पुरुष के यौन संबंधों से प्रजाति की निरन्तरता को स्थायी रखा जा सकता था। किन्तु पशुओं की भाँति यौन सम्बन्ध स्थापित करने से समाज के सामने यह समस्या पैदा होती थी कि इन बच्चों के लालन-पालन या उत्तरदायित्व कौन पुरुष ले। विवाह के बाद जो संताने

पैदा होती हैं, उनके लालन-पालन का उत्तरदायित्व निश्चित व्यक्ति पर रहता है। लालन-पालन से संबंधित इस समस्या को समाप्त करने के लिए विवाह की संस्था का जन्म हुआ।

(4) मानसिक सन्तोष विवाह ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को मनमानी सन्तानोत्पत्ति और यौन सम्बन्धों की अनुमति प्रदान करता है। विवाह व्यक्ति को लैंगिक सन्तोष प्रदान करता है। सामुदायिक लैंगिकता से व्यक्ति को सन्तोष नहीं मिलता है, अन्यथा वेश्यालय ही यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति करके व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करते हैं। आदिम युग की सामुदायिक लैंगिकता से ऊबकर ही मानव समाज में विवाह नामक संस्था का विकास हुआ।

(5) आर्थिक सहयोग आर्थिक सहयोग के कारण भी विवाह नामक संस्था का विकास हुआ। इससे व्यक्ति को पारिवारिक उत्तरदायित्वों का ज्ञान होता है। विवाह से परिवार की आर्थिक दशा भी मजबूत होती है। इसका कारण यह है कि पुरुष परिवार के बाहर का काम करता है, जबकि स्त्री परिवार के अन्दर का काम करती है। इससे परिवार की अर्थ-व्यवस्था को स्थायित्व प्राप्त होता है।

(6) सम्बन्धों को स्थायित्व विवाह के द्वारा स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को स्थायित्व प्राप्त होता है।

(7) अन्य कार्य ऊपर जिन कार्यों की विवेचना की गई है, इनके अतिरिक्त भी विवाह का समाज में महत्व निम्न कारणों से है-

(i) विवाह के द्वारा व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक सन्तोष प्राप्त होता है। इसके साथ ही विवाह के द्वारा आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक कर्तव्यों की पूर्ति की जाती है, और

(ii) विवाह समाज के मूल्यों और आदर्शों को निर्धारित करता है तथा इनकी रक्षा करता है।

(8) भारतीय दृष्टिकोण भारतीय आदर्शों के अनुसार विवाह के पश्चात् गृहस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता है। अभी तक व्यक्ति 'अपूर्ण' रहता है। इस आश्रम में आकर वह विवाह करता है, पत्नी प्राप्त करता है, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है

और जीवन की पूर्णता प्राप्त कर लेता है। इस आश्रम के मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं

(i) प्रजाति की निरन्तरता को बनाए रखना,

(ii) अपने पूर्वजों के ऋण को अदा करना, और

(iii) आने वाली सन्तति को सभ्यता का हस्तान्तरण करना।

संक्षेप में हिन्दुओं में विवाह का जो समाजशास्त्रीय महत्व है, उसे निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) धर्म का पालन करना,

(ii) पुत्र प्राप्त करना, तथा

(iii) यौन सम्बन्ध स्थापित करना।

13.6 विवाह के सामान्य स्वरूप *(General Forms of Marriage)*

विवाह ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसका अस्तित्व सभी समाजों में समान रूप से पाया जाता है। सामान्यतया विवाह के जो सामान्य स्वरूप है, उन्हें आगे तालिका में दिखाया जा सकता है -

विवाह के इन स्वरूपों की संक्षिप्त विवेचना निम्नलिखित है -

[a] एक विवाह-एक विवाह के संबंध में पिडिंगटन ने कहा है "एक विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें कोई भी व्यक्ति एक समय में एक स्त्री से अधिक के साथ विवाह नहीं कर सकता।" यह एक पैसा वैवाहिक संबंध है जिसमें एक स्त्री अथवा एक पुरुष केवल एक पुरुष अथवा स्त्री से ही विवाह ह करता है। सभी सभ्य समाजों में इस प्रकार की विवाह स्वीकृति है। यह विवाह निम्न रूपों से भिन्न-भिन्न समाजों में प्रचलित है-

(1) जोड़ा विवाह विवाह के इस स्वरूप के लिए बातें जानना आवश्यक है। पहली, यह कि इस प्रकार का विवाह स्थायी संबंधों पर आधारित होता है और दूसरी, यह कि इसमें पति और पत्नी की स्थिति समान होती है।

(2) मोनोजिनी यह भी एक विवाह का ही स्वरूप है जिसमें एक स्त्री तथा एक पुरुष परस्पर वैवाहिक संबंध स्थापित करते है। इस प्रकार के विवाह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें यौन-संबंधों की स्वतंत्रता होती है। मित्र या दासियों के रूप में पति अन्य स्वियों से भी यौन संबंध स्थापित कर सकता है।

(3) अस्थायी एक विवाह विवाह का यह रूप संबंधों की स्थिरता पर आधारित है, वैसे इसमें भी एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करता है। इस प्रकार के विवाह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्त्री समूह या परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी यौन संबंध स्थायी रूप या अस्थायी रूप से कर सकती है।

[b] बहुविवाह-बलसारा ने बहुविवाह को इस प्रकार परिभाषित किया है "विवाह का वह प्रकार जिसमें सदस्यों की बहुलता होती है, बहुविवाह कहलाता है।" बलसारा की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि इस विवाह में दो विषम लिंगियों की संख्या परस्पर एक से अधिक पुरुषों से और एक पुरुष, दो या अधिक स्त्रियों से यदि वैवाहिक संबंध स्थापित करे तो इसे बहुविवाह कहा जाता है। बहुविवाह के निम्न स्वरूप है -

(1) द्विपत्नी विवाह- जब पुरुष एक ही समय में दो स्त्रियों से विवाह करता है तो द्विपत्नी विवाह कहा जाता है। बहुधा व्यक्ति अपनी पत्नी की बहनों से विवाह करता है। इस प्रकार का विवाह या तो पत्नी की शारीरिक या मानसिकहीनता के कारण किया जाता है अथवा उसकी निःसंतानता के कारण। भारतीय शास्त्रों में भी इस प्रकार के विवाह की अनुमति है।

(2) बहुपत्नी-विवाह बहुपत्नी विवाह का यह वह रूप है जहाँ एक पुरुष तीन या तीन से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करता है। यह हर एक स्थान पर विवाह का पति सामान्य रूप है। जहाँ तक हम जानते हैं विवाह का यह सार्वभौमिक रूप नहीं है परंतु शक्तिशालियों और धनिकों का विशेषाधिकार है। भारत के राजा-महाराजे और नवाब इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। मुसलमानों में यह अत्यधिक प्रचलित है। अफ्रीका के राजघरानों, चीन और युगान्डा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं।

(3) बहुपति विवाह- बहुपति विवाह वह विवाह है जिसमें एक पत्नी के एक ही समय में एक से अधिक पति हों। इसके दो प्रकार हैं प्रथम भ्राता संबंधी बहुपति विवाह (Fraternal polyandry), जिसके अंतर्गत सब पति भाई-भाई होते हैं तथा द्वितीय, अभ्राता संबंधी बहुपति विवाह (Non Fraternal polyandry) जिसमें पतियों का भाई-भाई होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार के विवाह देहरादून जिले के जौनसर-बाबर (Jaunser-Bawar) परगना तथा टिहरी राज्य के आस-पास रवाई (Rawai) एवं जौनपुर परगनों में प्रचलित है। यह प्रथा खासा (Khasas) तथा लोगों में पाई जाती है। मालाबार की इरावन (Iravan) तथा कम्माला (Kammala) तथा नीलगिरि की टोडा जाति में यह प्रथा प्रचलित है। द्रुपद पुत्री द्रोपदी इसका उदाहरण है।

[c] रक्त संबंधी विवाह-विवाह के इस स्वरूप का आधार रक्त संबंध है। इसका मुख्य उद्देश्य रक्त की शुद्धता है। इसके निम्न रूप हैं -

(1) देवर-भाभी विवाह- यह रक्त संबंधी विवाह का वह रूप है जिसमें पत्नी अपने पति की मृत्यु या अनुपस्थिति में अपने पति के भाई से विवाह करती है। इसके भी दो रूप हैं प्रथम, वह जिसमें पति के छोटे भ्राता से विवाह करती हैं, उसे कनिष्ठ देवर-विवाह (Junior Levirate Marriage) कहते हैं। द्वितीय ज्येष्ठ देवर विवाह (Senior Levirate Marriage) है जिसमें पति के ज्येष्ठ भ्राता के साथ विवाह किया जाता है। इस प्रकार के विवाह आज भी आदिम समाजों में मान्यता प्राप्त किये हुये हैं।

(2) साली विवाह- रक्त-संबंधी विवाह का दूसरा रूप वह है जिसमें एक पुरुष अपनी पत्नी की जीवित अथवा मृतक अवस्था में अपनी ही सालियों से विवाह कर लेता हैं। इस विवाह के भी दो रूप है। पहला रूप वह है जिसमें एक व्यक्ति अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ही उसकी छोटी बहन से विवाह करता है इसे सीमित- साली विवाह (Restricted Sororate Marriage) कहते हैं। यह रूप भारत के ग्रामीण तथा अन्य समाजों में प्रचलित है। दूसरा रूप समकालीन साली विवाह (Simultaneous Sororate Marriage) का है। यह भगनी विवाह की

अवस्था है जिसमें पत्नी के जीवित रहते ही खुले या गुप्त रूप से उसकी छोटी बहनें पत्नियाँ बन जाती है।

(3) समूह विवाह यह वह विवाह है जिसके अनुसार पुरुषों का एक समूह स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है। प्रत्येक पुरुष स्वी से यौन-संबंध स्थापित कर सकता है। अधिकांशतः एक भाई समूहों की बहनों से विवाह करता है। तिब्बत, ऑस्ट्रेलिया, श्रीलंका, भूटान तथा भारत की टोडा जाति में इस प्रकार का विवाह होता है। यह बहु-विवाह का ही रूप है।

वर्तमान परिवेश में वैवाहिक संस्थान में बदलाव

आज के बदलते परिवेश में वैवाहिक संस्थान में आश्चर्यजनक बदलाव आ रहे हैं। इसके संरचनात्मक तत्वों में बदलाव आ रहे हैं। यानि विवाह के जितने प्रचलित तरीकों को हम पाते हैं उनके संपूर्ण स्वरूप में परिवर्तन आ रहे है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव आज इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार माने जा सकते हैं। विवाह के प्रचलित तरीकों में भी बदलाव आ रहा है। आज के नवयुवक-युवतियाँ अब अपने जीवन साथी का चुनाव खुद करने में विश्वास रखते हैं। विवाह पूर्व रोमांस, प्यार आदि की बातें अब आम हो गयी है, जो कि हमारे पूर्वज सोच भी नहीं सकते थे।

आधुनिकता, शिक्षा का प्रसार, उच्च तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर नौकरी करना एवं महानगरों का जीवन विवाह के परम्परागत ढाँचे में आमूल परिवर्तन ला रहा है। अब तो बात यहाँ तक पहुँच गयी है कि बहुत सारे जोड़े अब बिना विवाह के बंधन में बंधे ही साथ-साथ जीवन-यापन करते हैं एवं संपूर्ण वैवाहिक जीवन का आनंद उठाते है। विवाह पूर्व यौन संबंध कायम कर लेना, पुरुष मित्रों के साथ रहना एवं तमाम वर्जनाओं को तोड़ देना आज की आधुनिक स्वियों के लिए अब आम बातें हो गयी है। पाश्चात्य संस्कृति में तो यह सब हम पाते ही है अब भारतीय संस्कृति में भी इसका तीव्र आगमन हो गया है। अधिक उम्र में शादी करना, ऐसे व्यक्तियों के साथ शादी करना जो सामाजिक सुरक्षा अधिक सुगमता पूर्वक प्रदान कर सकते हैं एवं आधुनिक भोग-विलास की सभी वस्तुएँ उपलब्ध करा सकते हैं आम बातें हो गयी हैं। यहाँ तक कि अप्रवासी भारतीय परिवार जो

विश्व के कोने- कोने में फैले हुए हैं उनमें जाति बंधन, उम्र बंधन अब मानों बीता दुःस्वप्न सा हो गया है। ये सारी बातें वैवाहिक संस्थान में परिवर्तन की ओर इंगित करते है।
6

आधुनिक युग में दूरदर्शन, बढ़ते हुए संचार माध्यमों एवं समाचार पत्रों के प्रभाव के कारण आज की युवा पीढ़ी पुरानी वैवाहिक परम्पराओं को तोड़कर इस संस्था में आमूल परिवर्तन ला रही है। आज इसका स्वरूप प्राचीन गाँव से निकलकर शहरों के आधुनिक पाँच सितारा होटलों में नये रूप में दिखाई पड़ता है जहाँ पंडित से लेकर नाई एवं बारात के स्वागत से लेकर सभी सुविधायें उपलब्ध रहती हैं।
यह हम परम्परागत समाज को लेते हैं तो उनमें भी अब यह बात उभरकर सामने आने लगी है कि उसके स्वरूप में परिवर्तन होना चाहिए। भारतीय ग्रामीण परिवेश में तो कुछ इसका विरोध होता भी है लेकिन परसंस्कृतिकरण के कारण जो ग्रामीण स्वरूप आज उभरकर सामने आ रहा है उनमें वैवाहिक संस्थान के बदलते स्वरूप को लगभग अपना सा लिया है।
इन बदलावों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अब परम्परागत वैवाहिक स्वरूप मात्र उन दूरदर्शन के सीरियलों की भाँति रह जायेंगे जिनमें आधुनिक पीढ़ी अपने अतीत स्वरूप को निहार सकेगी, एवं आने वाले दशक में हमें इस बात की ओर भी ध्यान देना होगा कि इस संस्था का नाम यदि रह भी जायेगा तो इसका स्वरूप कैसा होगा।

13.7 **हिन्दू विवाह**(*Hindu Marriage)*

हिन्दू विवाह (Hindu Marriage)

भारतीय समाज की मौलिक संस्थाओं में विवाह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है, कि विवाह को धार्मिक संस्कार की संज्ञा दी गई है। यह एक ऐसी संस्था है, जिसका विच्छेद संभव नहीं है। केवल इतना ही नहीं विवाह को सांत जन्म जन्मान्तरों का अटूट बंधन भी माना गया है। इस कारण भारत में विवाह को मौलिक सामाजिक संस्था माना गया है। भारत में विवाह संस्था को हिन्दू विवाह के नाम से भी जाना जाता है।

विवाह एक सामाजिक संस्था है। विभिन्न देशों और कालों में विवाह की इस संस्था के स्वरूप में भिन्नता रही है। इस भिन्नता का मूल कारण उस देश का वातावरण और परिस्थितियाँ होती है। एक देश का वातावरण दूसरे से भिन्न रहता है, इसलिए विवाह की संस्था में भिन्नता का होना भी स्वाभाविक है। चूंकि भारतवर्ष की परिस्थितियाँ अन्य देशों की तुलना में भिन्न थीं, इसलिये यहाँ विवाह की संस्था का एक अलग ही स्वरूप विकसित हुआ। भारत में वैदिक युग में विवाह की जिस संस्था का विकास हुआ तथा कालान्तर में उसकी जो विविध व्याख्याएं दी गई हैं, उसे ही हिन्दू विवाह के नाम से जाना जाता है।

हिन्दू विवाह की परिभाषा
(Definition of Hindu Marriage)

विभिन्न विद्वानों ने हिन्दू विवाह का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु बहुत ही कम ऐसे विद्वान है जिन्होंने हिन्दू विवाह की परिभाषा दी हो। फिर भी कुछ विद्वानों ने हिन्दू विवाह को समझाने का प्रयास किया है। यहाँ इन्हीं विद्वानों के विचारों को रखने का प्रयास किया जायेगा-

(1) आर.एन. शर्मा - "हिन्दू विवाह की परिभाषा एक धार्मिक संस्कार के रुप में की जा सकती है जिनमें धर्म, सन्तानोत्पत्ति तथा रति के भौतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उद्देश्यों से एक स्वी और एक पुरुष स्थायी सम्बन्ध में बंध जाते हैं।"

(2) कापड़िया - "विवाह इसलिए प्राथमिक रुप से कर्त्तव्यों के पालन के लिये किया जाता था, विवाह का प्रमुख उद्देश्य धर्म था।"2

"हिन्दू विवाह स्त्री और पुरुष के बीच धर्म के पालन की दृष्टि से वह संस्कार है, जो जन्म-जन्मान्तर अविच्छिन्न सम्बन्धों पर आधारित है।"

हिन्दू विवाह की विशेषताएं (Characteristics of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह की विशेषताएँ निम्न है-

(1) धार्मिक संस्कार हिन्दू विवाह के दो मूल आधार है-

(अ) हिन्दू विवाह का सम्बन्ध धर्म और पवित्रता से है, तथा

(आ) हिन्दू जीवन में प्रचलित अनेक संस्कारों में विवाह भी एक प्रकार का संस्कार है।

इन दोनों तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दू विवाह स्वी और पुरुषों में समझौता न होकर पवित्र संस्कार है। हिन्दू विवाह का उद्देश्य जीवन को परिष्क्रत करके पूर्णता की ओर ले जाना होता है। हिन्दू विवाह इसलिए धार्मिक संस्कार है कि इसका सम्पादन अनेक क्रियाओं द्वारा होता है जिनमें हवन, पाणिग्रहण, पवित्र अग्नि को साक्षी तथा सप्तपदी आदि प्रमुख हैं। जब तक ये क्रियाएं पूर्ण नहीं होती है, हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह पूर्ण नहीं होता है। हिन्दू विवाह के कुछ ऐसे निम्न कारक रक हैं जिनके आधार पर उसे धार्मिक संस्कार कहा जा सकता है-

(a) हिन्दू विवाह को धार्मिक संस्कार कहने का पहला कारण यह है कि इसका प्राथमिक उद्देश्य धार्मिक कर्तव्यों का पालन है। इन धार्मिक कर्तव्यों में यज्ञ का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यज्ञ के साथ बैठने का अधिकार सिर्फ पत्नि को ही दिया गया है और "सहधर्मिणी" कह कर सम्बोधित किया गया है।

(b) हिन्दू विवाह को धार्मिक संस्कार इसलिए माना जाता है कि विवाह ईश्वरीय इच्छा का प्रतीक है। यह सम्बन्ध सिर्फ क्षणिक स्वार्थों के लिए न होकर जन्म-जन्मान्तर के लिए होता है। इसे किसी भी हालत में तोड़ा नहीं जा सकता है। इस दृष्टि से भी हिन्दू विवाह एक संस्कार है।

(c) हिन्दू विवाह को इसलिए भी धार्मिक संस्कार कहा जाता है कि इसके अंतर्गत् अनेक धार्मिक कार्यों का सम्पादन किया जाता है। जो क्रियाएं हिन्दू विवाह को धार्मिक संस्कार बनाती हैं, वे अग्रन्निखित है-

(1) यज्ञों का सम्पादन,

(2) पाणिग्रहण, और

(3) सप्तपदी आदि।

(d) मानव जीवन अनेक प्रकार के संस्कारों से परिपूर्ण है। जन्म और मृत्यु स्वयं में ही एक संस्कार माने जाते है। विवाह भी इसी प्रकार का एक धार्मिक संस्कार है।

(2) स्त्री पुरुष का समन्वय भारतवर्ष में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना की गई है। विवाह को भारतवर्ष में मात्र प्राणिशास्त्रीय आवश्यकता ही नहीं माना जाता है, अपितु इसे स्त्री और पुरुष की शरीर और आत्मा का इस प्रकार का मिलन माना जाता है, जो दोनों में एकाकार हो जाते हैं। हिन्दू विवाह इसलिए धार्मिक संस्कार है कि इसका उद्देश्य स्वी और पुरुष को आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण कर देता है जिसके परिणामस्वरूप सुदृढ़ पारिवारिक जीवन का विकास होता है।

(3) हिन्दू विवाह को मानवीय व्यक्तित्व के विकास का साधन माना गया है।

(4) हिन्दू विवाह को जन्म-जन्मान्तर का मिलन माना गया है, और

(5) हिन्दू विवाह का उद्देश्य धर्म का पालन करते हुए प्रजाति की निरन्तरता को बनाये रखना होता है।

हिन्दू विवाह के उद्देश्य
(Aims of Hindu Marriage)

हिन्दूओं में विवाह को अनिवार्य माना गया है। विवाह वह संस्कार है जिसके द्वारा धार्मिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। हिन्दूओं में विवाह निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है-

(1) धर्म विवाह का प्रथम उद्देश्य धर्म का पालन है। शतपथ ब्राहमण में लिखा है "पत्नी निश्चय ही पति की अर्धांश है, अतः जब तक पुरुष पत्नी प्राप्त नहीं करता, सन्तान उत्पन्न नहीं करता, जब तक वह पूर्ण नहीं होता है किन्तु जब वह पत्नी प्राप्त करता है, तो वह पूर्ण बन जाता है।" निम्न कारकों से भी हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार कहा जा सकता है-

(a) हिन्दू विवाह का प्रमुख उद्देश्य धर्म है, रति को अन्तक स्थान दिया गया है। प्रत्येक गृहस्थ को नित्य पाँच महायज्ञों का सम्पादन करना आवश्यक बताया गया है। ये महायज्ञ निम्न हैं-

(1) ब्रहमयज्ञ

(2) देवयज्ञ

(3) भूतयज्ञ

NOTES

(4) पितृयज्ञ और

(5) नृयज्ञ।

(b) हिन्दू विवाह धार्मिक क्रियाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है, ये धार्मिक क्रियाएं निम्नलिखित है-

(1) कन्यादान,

(2) विवाह होम,

(3) पाणिग्रहण,

(4) अग्नि परिणयन,

(5) अश्वारोहण,

(6) लाजाहोम, और

(7) सप्तपदी।

(c) हिन्दू विवाह वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ सम्पन्न होता है।

(d) अग्नि को साक्षी बनाया जाता है। वात्स्यायन ने कामसूत्र में लिखा है कि सब आचार्यों का मत है कि अग्नि के सम्मुख जो विवाह होता है, उसे तोड़ा नहीं जा सकता है।

(e) स्त्री को सहधर्मिणी अर्थात वह साथी जो धर्म के कार्यों में हाथ बंटाये कहा गया है।

(1) विवाह समझौता नहीं है बल्कि यह जन्म-जन्मान्तर का साथ होता है, अतः हिन्दू विवाह का आधार धर्म है।

(g) पत्नी के लिए जो "पतिव्रता" शब्द का प्रयोग किया गया है और जिससे सती प्रथा को बल मिला, इस कारण भी यह एक धार्मिक संस्कार है।

इन्हीं सब कृत्यों के कारण कपाडिया ने ठीक ही कहा है कि "इस प्रकार विवाह प्राथमिक रुप से कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए होता है इस प्रकार विवाह का मौलिक उद्देश्य धर्म था।"

(2) प्रजा- हिन्दू विवाह में पुत्र प्राप्त करना आवश्यक माना गया है। सन्तानोत्पत्ति के बाद ही व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, विशेषतया पुत्र की प्राप्ति। ऋगवेद में स्पष्ट लिखा है, अग्नि में सन्तानों द्वारा अमृत्व का उपभोग करूं। पाणिग्रहण के मन्त्रों में वर वधू से कहता है कि मैं उत्तम सन्तान के लिए तेरा पाणिग्रहण करता हुँ। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह का उद्देश्य सन्तान की प्राप्ति करना है।

(3) रति शास्त्रों ने विवाह का तीसरा उद्देश्य रति बताया है। उपनिषदों में लिखा है, यौन सुख की प्राप्ति सबसे बडा आनन्द है। इस आनन्द के भोग को धार्मिक कर्तव्य कहा गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि लैंगिक व्यवस्था के लिए विवाह की संस्था का जन्म हुआ है। इस दृष्टि से विवाह का यह उद्देश्य प्राणिशास्त्रीय एवं मनौवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना है। हिन्दू विवाह का उद्देश्य केवल कामवासना की तृप्ति ही नहीं है। जैसा कि दफ्तरी ने लिखा है "कामवासना की तृप्ति ही विवाह का एकमात्र उद्देश्य नहीं समझा जाता था।"

धर्म, प्रजा और रति, हिन्दू विवाह के प्रमुख उद्देश्य है। इन उद्देश्यों के अतिरिक्त भी हिन्दू विवाह के कुछ और उद्देश्य है, जिन्हे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) इससे मानव व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए एक योजना प्रस्तुत की गई थी,

(ii) हिन्दू विवाह का उद्देश्य कर्तव्यों का पालन करना भी था।

(iii) माता-पिता की सेवा, परम्पराओं, प्रथाओं आदि का पालन, परिवार के प्रति कर्तव्य और (iv) समाज के प्रति कर्तव्य, प्रजाति की सहायता से समाज की निरन्तरता को बनाए रखना।

हिन्दू विवाह के प्रकार
(Forms of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह के प्रमुख स्वरूपों के सम्बन्ध के विद्वानों के अलग-अलग विचार है। मनुस्मृति में 8 प्रकार के विवाहों का उल्लेख है। इनमें से चार प्रकार के विवाहों को प्रशस्व विवाह कहा है, जबकि बाकी चार प्रकार के विवाहों को अप्रशस्त की संज्ञा दी गई है। प्रशस्त विवाह वे हैं, जो अच्छे माने जाते हैं तथा धर्म के अनुकुल होते हैं। अप्रशस्त विवाहों को अच्छा नहीं माना जाता है। हिन्दू विवाह के प्रमुख स्वरूपों को निम्न तालिका में दिखाया जा सकता है -

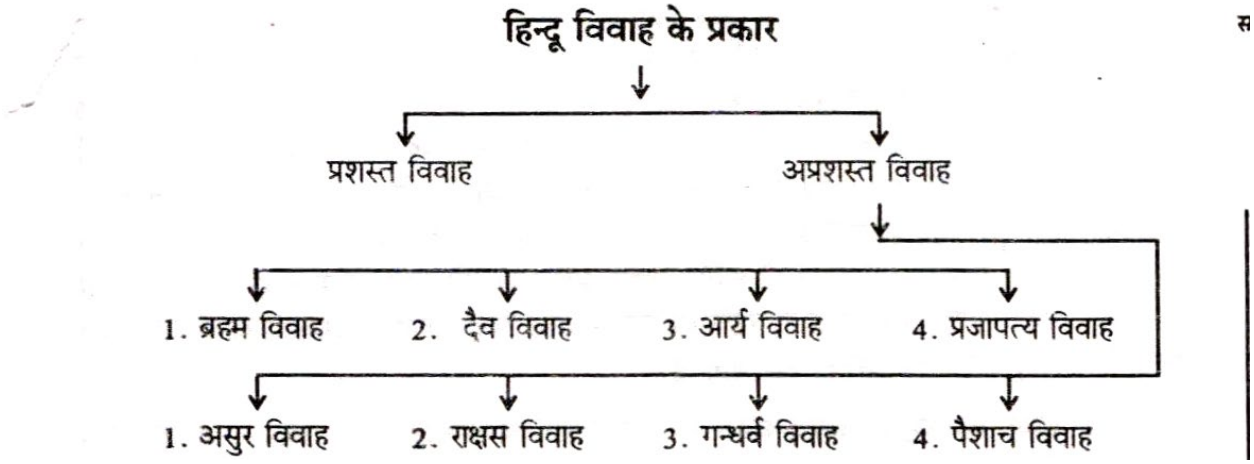

इन विवाहों का संछिप्त विवरण निम्नलिखित है-

(1) ब्रहम विवाह - इस विवाह के लिए पिता योग्य वर की खोज करता है, उसे घर पर आमंत्रित करता है, और अपनी कन्या को धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार दानस्वरूप अर्पित करता है। इसमें चार बातें मुख्य है-

(a) माता-पिता की सहर्ष और विवेकपूर्ण स्वीकृति

(b) धार्मिक संस्कारों द्वारा विवाह।

(c) योग्य वर।

(d) कन्या का सुयोग्य वर को दान (कन्यादान)

(2) दैव विवाह- इसके अन्तर्गत कन्या का दान यज्ञकर्ता को किया जाता है। प्राचीनकाल के बड़े बड़े यज्ञों में हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते थे और अगर कोई यज्ञकर्ता पसन्द आ जाय और विवाह करना चाहे तो कन्या का विवाह कर देते थे।

(3) आर्य विवाह- इस प्रकार के विवाह में बर अपने ससुर को एक गाय तथा एक बैल अथवा इनके दो जोडे देता था। यह ससुर को धार्मिक कार्यों को पूरा करने के लिए दिया जाता था। इसे कन्या-मूल्य नहीं कहा जा सकता है।

(4) प्रजापत्य विवाह यह भी ब्रहम विवाह के समान होता है। इसमें वर स्वयं कन्या से विवाह की याचना करता है तब कन्या इस शर्त पर विवाह करती है कि उसके जीते जी वह दूसरा विवाह नहीं करेगा।

(5) असुर विवाह इसके अन्तर्गत् वर-वधु के पिता या सम्बन्धियों को धन देता है। यह कन्या मूल्य जैसा ही है। जितनी सुन्दर कन्या हो उतना ही अधिक उसका मूल्य होना चाहिए। यह कन्या मूल्य नगद या वस्तु के रुप में हो सकता है।

(6) राक्षस विवाह इसे क्षत्रिय विवाह भी कहा जाता है। स्त्री को युद्ध का पुरस्कार माना जाता था। यह वह विवाह है जिसमें वधु को शक्ति के द्वारा ले जाया जाता था। इसमें लड़ाई आवश्यक है। अर्जुन-सुभद्रा, पृथ्वीराज-संयोगिता इसके उदाहरण हैं।

(7) गन्धर्व विवाह आधुनिक शब्दों में इसे प्रेम-विवाह भी कहा जाता है। इसका आधार युवक और युवती का प्रेम है।

(8) पैशाच विवाह यह अति निम्न कोटि का माना गया है। इस विवाह में स्त्री को किसी न किसी प्रकार अत्यधिक मद्यपान के नशे में, जादू या तिलस्म करके या जबर्दस्ती शक्ति के द्वारा धोखा देकर यौन-सम्बन्ध के लिए विवश किया जाता है।

हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार
(Hindu Marriage - A Religious Sacrament)

प्रो. के. एम. कपाडिया ने लिखा है कि हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है।' प्रो. कपाड़िया के उपर्युक्त कथन का मात्र इतना ही तात्पर्य है कि हिन्दू विवाह एक

वैधानिक या सामाजिक समझौता (Contract) नहीं है,जो कुछ निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता हो, अपितु ऐसा करना धर्म का आदेश है। इस आदेश का पालन कुछ निश्चित धार्मिक अनुष्ठानों और संस्कारों के माध्यम से किया जाता है। ये धार्मिक अनुष्ठान और संस्कार महान मानवता के परिप्रेक्ष्य में विश्व कल्याण के लिए किये जाते हैं। मानव के शुद्धिकरण और उसके सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध विवाह के मौलिक आदर्शों में है। डॉ सक्सेना ने इसीलिए लिखा है- संस्कार शब्द का तात्पर्य ऐसे अनुष्ठान से है, जिसके द्वारा मानव की क्षमताओ का उद्घाटन होता है, जो मानव को सामाजिक जीवन के योग्य बनाने वाले गुण प्रदान करता है और जिसके द्वारा व्यक्ति को एक विशेष सामाजिक स्तर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार मानव जीवन की क्रियाओं को धार्मिक आधार प्रदान कर उसे ऊपर उठाना हिन्दू विवाह का प्रमुख उद्देश्य है। धार्मिक आदेशों की सहायता से व्यक्ति का निर्माण करना हिन्दू विवाह की आधारशिला है। निम्नांकित दृष्टिकोणों से हिन्दू विवाह को संस्कार कहा जाता है-

(1) विवाह का प्रमुख आधार-धर्म हिन्दुओं में धर्म का सम्पादन करना विवाह का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। हिन्दू विवाह के निम्न तीन प्रमुख उद्देश्य माने गये हैं-

(a) धर्म का पालन करना,

(b) संतान उत्पन्न करना, और

(c) यौन सुख प्रदान करना।

भारतीय जीवन दर्शन में मोक्ष की प्राप्ति मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक है। इस दृष्टि से व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। गृहस्थ आश्रम परिवार के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों का आश्रम है। इस आश्रम में प्रवेश कर व्यक्ति निम्न पाँच प्रकार के यज्ञों या कर्तव्यों का पालन करता है।

(1) ब्रहमयज्ञ

(2) देवयज्ञ

(3) भूतयज्ञ
(4) पितृयज्ञ, और
(5) नृयज्ञ।

इन यज्ञों का सम्पादन करके व्यक्ति तीन ऋणों (देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण) से मुक्ति प्राप्त करता है। जन्म से लेकर र मृत्यु मृत्यु तक व्यक्ति समाज और राष्ट्र के प्रति इन ऋणों का सम्पादन करके मुक्ति प्राप्त करता है। मानव जीवन के जितने भी संस्कार है, वे पत्नी के अभाव में सम्पादित नहीं किये जाते हैं। विवाह से पत्नी प्राप्त होती है और उस प्रकार व्यक्ति पूर्ण बन जाता है। निम्नलिखित कारण हिन्दू विवाह के धार्मिक आधार को प्रमाणित करते हैं -

(a) धार्मिक विधियों द्वारा विवाह सम्पादन
(b) पवित्र अग्नि को साक्षी बनाकर विवाह का सम्पादन,
(c) कन्यादान की अवधारणा,
(d) सप्तपदी का महत्व,
(e) धार्मिक मन्त्रों का उच्चारण आदि।

(2) धार्मिक अनुष्ठान हिन्दू विवाह को इसलिए भी संस्कार कहा जाता है कि इसका सम्पादन धार्मिक विधियों द्वारा किया जाता है। जीवन में विवाह को महान दायित्व माना गया है। पी. वी. काणे ने लिखा है कि हिन्दू विवाह में कुल 39 अनुष्ठानों का सम्पादन किया जाता है।" यहाँ हम कुछ प्रमुख धार्मिक अनुष्ठानों की चर्चा करेंगे। हिन्दू विवाह में प्रमुख रूप से निम्नलिखित धार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं-

(a) वाग्दान हिन्दू विवाह का यह पहला धार्मिक अनुष्ठान है। वाग्दान का अर्थ है वरदान। विवाह के लिए दोनों पक्षों की सहमति ही वाग्दान है। एक पक्ष की ओर से विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष की ओर जाता था और कन्या पक्ष को इसके लिए अपनी स्वीकृति देनी पड़ती थी। वर्तमान युग में यह प्रस्ताव कन्या पक्ष की ओर से जाता है और वर पक्ष उसे स्वीकार करता है।

(b) कन्यादान हिन्दू विवाह में कन्यादान अधिक महत्वपूर्ण, पवित्र तथा धार्मिक संस्कार है। कन्या के माता-पिता, वधू को दान-स्वरूप वर को इस आशय से समर्पित करते है कि वह धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति में कभी भी अपनी पत्नी का परित्याग नहीं करेगा। वह मानव समाज का आदर्श है जिसकी सहायता से पति समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष पत्नि जीवन पर्यन्त साथ साथ रहते हैं।

(c) अग्नि स्थापन कन्यादान के पश्चात वर वधू के सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए साक्षी के बतौर अग्नि का प्रज्जवलन किया जाता है। वर और वधु सुख और शक्ति की प्राप्ति के लिए अग्नि को आहुतियाँ देते हैं। अग्नि को साक्षी बनाकर वे कहते हैं "हम दोनों विवाह करें, प्रजा को उत्पन्न करें, हमारे अनेक पुत्र हों, वे दीर्घायु हों, तेजवान और मनस्वी हो।"

(d) पाणिग्रहण पाणिग्रहण का अर्थ है "एक दूसरे के हाथ को स्वीकार करना।" वर और वधू दोनों ही एक दूसरे के हाथों को पकड़कर धार्मिक मन्त्रों का उच्चारण करते हैं तथा आजीवन एक दूसरे का साथ निभाने का वायदा करते हैं।

(c) अश्मरोहण- इस धार्मिक संस्कार में भाई बहन को पत्थर (पत्थर की सिल) पर पैर रखवाता है। इसके पश्चात वर-वधू से यह प्रतिज्ञा करवाता है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी धर्म का पालन करेगी और इससे विचलित नहीं होगी।

(f) लजा होम इसे "लावाहोम" के नाम से भी जाना जाता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है - लावा (Fried Grain) तथा होम। इस संस्कार में वर तथा वधू पूर्व की ओर मुंह करके खड़े हो जाते हैं। पत्नी हाथ में लावा (भुने हुए चावल) लेकर अग्नि में डालती है तथा अपने पति के सुखद और दीर्घ जीवन की कामना करती है।

(g) सप्तपदी- सप्तपदी अत्यधिक महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान है। इस संस्कार का सम्पादन वर और वधू उत्तर दिशा की ओर सात पद चलकर सम्पादित करते हैं। ऐसा करते समय विभिन्न धार्मिक मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है। सप्तपदी में सात पद मानव जीवन की सात मूलभूत आवश्यकताओं से प्रेरित हैं। ये सात पद निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सम्पादित किए जाते हैं -

1. प्रथम पग अन्न की कामना के लिए
2. द्वितीय पग शारीरिक और मानसिक बल की कामना के लिए,
3. तृतीय पग धन की कामना के लिए,
4. चतुर्थ पग सुख की कामना के लिए,
5. पाँचवाँ पग सन्तान की कामना के लिए,
6. छठवाँ पग - प्राकृतिक सहायता के लिए, और
7. सातवाँ पग पारस्परिक सखा-भाव की भावना के लिए।

(3) पवित्रता की अवधारणा भारतीय संस्कृति में पवित्रता की जिस अवधारणा का प्रतिपादन किया गया है, वह भी हिन्दू विवाह को धार्मिक संस्कार की सीमा में बाँधती है। इस जगत की रचना पुरुष और प्रकृति के संयोग से हुई है। पुरुष और प्रकृति अनादि है। पुरुष के संसर्ग से प्रकृति अखिल गुणों को उत्पन्न करती है।

प्रकृति पुरुषं चैव विहम्नादी उभावति।
विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृति सम्भवान। (गीता 13/19)

इस प्रकार प्रकृति शक्ति है, पुरुष शक्तिमान है। एक दूसरे के बिना ये प्रभावहीन है, अस्तित्वहीन हैं। यही नर और नारी के सम्बन्ध का मूल तत्व है। पतिव्रता नारी का त्यागमय आदर्श है। यही कारण है कि भारतीय जीवन दर्शन में पतिव्रता धर्म को महान धर्म की संज्ञा दी गई। भारतीय ग्रंथों में लिखा है कि "पतिव्रता का चरण जहाँ- जहाँ भूमि को स्पर्श करता है, वह स्थान तीर्थभूमि के सदृश्य मान्य है। यहाँ भूमि पर कोई मान्य नहीं रहता, वह स्थान परम पावन हो जाता है।

पतिव्रतायाश्चरणों यत्र तत्र स्पृशेद भुवम।
सा तीर्थभूमिर्मान्येति नात्र भारोऽस्ति पावनः ॥

(4) पारस्परिक पूरक पति और पत्नी एक दूसरे के पूरक है। हिन्दू विवाह स्त्री और पुरुष की इसी अपूर्णता को पूरा करता है। जैसे एक पहिये का रथ नहीं चल सकता और जैसे एक पंख का पक्षी नहीं उड़ सकता, फड़फड़ाकर ही रह जाता है वैसे ही पत्नी के बिना पुरुष कोई भी कार्य नहीं कर सकता।

एकचक्रों रतो यद्देकपक्षो यथा खगः।

अभार्योऽपि नरस्तदयोग्यः सर्व सर्वकर्मसु ॥

(5) अविच्छिन्न प्रक्रति हिन्दू विवाह समझौता न होकर धार्मिक संस्कार है, जो कभी टूट नहीं सकता है। इसलिए हिन्दू विवाह को जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों की संज्ञा दी जाती है। विवाह पारस्परिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। इससे दोनों पक्षों के अधिकार और कर्तव्य निश्चित होते है। ऐसी स्थिति में हिन्दू विवाहों के टूटने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है। इसीलिए कहा गया है कि

वर कन्या विवाह के द्वारा दो दिल हो जाते हैं एक। धर्म, अर्थ, काम तीनों को करते सदा सदा सविवेक ॥ सदा सर्वदा रक्षा करते शुद्ध प्रेम की पावन टेक। एक दूसरे का मंगल सुख साधन ही करते प्रत्येक ॥

हिन्दू विवाह संस्कार है। इस कथन की पूर्ति के लिए ऊपर उद्धरण दिए गये हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह संस्कार है। अनेक भारतीय विद्वानों ने हिन्दू विवाह को संस्कार माना है। इन विद्वानों के विचार निम्न हैं-

(1) स्वामी विवेकानन्द "विवाह इन्द्रिय सुख के निमित्त नहीं किन्तु मानव वंश को आगे चलाने के लिए है।"

(2) डॉ. राधाकृष्णन - "विवाह एक ऐसी भागीदारी है जिसमें धैर्य की आवश्यकता होती है। यह एक आकस्मिक प्रयोग नहीं, वरन एक गम्भीर अनुभूति है, जो सुकुमार और भंगुर होते हुए भी भक्ति एवं आदान- प्रदान की भावना से ओत-प्रोत है। "

(3) श्री हरिभाऊ उपाध्याय "विवाह दो शरीरों को मिलाकर एकता के सूत्र में जोड़ने का पवित्र संस्कार है।"

(4) पी. एन. प्रभु "इस प्रकार हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार है तथा इस विवाह सम्बन्ध में जुड़ने वाले पक्षों का सम्बन्ध संस्कार रूपी है, न कि समझौता की प्रकृति का।" उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है।

हिन्दू विवाह की समस्याएँ
(The Problems of Hindu Marriage)

भारतीय परिस्थितियों में सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर हिन्दू विवाह की संस्था का निर्माण किया गया था। प्रत्येक संस्था का जन्म और विकास सामाजिक परिस्थितियों में होता है। हिन्दू विवाह भी तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम था। सामाजिक जीवन और परिस्थितियाँ परिवर्तनशील होती है। जब किसी भी समाज की परिस्थितियों में परिवर्तन होता है, तो उस समाज की संस्थाएँ अपने आप परिवर्तित होने लगती है। हिन्दू विवाह भी सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन में प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है। सामाजिक परिस्थितियों में जो परिवर्तन हुए उनका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू विवाह को अनेक सामाजिक समस्याओं ने धर दबोचा है।

हिन्दू विवाह का जो परम्परात्मक स्वरूप था, वह अत्यन्त ही स्पष्ट तथा सरल था। धीरे-धीरे यह व्यवस्था रूढ़िगत होती गई और इसमें अनेक कर्मकाण्डों का समावेश हो गया। हिन्दू समाज में इन विषाक्त कुरीतियों को पवित्रता का जामा पहनाकर ग्रहण किया जाता रहा। यह प्रक्रिया अनेक शताब्दियों तक चलती रही। कालान्तर में इन्हीं रूढ़ियों और कर्मकाण्डों को ईश्वरीय आदेश का मुलम्मा चढ़ा दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू विवाह में अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म हुआ, जो घुन की भाँति हिन्दू समाज को खोखला करती गई। यहाँ हिन्दू समाज की इन्हीं समस्याओं की विवेचना की जाएगी।

13.8 **बाल-विवाह** *Child Marriage*

भारत एक ऐसा देश है जहाँ काफी मात्रा में बाल-विवाह होते हैं। इसका कारण यह है हमारा देश अशिक्षित था और इस अशिक्षा के कारण बाल-विवाहों को प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही हमारे धर्म-ग्रन्थों में भी बाल- विवाह का समर्थन किया। धर्म-ग्रन्थों में तो बाल-विवाहों को गौरव की बात मानी गई है और उस पिता को सौभाग्यशाली कहा गया है जो रजोदर्शन से पूर्व ही अपनी कन्या का विवाह कर देता है।

बाल-विवाह के सम्बन्ध में सबसे मजेदार बात यह है कि भारतवर्ष में गर्भ में ही बच्चों के विवाह सम्पन्न हो जाते थे। दो गर्भवती माताएँ ऐसी प्रतिज्ञा करती थी कि यदि उनमें से एक के पुत्र और दूसरी को पुत्री का जन्म होगा तो दोनों का विवाह कर दिया जाएगा। इस प्रकार के गर्भ-विवाह आज भी पाये जाते हैं किन्तु सभ्यता के विकास के साथ ये विवाह समाप्त होते जा रहे है।

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहाँ अत्यन्त ही आदिकाल से प्रथाओं, परम्पराओं और रूढ़ियों का आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। आज भी जब कि विश्व धुआँधार प्रगति कर चुका है, भारतवर्ष परम्पराओं से चिपका हुआ है। हम उन तथ्यों पर अधिक ध्यान देते हैं, जो हमारे पूर्वजों और धर्म के द्वारा बताए गए है।

बाल-विवाह की अवधारणा
(The Concept of Child Marriage)

मौलिक प्रश्न यह पैदा होता है कि बाल-विवाह किसे कहा जाये? किस आयु के लड़की और लड़के के विवाह को बाल-विवाह कहा जा सकता है। वास्तव में यह प्रश्न अत्यन्त ही उलझा हुआ है। इसका कारण यह है कि विभिन्न धर्मवेत्ताओं ने इस संबंध में अपनी अलग-अलग राय दी है। भारतीय धर्मग्रन्थों में कन्या और वर के विवाह के सम्बन्ध में जो आयु दी गई है वह निम्नलिखित है-

(1) वात्स्यायन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कामसूत्र' में लिखा है कि "वर से वधू कम से कम तीन वर्ष छोटी होनी चाहिये।"

(2) इसी प्रकार के विचार महाभारत में भी व्यक्त किए गए हैं। भीष्म-युधिष्ठिर से वर और कन्या के विवाह की आयु के बारे में कहते हैं कि "21 वर्ष के पुरुष को 17 वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए।"

(3) भारतवर्ष के प्रमुख कानूनवेत्ता मनु ने भी विवाह की आयु के सम्बन्ध में अपने विचार प्रतिपादित किए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि "30 वर्ष के पुरुष को 21 वर्ष की कन्या तथा 24 वर्ष के पुरुष को 18 वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए"। (4) गृह्यसूत्रों में विवाह के समय कन्या की आयु का स्पष्ट उल्लेख तो

नहीं किया गया है, किन्तु ऐसा लिखा गया है कि विवाह के समय कन्या को 'नग्निका' होनी चाहिये।

नग्निका का अर्थ (The Meaning of Nagnika)- गृहासूत्रों में विवाह के योग्य कन्या की आयु निर्धारित नहीं की गई है, अपितु उसे 'नग्निका' कहा गया है। यहाँ सवाल यह है कि किस कन्या को नग्निका कहा जाये ? कौन-सी आयु वाली कन्या नग्निका मानी जाएगी? इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। महाभारत में नग्निका की आयु 16 वर्ष मानी गई है। इसी तथ्य की पुष्टि गृहासूत्रों में भी होती है। गृह्यसूत्रों में ऐसा लिखा है कि विवाह के साथ कन्या को ब्रह्मचारिणी होनी चाहिए। यदि बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि कन्या के विवाह 16 वर्ष की आयु में होते थे। जातकों की कथाओं में इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

ब्रह्मपुराण में बाल-विवाह का समर्थन करते हुए लिखा गया है कि 4 वर्ष की आयु के बाद कभी भी कन्या का विवाह किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि वैश्वानस सूत्रों का अवलोकन किया जाय तो उसमें 8 वर्ष की कन्या को ही गौरी बतलाकर विवाह विधान का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार अनेक स्मृतिकारों ने लिखा है कि कन्या का विवाह उसके रजोदर्शन के पूर्व ही कर देना चाहिए। जो पिता या संरक्षक अपनी कन्या का रजोदर्शन देखता है वह पाप का भागी होता है। याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि जो संरक्षक अपनी कन्या का विवाह रजोदर्शन के पहले नहीं कर देता है उसे भ्रूण हत्या का पाप लगता है।

ऊपर जो उदाहरण दिए गए हैं, उनसे ऐसा स्पष्ट नहीं होता है कि भारतवर्ष में बाल-विवाहों की आयु क्या थी, किन्तु ऐसा निश्चित प्रतीत होता है कि बाल-विवाहों का प्रचलन था। समाज में प्रत्येक युवक और युवती को कौमार्य प्राप्त करने पर विवाह की अनुमति थी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर नियमों का भी निर्माण किया गया था। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ शुश्रुत में कौमार्य की विवेचना इस प्रकार की गई है "पुरुष की सम्पूर्ण शारीरिक शक्तियों का विकास 25 वर्ष की अवस्था में तथा स्वी की 16 वर्ष की अवस्था में होता है, यद्यपि प्रौढ़ता के चिह्न 12 वर्ष की अवस्था से ही स्पष्ट होने लगते हैं।

इससे स्पष्ट है कि बाल-विवाहों की आयु के सम्बन्ध से भले ही कितने विवाद और मतमतान्तर हों, इतना निश्चित है कि समाज में बाल-विवाहों का प्रचलन था। आज भी भारतवर्ष में बाल-विवाहों की प्रथा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

भारत में बाल-विवाह
(Child Marriage in India)

भारतवर्ष की जनगणना रिपोर्ट के आधार पर बाल-विवाहों के सम्बन्ध में जो तथ्य सामने आए हैं उनसे स्पष्ट होता है कि यहाँ बाल-विवाहों का प्रचलन अत्यधिक है।

1961 में जो जनगणना हुई थी, उससे ऐसा स्पष्ट होता है कि 95.2 प्रतिशत पुरुषों का और 99.7 प्रतिशत स्त्रियों का विवाह 24 वर्ष की अवस्था के पूर्व ही हो गया था। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष में बाल- विवाह की प्रथा समाज में गहराई से जमी हुई है।

बाल-विवाह के उद्‌भव और विकास के कारण
(Causes of Origin and Development of Child Marriage)

भारतवर्ष में बाल-विवाहों के जन्म और विकास के जो प्रमुख कारण हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) मनोवैज्ञानिक कारण- यदि बाल-विवाह के कारणों का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया जाये, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह परिवार के आधार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। कम आयु के युवक और युवतियों का विवाह कर देने से उनमें शीघ्र ही सामंजस्य स्थापित हो जाता है। इसका प्रमुख कारण है आयु की कोमलता। डॉ. राधाकृष्णन् ने इसी प्रकार के विचारों का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि 'परस्पर अनुकूलता एक क्रिया है, कोई आकस्मिक घटना नहीं। जो लड़के और लड़की निकट आते हैं उनमें एक दूसरे की ओर बढ़ने और आपस में

सामंजस्य स्थापित करने की एक स्वाभाविक प्रकृति है।"। इस प्रकार बाल-विवाह से युवक और युवतियों के विचारों में परिपक्वता आती है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके जीवन की एक निश्चित दिशा निर्धारित हो जाती है।

(2) नैतिक विचार- भारतवर्ष में नैतिकता को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। विवाह का जो आधार भी है उसमें 'धर्म' को प्रमुख स्थान दिया गया है। विवाह इसलिए किये जाते हैं कि ऐसा करना धर्म है, संस्कार है। हिन्दू विवाह में यौन सम्बन्धों (Sexual Relations) की पवित्रता को अत्यधिक महत्व दिया गया है। विवाह से पहले कन्या का कौमार्य भंग नहीं होना चाहिये। यदि किसी कन्या का कौमार्य विवाह से पहले भंग हो जाता है, तो उसे पतित की संज्ञा दी गई है। समाज उसे तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। यदि कोई कन्या विवाह से पहले गर्भवती हो जाती है, तो उसका सारा परिवार और समाज कलंकित हो जाता है। उसके द्वारा जिस सन्तान को जन्म दिया जाता है, उसे समाज 'अवैध' कहता है। काम प्रवृत्ति को प्राकृतिक भूख माना गया है और इस भूख को शान्त करने के लिए तर्कसम्मत आधार बाल-विवाह को बनाया गया था।

(3) वैवाहिक प्रथाएँ- बाल-विवाहों के प्रचलन में भारत की वैवाहिक प्रथाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इन प्रथाओं में गौना प्रथा (Gauna System) का महत्व सबसे अधिक है। इस प्रथा के अनुसार विवाह के उपरान्त कन्या को ससुराल नहीं भेजा जाता है और अपने पिता के यहाँ ही रहती है। जब उसका गौना होता है, तो उसे अपने पति के घर जाना होता है। इस प्रथा के कारण भी भारत से बाल-विवाहों का प्रचलन हुआ।

(4) आर्थिक कारक भारतवर्ष में बाल-विवाहों के प्रचलन में आर्थिक कारकों का भी कम महत्व नहीं है। भारतवर्ष में निम्न आर्थिक कारक बाल-विवाहों को प्रोत्साहित करते हैः-

(i) दहेज प्रथा और कन्या मूल्य,

(ii) जाति भोज, तथा

(iii) पूजा, आदि में किया जाने वाला खर्च।

इसका कारण यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी कन्या को बोझ समझता है और ऐसा प्रयास करता समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष है कि इस बोझ से उसे शीघ्र ही मुक्ति मिल जाये। इसलिये माता-पिता हमेशा इस चेष्टा में रहते हैं कि शीघ्र से शीघ्र कन्या का विवाह कर दें। इस कारण से भी भारतवर्ष में बाल-विवाहों को प्रोत्साहन मिला।

(5) धर्म-ग्रन्धों की आज्ञा यद्यपि भारतीय धर्मग्रन्थों में इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं। फिर भी विकास की प्रक्रियाओं के साथ भारतवर्ष में निरन्तर विवाह की आयु कम होती गई। धर्मग्रन्थों में बाल-विवाह के सम्बन्ध में जो व्यवस्थाएँ दी गई हैं, उनमें से कुछ को यहाँ उदाहरण के तौर पर रखा जा सकता है-

(i) जो पिता शैशवावस्था में ही अपनी कन्या का विवाह कर देता, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जो पिता ऐसा नहीं करता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है।

(ii) प्रत्येक स्थिति में 4 वर्ष से लेकर 10 वर्ष की आयु के बीच कन्या का विवाह कर देना चाहिए।

(iii) कन्या का विवाह उसमें लज्जा की भावना के विकास के पहले ही कर देना चाहिये। जो माता-पिता ऐसा नहीं करते हैं, उन्हें पाप लगता है। भारत की जनता अत्यधिक धर्मभीरु है। अपनी इस धर्मभीरुता के कारण समाज में बाल-विवाह का प्रचलन हुआ।

(6) जाति प्रथा भारतवर्ष की जाति प्रथा के कारण भी बाल-विवाह को प्रोत्साहन मिला है। प्रारम्भिक अवस्था में वहाँ चार वर्ण थे। धीरे-धीरे इन वर्षों का आधार जन्म हो गया और जातियों का विकास हुआ। समाज में रक्त शुद्धता तथा अन्य कारणों से अन्तर्जातीय विवाहों को अवैध करार दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पिता को अपनी उपजाति में कन्या के लिये वर की तलाश करनी पड़ी। ऐसा करने में माता-पिता को अनेक प्रकार की कठिनाइयों होती थीं। अतः कन्या का विवाह करना एक समस्या हो गई। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए माता-पिता को ज्योंही वर प्राप्त हुआ, अपनी कन्या का शीघ्र विवाह कर दिया। इससे भी समाज में बाल- विवाह को प्रोत्साहन मिला।

(7) संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतवर्ष में सम्पूर्ण वसुधा को ही एक परिवार माना गया है। इस दृष्टि से यहाँ पर संयुक्त परिवार व्यवस्था (Joint Family System) का विकास हुआ। संयुक्त परिवार की प्रथा के अनुसार परिवार के सभी सदस्यों और सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व परिवार के मुखिया पर होता था। किसी भी व्यक्ति को अलग से अपनी पत्नी और बच्ची की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। इसका कारण यह है कि परिवार के बड़े- बूढ़े सभी का पालन-पोषण करते थे। इसके साथ ही देश की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। ऐसी कहावत प्रचलित थी कि देश में घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज में बाल-विवाहों का प्रचलन हुआ।

(8) सती प्रथा सती प्रथा के अनुसार पत्नी अपने पति की मृत्यु के बाद पति की चिता में ही पति का सिर अपनी गोद में रखकर जलकर राख हो जाती थी। साथ ही समाज में मृत व्यक्ति की पत्नी की सुरक्षा और पुनः विवाह की व्यवस्था समाज में नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि छोटी आयु में ही विवाह करने की प्रथा का समाज में प्रचलन हुआ।

(9) विलासिता डॉ. राजबली पाण्डे ने विलासिता को भी बाल-विवाहों के प्रचलन का कारण माना है। उनका कहना है कि जब आर्यों ने भारत पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, तो उनमें विलासिता की भावना का विकास हुआ। इसका कारण यह था कि देश में उन्हें सर्वोच्च पद प्राप्त हो गया और उन्होंने सभी प्रकार के सुख को भोगना प्रारम्भ कर दिया। इससे वे शीघ्र ही यौन सम्बन्धों की ओर अग्रसर हुए और इस प्रकार बाल-विवाहों का प्रचलन हुआ।

(10) जनसंख्या की कमी प्रारम्भिक अवस्था में भारत की भूमि में उपजाऊपन अधिक था तथा जनसंख्या कम थी। आर्थिक सुख और समृद्धि भोगने वाले व्यक्तियों की संख्या कम थी। इससे लोगों में वास्तविक तौर पर ऐसी आकांक्षाओं का विकास हुआ होगा कि जनसंख्या अधिक हो, जो सुख और ऐश्वर्य को भोग सके। इसी के परिणामस्वरूप बाल-विवाहों का प्रचलन हुआ क्योंकि बाल-विवाहों से सन्तानें अधिक पैदा होती है।

(11) स्त्रियों की स्थिति का पतन भारत में वैदिक काल में सभी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त ही ऊँची थी। समाज में उन्हें सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। वैदिक युग के बाद स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन होते गए और उनकी स्थिति समाज में निम्न से निम्नतर होती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियाँ पुरुषों के आश्रित और दासी बनकर रह गईं। उनके हाथ से जीविकोपार्जन के सारे साधन निकलकर पुरुषों में केन्द्रित हो गए। स्वावलम्बन की भावना भी समाप्त हो गई। परिणामस्वरूप माता-पिता के लिए यह आवश्यक नहीं रह गया कि विवाह में वे अपनी कन्याओं की भी राय लें। साथ ही अपनी सुविधा के अनुसार विवाह करने लगे। इससे भी भारत में बाल-विवाहों को प्रोत्साहन मिला।

(12) विदेशियों के आक्रमण ईसा के पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दी में भारतवर्ष में विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। इन आक्रमणकारियों में शक, हूण और यूनानी प्रमुख थे। आक्रमणकारी जब भारत आए तो अपने साथ स्त्रियों को नहीं लाये थे। परिणामस्वरूप इन्हें स्त्रियों की आवश्यकता थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने स्त्रियों का अपहरण करना प्रारम्भ कर दिया। इस अपहरण से हिन्दू माता-पिता अपनी लड़कियों को असुरक्षित समझने लगे। इस सबका परिणाम यह हुआ कि बाल-विवाहों का समाज में प्रचलन हुआ।

(13) सामाजिक प्रतिष्ठा का अनुभव भारतवर्ष में अन्धविश्वास का बोल-बाला है। इस अन्ध विश्वास के कारण कम आयु में विवाह करने को पवित्र मानते हैं। जो माता-पिता जल्दी ही अपनी कन्या का विवाह कर देते हैं, उन्हें समाज में अधिक प्रतिष्ठा दी जाती है। इस प्रकार झूठी प्रतिष्ठा के लालच में पड़कर भी भारतीय बाल-विवाह को प्रोत्साहित करते हैं।

बाल-विवाह के लाभ
(Merits of Child Marriage)

बाल-विवाह से क्या लाभ हैं? जब ऐसे प्रश्न किये जाते हैं, तो इससे बड़ी हैरानी का अनुभव होता है इसका कारण यह है कि आज बाल-विवाह के अनेक दोष समाज के सामने हैं। फिर भी इस संस्था के विकास के पीछे कुछ ऐसे तत्व

अवश्य रहे होंगे, जिनमें प्रोत्साहित होकर समाज में इस प्रथा का विकास किया गया होगा। यहाँ हम बाल-विवाह के इन्हीं लाभों की वितेचना करेंगे-

(1) पारिवारिक संगठन की दृढ़ता- जो विद्वान् बाल-विवाह के पक्ष में तर्क देते है, उनका कहना यह है कि इससे पारिवारिक संगठन अधिक शक्तिशाली बनता है। । इसका कारण यह है कि वे युवक और युवती, जिनका विवाह छोटी आयु में हो जाता है, अत्यन्त ही कोमल स्वभाव, विचारधाराओं और मूल्यों के होते हैं। इससे दोनों आपस में शीघ्र ही घुल-मिल जाते हैं। यह सामंजस्य इतना दृढ़ होता है कि वे कभी भी एक दूसरे को अलग- अलग नहीं समझते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका पारिवारिक जीवन अत्यन्त ही सबल और शक्तिशाली बनता है। इसके विपरीत यदि लम्बी आयु में विवाह किये जाते हैं, तो पति-पत्नी के विचारों और स्वभावों में इतनी दृढ़ता आ जाती है कि वे अनुकूलन करने में असमर्थ रहते हैं और पारिवारिक संघर्ष को जन्म देते हैं।

(2) उत्तरदायित्व की भावना का विकास- बाल-विवाह के पक्ष में दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि बाल-विवाह के कारण युवक और युवती में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। अधिकांशतः ऐसा पाया जाता है कि जिन युवकों और युवतियों का विवाह बड़ी उम्र में होता है, उनका व्यक्तिगत जीवन अव्यवस्थित तो रहता ही है, साथ ही वे जीविकोपार्जन के प्रति भी अधिक उत्सुक नहीं रहते हैं। इसके साथ ही वे व्यक्ति जीवन की गम्भीरता से न जी कर लापरवाही से जीते हैं। बाल-विवाह से जीवन में परिपक्वता का शीघ्र ही विकास हो जाता है।

(3) अनैतिकता में कमी बाल-विवाह के पक्ष में तीसरा तर्क यह दिया जाता है कि इससे अनैतिकता और भ्रष्टाचार की मात्रा में कमी आती है। इसका कारण स्पष्ट है कि 15-16 वर्ष की आयु ऐसी होती है जिसमें स्वाभाविक काम-भावना का विकास होता है। काम-भावना की भूख इतनी प्रबल होती है कि उसकी वृत्ति अनिवार्य है। यदि इस भावना की पूर्ति न की जाएगी, तो इस स्वाभाविक भूख के लिए युवक और युवती ऐसे मार्गों का अनुसरण करेंगे जो समाज को स्वीकृत नहीं होगा। इस प्रकार के भ्रष्टाचार और अनैतिकता को समाप्त करने का एक ही उपाय है और वह यह है कि छोटी आयु में ही विवाह किया जाये। पाश्चात्य देशों

के आँकड़े यह बतलाते है कि 20 वर्ष से अधिक आयु की कुमारियों में 30-40 प्रतिशत पहले ही गर्भवती हो जाती है। इसी प्रकार जो विवाहित स्त्रियाँ है, उनमें से प्रथम संतान 25 प्रतिशत के करीब अवैध होती है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लड़की का शीघ्र ही विवाह कर देना चाहिए।

बाल-विवाह के दोष
(Demerits of Child Marriage)

किसी भी समस्या के पक्ष और विपक्ष में तर्क देना अत्यन्त ही आसान होता है। जहाँ तक बाल-विवाह का सम्बन्ध है, इससे एक-दो लाभ भले ही हो, इससे समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ हम बाल-विवाह से समाज को जो नुकसान होते हैं, उनकी विवेचना करेंगे-

(1) जनसंख्या की वृद्धि- वृद्धि- आधुनिक युग की अनेक समस्याओं में जनसंख्या की समस्या भी एक है। बाल विवाह का सबसे बड़ा दोष यह है कि इससे अल्पायु में ही बच्चे पैदा होने लगते हैं और यह क्रम निरन्तर प्रौढ़ावस्था तक जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होती है। भारत जैसे कम विकसित देशों में जनसंख्या पहले से ही अधिक है, बाल-विवाह अत्यन्त ही हानिकारक है।

(2) व्यक्तित्व विकास में बाधा बाल-विवाह का दूसरा दोष यह है कि इससे मानव व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। बाल-विवाहों का शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ता है, व्यक्ति शीघ्र ही उत्तरदायित्व के बोझ से दब जाता है, वह किसी प्रकार की भी आजीविका प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह पत्नी और बच्चों में कुछ इस प्रकार उलझ जाता है कि व्यक्तित्व के विकास की ओर समुचित ध्यान नहीं देता है।

(3) शारीरिक क्षति- बाल-विवाह के परिणामस्वरूप स्वी और पुरुष अल्प आयु में ही यौन सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं। इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और शरीर का उचित विकास नहीं हो पाता है। पति- पत्नी का स्वास्थ्य दुर्बल होने के कारण अस्वस्थ सन्तानों को जन्म देते हैं। परिणामस्वरूप समाज में अस्वस्थ व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

(4) बाल-विधवाओं की वृद्धि वैधव्य भारतीय स्त्री का सबसे बड़ा अभिशाप होता है। बाल-विवाह के कारण अनेक स्त्रियाँ छोटी आयु में ही विधवा हो जाती हैं। साथ ही सामाजिक प्रथाओं आदि के कारण वे दूसरा विवाह नहीं कर पाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें जीवन भर अनेक प्रकार के कष्ट और यातनाएँ भुगतनी पड़ती है।

(5) स्त्री-मृत्यु में वृद्धि- बाल-विवाह से छोटी आयु में ही बच्चे पैदा होने लगते हैं, अधिकांशतः ऐसा पाया गया है कि प्रसव के समय ही अनेक स्त्रियों की मृत्यु हो जाती है। इसके साथ ही स्त्रियाँ इतनी निर्बल हो जाती है कि 30-35 वर्ष की आयु में ही उनकी मृत्यु हो जाती है।

(6) बाल मृत्यु की ऊँची दर- बाल-विवाह बालकों की मृत्यु में भी वृद्धि करता है। इसका कारण यह है कि छोटी आयु में विवाह के कारण स्त्री-पुरुष निर्बल हो जाते हैं। ये निर्बल स्त्री-पुरुष निर्बल सन्तानों को जन्म देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बालकों की मृत्यु में वृद्धि हो जाती है।

(7) अनुत्तरदायी विवाह- बाल-विवाहों को अनुत्तरदायी विवाह भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि विवाह के पीछे अनेक प्रकार के उत्तरदायित्व होते हैं। इन उत्तरदायित्वों के निर्वाह में आयु का बड़ा महत्व है। बाल-विवाह अत्यन्त ही अल्प आयु में किए जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी अपने वैवाहिक उत्तरदायित्वों को निभाने में असमर्थ रहते हैं।

• (8) असुखी विवाह- बाल-विवाह को असुखी विवाह भी कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि आधुनिक युग में विवाह को आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा भौतिक सुख का आधार माना जाता है। इस प्रकार की धारणा का विकास होता जा रहा है कि विवाह व्यक्तिगत पसन्द और रुचि के आधार पर होना चाहिए। बाल-विवाह में माता-पिता की रुचि का स्थान मौलिक रहता है। जिससे स्वभाव, रुचि, पसन्द आदि की उपेक्षा करके दो युवक और युवती को बन्धन में बाँध देते हैं। इससे यदि पति और पत्नी विरोधी स्वभाव और विचारधारा के हुए तो उनमें संघर्ष अवश्यम्भावी हो जाता है। इस प्रकार वैवाहिक जीवन अत्यन्त ही कष्ट और यातनाओं से पूर्ण हो जाता है।

इससे स्पष्ट होता है कि आज बाल-विवाह समाज के लिए अत्यन्त ही हानिकर है तथा इससे व्यक्तिगत, पारिवारिक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है।

बाल-विवाह से सम्बन्धित विधान
(Legislation Regarding Child Marriage)

ऊपर जो विवेचना की गई है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बाल-विवाह हिन्दू विवाह की सबसे ज्वलन्त समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए समाज-सुधार आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। इसके साथ ही समस्या के समाधान के लिए अधिनियमों का निर्माण किया गया। बाल-विवाह की समस्या के निरोध के लिए अनेक अधिनियम बने। इन सभी अधिनियमों में बाल-विवाह निरोध अधिनियम, 1929 (The Child Marriage Restraint Act, 1929) प्रमुख हैं। इसे शारदा अधिनियम, 1929 (The Sharda Act, 1929) भी कहा जाता है।

इस अधिनियम के बाद 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम में भी विवाह की एक निश्चित आयु का उल्लेख किया गया है। इसका उद्देश्य भी बाल-विवाह की प्रथा को समाप्त करना था।

13.9 विधवा पुनर्विवाह (*Widow Remarriage)*

हिन्दू विवाह की संस्था का निर्माण महान सामाजिक और धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया था। अनेक शताब्दियों तक इस संस्था ने निहित उद्देश्यों की पूर्ति करके भारतीय समाज को संगठित किया तथा शक्तिशाली परिवार की स्थापना में मदद की। जैस-जैसे भारतीय समाज की परिस्थितियाँ बदलती गईं, विवाह संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में असफल होती गई। विवाह संस्था की इस असफलता का परिणाम यह हुआ कि इसमें अनेक सामाजिक समस्याएँ घर करती गईं। आज स्थिति यह है कि हिन्दू विवाह अनेक प्रकार की समस्याओं

से ग्रस्त है। विधवा पुनर्विवाह की समस्या (The Problem of Widow Remarriage) इन्हीं समस्याओं में से एक है।

यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज की हिन्दू विधवा स्त्री का सारा जीवन अनेक प्रकार की कुण्ठाओं और घुटन से पूर्ण है। इसके साथ ही उसे जीवन के पग-पग पर अनेक प्रकार की यातनाएँ और अपमान का सामना करना पड़ रहा है। वह परिवार और समाज के लिए कलंक और अपशकुन बनकर रह गई है।

हिन्दू विधवा समाज के लिए समस्या इसलिए बन गई कि उसके पुनर्विवाह को समाज विरोधी करार दिया गया और इस पर धार्मिक तथा सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिया गया। हिन्दू विवाह में जितने प्रतिबन्ध है, उनमें से यह सबसे अधिक विनाशकारी और हृदय विदारक है। इसका जीवन पतित माना जाता है तथा उसे किसी प्रकार के शुभ कार्यों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा रहता है।

विधवा पुनर्विवाह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Background of Widow Remarriage)

भारतवर्ष में विधवा पुनर्विवाह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) वैदिक युग- वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात होता है कि वैदिक काल में विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार था। ऋग्वेद काल में तो विधवाओं की समाज में अच्छी स्थिति थी। विधवाओं के पुनर्विवाह के बारे में लिखा है कि :-

'हे लम्बे बालों वाली! उठ, तू उसका अवलम्ब लिए बैठी है जिसका जीवन चला गया है। मृत जगत को छोड़कर जीवित जगत की ओर आ। अपने पति को छोड़कर उस व्यक्ति की पत्नी बन जो तेरा हाथ ग्रहण करने के लिए तैयार है।":

वैदिक साहित्य में 'देवर' शब्द का प्रयोग किया गया है और देवर को दूसरा पति कहकर सम्बोधित किया गया है। पति की मृत्यु के बाद उसका भाई दूसरा पति माना जाता था। अथर्ववेद में लिखा है कि जब स्त्री का पति मर जाता है, तब उसे दूसरा घर बसाना पड़ता है।

ईसा से 300 वर्ष पहले 'नियोग' (Levirate) की प्रथा का प्रचलन था। उस समय प्रजाति की निरन्तरता (Continuity of Race) को बनाये रखना आवश्यक माना जाता था। भारतीय धर्म और दर्शन के अनुसार पुत्र पैदा करना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि निपुत्री को मोक्ष प्राप्त नहीं होता है, जो जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। इसलिए पुत्र पैदा करना आवश्यक था। नियोग वह प्रथा है जिससे विधवा को अपने देवर या अन्य रक्त सम्बन्धियों से यौन सम्बन्ध स्थापित करके पुत्र पैदा करने की अनुमति प्रदान की गई थी। यदि पति जिन्दा है और गर्भ धारण करने के योग्य नहीं है, तो दूसरे व्यक्ति से नियोग के द्वारा सन्तान पैदा की जा सकती है। नियोग की यह प्रथा सिर्फ वैदिक काल में ही नहीं थी, अपितु सूत्र और स्मृति युग में भी इस प्रथा का प्रचलन था। अल्टेकर (Altekar) ने नियोग की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन किया है।

(2) मध्य युग- मध्य युग में भी भारत में विधवाओं की स्थिति अच्छी थी और उन्हें पुनः विवाह करने समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष का पूर्ण अधिकार था। मध्य युग में विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित करने वाले जो ग्रन्थ हैं, वे निम्न हैं:-

(i) मनुस्मृति में लिखा है कि 'यदि स्वी अक्षतयोनि हो, उसका पूर्व पुरुष से यौन सम्बन्ध स्थापित न हुआ हो, तो उसका पौनर्भव पति से फिर विवाह संस्कार हो सकता है।"।

(ii) इसी प्रकार विशिष्ट संहिता में भी विधवाओं के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में जो लिखा है, वह इस प्रकार है- "अगर पति की मृत्यु के समय स्त्री का केवल मंत्रों के उच्चारण से विवाह हुआ है और उसका पति से संयोग न हुआ हो, तो उसका फिर से विवाह हो सकता है।"2

(iii) मध्य युग में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी से विवाह किया था।

विधवाओं को पुनः विवाह करने की जो अनुमति मध्यकाल में थी, वह अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सकी। बदलती हुई परिस्थितियों के कारण इसमें प्रतिबन्ध लगते गये। मनुस्मृति ने ही बाद में लिखा है कि विधवाओं को अपने

शरीर को सुखा देना चाहिये। पति की मृत्यु के बाद उसे दूसरे पति का नाम भी अपने मुख पर नहीं लेना चाहिये। उसे मृत पति के प्रति निष्ठा भावना को बनाये रखकर तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये।

इसी प्रकार के विचार वात्स्यायन के भी है। उन्होंने लिखा है कि विधवा को विवाह नहीं करना चाहिये। जो पति विधवा से विवाह करके यौन सम्बन्ध करता है, उसे वैश्या के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने का पातक लगता है।

अलबरुनी का विचार है कि विधवा को विवाह नहीं करना चाहिए। अलबरुनी ने विधवाओं के लिये दो मार्ग निर्धारित किये हैं-

(i) विवाह न करना, तथा

(ii) विधवा हो जाने पर पति की चिता में जलकर अपने भौतिक शरीर को ही नष्ट कर दें।

धीरे-धीरे मध्य युग में विधवाओं के पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई और इसका परिणाम यह हुआ कि 'सती प्रथा' का जन्म हुआ।

(3) आधुनिक युग- आधुनिक युग में विधवाओं के द्वारा विवाह करने पर पूरा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। महाकाल युग में इस पर प्रतिबन्ध लगा और जैन तथा बौद्ध धर्म ने तो इस सम्बन्ध में अत्यन्त ही कठोर नियमों का निर्माण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि विधवा पुनर्विवाह पर समाज ने रोक लगा दी। विधवाओं के जीने और मरने में दोनों ही प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दिया गया और इस प्रकार यह समस्या आधुनिक युग तक आते-आते अत्यन्त ही जटिल तथा सोचनीय हो गई।

विधवा पुनर्विवाह निषेध के कारण
(Causes of Prohibition of Widow Remarriage)

यदि हम भारतीय इतिहास और साहित्य का अवलोकन करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युग में विधवाओं को पुनः विवाह करने का पूरा अधिकार था। धीरे-धीरे विधवाओं का यह अधिकार समाज के कर्णधारों ने छीन लिये और विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। विधवाओं के पुनर्विवाह के अधिकार पर

रोक लगाने के जो प्रमुख कारण हैं, उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) कन्यादान की प्रथा- भारत में हिन्दू विवाह में कन्यादान को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है। विवाह में माता-पिता योग्य वर को अपनी कन्या 'दान' के स्वरूप में देते हैं। भारत में ऐसी धारणा है कि दान की हुई वस्तु को न तो लौटाया जाता है और न ही दूसरे व्यक्ति को दुबारा दान में दिया ही जा सकता है और विधवा हो जाने पर भी दान में दी गई कन्या को दूसरे व्यक्ति को दान में नहीं दिया जाता है। इससे भी विधवाओं को पुनः विवाह करने के अधिकार से वंचित रखने का प्रयास किया गया था।

(2) पवित्रता की धारणा- हिन्दू विवाह को एक पवित्र धार्मिक संस्कार माना गया है। मध्य युग में जब भारत में विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हुए और साथ विभिन्न धर्म पर हावी होने लगे तो हिन्दुओं ने अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँची बनाये रखने के उद्देश्य से विवाह में पवित्रता की धारणा को अधिक महत्व दिया। इस पवित्रता की धारणा का परिणाम यह हुआ कि विधवा-विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

(3) जन्म-जन्मान्तर का बन्धन- हिन्दू विवाह को पति-पत्नी के अटूट बन्धन के रूप में जाना जाता है। विवाह के बाद पति-पत्नी सिर्फ एक ही जन्म के साथ बन्धन नहीं बँधते हैं, अपितु उनका सम्बन्ध अनेक जन्मों तक के लिए होता है। पति की मृत्यु के बाद पत्नी इसलिए भी दोबारा विवाह नहीं करती कि पूर्व पति के साथ उसके जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध कलुषित हो जायेंगे। इस जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों के कारण भी विधवाओं के पुनः विवाह पर प्रतिबन्ध लगे।

(4) सतीत्व की धारणा भारतवर्ष में सतीत्व (Chastity) को स्त्री की सबसे बड़ी धरोहर या सम्पत्तिमाना गया है और इस प्रकार की विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है कि भारतीय स्त्री को हर कीमत पर सतीत्व की रक्षा करनी चाहिए। जब इस धारणा को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो गई और विधवाओं ने सतीत्व की रक्षा करना अपना कर्तव्य मान लिया तो समाज में विधवा-विवाहों पर प्रतिबन्ध लग गये।

(5) भाग्यवादी दृष्टिकोण भारतीयों का दृष्टिकोण भाग्यवादी है और धारणा है कि हानि-लाभ, जीवन- मरण, जो कुछ भी होता है, भाग्य के आधार पर होता है। पति की मृत्यु और विधवा होना भाग्य की बात है। वही स्त्रियाँ विधवा होती है, जो अभागिन होती है। उनके भाग्य को परिवर्तित नहीं किया जाता है। विधवा होना भाग्य की बात है। साथ ही यह पूर्व जन्म के कर्मों का फल है, जिसका भुगतान व्यक्ति को करना ही चाहिए। इस प्रकार की भाग्यवादी विचारधारा के कारण विधवा-विवाह निषेध की धारणा और शक्तिशाली बन गई।

(6) रक्त की शुद्धता-रक्त की शुद्धता की धारणा के कारण भी विधवा विवाह निषेध को प्रोत्साहन मिला। विदेशी आक्रमणकारियों के रक्त की शुद्धता को बनाये रखने के लिये भारतीय समाज में दो प्रकार के तरीके अपनाये गये-

(i) बाल-विवाहों को प्रोत्साहन, और

(ii) विधवा-विवाह निषेध।

(7) पुरुषों को पुनर्विवाह की स्वतन्त्रता- भारतीय समाज में विधुर हो जाने के बाद भी पुरुषों को पुनः विवाह करने का अधिकार दिया गया है। इससे पुरुषों को इसका आभास ही नहीं हो पाया कि 'वैधव्य जीवन' क्या होता है और इस जीवन में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ कि विधवाएँ पुनर्विवाह से वंचित हो गई।

(8) जातीय बहिष्कार का दण्ड-भारत में जाति-प्रथा के नियम अत्यन्त ही कठोर और शक्तिशाली रहे हैं। जाति में विधवाओं के लिए व्यवस्था है कि वे पुनः विवाह न करें और अपना जीवन सत्य और नियमों का पालन करते हुए बितायें। यदि कोई इन नियमों का पालन नहीं करता था, तो उसे जाति से बाहर निकाल दिया जाता था। जाति से बाहर निकाले जाने के भय से भी विधवाओं के पुनः विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगा।

(9) स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता भारतवर्ष में स्त्रियों का आर्थिक जीवन पुरुष पर आधारित रहा है।वे आदिकाल से पुरुष की आश्रिता मानी गई हैं। उनकी परिवार पर अत्यधिक मात्रा में आर्थिक निर्भरता होने के कारण भी विधवा विवाह को प्रोत्साहन नहीं मिल सका।

(10) स्त्रियों की अशिक्षा- भारत में विधवा-विवाह को प्रोत्साहन न मिलने का प्रमुख कारण भारतीय स्त्रियों की अशिक्षा है। इस अशिक्षा के कारण वे रूढ़िगत और धर्मगत अन्धविश्वासों से निरन्तर पिसती रहीं। वे शास्त्रों और पुरोहितों के पंजों में फैसी रहीं और दुबारा विवाह न करने को अपने नैतिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

विधवा पुनर्विवाह निषेध के दुष्परिणाम
(Evil Effects of Prohibition of Widow Remarriage)

समाज में विधवाओं के दुबारा विवाह करने पर जो रोक लगाई गई, उससे समाज में निम्न दुष्परिणाम हुए-

(1) वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन- भारत में विधवा पुनर्विवाह निषेध का सबसे दुष्परिणाम यह हुआ है कि इससे वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिला है। इस सम्बन्ध में जो सर्वेक्षण किये गये हैं, उनसे निष्कर्ष निकलता है। भारत में 70% वेश्याएँ विधवाएँ या बाल-विधवाएँ है। यौन सम्बन्धी क्षुधा को दबा न सकने के कारण अनेक विधवाएँ कुटिल समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष पुरुषों का शिकार हो जाती है और जब ये पुरुष उन्हें अपनाने को राजी नहीं होते हैं तथा समाज तिरस्कृत करता है, तो विवश होकर इन विधवाओं को वेश्यावृत्ति का सहारा लेना पड़ता है।

(2) अनैतिकता को प्रोत्साहन- इससे समाज में अनैतिकता को भी प्रोत्साहन मिलता है। इसका कारण यह है कि विधवाएँ आत्म-संयम नहीं रख पाती हैं। इससे समाज में अनैतिकता की मात्रा में वृद्धि होती है।

(3) अनाथों की संख्या में वृद्धि- विधवा पुनर्विवाह पर निषेध लगाने का परिणाम यह होता है कि इससे परिवार में अनाथ और पराश्रितों की संख्या में वृद्धि होती है। साथ ही इन अनाथों के समाजीकरण में भी बाधा उत्पन्न होती है। इनका उचित पालन-पोषण करना एक समस्या हो जाती है और इन्हें परिवार के मुखिया की दया और कृपा पर शेष जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ता है।

(4) धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहन- हिन्दू विचारधारा के अनुसार यदि स्त्री एक बार पथभ्रष्ट हो जाये,तो उसे समाज और परिवार में कोई स्थान नहीं मिलता है। इसके विपरीत ईसाई और मुसलमान धर्म में इस प्रकार के प्रतिबन्धों को कोई

स्थान नहीं है। इसलिए ये स्त्रियाँ वैधव्य जीवन को पवित्रता से नहीं बिता पाती है और पथभ्रष्ट हो जाती है, वे दूसरे धर्म को इसलिए स्वीकार कर लेती हैं कि हिन्दू धर्म में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता है।

(5) अपराधों को प्रोत्साहन विधवा पुनर्विवाह निषेध का परिणाम यह होता है कि इससे अपराधों की संख्या में वृद्धि होती है। विधवा-विवाह पर निषेध लगाने से प्रमुख रूप से निम्न अपराधों को प्रोत्साहन मिलता है-

(i) अनैतिक यौन सम्बन्ध,

(ii) गर्भपात (Abortion),

(iii) भ्रूणहत्या (Infanticide),

(iv) आत्महत्या (Suicide),

(v) पारिवारिक विघटन,

(vi) बाल अपराधों को प्रोत्साहन, आदि।

(6) व्यक्तित्व के विकास में बाधा भारत में विधवाओं के सम्बन्ध में दो प्रकार की धारणाएँ है-

(i) उन्हें सामाजिक वातावरण से दूर रखना, और

(ii) उन्हें समाज और परिवार का बोझ समझना।

इसका परिणाम यह होता है कि विधवाओं का व्यक्तित्व कुण्ठित होकर रह जाता है।

(7) विशाल जनसमूह की अवहेलना भारत में विधवा-विवाह पर रोक लगा करके विशाल जनसमूह की उपेक्षा की गई है। 1961 की जनगणना इस तथ्य की साक्षी है कि भारत में विधवाओं की कुल जनसंख्या 2 करोड़ है। इन दो करोड़ मानवों की समाज अवहेलना करे और उन्हें पशुओं की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करे, यह कहाँ का न्याय है? इस दृष्टि से भी विधवा-विवाह निषेध समाज के लिए अनुपयोगी है।

(8) दयनीय अवस्था- विधवा-विवाह निषेध का अन्तिम दुष्परिणाम यह है कि इससे विधवाओं को अत्यन्त ही दयनीय अवस्था में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसकी इच्छा और कामना का समाज में कोई महत्व नहीं होता है। वह अनेक

प्रकार के कष्टों को लिए हुए अपने जीवन गाड़ी को आगे धकेलती रहती है। इसे अनेक प्रकार की यातनाएँ झेलनी पड़ती है। संक्षेप में उसका जीवन पशुओं से भी गिरा हुआ और बदत्तर होता है।

विधवा विवाह का औचित्य

(Justification of Widow Marriage)

विधवाओं की समाज में अत्यन्त ही दयनीय स्थिति होती है। इस दयनीय स्थिति से छुटकारा दिलाने और मानवोचित जीवन प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि विधवाओं को विवाह का अधिकार दिया जाये। विधवा विवाह के औचित्य के सम्बन्ध में जो तर्क दिये जाते है, वे निम्नलिखित है-

(1) पुरुष और स्वी मानव सृष्टि के आधार है। जब विधुरों को पुनः विवाह करने का अधिकार है, तो विधवाओं को भी दोबारा विवाह का अधिकार होना चाहिए।

(2) विधवाओं को अत्यन्त ही दयनीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। विधवाएँ भी मानव समाज का एक अंग हैं। अतः विधवाओं को अनेक यातनाओं से मुक्त करने के लिए और मानवोचित जीवन प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि उन्हें दोबारा विवाह करने के अधिकार दिये जाएँ।

(3) समाज में अनुचित यौन सम्बध स्थापित न किए जाएँ, इसके लिए आवश्यक है कि समाज विधवाओं को पुनः विवाह करने की अनुमति प्रदान करे।

(4) समाज में गर्भपात, भ्रूणहत्या, आत्महत्या जैसे अपराधों की संख्या में कमी लाने के लिए भी यह आवश्यक है कि विधवाओं को दोबारा विवाह का अधिकार दिया जाये।

(5) समाज में अनाथों और आश्रितों की संख्या में कमी करने के लिए भी विधवा विवाह अनिवार्य है।

(6) विधवाओं के व्यक्तित्व का समुचित विकास तभी हो सकता है, जबकि उन्हें दोबारा विवाह करने की अनुमति दी जाये।

(7) धर्म परिवर्तन को रोकने के लिए भी विधवा-विवाह अनिवार्य है,

(8) समाज तथा परिवार के बोझ को कम करने के लिए भी विधवा-विवाह आवश्यक है।

विधवा के लिए सुझाव
(Suggestions for Widow Marriage)

विधवा विवाह को भारतीय समाज में प्रोत्साहन मिले, इसके लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं-

(1) स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाये,

(2) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के बारे में विशिष्ट ज्ञान उपलब्ध कराया जाये,

(3) समाज को इस तथ्य से अवगत कराया जाये कि विधवा-विवाहों पर रोक लगाने से व्यक्ति, परिवार और समाज को कितनी हानि होती है,

(4) विधवा-विवाह को प्रोत्साहित करने के लिए समाज के नागरिकों में जागरूकता का विकास किया जाये,

(5) विधवाओं से विवाह करने वाले व्यक्ति को समाज में विशिष्ट प्रतिष्ठा प्रदान की जाये,

(6) जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाये, जिससे वे विधवाओं से विवाह करना स्वीकार कर लें,

(7) विधवा-विवाह को समाज में धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और कानूनी मान्यता प्रदान की जाये,

(8) विधवा-विवाह में कार्यरत व्यक्तियों और संस्थाओं को पुरस्कृत किया जाये तथा उन्हें उचित अनुदान प्रदान किया जाये।

(9) विधवा-विवाह को प्रोत्साहित करने के लिए कानूनों का निर्माण किया जाये। भारत में विधवा-विवाह से सम्बन्धित जो कानून बने हैं, वे निम्नलिखित हैं-

(i) हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1956 (Hindu Widow Remarriage Act, 1956)

(ii) हिन्दू स्वियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937 (The Hindu Womens Right to Property Act, 1937)

(iii) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (The Hindu Succession Act, 1956)

13.10 दहेज प्रथा*(Dowry System)*

हिन्दू विवाह की समस्याओं में दहेज की समस्या भी एक है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में विवाह नामक संस्था में दहेज की प्रतिस्थापना भावनात्मक, नैतिक तथा मौलिक आवश्यकताओं के साधन की पूर्ति के रूप में हुआ था, किन्तु बाद में यह समस्या अत्यन्त ही जटिल हो गई और आज इस समस्या का रूप इतना उग्र हो गया है कि इससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को महान क्षति उठानी पड़ रही है तथा परिवार में अनेक समस्याओं को जन्म देने में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में दहेज प्रथा उपहार के रूप में थी जिसे विवाह के समय कन्या के माता- पिता अथवा संरक्षक वर और वधू को प्रदान करते थे। साथ ही, दहेज की मात्रा तथा उसके स्वरूप का निर्धारण वधू के माता-पिता या संरक्षक करते थे तथा ऐसा करने के लिए उन्हें बाध्य नहीं किया जाता था। आधुनिक युग

1. में दहेज प्रथा मानव मूल्यों पर एक बड़ा धब्बा है। आज इसका स्वरूप व्यावसायिक (Commercial) हो गया समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष है। आज दहेज खुले रूप से माँगा जाता है। वधू के पिता के आगे अनेक वर पक्ष वाले दहेज के रूप में अधिक से अधिक द्रव्य तथा वस्तुओं (Money and goods) की माँग रखते है। भारत में दहेज की इस प्रथा का प्रारम्भ 13 वीं और 14 वीं शताब्दी में हुआ था और आज यह प्रथा समस्त भारतवर्ष में पाई जाती है तथा शिक्षा के विकास के साथ ही इसका स्वरूप और भी जटिल होता जा रहा है।

दहेज की परिभाषा
(Definition of Dowry)

सरल शब्दों में दहेज उस सम्पत्ति को कहते हैं, जो वर पक्ष को वधू पक्ष की ओर से प्राप्त होता है। दहेज में सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी आती है। दहेज

की निश्चित परिभाषा देना कठिन है। कुछ विद्वानों ने दहेज की परिभाषा देने का प्रयास किया है, ये परिभाषाएँ निम्न है-

(1) इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका- "दहेज वह सम्पत्ति है, जो कि एक स्वी अपने साथ लाती है अथवा उसे जो विवाह के समय दी जाती है।"।

(2) वेबस्टर शब्दकोश- "दहेज वह धन समान अथवा सम्पत्ति है जो विवाह में एक स्त्री अपने पति के लिए लाती है।"

(3) मैक्स रैडिन- "साधारणतया दहेज वह सम्पत्ति है जो एक पुरुष विवाह करने पर अपनी पत्नी से या उसके परिवार से पाता है।"

(4) चार्ल्स विनिक- "दहेज वे बहुमूल्य वस्तुएँ है जो कि एक विवाह में किसी भी पक्ष के सम्बन्धी विवाह में देते हैं।"*

संक्षेप में, दहेज वह सम्पत्ति है जो विवाह के समय वर को वधू के माता-पिता या अभिभावक देते हैं। यह सम्पत्ति पूर्व निश्चित या अनुमानित हो सकती है।

दहेज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Background of Dowry)

भारतवर्ष में दहेज प्रथा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) वैदिक युग- वैदिक काल में माता-पिता अपनी कन्या का 'कन्यादान' करते थे। कन्या को योग्य

पति को दान करते समय वर और वधू को अपनी इच्छा से अलंकरण, वस्व आदि दिया करते थे। दहेज का वैदिक काल में यही रूप था। विवाह के समय कन्या को जो वस्तुएँ दी जाती थीं, उसका उद्देश्य यही था कि कन्या इन वस्तुओं के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। पहले यह सम्पत्ति और वस्तुएँ वधू को दी जाती थीं, किन्तु बाद में माता-पिता ने इस पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया।

(2) मध्य युग- मध्य युग में भी दहेज की प्रथा थी, जो 'स्वी धन' के नाम से जाना जाता था। स्मृतिकारों ने दहेज-प्रथा की विस्तृत विवेचना की है। मध्य युग में भी दहेज पर वधू का अधिकार होता था। मनु-स्मृतिकार ने विभिन्न अवसरों

पर प्रदान किए जाने वाले स्त्रीधन को निम्नलिखित 6 भागों में विभाजित किया है-

(i) अध्याग्नि,

(iv) भ्रातृदत्त,

(ii) आध्यावाहनिक,

(v) मातृदत्त, और

(iii) प्रीतिदत्त,

(vi) पितृदत्त।

मध्य युग की अन्तिम अवस्था में दहेज का यह प्राचीन रूप स्थायी नहीं रह सका। इस युग में आते-आते स्त्रियों की स्थिति भी गिरने लगी थी और उन्हें शिक्षा सम्पत्ति तथा अन्य अधिकारों के वंचित रखने का प्रयास किया गया था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उससे मध्योत्तर काल में भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का पता लगाया जाता है-

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

दहेज की कुप्रथा का सूत्रपात इसी युग से होता है।

(3) आधुनिक युग- आधुनिक भारतीय समाज में दहेज का जो रूप है, उसे वास्तव में एक सामाजिक अभिशाप मानना चाहिए। आज इसीलिए परिवार में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक महत्व दिया जाता है। परिवार में लड़कियों का पैदा होना दुःख और निराशा का कारण माना जाता है। समाज में उस व्यक्ति को बदकिस्मत माना जाता है जिसके यहाँ अधिक लड़कियाँ पैदा होती है। इसका मूल कारण समाज में व्याप्त दहेज प्रथा ही है। आज यह प्रथा अपने उग्र रूप में है तथा इससे अनेक प्रकार की समस्याओं को प्रोत्साहन मिलता है।

दहेज प्रथा के कारण
(Causes of Dowry System)

प्रत्येक समाज में जिन समस्याओं का जन्म होता है उनके पीछे कोई एक ही कारण नहीं होता है। अनेक कारण मिलकर समस्याओं को जन्म देते हैं। समाज में व्याप्त दहेज की समस्या के भी अनेक कारण है। संक्षेप में भारत में दहेज की प्रथा को जिन कारणों ने प्रोत्साहित किया है, वे निम्नलिखित है-

(1) धन का महत्व- जैसे ही जैसे समाज में धन के महत्व में वृद्धि होती जा रही है दहेज प्रथा का रूप भी उम्र होता जा रहा है। इससे ऐसा कहा जा सकता है कि धन के महत्व के कारण समाज में दहेज की प्रथा का विकास हुआ। व्यक्ति दहेज इसलिए लेता है कि इससे वह अपनी अनेक समस्याओं के समाधान की आकांक्षा रखता है।

(2) कुलीन विवाह- भारत में प्रचलित कुलीन विवाह की प्रथा ने भी दहेज को प्रोत्साहित किया है। कुलीन विवाह वह प्रथा है जिसके द्वारा प्रत्येक माता-पिता अपनी लड़की का विवाह ऊँचे कुल में करते हैं। ऊँचे कुल के परिवार सीमित संख्या में होते हैं। इसके विपरीत ऐसे परिवारों की संख्या अधिक होती है, जो इन परिवारों में अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं। इससे अर्थशास्त्र का 'माँग और पूर्ति का नियम' (Law of Demand and Supply) क्रियाशील होता है। 'अच्छे घर और वर' को प्राप्त करने के लिये होड़ लग जाती है और इस होड़ में उसी व्यक्ति को सफलता मिलती है, जो दहेज के रूप में अधिक से अधिक सम्पत्ति और वस्तुएँ प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है।

(3) अन्तर्विवाह- भारत में अन्तर्विवाह की प्रथा है जिसके कारण व्यक्ति को एक सीमित क्षेत्र में विवाह करना पड़ता है। इससे भी लड़कों के भाव (मूल्य) बढ़ जाते हैं और दहेज की प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) बाल-विवाह- बाल-विवाह की प्रथा के कारण लड़के और लड़कियाँ विवाह के अधिकार से वंचित हो जाते हैं तथा इस पर माता-पिता का पूरा नियंत्रण हो जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि माता-पिता अपने पुत्र का विवाह करने के लिये दहेज की माँग करने लगे।

(5) कन्या दान की प्रथा हिन्दू-विवाह में प्रचलित कन्यादान की प्रथा का महत्व भी दहेज प्रथा को प्रोत्साहित करने में कम नहीं है। जब कन्या का दान योग्य वर

को किया जाता था, तो इतनी सामग्री साथ में दी जाती थी कि कन्या एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण कर सके। कन्यादान के साथ जो वस्त्र, आभूषण सामग्री आदि दी जाती थी उसका मात्र यही उद्देश्य होता था कि नये घर में जाने पर कन्या को किसी भी प्रकार की तकलीफ न हो। जैसे ही जैसे परिस्थितियाँ बदलती गयीं कन्यादान में प्राप्त वस्तुओं पर से कन्या का अधिकार हट गया और माता-पिता का नियन्त्रण बढ़ता गया। पितृसत्तात्मक परिवारों के कारण धीरे-धीरे इस पर पुरुष का अधिकार हो गया और दहेज प्रथा का विकास हुआ।

(6) बेरोजगारी और निर्धनता भारतीय समाज की निर्धनता और नव-युवकों की बेरोजगारी ने भी दहेज प्रथा को प्रोत्साहित किया है। अनेक युवक जो शिक्षित होने के बावजूद भी रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते हैं, ऐसा प्रयास करते हैं कि किसी धनी तथा ऐसे व्यक्ति की कन्या से विवाह किया जाये, जो पहुँच वाले हों। इसके साथ ही अनेक व्यक्ति अपनी निर्धनता को समाप्त करने तथा कर्ज को चुकाने के लिए भी दहेज प्रथा का सहारा लेते है। माता-पिता की कुछ इस प्रकार की धारणा बनती जा रही है कि लड़के के पालन-पोषण, शिक्षा, रहन-सहन आदि अब तक जो खर्च किया गया है उसकी ब्याज सहित वसूली सिर्फ दहेज के द्वारा ही की जा सकती है।

(7) लड़कियों की कुरूपता- अनेक लड़कियाँ ऐसी होती है जिनका अच्छे परिवार में विवाह मात्र इसलिए नहीं हो पाता है कि वे कुरूप होती हैं। इसके लिए वर पक्ष को प्रलोभन दिया जाता है। दहेज इसी प्रकार का एक प्रलोभन होता है।

(8) सामाजिक प्रथा- आधुनिक परम्परात्मक भारतीय समाज में दहेज को सामाजिक प्रथा के रूप में स्वीकार किया जाता है। जिस प्रकार प्रथाओं की अवहेलना नहीं की जा सकती है, ठीक इसी प्रकार दहेज प्रथा की अवहेलना भी नहीं की जा सकती है। सामाजिक प्रथा के रूप में दहेज दिया और लिया जाता है।

(9) वैवाहिक अनिवार्यता - भारत वर्ष में विवाह को अनिवार्य धार्मिक संस्कार माना गया है। कोई भी व्यक्ति सामान्य अवस्था में संस्कार की उपेक्षा नहीं करता है। जो व्यक्ति विवाह नहीं करता है, उसे समाज में घृणा और शंका की दृष्टि से

देखा जाता है। खासकर स्त्रियाँ तो अविवाहित रह ही नहीं सकती है। उनके लिए तो विवाह करना अनिवार्य है। अविवाहित लड़की को घर में रखना पाप और समाज विरोधी कार्य समझा जाता है। इसलिये माता-पिता को लड़की का विवाह करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसके लिए दहेज की व्यवस्था करनी पड़ती है।

(10) यातायात के विकसित साधन जब तक देश में यातायात के साधनों का विकास नहीं हुआ था, दहेज प्रथा का रूप इतना उग्र नहीं था जितना कि आज है। यातायात, नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति विभिन्न स्थानों में रहकर काम करने को विवश होते हैं। इससे योग्य वर को तलाश करने और उसकी जाति, उपजाति आदि को प्रमाणित करने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई से मुक्ति पाने के लिए योग्य वर की तलाश दहेज देकर की जाने लगी। इससे भी दहेज प्रथा को प्रोत्साहन मिला है।

(11) सामाजिक मूल्य और दृष्टिकोण- दहेज प्रथा के जो अनेक कारण है, सामाजिक मूल्य और व्यक्तिगत दृष्टिकोण का महत्व सबसे अधिक है। दहेज लेना सामाजिक मूल्य हो गया है और व्यक्ति का दृष्टिकोण कुछ इस प्रकार हो गया है कि दहेज लेने में व्यक्ति अपनी शान और प्रतिष्ठा का अनुभव करता है। इससे भी दहेज प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है।

दहेज के लाभ या गुण

(Merits or Advantages of Dowry)

दहेज प्रथा से समाज को क्या लाभ होते हैं? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिनका उत्तर देने में कुछ कठिनाई का अनुभव होता है। इस कठिनाई का कारण यह है कि समाज में दहेज प्रथा के दुष्परिणाम ही देखने को मिलते हैं। फिर भी इस प्रथा के कुछ गुण अवश्य है। इन गुणों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) कुरूप कन्याओं का विवाह- दहेज प्रथा से जो सबसे बड़ा लाभ है, वह यह है कि इससे कुरूप लड़कियों के विवाह में सहायता मिलती है। अनेक व्यक्ति धन के लालच मैं आकर ऐसी कन्याओं से विवाह कर लेते हैं, जो कुरूप होती हैं।

(2) लड़कियों में शिक्षा प्रसार दहेज प्रथा के कारण देर तक लड़कियों का विवाह नहीं हो पाता है। अविवाहित लड़की घर में क्या करे? माता-पिता के पास एक ही उपाय रह जाता है कि वे अपनी कन्याओं को लिखाई-पढ़ाई के काम में लगाए रहें। इसका परिणाम यह होता है कि लड़कियों में शिक्षा का प्रसार होता है।

(3) बाल-विवाह पर रोक- दहेज प्रथा के कारण से माता-पिता शीघ्र ही अपनी कन्या का विवाह नहीं कर पाते हैं। इससे बाल-विवाह पर रोक लगती है और समाज में देर से विवाह (Late Marriage) को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) नई गृहस्थी को बसाने में सहायता दहेज प्रथा से अगला लाभ यह होता है कि इससे नई सम्पत्ति को अपनी गृहस्थी के बसाने में सहायता मिलती है। इस सहायता में अलंकरण, वस्त्र तथा इसी प्रकार के अन्य वस्तुओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

दहेज के दोष या हानियाँ
(Demerits or Disadvantages of Dowry)

यदि हम आधुनिक भारतीय हिन्दू विवाह पर दृष्टि डालें तो ऐसा प्रतीत होता है कि दहेज प्रथा के कारण आधुनिक भारतीय समाज में अनेक समस्याएँ विकसित हो गई हैं। संक्षेप में दहेज प्रथा के जो प्रमुख दोष है, उन्हें • निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) ऋणग्रस्तता- दहेज प्रथा का मौलिक दोष यह है कि इससे समाज में ऋणग्रस्तता की समस्या का जन्म होता है। इसका कारण यह है कि माता-पिता आर्थिक दृष्टि से इतने धनी नहीं होते हैं कि दहेज की राशि दे सकें। लड़की का विवाह करना अनिवार्य होता है और इसके लिए माता-पिता को कर्ज लेना पड़ता है। इससे परिवार और समाज में ऋणग्रस्तता की समस्या का विकास होता है।

(2) अनैतिकता को प्रोत्साहन- दहेज प्रथा के कारण लम्बी आयु तक लड़कियों का विवाह नहीं हो पाता है। अधिक आयु होने से वे यौन भावना से प्रेरित होकर अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करती हैं। परिणामस्वरूप समाज में अनैतिक वातावरण को प्रोत्साहन मिलता है। जिससे गर्भपात और भ्रूणहत्या जैसे अपराधों को प्रोत्साहन मिलता है।

(3) अपराधों में वृद्धि- दहेज प्रथा के कारण समाज में अनैतिकता को ही प्रोत्साहन नहीं मिलता, अपितु इससे अपराधों की संख्या में भी वृद्धि होती है। दहेज के लिए रूपये एकत्रित करने के लिए व्यक्ति को अनेक समाज विरोधी काम करने पड़ते हैं।

(4) आत्म-हत्याएँ- दहेज प्रथा के कारण समाज में दो प्रकार से आत्महत्या को प्रोत्साहन मिलता है-

(i) यदि माता-पिता दहेज नहीं दे सकते हैं, तो इससे लड़की का विवाह नहीं हो पाता है। इससे समाज में उनकी प्रतिष्ठा को चोट पहुँचती है। इस चोट को बर्दाश्त न कर सकने के कारण माता-पिता आत्महत्या का सहारा लेते हैं, और

(ii) लड़की को जब ऐसा आभास होता है कि उसके कारण माता-पिता को कष्ट है तथा उनकी प्रतिष्ठा को आँच पहुँची है तो लड़की स्वयं ही आत्महत्या कर लेती है।

(5) कन्या बलि- यद्यपि अब कन्या बलि का समाज में अस्तित्व नहीं है, किन्तु इससे पूर्व भारत में कन्या बलि की प्रथा का प्रचलन था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि लड़कियों के पैदा होने से दहेज आदि अनेक कारणों से व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा कम होती है। इसलिए अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए पैदा होते ही निर्ममता से लड़कियों का गला घोंट दिया जाता था।

(6) बेमेल विवाह- दहेज प्रथा के कारण बेमेल विवाहों को भी प्रोत्साहन मिलता है। अनेक ऐसे विवाहों के उदाहरण भारतीय समाज में है, जब 50 वर्ष के व्यक्ति का विवाह 10-12 वर्ष की कन्या से किया गया है।

डॉ. घुरिये ने इसीलिए लिखा है कि-"इस घातक प्रथा (दहेज प्रथा) के परिणामस्वरूप सब प्रकार के बेमेल विवाह हो जाया करते हैं।"।

(7) मानसिक वेदना- दहेज प्रथा के कारण परिवार के सदस्यों में मानसिक अशान्ति पैदा हो जाती है, क्योंकि पड़ोस और गाँव के व्यक्ति तरह-तरह के ताने मारते हैं। इससे घर के सभी व्यक्ति दुःखी, क्षुब्ध और परेशान रहते हैं। इस प्रकार दहेज प्रथा के परिणामस्वरूप परिवार के सदस्यों को मानसिक वेदना और कष्ट का अनुभव होता है।

(8) स्त्रियों की निम्न स्थिति- दहेज प्रथा के कारण समाज में स्वियों की स्थिति निम्न हो जाती है। इसका कारण यह है कि वधू के माता-पिता हीन भावना से वर के माता-पिता के पास जाते हैं और विवाह सम्बन्ध को स्वीकार करने की अनुमति माँगते हैं। पुरुष समझता है कि स्त्री उसके अधीन है, क्योंकि विवाह वर पक्ष वालों की इच्छा और कृपा पर होता है। इससे परिवार और समाज में स्त्रियों की स्थिति निम्न हो जाती है।

(9) निम्न जीवन-स्तर- दहेज प्रथा के कारण समाज में व्यक्तियों को निम्न जीवन-स्तर बिताना पड़ता है। इसका कारण यह है कि दहेज के लिए जब पैसे जोड़ने का प्रयास करते हैं, तो आवश्यकताओं की कटौती करनी पड़ती है। इससे व्यक्ति न तो अच्छा भोजन कर सकता है और न ही अच्छे कपड़े ही पहन सकता है। इससे समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष परिवार का सम्पूर्ण जीवन-स्तर निम्न हो जाता है।

(10) विवाह विच्छेद- अनेक उदाहरण ऐसे भी है, जब दहेज के कारण वैवाहिक संबंध समाप्त हो जाते हैं। अनेक बारातें इसलिए लौट जाती है कि दहेज में निश्चित किया गया रुपया और वस्तुएँ नहीं दी गई है।

(11) पारिवारिक कलहं दहेज देने की कोई सीमा नहीं होती है। जो व्यक्ति दहेज प्राप्त करते हैं, उन्हें चाहे कितना ही दहेज क्यों न दिया जाये, वे सन्तुष्ट नहीं होते हैं। वर पक्ष कभी भी इससे सन्तुष्ट नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि पारिवारिक कलह को प्रोत्साहन मिलता है।

दहेज प्रथा को समाप्त करने के सुझाव
(Suggestions to end the Dowry System)

दहेज प्रथा समाज के लिए भीषण अभिशाप है और इसे समाप्त किया जाना चाहिए। दहेज प्रथा की समस्या को समाप्त करने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं-

(1) साहित्य द्वारा प्रचार दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए आवश्यक है दहेज प्रथा से सम्बन्धित विरोधी साहित्य का निर्माण कराया जाये और इस साहित्य के

द्वारा इसकी बुराइयों को समाज के सामने लाया जाये। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में इस प्रकार के साहित्य को उचित स्थान दिया जाये।

(2) फिल्मों द्वारा प्रचार- दहेज प्रथा विरोधी फिल्मों के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाये और जो फिल्म निर्माता इस आशय की सर्वोत्तम फिल्म बनाये उसे पुरस्कृत किया जाये। दहेज प्रथा विरोधी फिल्मों को जनता को कर मुक्त (Tax Free) दिखाया जाये।

(3) रेडियो प्रसारण- दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए रेडियो वार्ताओं का आयोजन किया जाये तथा इसे प्रसारित किया जाये। सर्वोत्तम रेडियो वार्ता को पुरस्कार दिए जाएँ।

(4) अन्तर्जातीय विवाह अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित करके भी इस समस्या का समाधान किया जा सकता है या समस्या की मात्रा में कमी लाई जा सकती है।

(5) शिक्षा का प्रसार- दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए शिक्षा के प्रसार से सम्बन्धित दो सुझाव आवश्यक है-

(i) लड़के और लड़कियों में शिक्षा का प्रसार किया जाये, तथा

(i) सहशिक्षा को प्रोत्साहित किया जाये।

(6) दहेज विरोधी प्रचार दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि दहेज विरोधी प्रचार किया जाये। इससे एक ऐसे जनमत का निर्माण होगा, जिससे दहेज आदि की प्रथा अपने आप समाप्त हो जाएगी।

(7) वैधानिक हल- दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए सरकार ने इससे सम्बन्धित कानून का निर्माण किया है। दहेज निरोधक विधेयक (Dowry Prohibition Bill) को 22 मई, 1961 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो गई और यह कानून के रूप में सारे देश में लागू हो गया। 1984 तथा 1986 में इसे संशोधित किया गया। इस विधेयक की प्रमुख विशेषता निम्न है-

(i) यदि कोई व्यक्ति दहेज देता है, लेता है, या देने लेने में मदद करता है, तो उस व्यक्ति को 6 माह का कारावास और 5,000 रुपया जुर्माना होगा,

(ii) यदि कोई व्यक्ति वर या वधू के माता-पिता या संरक्षक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दहेज माँगता है, तो उसे भी 6 माह का कारावास और 5,000 रुपया जुर्माना होगा,

(ii) दहेज लेने या दहेज देने से सम्बन्धित यदि किसी प्रकार का समझौता किया जाएगा, तो यह गैर कानूनी होगा,

(iv) दहेज का उद्देश्य कन्या को लाभ देना मात्र होगा। यदि कोई व्यक्ति दहेज का रुपया आदि स्वीकार करता है तो उसे । साल के भीतर वह रुपया विवाहित लड़की को लौटाना पड़ेगा,

(v) दहेज प्रथा के अन्तर्गत होने वाले अपराधों पर न्यायालय तभी विचार करेगा, जबकि

(i) इस सम्बन्ध में लिखित शिकायत की जाये,

(i) यह शिकायत किसी प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में की जाये, और

(iii) यह शिकायत दहेज लेने या देने के एक वर्ष के अन्दर की जाये।

दहेज प्रथा को समाप्त करने का सबसे सरल और उचित मार्ग यह है कि मानव मूल्यों और दृष्टिकोणों परिवर्तन किया जाये। मात्र कानून की सहायता से समस्या का समाधान नहीं होगा।

तत्कालीन कानून मन्त्री श्री ए.के. सेन ने 'दहेज निरोधक अधिनियम, 1961' की विवेचना इन शब्दों में की है- "यह कानून पुस्तक का एक बेकार का पृष्ठ बनने के बजाय 'मानव आचरणों का मानदण्ड' (A norm of human conduct) प्रमाणित होगा। यह सही मार्गदर्शन करेगा और घृणित दहेज प्रथा सम्बन्धी सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन लाएगा। कानून बनने से दहेज प्रथा की पुरानी ताकत समाप्त हो जाएगी।"

13.11 तलाक की समस्या*(The Problem of Divorce)*

यौन प्रवृत्तियों को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए ही विवाह की संस्था का जन्म हुआ। विवाह प्रत्येक समाज की अनिवार्य संस्था है, भले ही इसका स्वरूप देश, काल और परिस्थितियों में अलग-अलग पाया जाता हो। अनेक स्वी पुरुषों को विवाह असीम सुख, शान्ति और सन्तोष प्रदान करता है और उनके जीवन को व्यवस्थित बनाता है। अनेक स्त्री-पुरुष के लिए विवाह, गृह कलह और पारिवारिक समस्याओं का कारण बनता है। अनेक स्त्री-पुरुष पर्याप्त बुद्धिमान होते हैं और वे ऐसा सोचते हैं कि 'प्रसन्नता तो एक मानसिक अवस्था है और विवाह तो साथी प्रदान करने, सामाजिक समझ की भावना को विकसित करने और दाम्पत्य स्नेह का आधार मात्र है।

इलियट और मेरिल ने तलाक की परिभाषा करते हुए लिखा है- 'तलाक हमेशा दुखान्त के नजदीक होता है, इसका अर्थ सामान्यतया नष्ट विश्वास, नष्ट सत्य और अन्तिम विसर्जन के रूप में लगाया जाता है। वास्तव में तलाक निश्चित रूप से दुःखद अन्त। अन्त है, जिसके द्वारा दो जीवन साथी एक दूसरे से अलग होकर भिन्न रास्तों का चुनाव करते हैं। आधुनिक युग में विवाह के बन्धन दिन प्रतिदिन शिथिल होते जा रहे हैं। इससे परिवार में अनेक समस्याओं का जन्म होता है। ये समस्याएँ परिवार को विघटन की ओर मोड़ देती है। पारिवारिक विघटन का अन्तिम और प्रत्यक्ष स्वरूप को ही तलाक के नाम से जाना जाता है।
तलाक का इतिहास- एक सामाजिक घटना के रूप में, तलाक का अस्तित्व समाज में व्यवस्थित दिवाह के साथ ही हुआ है। जहाँ तक तलाक की कानूनी व्यवस्था का प्रश्न है, हम्मुराबी की संहिता में भी तलाक की कानूनी व्यवस्था का उल्लेख है। इस संहिता के अनुसार विवाह स्त्री और पुरुष के बीच स्थापित एक व्यवस्था है। पति को पत्नी की तुलना में उच्च अधिकार प्राप्त थे, इसलिए उसे तलाक में भी स्वी की तुलना में अधिक अधिकार थे।
यहूदियों में तलाक पुरुषोचित विशेषाधिकार था। इसी प्रकार प्राचीन रोमन कानून के अन्तर्गत, विवाह के समय कन्या पिता की सत्ता से पति की सत्ता में हस्तान्तरित की जाती थी। रोमन कानून के अन्तर्गत पति को सर्वोच्च वैवाहिक

अधिकार प्राप्त थे। रोमन कानून के बाद ईसाइयत में पारस्परिक सहमति को तलाक का आधार बनाया गया।

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश होने के कारण यहाँ पर विवाह को एक संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। विवाह का अर्थ शारीरिक और इहलौकिक सम्बन्धों की अपेक्षा आध्यात्मिक और जन्म जन्मान्तर के सम्बन्धों के रूप में स्वीकार किया गया है। वैवाहिक बन्धनों को जन्म-जन्मातर का बन्धन माना गया है और इनकी उपेक्षा को स्वीकार नहीं किया गया है।

तलाक के प्रकार- तलाक सार्वकालिक और सार्वदेशिक क्रिया है। इसलिए इसके स्वरूप और प्रकार में समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इलियट और मेरिल ने तलाक के दो प्रकार बतलाए हैं-

(1) पूर्ण तलाक- यह तलाक का वह प्रकार है जिसमें वैवाहिक अधिकार और दायित्व पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं और स्त्री पुरुष का पूरी तरह सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। वे पृथक अस्तित्व के रूप में निवास करते हैं।

(2) आंशिक तलाक- आंशिक तलाक को दूसरे शब्दों में वैधानिक तलाक भी कहा जाता है। इसके द्वारा विवाह समाप्त नहीं होता है अपितु केवल यह पति और पत्नी को कानूनी पृथकता प्रदान करता है जिसके द्वारा एक बिस्तर और एक भोजनालय से पृथक हो जाते हैं। यह तलाक तब तक रहता है, जब तक कि स्त्री और पुरुष एक ही निवास में रहने को सहमत नहीं हो जाते हैं।

तलाक के वैधानिक आधार

तलाक एक प्रकार की वैधानिक क्रिया है। तलाक को कानून के द्वारा ही मान्यता प्रदान की जाती है। मौलिक प्रश्न यह है कि तलाक के क्या कारण है? वे कौन से आधार है जिनके आधार पर तलाक को वैधानिकता प्रदान की जा सकती है? इलियट और मेरिल ने तलाक के वैधानिक आधारों को निम्न भागों में बाँटा है।"

(1) बलात्कार,

(2) द्विपत्नी विवाह,

(3) क्रूरता,

(4) अपराध करना या अपराधी प्रवृत्ति,

(5) आदतन रूप से शराब पीना,
(6) परित्याग,
(7) छल, धोखा,
(8) गलतियाँ करना,
(9) नपुंसकता,
(10) पागलपन,
(11) सहायता न करना,
(12) मृत्यु।

भारत में तलाक

जहाँ तक वर्तमान युग में भारतवर्ष में तलाक का सम्बन्ध है, इसकी व्याख्या 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम (Hindu Marriage Act of 1955) के द्वारा की जाती है। यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में (जम्मू काश्मीर को छोड़कर) 18 मई, 1955 में लागू है इस अधिनियम से पूर्व भारतवर्ष में तलाक के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की कानूनी व्यवस्था नहीं थी। स्त्रियों की दशा अत्यंन्त ही दयनीय थी। पति को परमेश्वर की संज्ञा दी जाती थी, चाहे वह रोगी, कोढ़ी, शराबी, व्यभिचारी भले ही क्यों न हो। इसका परिणाम यह होता था कि स्त्री और पुरुष जीवन पर्यन्त क्लेश और नारकीय वेदना को भोगते रहते थे।

हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 13-14 में तलाक की व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अधीन कोई भी विवाह चाहे इस अधिनियम के पूर्व ही क्यों न हुआ हो, तलाक की सीमा में आ जाता है।

तलाक के आधार भारतवर्ष में पति-पत्नी दोनों को ही तलाक का वैधानिक अधिकार है। इसके लिए पति-पत्नी को प्रार्थना-पत्र देना होता है, जिसके आधार पर तलाक संभव हो सकता है। पति-पत्नी में से कोई भी निम्न आधारों पर विवाह बन्धन को समाप्त कर सकते हैं-

(1) प्रतिवादी यदि बलात्कार का आदी हो,

(2) प्रतिवादी यदि प्रार्थना-पत्र की तिथि से तीन वर्ष पूर्व से विषाक्त कोढ़ से पीड़ित हो, जिसका इलाज संभव न हो,

(3) प्रतिवादी प्रार्थना-पत्र की तिथि से तीन वर्ष पूर्व से मानसिक दृष्टि से इस प्रकार विकृत हो कि उसका इलाज ही सम्भव न हो,

(4) हिन्दू विवाह अधिनियम में धर्म परिवर्तन को भी तलाक का आधार माना गया है। यदि कोई पक्ष धर्म परिवर्तन करता है, तो दूसरे पक्ष को तलाक का कानूनी अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(5) विवाह के बाद निम्न यौन सम्बन्धी आधारों पर पत्नी अपने पति को तलाक दे सकती है-

(i) यदि पति बलात्कार का दोषी है,

(ii) यदि पति गुदामैथुन (Sadomony) का दोषी है, और

(iii) यदि वह पशु मैथुन (Beastiality) का दोषी है।

(6) संक्रामक यौन रोग भी हिन्दू विवाह अधिनियम में तलाक का आधार है। इसमें भी दूसरा पक्ष प्रार्थना- पत्र की तिथि से 3 वर्ष से ही संक्रामक यौन रोग से पीड़ित हो।

(7) यदि पति ने दूसरा विवाह कर लिया हो, तब भी पत्नी को तलाक लेने का अधिकार प्राप्त हो सकता है।

(8) यदि पति-पत्नी में से किसी ने संन्यास धारण कर लिया हो, तो दूसरे पक्ष को तलाक लेने का अधिकार प्राप्त है।

(9) यदि कोई भी पक्ष वैवाहिक अधिकारों की रक्षा और उनका सम्मान नहीं करता है, तो दूसरे पक्ष को तलाक का अधिकार रहता है।

(10) दोनों पक्षों में से किसी के बारे में यदि 7 वर्षों से जीवित रहना नहीं सुना गया है, तो दूसरे पक्ष को तलाक लेने का अधिकार है।

(11) अदालत में तलाक के लिए प्रार्थना-पत्र देने की तिथि से दो वर्षों के भीतर यदि पुनः सहवास आरम्भ न किया हो।

तलाक की प्रक्रिया- हिन्दू विवाह अधिनियम में तलाक की निम्न प्रक्रियाओं का उल्लेख है-

(1) तलाक के लिए प्रार्थना-पत्र न्यायालय में दिया जाएगा।

(2) यह प्रार्थना-पत्र विवाह की तिथि के तीन वर्ष बाद दिया जा सकता है।

(3) न्यायालय सभी मुद्दों की जाँच के उपरान्त ही किसी पक्ष को तलाक की आशा दे सकता है।

(4) यदि किसी को न्यायालय के माध्यम से विवाह विच्छेद की आज्ञा मिल जाती है, तो एक वर्ष की अवधि के अन्दर वे पुनः विवाह के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं।

(5) तलाक के उपरान्त न्यायालय प्रार्थी से विपक्षी को जीवन भर के लिए या जब तक विपक्षी दूसरा विवाह न कर ले, जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक व्यय दिला सकता है।

(6) इसके अतिरिक्त अदालत व्यय के सम्बन्ध में अन्य आदेश भी प्रसारित कर सकता है।

तलाक की आवश्यकता
(Need of Divorce)

आधुनिक बदली हुई परिस्थितियों में हिन्दू विवाह अविच्छेद नहीं रह गये है। यही कारण है कि आज हिन्दू विवाहों में तलाक की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। मौलिक प्रश्न यह है कि तलाक का क्या औचित्य (Justification) है? क्या कारण है, जो तलाक को आवश्यक बनाते हैं? आज हिन्दू विवाह अनेक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से जकड़ा हुआ है। तलाक को समाज में स्वीकृति न देना भी एक प्रकार का अन्धविश्वास है। इससे समाज को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ समाज में असन्तुलन और विघटन को जन्म देती हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि इन समस्याओं को समाप्त किया जाये। भारतीय सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में तलाक निम्न कारणों से आवश्यक है-

(1) दोहरी नैतिकता का अन्त- सैद्धान्तिक दृष्टि से हिन्दू विवाह जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। कोई भी पक्ष इस सम्बन्ध को समाप्त करने का नैतिक अधिकार नहीं रखता है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में पुरुष स्त्रियों का परित्याग करने का

अधिकार नहीं रखता है। यदि पुरुष वैधानिक दृष्टि से तलाक न भी दे, तो भी वे स्त्रियों को अनेक शारीरिक तथा मानसिक यातनाएँ भोगने के लिए बाध्य कर सकते हैं। इसका कारण भारतीय समाज की सामाजिक और आर्थिक विशेषताएँ है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि तलाक को स्वीकार किया जाये। अनेक अवसरों में तलाक स्त्री तथा पुरुष को नारकीय यातनाएँ भोगने से मुक्ति प्रदान करने में मदद करता है।

(2) समानता की गारन्टी- प्राचीन समय में भले ही परिवार में स्वी और पुरुष का जो स्थान रहा हो, आज की बदली परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि दोनों को समान अधिकार और सुविधाएँ प्रदान की जाये। ये अधिकार और सुविधाएँ तभी मिल सकेंगी, जब समाज में दोनों पक्षों की समान सामाजिक स्थिति होगी। तलाक का अधिकार स्त्री तथा पुरुष दोनों को समानता की गारन्टी देता है।

(3) सामाजिक सन्तुलन- सामाजिक सन्तुलन समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। सन्तुलन के अभाव में सामाजिक प्रगति और विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। सामाजिक सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि परिवार सन्तुलित रहे, क्योंकि परिवार समाज की मूलभूत इकाई है। आज समाज में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। स्वियों शिक्षा प्राप्त कर रही है, वे राजनीति तथा समाज में ऊँचे पदों पर आसीन हो रही है। औद्योगीकरण, नगरीकरण और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से वे अपने को अछूत नहीं रख सकती हैं। इन परिवर्तनों का स्वाभाविक परिणाम होता है, महिलाओं के विचारों और दृष्टिकोणों में परिवर्तन। इन बदली हुई परिस्थितियों में भी हम यदि महिलाओं को तलाक के अधिकार प्रदान नहीं करते हैं, तो समाज को सन्तुलित रखना अत्यन्त ही कठिन है। इस प्रकार समाज में सन्तुलन बनाए रखने के लिए तथा समाज के सभी सदस्यों को प्रगति के समान अवसर प्रदान करने के लिए अनिवार्य है कि समाज में तलाक के औचित्य को स्वीकार किया जाये।

(4) पारिवारिक संगठन- पारिवारिक संगठन की दृष्टि से भी समाज में तलाक अनिवार्य है। प्राचीन भारत में परिवारों का स्वरूप संयुक्त (Joint) होता था। इन

परिवारों में पति अगर दुराचारी और क्रूर होता था, तो भी इसका पत्नी पर कोई खास असर नहीं पड़ता था। आज परिवारों का आकार छोटा होता जा रहा है। इन परिवारों में यह आवश्यक हो जाता है कि पति-पत्नी के बीच सामान्य समझदारी तथा कर्तव्य भावना हो। इन परिवारों में यदि पुरुष का स्वभाव अच्छा न हो तथा यह परिवार की पर्याप्त जिम्मेदारी वहन न करता हो, तो ऐसी अवस्था में परिवार पत्नी के साक्षात 'नरक' हो जाता है। यह वातावरण परिवार को विघटित करके अनेक समस्याओं को जन्म देता है। इस नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाने, बच्चों के व्यक्तित्व को समुचित रूप से विकसित करने और पुनः परिवार को संगठित करने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों पक्षों को कुछ विशेष परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद करने की अनुमति प्रदान की जाये।

(5) वैवाहिक सुधार- हिन्दू विवाह के सिद्धान्तों का निर्माण भले ही महान आदर्शों से प्रेरित हो, किन्तु आज की बदली हुई परिस्थितियों में ये अनुपयुक्त प्रतीत हो रहे हैं। आज हिन्दू विवाह अनेक कुरीतियों और कुप्रथाओं का शिकार है। इन कुरीतियों में बाल-विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, बहुपत्नी विवाह आदि प्रमुख है। इन समस्त कुप्रथाओं का जन्म स्त्री की अज्ञानता और आर्थिक परनिर्भरता के कारण होता है। तलाक पत्नी को समान अधिकार प्रदान करके मानवीय भावनाओं का आदर करता है तथा सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने में मदद करता है।

(6) स्त्रियों की स्थिति में सुधार- विवाह को जन्म-जन्मान्तर का बन्धन बताकर तथा पतिव्रता की अवधारणा का प्रतिपादन करके भारत में विवाह को अविभाज्य सामाजिक संस्था बना दिया गया था। तभी तक स्त्रियों को परिवार में किसी प्रकार के कोई अधिकार नहीं थे। इससे उनकी पारिवारिक स्थिति अत्यन्त ही दयनीय हो गई थी। इनकी समाज में स्थिति अत्यन्त ही नीचे गिर गई थी। तलाक का अधिकार प्राप्त हो जाने पर स्त्री-पुरुष को परिवार में समान अधिकार प्राप्त हो गए हैं। समान अधिकारों के मिलने से उनमें जागरूकता आई है। वे जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कन्धा मिलाकर आगे बढ़ रही हैं। इन सभी परिस्थितियों के कारण हिन्दू परिवारों में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है।

तलाक के विरोध में तर्क
(Argument against Divorce)

वर्तमान भारतीय समाज की बदली हुई परिस्थितियों में तलाक अनिवार्य है। इस पर विद्वान एकमत नहीं है। अनेक विद्वान ऐसे भी हैं; जो तलाक का विरोध करते हैं। जो विद्वान तलाक का विरोध करते हैं, वे अपने कथन के समर्थन में निम्न तर्क देते हैं-

(1) पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन विद्वानों का विचार है कि भारत में विवाह को जन्म-जन्मातर का बन्धन इसलिए कहा गया था कि इससे पारिवारिक एकता सुदृढ़ होती है। समाज में तलाक को प्रोत्साहन देने से विवाह संस्था अस्थायी हो जाएगी और इस प्रकार पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन मिलेगा। इस दृष्टि से भारतीय समाज में तलाक अनुपयोगी है।

(2) आर्थिक समस्याओं का जन्म तलाक को स्वीकार करने के भारतीय समाज के सामने आर्थिक समस्या भी खड़ी हो जाती है। भारत में अधिकांश स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं है, उनमें शिक्षा का अभाव है। पुनर्विवाह को समाज मान्यता नहीं देता है। ऐसी स्थिति में तलाक स्वियों के लिए काफी महंगा पड़ सकता है। इससे उनके सामने अनेक आर्थिक समस्याएँ आएँगी। ऐसी अवस्था में भारतीय परिस्थितियों में तलाक अनिवार्य नहीं है।

(3) व्यक्तित्व विकास में बाधा तलाक से बालकों के व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। अभी हमारे देश में स्टेट नर्सरी (State Nursery) और बोर्डिंग हाउस (Boarding House) की उचित व्यवस्था का विकास नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में तलाक के बाद जो सबसे बड़ी समस्या समाज के सामने आती है, वह बच्चों के उचित लालन-पालन की। इस दृष्टि से भी भारतीय परिस्थितियों में तलाक उपयुक्त नहीं है।

(4) भारतीय आदर्शों के प्रतिकूल विद्वानों का विचार है कि तलाक भारतीय आदर्शों और मान्यताओं के भी प्रतिकूल है। विवाह को भारत में धार्मिक बन्धन माना गया है जिसे कभी भी समाप्त करने की अनुमति नहीं दी गई है। तलाक से स्वी-पुरुष को धार्मिक कार्यों के सम्पादन में भी कठिनाई होगी। इससे ऋण, यज्ञ,

मोक्ष आदि की अवधारणा को भी पूरा नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकार तलाक भारतीय समाज और सांस्कृतिक जीवन के प्रतिकूल है।

व्यक्तिगत दृष्टिकोण और मूल्यांकन
(Personal View and Evaluation)

लेखिका का स्पष्ट मत है कि वर्तमान भारतीय सामाजिक जीवन और परिस्थितियों में तलाक अनिवार्य घटना है। इससे डरना या बचना जहाँ एक ओर समाज को पीछे ले जाना है, वहीं दूसरी ओर समानतावादी आदर्शों की भी अवहेलना करना है। हमें एक ऐसे मार्ग की तलाश करनी है, जो तलाक को स्वीकार करे तथा इससे उत्पन्न समस्याओं का भी समाधान करे। इस समस्या पर मेरे अपने विचार इस प्रकार है-

1. विवाह सम्पन्न करने से पूर्व पति-पत्नी एक दूसरे के विचारों और मनोवृत्तियों से पर्याप्त परिचित हो जाये।
2. विवाह को मानव जीवन की स्थायी संस्था माने तथा अत्यन्त ही गम्भीर परिस्थितियों में ही तलाक की स्थिति को उत्पन्न किया जाये,
3. पति-पत्नी समर्पण, त्याग और समझदारी की भावना से रहे,
4. तलाक के बारे में जागरूकता उत्पन्न की जाये,
5. तलाक के बाद स्त्रियों की रोजगार आदि की व्यवस्था की जाये, और
6. बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के अवसरों की खोज की जाये, आदि

स्व -प्रगति परिक्षण

1. किसने कहा- 'विवाह स्वी और पुरूष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करवाने की एक संस्था है।'

(अ) बेस्टरमार्क (ब) लाबी (स) बोगार्डस (द) मैकाइवर

2. किसने कहा- 'हिन्दू विवाह एक संस्कार है।'

(अ) डॉ. राजवली पाण्डे (ब) के. एम. कपाड़िया (स) जी. एस. घुरिए(द) आगवर्न एवं निमकाफ

3. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम कब बना था।

(अ) 1956 (ब) 1957 (स) 1958 (द) 1959

4. Marriage and family in India पुस्तक के लेखक कौन है?
(अ) के. एम. कपाड़िया (ब) जी. एस. घुरिए(स) ए. आर. देसाई (द) एस. सी. दुबे
5. History of Dharmachakra के लेखक कौन है?
(अ) इरावती कर्वे (ब) पी. एन. प्रभु (स) पी. वी. काने (द) डॉ. राधाकृष्णन
6. धर्म और समाज पुस्तक के लेखक कौन है?
(अ) धर्म राधाकृष्णन (ब) एस. सी. दुबे(स) डी. एन. मजूमदार (द) ए. आर. देसाई

13.12 सारांश

विवाह एक ऐसा सामाजिक संस्थान है जो दो व्यक्तियों या उनके परिवारों के बीच वैधानिक, सांस्कृतिक, और सामाजिक संबंध स्थापित करता है। समाजशास्त्र में विवाह को एक महत्वपूर्ण संस्था माना गया है, जो न केवल व्यक्तिगत संबंधों को, बल्कि समाज की संरचना और संगठन को भी प्रभावित करता है।
विवाह के माध्यम से समाज में सामाजिक संबंध, वंश परंपरा, और सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण होता है। यह अध्याय विवाह की विभिन्न शैलियों (जैसे- मोनोगैमी, पॉलीगैमी, और समूह विवाह), इसके उद्देश्य (संतानोत्पत्ति, सामाजिक नियंत्रण, और संपत्ति हस्तांतरण), और इसके बदलते स्वरूप (जैसे लव मैरिज और अरेंज मैरिज) पर चर्चा करता है।
समाजशास्त्र विवाह को केवल एक व्यक्तिगत निर्णय नहीं मानता, बल्कि इसे समाज की स्थिरता और संतुलन बनाए रखने का माध्यम मानता है। बदलते समय के साथ, विवाह की परिभाषा और स्वरूप में भी परिवर्तन आया है, विशेष रूप से महिलाओं के अधिकारों, लिंग समानता, और स्वतंत्रता के संदर्भ में।

13.13 मुख्य शब्द

1. सामाजिक संस्थान: समाज में स्थापित ऐसी परंपराएँ या प्रणालियाँ जो जीवन को व्यवस्थित करती हैं।
2. वंश परंपरा: परिवार की पीढ़ियों तक चलने वाली परंपरा या वंशज।

3. पॉलीगैमी (बहुपत्नीत्व): एक व्यक्ति का एक से अधिक पत्नियों/पति से विवाह।

4. मोनोगैमी (एकपत्नीव्रत): एक समय में केवल एक व्यक्ति से विवाह करना।

5. सामाजिक नियंत्रण: समाज में व्यवहार और नैतिकता बनाए रखने की प्रक्रिया।

6. लैंगिक समानता: महिलाओं और पुरुषों के समान अधिकार और अवसर।

13.14 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तरः- 1. (स), 2. (ब), 3. (अ), 4. (अ), 5. (स), 6. (अ)।

13.15 संदर्भ ग्रन्थ

1.डॉ. जी.आर. माधुरे - भारतीय समाजशास्त्र की रूपरेखा, 1980।

2. एम. एन. श्रीनिवास - कास्ट इन मॉडर्न इंडिया एंड अदर एसेज, 1962।

3. इरविंग गोफमैन - द प्रजेंटेशन ऑफ सेल्फ इन एवरीडे लाइफ, 1959।

4. डॉ. अंबेडकर - जाति प्रथा और विवाह व्यवस्था पर विचार, 1936।

5. अगस्ट कॉम्टे - सोशियल डायनामिक्स (सामाजिक गतिशीलता), 1851।

13.16 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. विवाह की व्याख्या कीजिए। विवाह का समाजशास्त्रीय महत्व लिखिए। Define marriage. Write sociological importance of marriage.

2.विवाह के सामान्य स्वरूपों की विवेचना कीजिए।

Discuss general forms of marriage.

3. हिन्दू विवाह एक पवित्र संस्कार है। समझाइए।

Hindu marriage is a sacrament. Explain.

4. हिन्दू विवाह के प्रमुख प्रकार लिखिए।

Write main types of Hindu marriage.

5. हिन्दू विवाह की व्याख्या कीजिए।

Describe Hindu marriage.

6. भारत की प्रमुख वैवाहिक समस्याओं की विवेचना कीजिए।

Discuss major marital problems of India.

7.बाल-विवाह की व्याख्या कीजिए। बाल-विवाह की समस्या के निराकरण के उपाय लिखिए। Define chi'd marriage. Write the measures to eradicate the problem of child marriage.

8.बाल-विवाह के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए। Discuss the merits and demerits of child marriage.

9.विधवा विवाह का नैतिक औचित्य क्या है? What is ethical justification of widow marriage?

10.भारत में विधवा विवाह पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। Write short essay on widow marriage in India.

11.विधवा विवाह निषेध के दुष्परिणाम लिखिए। Write the evil effects of prohibition of widow marriage.

12.दहेज की व्याख्या कीजिए। भारत में दहेज प्रथा के कारणों की विवेचना कीजिए। Define Dowry. Discuss the causes of Dowry system in India.

13.दहेज-प्रथा के गुण-दोष लिखिए। Write the merits and demerits of Dowry system..

14.दहेज प्रथा की समस्या के निराकरण के उपायों की विवेचना कीजिए। Discuss the measures to eradicate the problem of Dowry system.

15. भारत में तलाक पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। Write short essay on Divorce in India.

16 . तलाक की व्याख्या कीजिए। तलाक के वैधानिक आधार लिखिए। Define Divorce. Write the legal basis of divorce.

17. समाज में तलाक की आवश्यकता को समझाइए।

Explain the need of Divorce in society.

18. तलाक का समाजशास्त्रीय महत्व लिखिए।

Write the sociological importance of Divorce.

19. तलाक के विरोध में तर्क प्रस्तुत कीजिए।

Give arguments against Divorce.

(व) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

टिप्पणी लिखिए :

Write short note on:

1.विवाह की अवधारणा Concept of marriage

2. एक विवाहMonogamy

3.बहुविवाह Polygamy

4.द्विपत्नी विवाहBigamy

5.बहुपति विवाह Polyandry

6.समूह विवाह Genogamy

7.विवाह की उत्पत्ति Origin of marriage

8..बाल विवाह की अवधारणा Concept of child marriage

9. हिन्दू विवाह एक संस्कार है।

Hindu marraige is a sacrament.

10.दहेज की वर्तमान अवधारणा

Modern concept of marriage

11. आधुनिक समाज में तलाक

Divorce in Modern society

इकाई -14

भारतीय समाज में परिवर्तन एवं रूपान्तरण (CHANGE AND TRANSFORMATION IN INDIAN SOCIETY)

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा
14.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ
14.5 भारत में सामाजिक परिवर्तन
14.6 सारांश
14.8 मुख्य शब्द
14.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
14.10 संदर्भ ग्रन्थ
14.11 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

गति और जीवन परस्पर अन्तः सम्बन्धित है। जीवन और समाज गतिशील हैं, परिवर्तनशील है, परिवर्तन ही प्रकृति है। प्रकृति का नियम ही परिवर्तन है, समाज इसी विशाल प्रकृति का एक अंग है। आज कोई भी समाज ऐसा नहीं है, जो परिवर्तन से प्रभावित न हो। सामाजिक परिवर्तन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, यह वह परिवर्तन है, जिसका सम्बन्ध समाज और सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन से है। परिवर्तन समाज और जीवन का आधार है। यदि दिन और रात के रूप में परिवर्तन नहीं होता, ऋतुओं में परिवर्तन नहीं होता, जीवन में बचपन, यौवनावस्था, बुढ़ापा और मृत्यु के रूप में परिवर्तन नहीं होता, तो क्या

समाज सुचारु रूप से चल सकता था? किन्तु ऐसा नहीं होता है, इसका कारण यह है कि परिवर्तन प्रकृति का आधारभूत नियम है।

समाज नदी के प्रवाह की भाँति गतिमान है, निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। जिस प्रकार नदी का पानी उद्गम स्थान से निकलकर कहीं भी किसी भी अवस्था में नहीं रुकता है ठीक इसी प्रकार समाज भी सतत परिवर्तित होता रहता है। यदि समाज में परिवर्तन न होते, तो आज मानव समाज आखेट अवस्था में ही पड़ा रहता। यह सामाजिक परिवर्तन है, जिसके कारण आज हम आखेट अवस्था में नहीं है। साथ ही आज जिस अवस्था में हैं, भविष्य में भी उसी में नहीं रहेंगे, अपितु और आगे जाएँगें।

14.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1.छात्रों को भारतीय समाज में हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक बदलावों के कारण और प्रभाव समझाना।

2.स्वतंत्रता संग्राम, जाति प्रथा, और महिलाओं के अधिकारों के संदर्भ में सामाजिक आंदोलनों का महत्व समझाना।

3. वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के प्रभावों को समझना।

4. गरीबी, बेरोजगारी, और असमानता जैसे मुद्दों का अध्ययन।

14.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा*(Meaning and definition of social change)*

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ
(Meaning of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन दो शब्दों से मिलकर बना है सामाजिक और परिवर्तन। संक्षेप में सामाजिक का अर्थ है- 'समाज से सम्बन्धित।' मैकाइवर ने समाज की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।' मैकाइवर द्वारा

समाज को वृहद अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। समाज के निर्माण में अनेक छोटी- बड़ी संस्थाओं का महत्व होता है और इन्हीं के योग से समाज निर्मित होता है। सामाजिक संतुलन बना रहे, इसलिए सामाजिक संस्थाओं की एक व्यवस्था होती है। ये संस्थाएँ और व्यवस्था पर अतः सम्बन्धित तथा अन्तः निर्भर होती है।

परिवर्तन 'भिन्नता' (Variation) की ओर संकेत करता है। यह भिन्नता किसी भी प्रकार की और किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। उदाहरण के लिए चौड़ी मोहरी के पैन्ट का स्थान संकरी मोहरी के द्वारा लिया जाना भी परिवर्तन है। लिखने में कलम का स्थान पेन के द्वारा लिखा जाना परिवर्तन है। जूतों की बनावट में परिवर्तन हो जाये, साईकिल के मॉडल में अन्तर आ जाये ये सब परिवर्तन हैं। प्रत्येक वस्तु का एक स्वरूप होता है। इस स्वरूप का निर्माण तत्कालीन परिस्थितियाँ करती हैं। यदि समय, परिस्थितियों और आवश्यकता मे परिवर्तन हो जाने से उस वस्तु का स्वरूप परिवर्तित हो जाये, तो इसे भी परिवर्तन कहा जायेगा। फिचर ने सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "परिवर्तन को संक्षेप में पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में अंतर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

परिवर्तन की विशेषताएँ

(Characteristics of Change)

परिवर्तन की जोविवेचना और परिभाषा दी गई है, इसके अनुसार परिवर्तन की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं -

1. परिवर्तन का तात्पर्य भिन्नता से,
2. यह भिन्नता आकार-प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है,
3. इस भिन्नता में वस्तु का पिछला आकार परिवर्तित हो जाता है,
4. वस्तु का जो नया आकार पिछले आकार को बदल देता है, परिवर्तन है।

विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार सामाजिक ढाँचे में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक

परिवर्तन है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन माना है। कुछ भी हो सामाजिक परिवर्तन समाज से सम्बन्धित रूप है। समाज के इन भागों में जब परिवर्तन होता है, तो इसे ही सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन की जो परिभाषाएँ दी हैं, वे निम्नलिखित है-

(1) डेविस "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते है, तो सामाजिक संग न अर्थात् समाज की संरचना और कार्यों में घटित होता।"

(2) गिन्सबर्ग सामाजिक परिवर्तन में मैं सामाजिक संरचना में परिवर्तन समझता हूँ।

(3) गिलिन तथा गिलिन "सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृति विधियों में परिवर्तन को कहते हैं।"

(4) जेन्सन "व्यक्तियों के कार्य करने और विचार करने के तरीकों में होने वाले संशोधनों को सामाजिक परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

(5) मिल्स सामाजिक परिवर्तन के द्वारा हम उसे संकेत करते हैं जो समय के साथ कार्यों, संस्थाओं अथवा उन व्यवस्थाओं में होता है जो सामाजिक संरचना एवं उनकी उत्पत्ति, विकास एवं पतन से सम्बन्धित होता है।

(6) जान्सन "अपने मौलिक अर्थ में, सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज की संरचना में होने वाले परिवर्तन से है।"

"सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा उन अन्तरों (Variations) और रूपान्तरों (Modification) के रूप में की जा सकती है, जो सामाजिक संरचना में घटित होते हैं।"

14.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ*(Characteristics of Social Change)*

समाज परिवर्तनशील है किन्तु परिवर्तन की गति में अंतर होता है। कुछ समाज शीघ्रता से परिवर्तित हो जाते हैं, जबकि कुछ समाजों को परिवर्तित होने में

पर्याप्त समय लगता है। यह सामाजिक मूल्य और मान्यताओं पर निर्भर करता है कि समाज किस गति से परिवर्तित होगा। उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं:-

(1) परिवर्तन समाज की प्रकृति में है अर्थात् यह समाज का मौलिक तत्व है। जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार समाज के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तन होना अनिवार्य है। यदि समाज में परिवर्तन अनिवार्य रूप से न होता तो हम आज भी उसी आखेट अवस्था में होते जहाँ शताब्दियों पहले थे। व्यक्ति की आवश्यकताएँ, उसके विचार और उसकी मनोवृत्तियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और इन्हीं के परिणामस्वरूप समाज में भी परिवर्तन होते रहते हैं।

(2) परिवर्तन अनिवार्य होते हुए भी इसकी गति में भिन्नता होती है अर्थात् एक समाज में परिवर्तन की गति तेज हो सकती है, जबकि दूसरे समाज में परिवर्तन की गति धीमी हो सकती है, किन्तु ऐसा कोई भी समाज नहीं है जहाँ परिवर्तन ही न होते हों। किस समाज में परिवर्तन किस गति से होंगे, यह उस समाज के संगठन और ढाँचे पर निर्भर करता है।

(3) सामाजिक परिवर्तन की गति चाहे जो भी हो, यह सार्वभौमिक है। प्रत्येक देश, काल और परिस्थितियों में इसका अस्तित्व रहा है और भविष्य में भी रहेगा। चाहे आदिम समाज हो या आधुनिक, सभ्य समाज हो या असभ्य, शिक्षित समाज हो या अशिक्षित, परिवर्तन सभी जगह पाया जाता है। यह प्रकृति का नियम है।

(4) सामाजिक परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध समाज में आने वाले अंतर से है। अर्थात् जो कल रहता है, समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष वह आज नहीं रहता है। सामाजिक संगठन, परिवार विवाह, प्रथा, परम्परा, रीति-रिवाज और रहन-सहन में आने वाले अन्तर (भिन्नता) का नाम ही सामाजिक परिवर्तन है।

(5) सामाजिक परिवर्तन अनिश्चित होता है। दूसरे शब्दों में इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। परिवर्तन कब और किस दिशा में होगा? इसके क्या परिणाम होंगे? इसका कौन-सा रूप अधिक प्रभावपूर्ण होगा ? इस सम्बन्ध में

निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि परिवर्तन निरन्तर और अनिश्चित होता है।

(6) परिवर्तन चक्रिक या एक देशीय हो सकता है। चक्रिका का तात्पर्य उस प्रकार के परिवर्तन से है जिसकी पुनरावृत्ति हो सकती है। जैसे पैन्ट की मोहरी पतली पहले चौड़ी, फिर संकरी और फिर चौड़ी और इसके बाद पुनः सँकरी। एक रैखिक परिवर्तन वह है जिसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है। जैसे कुदाली से खेती (Digging) करना फिर हल बैल और ट्रैक्टर से खेती करना। ट्रैक्टर से खेती करने के बाद फिर कुदाली से खेती करना संभव नहीं है।

(7) सामाजिक परिवर्तन को नापा नहीं जा सकता है। परिवर्तन भौतिक और अभौतिक दोनों वस्तुओं में होता है। भौतिक वस्तुओं में होने वाले परिवर्तन को नापा जा सकता है, किन्तु अभौतिक वस्तुओं में जो परिवर्तन होता है उसे नहीं नापा जा सकता है। व्यक्ति के आचार-विचार, रीति-रिवाज, मनोवृत्तियों आदि में किस मात्रा में परिवर्तन हो गया है, इसकी माप संभव नहीं है।

(8) सामाजिक परिवर्तन समाज को संगठित कर भी सकता है और समाज को विघटित भी। यह परिवर्तन की प्रकृति पर निर्भर करता है, इसलिए यह समाज को उन्नति और अवनति दोनों की ओर ले जा सकता है।\

14.5 भारत में सामाजिक परिवर्तन *(Social Change in India)*

20वीं शताब्दी मानव समाज के इतिहास में सबसे क्रान्तीकारी परिवर्तनों का युग है। इस युग का विश्व इतिहास शीघ्रता से परिवर्तित हो रहा है। इन परिवर्तनों के मूल में औद्योगिक प्रगति और वैज्ञानिक उन्नति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विज्ञान और औद्योगिकी ने परिवर्तन को इतनी गति प्रदान की है कि पलक झपकते ही प्रकृति का समाज का नक्शा बदल जाता है।

भारत विश्व का एक भाग है और इस परिवर्तन से अछूता नहीं है। भारत में भी इस प्रकार के क्रान्तीकारी परिवर्तन हो रहे हैं। 15 अगस्त, 1947 को भारतवर्ष का सबसे महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी दिन माना जाएगा। यह वह दिन है, जब

भारतवर्ष शताब्दियों की परतंत्रता के बाद स्वतंत्र हुआ था। स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी न किसी प्रकार कृषि व्यवसाय पर आधारित है। इसके साथ ही साथ भारत गाँवों का देश है और यहाँ की जनसंख्या का 83 प्रतिशत भाग गाँवों में निवास करता है। इसके साथ ही साथ भारत धर्म-प्रधान देश है। रूढ़ि, अन्धविश्वास और परम्पराएँ यहाँ के सामाजिक जीवन का सबसे सशक्त और महत्वपूर्ण भाग हैं और इनकी उपेक्षा सबसे बड़ा सामाजिक अपराध है। भारतीय जीवन दर्शन में त्याग और भोग का जितना अच्छा समन्वय किया गया है, ऐसा समन्वय दुनिया के किसी देश में नहीं किया गया है। भारतवर्ष में कर्म को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। कर्मों के फलों का भुगतान सबको करना होता है, कोई भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। उपर्युक्त सभी तत्वों में भारत के वातावरण में परिवर्तन को उतना महत्व नहीं दिया, जितना कि विश्व के अन्य देशों में इसे दिया जाता रहा है और यही कारण है कि भारतवर्ष में परिवर्तन की गति अत्यंत ही धीमी रही है।

स्वतंत्रता के बाद भारतवर्ष में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत करके समझने का प्रयास करेंगे।

भारत में सामाजिक परिवर्तन के कारण

(Cause of Social Change in India)

भारतवर्ष में सामाजिक परिवर्तन के कौन से कारण है? ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ हैं, जो भारतीय सामाजिक जीवन को परिवर्तित करती है। सामाजिक परिवर्तन के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है। अनेक कारक सामाजिक जीवन को परिवर्तित करते हैं। संक्षेप में भारतवर्ष में जो प्रमुख कारक सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है वे निम्नलिखित हैं -

(1) भारतीय स्वतंत्रता,

(2) औद्योगिक क्रान्ति तथा उसका अन्य देशों में प्रभाव,
(3) विज्ञान और औद्योगिकी की उन्नति,
(4) आर्थिक जीवन में परिवर्तन-कृषि के साथ ही उद्योगों का जीवन में गहत्व,
(5) घन के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण समाज में धन के महत्व में वृद्धि,
(6) सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन परम्परात्मक सामाजिक जीवन के प्रति उदासीनता,
(7) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव,
(8) पाश्चात्य शिक्षा और सहशिक्षा का महत्व,
(9) राजनैतिक जीवन में परिवर्तन,
(10) आवागमन तथा संचार के साधनों का विकास,
(11) औद्योगीकरण तथा नगरीकरण।

भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ
(Process of Social Change in India)

सामाजिक परिवर्तन एक प्रक्रिया है। इसके अनुसार समाज निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। इस प्रक्रिया के कुछ विशिष्ट लक्षण या विशेषताएँ होती हैं। भारतवर्ष में जो सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं, इसके कुछ विशिष्ट लक्षण हैं। ये लक्षण सामाजिक प्रक्रिया के रूप में समाज को परिवर्तित करते हैं। भारतवर्ष में सामाजिक परिवर्तन की जो प्रक्रियाएँ हैं उनके कुछ प्रमुख लक्षणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) संस्कृतीकरण (Sanskritization),
(2) आधुनिकीकरण (Modernization),
(3) पश्चिमीकरण (Westernization),
(4) धर्मनिरपेक्षीकरण (Secularization),
(5) औद्योगिकीकरण (Industrialization),
(6) नगरीकरण (Urbanization)

सामाजिक परिवर्तन का भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर प्रभाव

(Effects of Social Change on Indian Social Institutions)

सामाजिक परिवर्तन का जीवन के हर क्षेत्र में प्रभाव पड़ा है। प्रमुख भारतीय सामाजिक संस्थाओं का सामाजिक परिवर्तन पर जो प्रभाव पड़ा है, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) परिवार पर प्रभाव परिवार प्रत्येक समाज की मौलिक संस्था है। परिवार का व्यक्ति के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन का परिवार पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। सामाजिक परिवर्तन का जो प्रभाव परिवर्तन पर पड़ा है, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(a) परिवार के कार्यों में शिथिलता आती जा रही है,

(b) अपने सदस्यों पर परिवार का नियंत्रण धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है,

(c) पारिवारिक सदस्यों के सम्बन्ध पहले की अपेक्षा अधिक शिथिल होते जा रहे हैं और सदस्यों के बीच कलह, द्वेष तथा तनावपूर्ण सम्बन्ध विकसित होते जा रहे हैं,

(d) सदस्य परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का कठोरता से निर्वाह करने में असफल होते जा रहे हैं,

(e) परिवार में स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति निरन्तर उच्च होती जा रही है,

(f) औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप परिवार के आर्थिक कार्यों में भी शिथिलता आती जा रही है।,

(g) परिवार के मनोरंजन और समाजीकरण से सम्बन्धित कार्य भी शिथिल होते जा रहे हैं, और

(h) संयुक्त परिवारों के स्थान पर व्यक्तिगत परिवारों में वृद्धि होती जा रही है।

(2) विवाह पर प्रभाव परिवार के बाद विवाह समाज की दूसरी महत्वपूर्ण संस्था है। भारतवर्ष में विवाह की प्रथा पर सामाजिक परिवर्तन का जो प्रभाव है, उसे निम्निलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) बाल-विवाह की प्रथा समाप्त होती जा रही है और इसे अब पिछड़ेपन की निशानी माना जाने लगा। वैज्ञानिक आयु में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(b) विवाह में जो परम्परात्मक और रूढ़िवादी परम्पराएँ थीं, वे धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं,

(c) विवाह में अब माता-पिता की इच्छा को महत्व न देकर लड़के और लड़कियों की इच्छा को प्राथमिक महत्व दिया जाने लगा है,

(d) विधवा विवाह के सम्बन्ध में भी भारतीय जनता के दृष्टिकोणों में परिवर्तन होता जा रहा है। अब विधवा को अपशकुन नहीं माना जाता है तथा उसे अब अभागिन नहीं माना जाता है,

(e) यद्यपि दहेज-प्रथा में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, किन्तु यदि पढ़े-लिखे युवक और युवतियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा की जाये, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि इसके प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(f) प्रेम विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(g) विवाह को जन्म-जन्मान्तर का संबंध नहीं माना जाता है तथा पति-पत्नी एक दूसरे को साथी के रूप में स्वीकार करते हैं। आज विवाह विच्छेद की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(3) जाति पर प्रभाव जाति भारतीय समाज की मौलिक विशेषता है। सामाजिक परिवर्तन का जाति व्यवस्था पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा है-

(a) जाति प्रथा में निरन्तर शिथिलता आती जा रही है,

(b) जाति प्रथा शिथिल होती जा रही है, किन्तु जातिवाद की भावना में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(c) जाति-व्यवस्था में जो खान-पान से संबंधित प्रतिबंध थे, वे अब शिथिल होते जा रहे हैं,

(d) जाति के जो परम्परात्मक व्यवसाय होते थे, इसमें भी निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। अब व्यवसाय जातिगत आधार पर न लिया जाकर रोजगार और कुशलता के आधार पर लिया जाने लगा है,

(e) जाति और उपजातियों से सम्बन्धित जो ऊँच-नीच की भावना थी, वह भी समाप्त होती जा रही है। प्रत्येक जाति को सामाजिक संस्तरण में जो पद प्राप्त होता है उसका आधार पद (Status) और योग्यता (Ability) को माना जाता है,

(f) यातायात, संचार-साधनों और शिक्षा में वृद्धि के कारण अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(4) आर्थिक जीवन पर प्रभाव सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक जीवन पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा है,

(a) आय में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(b) आमदनी में वृद्धि होने का परिणाम यह हुआ है कि रहन-सहन के स्तर में भी निरन्तर वृद्धि हुई,

(c) आर्थिक जीवन में सहकारिता के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(d) कृषि के साथ ही उद्योगों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है.

(e) कृषि की नवीन विधियों का उपयोग किया जा रहा है।

(5) धार्मिक तथा नैतिक जीवन पर प्रभाव धार्मिक और नैतिक जीवन पर सामाजिक परिवर्तन को जो प्रभाव पड़ा है, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) धर्म के महत्व को निरन्तर कमी आती जा रही है तथा धार्मिक जीवन से संबंधित अंधविश्वास और रूढ़िवाद समाप्त होती जा रही हैं.

(b) परम्परात्मक नैतिकता समाप्त होती जा रही है तथा नैतिकता की नवीन व्यवस्थाएँ की जाने लगी है।

(c) अपराध और समाज विरोधी कार्यों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(d) मद्यपान और जुआ खेलने की सामाजिक आदतों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है,

(e) यौन अपराधों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। यौन अपराधों में समलिंगीय और विषमलिंगीय दोनों ही प्रकार के अपराधी की संख्या में वृद्धि होती जा रही है,

(f) मनुष्य के दृष्टिकोण में भी निरन्तर परिवर्तन हो रहे है, और

(g) मनोरंजन तथा शिक्षा संस्थाएँ भी परिवर्तित हो रही हैं।

स्व -प्रगति परिक्षण

1.सामाजिक परिवर्तन और रूपांतरण में अंतर बताइए।

2. वैश्वीकरण का प्रभाव क्या है?

3. औद्योगिकीकरण ने समाज को कैसे बदला?

14.6 सारांश

भारतीय समाज में परिवर्तन और रूपांतरण एक सतत प्रक्रिया है, जो समय, संस्कृति, आर्थिक स्थिति, और सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से संचालित होती है। यह अध्याय भारतीय समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, परंपराओं, और बदलते स्वरूप पर प्रकाश डालता है।

परिवर्तन का तात्पर्य समाज में होने वाले छोटे-बड़े परिवर्तनों से है, जैसे सामाजिक संरचना, आर्थिक गतिविधियाँ, और सांस्कृतिक मान्यताओं में बदलाव। रूपांतरण परिवर्तन का अधिक व्यापक और स्थायी स्वरूप है, जिसमें समाज की मूलभूत संरचनाएँ, जैसे जाति व्यवस्था, परिवार प्रणाली, और लैंगिक भूमिकाएँ बदलती हैं। यह अध्याय स्वतंत्रता संग्राम, औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, और डिजिटल युग के कारण हुए परिवर्तनों का वर्णन करता है। साथ ही, यह जाति-व्यवस्था, शहरीकरण, स्त्री-शिक्षा, और सामाजिक न्याय जैसे पहलुओं को भी संबोधित करता है। इसमें सामाजिक आंदोलनों और सुधारों की भूमिका पर विशेष बल दिया गया है।यह अध्याय छात्रों को भारतीय समाज की विविधता और इसमें हो रहे परिवर्तनों की व्यापक समझ प्रदान करता है। यह उन्हें सामाजिक समस्याओं को पहचानने और उनके समाधान में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करता है। छात्रों को यह सिखाया जाता है कि कैसे प्रगति और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित कर एक समृद्ध और सशक्त समाज की नींव रखी जा सकती है।

14.7 मुख्य शब्द

1. परिवर्तन: समाज में होने वाले छोटे-बड़े बदलाव।

2. रूपांतरण: किसी प्रणाली या संरचना का गहन और स्थायी परिवर्तन।

3. आधुनिकीकरण: परंपरागत व्यवस्थाओं के स्थान पर आधुनिक विचारों और प्रणालियों को अपनाना।

4. वैश्वीकरण: विश्व भर के समाजों और संस्कृतियों के आपस में जुड़ने की प्रक्रिया।

5. औद्योगिकीकरण: कृषि आधारित समाज से उद्योग आधारित समाज में परिवर्तन।

6. सामाजिक न्याय: समाज में समानता और निष्पक्षता सुनिश्चित करना।

7. सांस्कृतिक समन्वय: विभिन्न संस्कृतियों का मेल और उनकी सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व।

14.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:1परिवर्तन: छोटे-बड़े बदलाव (जैसे रीति-रिवाजों में)।रूपांतरण: स्थायी और व्यापक बदलाव (जैसे जाति प्रथा का कमजोर होना)।

उत्तर:2आर्थिक उदारीकरण, तकनीकी प्रगति, और सांस्कृतिक समन्वय।जीवनशैली में बदलाव और रोजगार के नए अवसर।

उत्तर:3 शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार, और रोजगार बढ़ा।पर्यावरणीय समस्याएँ और असमानता भी बढ़ी।

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. एम.एन. श्रीनिवास - सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया, 1966।

2. डॉ. बी.आर. अंबेडकर - जाति का उन्मूलन (Annihilation of Caste), 1936।

3. जवाहरलाल नेहरू - डिस्कवरी ऑफ इंडिया (भारत एक खोज), 1946।

4. आशीष नंदी - द इंटिमेट एनिमी: लॉस एंड रिकवरी ऑफ सेल्फ अंडर कर्नेलिज्म, 1983।

5. इरविंग गोफमैन - फ्रेम एनालिसिस: एन एसे ऑन द ऑर्गनाइजेशन ऑफ एक्सपीरियंस, 1974।

14.10 अभ्यास प्रश्न

(अ) निवन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या कीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

Define social change and discuss its Important characteristics.

2. सामाजिक परिवर्तन का भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।

Discuss the influence of social change on major Indian social institutions.

3. भारत में सामाजिक परिवर्तन की, प्रक्रिया पर एक निबंध लिखिये।

Write an essay on the process of social change in India.

4. सामाजिक परिवर्तन के कारण भारतीय समाज के रूपान्तरण पर एक लेख लिखिये।

Write an Essay on transformation of India caused by Social change.

(ब) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Type Questions)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write short note on the following:

1. भारतीय समाज पर सामाजिक प्रभाव।

Social impact on Indian Society.

2. भारतीय समाज का आर्थिक रूपान्तरण।

Economic transformation of Indian Society

इकाई -15
राष्ट्र - निर्माण
(NATION BUILDING)

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 राष्ट्र की परिभाषा
15.4 राष्ट्रीय चरित्र
15.5 राष्ट्र - निर्माण की अवधारणा
15.6 भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या की पृष्ठभूमि
15.7 राष्ट्र-निर्माण में समाजशास्त्र की भूमिका
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
15.11 संदर्भ सूची
15.12 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

राष्ट्र निर्माण प्राचीनतम अवधारणा है और इसका सम्बन्ध राष्ट्रीय अस्मिता से है, जिसका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय है। विश्व के प्रायः सभी देशों में इस प्रकार की भावना पाई जाती रही है। राष्ट्र निर्माण के लिये सबसे पहले राष्ट्रवाद का विकास होना अनिवार्य है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को समझने के लिये राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की अवधारणाओं को समझना आवश्यक है। वर्तमान परिवेश में इसका महत्व और अधिक हो गया है। इसका कारण यह है कि वर्तमान समाज वैश्वीकरण की ओर बढ़ता जा रहा है। संचार साधनों के विकास के कारण आज विश्व की दूरियाँ

निरन्तर कम होती जा रही है। आवागमन और संचार साधनों के विकास के कारण आज 'विश्व ग्राम' की अवधारणा को बल मिल रहा है। शिक्षा का निरन्तर प्रचार और प्रसार हो रहा हैं इससे लोगों में जागरूकता का विकास हो रहा है। इस जागरूकता के कारण विश्व समस्याओं का एकीकरण हो रहा है। इस एकीकरण के कारण प्रत्येक राष्ट्र अपनी अलग पहचान की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

।

15.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. राष्ट्र निर्माण के लिए नागरिकों की जिम्मेदारी और भूमिका।
2. शिक्षा, विज्ञान, और आर्थिक विकास के महत्व को पहचानना।
3. सांस्कृतिक विविधता के बावजूद एकता बनाए रखने का महत्व।
4. समाज में समानता, न्याय, और स्वतंत्रता के आदर्शों को प्रोत्साहित करना।

15.3 राष्ट्र की परिभाषा(Definition of Nation)

भारतीय संदर्भ में राष्ट्र निर्माण एक महती आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि भारत में अनेक जाति, धर्म, सम्प्रदाय विचारधारा और मान्यताओं के व्यक्ति निवास करते हैं। आजादी के बाद देश अनेक छोटी बड़ी रियासतों में विभक्त था, जिनकी अलग पहचान और अस्मिता थी। आजादी के बाद इन सभी राज्यों के एकीकरण की प्रक्रिया को सम्पन्न किया गया और इस प्रकार एक गणराज्य के रूप में भारत की पहचान बनी। संविधान की प्रस्तावना में ही 'हम भारत के लोग' को महत्व दिया गया तथा जाति, धर्म, वर्ग, विश्वास और पूजा के आधार पर सभी को समानता की गारन्टी प्रदान की गई। इस गारन्टी से राष्ट्रीयता की पहचान हुई। इस राष्ट्रीयता के कारण सभी की पहचान जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय से ऊपर उठकर एक भारतीय के रूप में हुई तथा सभी को राष्ट्रीय चिन्तन की प्रेरणा मिली और नागरिकों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हुआ। राष्ट्र निर्माण की अवधारणा को परिभाषित करने से पहले यह जानना

आवश्यक है कि राष्ट्र क्या है तथा राष्ट्र किन तत्वों से मिलकर बनता है। इसलिए राष्ट्र की अवधारणा को समझना आवश्यक है, जो इस प्रकार है-

राष्ट्र की अनेक परिभाषाएँ दी गई है, इनमें से कुछ इस प्रकार है-

(1) मैक्स वेबर 'एक राष्ट्र भावनाओं का एक समुदाय है जो कि अपने ही राज्य में अपने को भली प्रकार अभिव्यक्त कर सकता है।।

(2) ब्राइस - 'एक राष्ट्र एक राष्ट्रीयता है जिसने अपने को एक राजनीतिक समूह के रूप में संगठित कर लिया है, चाहे यह राष्ट्र स्वतन्त्र हो या स्वतन्त्र होने की इच्छा रखता हो।'

इस प्रकार राष्ट्र एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों का समूह है जो हम की भावनाओं से ओत-प्रोत है, जो या तो सर्वसत्ता सम्पन्न हैं या सर्वसत्ता सम्पन्न होने की इच्छा रखते हैं।

राष्ट्र की विशेषताएँ

(Characteristics of a Nation)

राष्ट्र की विशेषताओं में उन सभी तत्वों का अध्ययन किया जाता है जो राष्ट्र के निर्माण में सहायक होते हैं। राष्ट्र के निर्माण के दो आधार है- कुछ विद्वानों ने राष्ट्र के वैषयिक आधार (Objective basis) पर अधिक जोर दिया है तो कुछ प्रतीतिक आधार (Subjective basis) पर।

(1) वैषयिक तत्त्व- राष्ट्र के निर्माणक वैषयिक तत्त्वों में मुख्य इस प्रकार हैः

(i) भौगोलिक एकता - अधिकतर राष्ट्रों के पास एक सामान्य प्रदेश है। यह आवश्यक भी प्रतीत होता है क्योंकि एक साथ रहने से राष्ट्र के लिए यह सरल हो जाता है कि उसके अनेक प्रकार के सामान्य अनुभव हों। राष्ट्रीय भावना भौगोलिक चिह्नों-जैसे कि इंग्लैण्ड में डोवर, जापान में फुजियमा, जर्मनी में रहाइन (Rhine) की चाक की चट्टानों (Chalk-cliffs) से सम्बन्धित होती है। बार्कर ने प्रदेश को एक मौलिक वस्तु बताते हुए कहा है "यदि मुझे राष्ट्र बनाने के लिए एक फार्मूला निकालना पड़ता तो मैं कहता, पहले एक भूभाग ले लीजिए। इसके निवासियों को एक साथ बनाये रखने के लिए किसी तरह का संगठन (या राज्य) जोड़ दीजिए। यदि पहले कोई एक भाषा नहीं थी तो एक भाषा को अपने प्रभाव के लिए फैलने

दीजिए। कुछ विश्वासो और पूजाओं को समुदाय के मनुष्यों की भावनाओं को एक करने दीजिये और तब कुछ समय के बाद शताब्दियों के प्रभाव से एक राष्ट्र अपने आप बन जायेगा।" इस विशेषता का अपवाद केवल यहूदी राष्ट्र के रूप में है, जो बिना किसी भूभाग के करीब 30 शताब्दियों तक चला आया और अन्त में जिन्होंने फिलिस्तीन में एक सामान्य भू-भाग को पा लिया। इस राष्ट्र के सदस्य यद्यपि सामान्य भू-भाग में नहीं रहते थे, तथापि उनकी सामुदायिक भावनाएँ एक निश्चित सामान्य भू-भाग की ओर केन्द्रित थी, और वह भू-भाग फिलिस्तीन था।

(ii) भाषा की एकता राष्ट्रीयता के भावना के विकास में भाषा का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि भाषा

मानवीय भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। राष्ट्रीय एकता के लिए एक सामान्य भाषा का होना आवश्यक है क्योंकि भाषा के माध्यम से समान अनुभवों और भावनाओं में भाग लिया जा सकता है। बार्कर कहते हैं "क्योंकि विचार और भावना का वाणी से गहरा सादृश्य है, इसलिए राष्ट्र और भाषा में भी निकटतम सादृश्य अकेला शब्द नहीं है। प्रत्येक शब्द सम्बन्धों से युक्त है जो भावनाओं को स्पर्श करते है और विचारों को जागृत करतें हैं। आप इन भावनाओं और विचारों में भाग नहीं ले सकते जब तक कि इन सम्बन्धों की कुंजी की सहायता से आप खोल नहीं सकते हैं।"।

भाषा राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है किन्तु अनेक देश ऐसे हैं जहाँ अनेक भाषाएँ पाई जाती है। भारत इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

(iii) प्रजाति की, समानता आर्थर कीथ (Arther Keith) ने प्रजाति और राष्ट्र में भेद नहीं माना है। एक राष्ट्र के अन्दर अनेक प्रजाति के लोग हो सकते हैं। भारत और अमेरिका ऐसे राष्ट्र है जहाँ अनेक प्रजातियाँ निवास करती है। किन्तु सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता के लिए सभी नागरिकों को एक ही प्रजाति का होना आवश्यक है या यह सोचते हों कि वे एक प्रजाति के है। प्रजातीय एकता वाले राष्ट्रों में सदस्यों के और रूचियों में समानता होती है।

(iv) धर्म की समानता- उपर्युक्त तत्त्वों के साथ ही यदि धर्म की एकता भी होती है, तो राष्ट्र की एकता पूरी हो जाती है। धर्म की एकता राष्ट्रीयता की भावना के

विकास में सहायक होती है। धर्म की एकता राष्ट्र का आवश्यक तत्त्व नहीं है। अनेक आधुनिक राष्ट्र इस तत्व के बगैर जीवित है। भारतवर्ष एक धर्म निरपेक्ष राज्य (Secular state) है।

(v) राजनीतिक एकता और स्वतन्त्रता कुछ विद्वानों के अनुसार राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए राजनीतिक एकता और स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। मध्यकाल में जब भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, तब राष्ट्रीयता की भावना का इतना अधिक विकास नहीं हुआ था जितना कि आज की राजनीतिक एकता से हुआ है। अंग्रेजो के शासनकाल में देश में राष्ट्रीयता की भावना का विकास उतना अधिक नहीं हुआ था। राजनीतिक एकता के अभाव में भी राष्ट्र कायम रह सकता है। बार्न्स और बेकर (Barnes & Becker) ने लिखा है 'जब 1772- 1794 में जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस ने पोलैण्ड के टुकड़े कर दिये थे, पोलिश राज्य गायब हो गया था, फिर भी पोलिश राष्ट्रीय समूह कायम रहा, विकसित होता रहा और कार्यों में दृढ़ता प्रदर्शित करता रहा।'

(2) प्रतीतिक तत्त्व-वैषयिक तत्त्वों की अपेक्षा प्रतीतिक तत्व राष्ट्र के निर्माण में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इन बन्धनों का आधार मानसिक है, मनुष्य की भावनाएँ और मानसिक बन्धन अधिक दृढ़ होते हैं। सामुदायिक भावना ही इसकी मुख्य विशेषता है। हर्ज (Hertz) ने लिखा है, राष्ट्र का निर्माण करने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित पाँच बातों का होना आवश्यक है-

(a) मनुष्यों में एक राष्ट्र होने की इच्छा होनी चाहिए,

(b) उन्हें एकता और दृढ़ता के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए, और यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि वहाँ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक समानता हो,

(c) उन्हें विदेशी शासन से मुक्त होना चाहिये,

(d) उनमें विशेषकत्व (Distinctiveness) तथा अपूर्वता (Originality) की विशेष इच्छा होनी चाहिये, (e) उन्हें प्रतिष्ठा, गौरव, आदर और नैतिक अथवा सैनिक प्रभुत्व के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील होना चाहिये।

एकमत्य और सहयोग के महत्व को स्पष्ट करते हुए म्योर (Muir) कहते हैं- 'एक राष्ट्र इसलिए एक राष्ट्र है क्योंकि उसके निवासी अनुरागपूर्वक और एकमत से अपने को ऐसा समझते हैं।, रेनन और मिल (Renan and Mill) भी इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं। (राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है) "वहाँ एक गौरवपूर्ण इतिहास, वास्तविक यश, सामान्य अनुभव और बलिदान, गर्व तथा लज्जा, हर्ष तथा विषाद की भावनाओं की सजगता हो जो कि भूतकाल से सम्बन्धित हो। आलपोर्ट भी इसका समर्थन करते हुए कहते है, यह उन परम्पराओं, वर्तमान स्वार्थों और आदर्शों की चेतना में स्थित है जिनके प्रति सभी व्यक्ति समान ढंग से संलग्न है।"

प्रतीतिक तत्त्वों में मुख्य इस प्रकार है-

(i) सामुदायिक भावना (Community sentiment)- ओपेनहाइमर के अनुसार 'राष्ट्रीयता की चेतना राष्ट्र को बनाती है।' राष्ट्र के निर्माणक तत्वों में सामुदायिक भावना इतनी महत्त्वपूर्ण है कि मैकआइवर ने उससे ही राष्ट्रीयता की परिभाषा की है। उन्हों के शब्दों में 'अतः हम राष्ट्रीयता की परिभाषा एक इस प्रकार की सामुदायिक भावना के रूप में करते हैं जो कि ऐतिहासिक परिस्थितियों से उत्पन्न होती है और इस हद तक तथा इतने दृढ़ सामान्य मनोवैज्ञानिक कारकों से पुष्ट होती है कि उसको अनुभव करने वाले विशेष तौर से या अकेले अपनी एक सामान्य सरकार बनाने की इच्छा करते हैं।' यह भावना स्वार्थ रहित एवं भेद रहित होती है। सामुदायिक भावना परस्पर सहयोग और सहानुभूति की भावना को जागृत करती है।

(ii) हितों तथा परम्पराओं की समानता (Common interests & traditions)- परम्पराओं की एकता भी राष्ट्र निमार्ण में एक महत्वपूर्ण कारक है। इसके अंदर सांस्कृतिक और ऐतिहासिक, दोनों परम्पराओं को लिया जा सकता है। एक सूत्र में बांधने के लिए यह कह देना ही पर्याप्त होता है कि वे सब राम-कृष्ण की सन्तानें है, गाँधी और नेहरू द्वारा बताए गए आदर्शों पर चलना है। एक ही प्रकार की संस्कृति, कला और साहित्य राष्ट्र निर्माण में सहायक होते हैं। अनेक संस्कृति

और परम्पराओं के होते हुये भी राष्ट्र रह सकता है किन्तु वहाँ विद्रोह की सम्भावनायें अधिक होती है। जैसे भारत में हिन्दू और फारसी संस्कृति।

(i) राजनीतिक आकांक्षाओं की समानता (Common political aspirations)- राजनीतिक आकांक्षाओं के अभाव में राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता है। भारत में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जबर्दस्त राजनीतिक भावना ही थी जिसके कारण भारत स्वतंत्र हो सका। स्वशासन की माँग सभी स्वतंत्र राज्यों के इतिहास में स्थान रखता है। गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने लिखा है 'राजनीतिक एकता या तो भूतकालीन अथवा भविष्य में राष्ट्रीयता के सर्वाधिक स्पष्ट लक्षणों में से एक है. एक है, वास्तव में इतना स्पष्ट है।

(iv) सामान्य कष्ट (Common suffering)- किसी भी राष्ट्र का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके सदस्य दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट न समझते हों। पोलैण्ड, फ्रांस और जर्मनी में सामान्य कष्ट की भावना के कारण ही राष्ट्रीयता का विकास हो सका। सामान्य कष्ट की भावना के परिणामस्वरूप 'हम की भावना' (We Feeling) का विकास होता है, जो राष्ट्रीयता का आवश्यक तत्व है।

15.4 राष्ट्रीय चरित्र (National Character)

प्रत्येक राष्ट्र की भोजन, पेय, मकान, वस्त्र, और रहन-सहन के दूसरे तरीकों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अभिरुचियाँ होती है। इन्हीं सब वस्तुओं के संग्रह को राष्ट्रीय चरित्र कहते है। हर्ट्ज (Hertz) ने राष्ट्रीय चरित्र की परिभाषा इस प्रकार की है- 'राष्ट्रीय चरित्र उन परम्पराओं, अभिरुचियों और आदर्शों का एक संग्रह है जो कि राष्ट्र में इतने व्यापक और प्रभावशाली होते है कि उस देश के और अन्य देश के लोगों के मस्तिष्क में उसकी छाप अंकित कर देते है।

ग्रीक लेखकों ने सबसे पहले नगर राज्यों (City states) के राष्ट्रीय चरित्रों का उल्लेख किया था। उन्होंने कहा था कि स्पार्टा के व्यक्ति कियाशील होते है, शक्ति-शाली होते हैं और एथेन्स के रहने वाले अधिक बातचीत करने वाले और

शंका-समाधान करने वाले है। उसके बाद इस पर 17वीं शताब्दी तक कोई विचार नहीं किया गया, किन्तु आज यह एक विषय हो गया है।

मॉन्टेस्क्यू (Montesquieu) के अनुसार एक राष्ट्र की मानसिक विशेषताएँ ही उस राष्ट्र के चरित्र को प्रकट करती है और इन मानसिक विशेषताओं पर जलवायु, संस्कृति, सरकार, कानून के स्वरूप, रीति-रिवाज तथा धर्म सबका प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक राष्ट्र के व्यक्तियों में एक विशेष प्रकार की भावना, इच्छा, विचार और क्रिया पाई जाती है।

कडूगल ने अपनी पुस्तक 'Group mind' में राष्ट्रीय चरित्र का वर्णन किया है। उसके अनुसार प्रत्येक स्थानीय समूह की अपनी प्रतिभा (Genius) होती है और उसी के अनुकूल उसका राष्ट्रीय चरित्र होता है। भौगोलिक विशेषताएँ, प्रजाति की शुद्धता और यातायात की स्वतन्त्रता का राष्ट्रीय चरित्र पर बड़ा प्रभाव है। मैकडूगल के अनुसार विभिन्न प्रजातियों में जन्मजात मानसिक अन्तर होते हैं और ये अन्तर स्थायी होते हैं तथा राष्ट्रीय चरित्र को प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार हब्शी मस्त और भाग्यवादी होते है और अनियंत्रित संवेगात्मक हिंसा (Unrestrained emotional violence) प्रदर्शित करते हैं। आयरिश कवितामयी और उत्साही तथा अंग्रेज अनुभववादी (Empirical) और फ्रांसीसी निगमनात्मक (Deductive) होते हैं। यदि हम भारत के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों के चरित्र की विशेषताओं का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उन प्रदेशों की जलवायु, रीतिरिवाज, नैतिक नियम-इन सबका प्रभाव उनके चरित्रों के निर्माण में में हुआ है। बंगाली शब्द से ही एक भावुक तथा कला प्रेमी व्यक्ति की कल्पना कर लेते है और पंजाबी शब्द के प्रयोग से हम एक व्यक्ति को बिंदास और हिम्मती मान बैठते है। राष्ट्र की संस्कृति राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में सहायक होती है।

पर्यावरण (Environment) भी राष्ट्रीय चरित्र को निश्चित करता है। इसके अन्तर्गत अनेक कारक हैं लेकिन इन कारकों का सामूहिक महत्व है। सभी कारक परिवर्तनशील है, अतः राष्ट्रीय चरित्र में भी परिवर्तन होते रहते हैं। अतः राष्ट्र का चरित्र अस्थायी और लचीला होता है। इसके अन्तर्गत निम्न कारक आते हैं-

(i) भूगोल- भौगोलिक दशाओं के अन्दर जलवायु, वायु की आर्द्रता (Humidity) सूर्य का प्रकाश, आँधी, तूफान, वर्षा को लिया जा सकता है। 18वीं शताब्दी में माण्टेस्क्यू (Montesquieu) ने यह विचार प्रकट किया था कि गरम जलवायु दुर्बलता उत्पन्न करती है और इसीलिए गुलामी का कारण है। दूसरी ओर, ठण्डी जलवायु के लोग बहादुर और स्वतन्त्र होते है। प्रकृति का राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण यहाँ के निवासी अन्धविश्वासी और भाग्यवादी होते हैं। परन्तु पश्चिमी राष्ट्रों में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप भाग्यवाद का कोई स्थान नहीं है। प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करती है।

(ii) आर्थिक स्थिति- आर्थिक परिस्थितियों भी राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करती हैं। औद्योगिक देश में अत्यधिक भीड़-भाड़ से यौन अपराध, आत्महत्याएँ, चोरी, मद्यपान को बढ़ावा दिया जाता है और इन्हीं के साथ नैतिकता को परिभाषित किया जाता है, अतः व्यक्ति की नैतिकता अत्यन्त जटिल हो जाती है। लेकिन कृषि प्रधान देश भाग्यवादी, अत्यन्त नैतिक तथा सरल होते हैं। उदाहरण के लिए बलात्कार (Adultery) को लिया जा सकता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में यह गम्भीर अपराध है, जबकि पाश्चात्य देशों में यह एक छोटी-सी सामाजिक भूल (Social Wrong) के रूप में स्वीकार की जाती है।

(iii) संस्कृति- संस्कृति का राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिस संस्कृति का उद्देश्य 'खाओ पीओ और मौज करो' (Eat drink and be merry) वहाँ के व्यक्ति भविष्य के बारे में कुछ भी नहीं सोचते हैं, भौतिक आनंद ही सब कुछ होता है, और इसी के अनुसार राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है। भारतीय संस्कृति का आधार वर्ण-आश्रम धर्म है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' (Struggle for existence) पर आधारित है और यही कारण है एक संस्कृति के राष्ट्रीय चरित्र में 'पारस्परिक सहायता और सहयोग' (Mutual aid and Co-operation) को अधिक महत्व दिया जाता है तो दूसरी संस्कृति के राष्ट्रीय चरित्र में संघर्ष और प्रतिस्पर्धा (Conflict & competition) को।

(iv) राजनीतिक संगठन- राजनीतिक संगठन भी राष्ट्रीय चरित्र को प्रभावित करता है। सामन्तवाद (Feudalism) लोगों की 'जी हुजूरी' पर आधरित था, व्यक्तियों के स्वतन्त्र विचार कर कोई स्थान नहीं था, आज प्रजातन्त्र (Democracy) का आधार ही लोगों का स्वतन्त्र विचार है। तानाशाही शासन में व्यक्तियों के मस्तिष्क सशंकित हो जाते हैं। राजनीतिक संगठन जिस आधार पर होगा व्यक्तियों को भी उसी आधार पर अपने चरित्र का निर्माण करना होगा जिससे राष्ट्रीय चरित्र बनता है।

(v) वर्गीय ढाँचा वर्गों का राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। जब भारतीय संस्कृति में वर्ग का आधार पर 'कर्म' था, उस समय राष्ट्रीय चरित्र में रक्त की शुद्धता का वर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं था, कार्यों की महत्ता थी। हर एक देश में वर्ग होते हैं, उन वर्गों में कुछ निम्न होते है और कुछ उच्च। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि उच्च वर्ग का अनुसरण निम्न वर्ग करते हैं। भारतवर्ष में पुजारियों और दार्शनिको का बहुत आदर समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष किया जाता था। यही कारण है कि हिन्दू समाज की विशेषता आध्यात्मिक (Spiritual) तथा धार्मिक जीवन है।

(vi) सामान्य धर्म- धार्मिक एकता भी राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में सहायक होती है। एक धर्म के अनुयायी अपने को बन्धुत्व बन्धन में बँधे हुए समझते हैं। धर्म के आधार के अनुसार ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है।

(vii) सामान्य भाषा धर्म और भाषा किसी संस्कृति के दो पहिये हैं। धर्म और भाषा ही ऐसे तत्व है, जिनके कारण भ्रातत्व और सहयोग को प्रोत्साहन मिलता है।

15.5 राष्ट्र - निर्माण की अवधारणा (The Concept of Nation Building)

"राष्ट्र" और "निर्माण" इन दो शब्दों से मिलकर राष्ट्र निर्माण बना है। इससे पहले राष्ट्र की अवधारणा की विवेचना की गई है। राष्ट्र की अवधारणा की विवेचना के

बाद यह आवश्यक है कि राष्ट्र निर्माण की विवेचना की जाये। निर्माण शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया जाता है-

(a) पहला किसी निर्माण के रूप में अर्थात् किसी के बनाने के रूप में, और

(b) दूसरा एक प्रक्रिया के रूप में।

समग्र रूप से राष्ट्र निर्माण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा राष्ट्र बनता है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी राष्ट्र का भौगोलिक एकीकरण किया जाता है तथा राष्ट्रीय भावनाओं का विकास किया जाता है। राष्ट्र निर्माण की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार है-

1. आमण्ड और पावेल - "राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति लघु जनजातियों, गांवों अथवा स्थानीय समुदायों के प्रति निष्ठा एवं समर्पण की भावना को बृहत केन्द्रीय राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत समर्पित कर देते हैं।"।

2. डेविड विल्सन ने सामाजिक समूहों में राष्ट्रीय चेतना के उदय को राष्ट्र निर्माण के रूप में परिभाषित किया है।

3. स्टीन रोकन - 'राष्ट्र निर्माण की सीमाओं का एकीकरण, राजनैतिक आधुनिकीकरण तथा राष्ट्रीयपहचान की भावना के विकास की एक प्रक्रिया के रूप में राष्ट्र-निर्माण को परिभाषित किया है।'

4. आर. बेनडिक्स ने राष्ट्र निर्माण को राष्ट्रव्यापी जनसत्ता के सामान्य अभ्यास के रूप में परिभाषित किया है।'

5. राबर्ट हार्डग्रेव ने राष्ट्र निर्माण को सामुदायिकता तथा सामान्य भाग के नवीन विचारों के विकास के रूप में परिभाषित किया है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि राष्ट्र निर्माण एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से राष्ट्रीयता का विकास होता है।

*राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया के सन्दर्भ में निम्नांकित बातें उल्लेखनीय है-

(1) यह एक प्रक्रिया है, न कि किसी विशेष स्थिति की सूचक।

(2) यह सुनियोजित एवं सजग रूप में होने वाली प्रक्रिया है जिसकी गति सामान्यतः धीमी होती है। अन्य शब्दों में, राष्ट्र अपने आप निर्मित नहीं होते अपितु उनका निर्माण किया जाता है।

(3) राष्ट्र-निर्माण के निश्चित लक्ष्य एवं साधन होते हैं, जिसके कारण इसका विकास योजनाबद्ध एवं सुनियोजित ढंग से किया जा सकता है।
(4) राष्ट्र-निर्माण केवल नारेबाजी से नहीं आता अपितु इसके लिए निरन्तर प्रयास करने पड़ते हैं।
(5) राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, क्योंकि परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने पर इसमें भी परिवर्तन हो जाता है।
(6) यह एक व्यापक प्रक्रिया होते हुए भी राष्ट्रों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है।
(7) इनके अनेक आदर्श (प्रतिरूप) है क्योकि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी भिन्न पृष्ठभूमि होती है।

राष्ट्र - निर्माण की विशेषताएँ
(Characteristics of Nation Building)

राष्ट्र निर्माण की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित होती है-
1. राष्ट्र निर्माण एक प्रक्रिया है, जो राष्ट्रीय सीमा में निरन्तर गतिशील रहती है।
2. राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के माध्यम से राष्ट्रीय पहचान (National Identity) का विकास होता है।
3. राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का विकास होता है।
4. इससे राष्ट्र के प्रति निष्ठा और समर्पण की भावना (Development of loyality and commitment to the nation) का विकास होता है।
5. राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से राजनैतिक चेतना (Political Consciousness) का विकास होता है।
6. राष्ट्र निर्माण से नई अर्थव्यवस्था तथा नवीन तकनीक को अपनाने की क्षमता का विकास होता है।
7. राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है, जिसके साधन और साध्य (Means and Ends) निश्चित होते हैं।

8. राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा निरन्तर प्रयास (Continuous Efforts) को प्रोत्साहन मिलता है।

9. राष्ट्र निर्माण गतिशील प्रक्रिया (Dynamic Process) है। इसका कारण यह है कि परिस्थितियाँ और परिवेश निरन्तर बदलते रहते है।

10. राष्ट्र निर्माण एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का समावेश होता है।

11. राष्ट्र निर्माण के निश्चित आदर्श होते हैं, जिनके अनुसार इस प्रक्रिया को गति मिलती है।

राष्ट्र शब्द अंग्रेजी भाषा ने 'नेशन' (Nation) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। नेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'नेशिओ' (Natio) शब्द से हुई है। नेशिओ का लैटिन अर्थ 'जन्म' अथवा 'प्रजाति' है। इसप्रकार नेशन शब्द का अर्थ ऐसे प्रजातियों से है जो एक ही प्रजाति से सम्बन्धित हों। कुछ विद्वानों ने राष्ट्र का अर्थ राष्ट्रीयता की भावना से लगाया है, जो वास्तव में राष्ट्र की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

राष्ट्र-निर्माण का आधार - राष्ट्रीयता
(Basis of Nation-Buliding- Nationality)

राष्ट्रीयता एक प्रकार की भावना है। इस भावना के जन्म के लिए सभी सांस्कृतिक तत्वों में पूर्ण समानता तो सम्भव नहीं है किंतु कम से कम भाषा, धर्म, पहनावा, नैतिकता और राजनीतिक व्यवस्थाओं में सभी व्यक्तियों का सहयोग और सहानुभूति अनिवार्य है। जब तक सभी सदस्य इस बात का अनुभव नहीं करते हैं और साथ साथ नहीं रहना चाहते हैं। तब तक इस भावना का जन्म नहीं हो सकता है। इसके मूल में जनतंत्रीय भावना है।

परिभाषा (Definition) - विभिन्न विद्वानों ने राष्ट्रीयता की विभिन्न परिभाषाएं दी है।

(1) मैकाइवर और पेज "राष्ट्रीयता एक प्रकार की सामुदायिक भावना है जो ऐतिहासिक परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न होती है और जो सामान्य मनोवैज्ञानिक

तत्वों से इतनी अधिक और शक्तिशाली सहायता पाती है कि जो व्यक्ति इनका अनुभव करते हैं, वे पूरी तरह अपनी सरकार बनाना चाहते हैं।"।

(2) रोज "राष्ट्रीयता वह जन समूह जो अभी तक राजनीतिक दृष्टि से संगठित न हुआ हो। आदर्श रूप में वह एक संगठित राष्ट्रीय अस्तित्व की ओर एक प्रेरणा है"। इस प्रकार राष्ट्रीयता भावनाओं का एक ऐसा समूह है, जो 'हम' की भावना से ओत प्रोत होता है।

(Forms of Nationality)

राष्ट्रीयता के रूप

राष्ट्रीयता से राष्ट्र बनता है, परंतु यह हो सकता है कि जिस उग्र भावना को लेकर राष्ट्रीयता ने राष्ट्र का निर्माण किया, वह उग्रता राष्ट्र के निर्माण के बाद भी बनी रहे और दूसरे राष्ट्रों को भी अपने में हड़पने का प्रयत्न करे। जब तक राष्ट्रीयता सिर्फ अपने लिए एक राष्ट्र को बनाने का प्रयत्न करती है, तब तक यह ठीक है, जबसीमा के आगे निकल जाती है, जब राष्ट्रीयता की तीव्रता में यह अन्य राष्ट्रों को हड़पने लगती है, तब वह विश्व समाजशास्त्र : बी. ए. प्रथम वर्ष के लिए खतरे का रूप धारण कर लेती है। राष्ट्रीयता के निम्न रूप है-

(1) राष्ट्रवाद - राष्ट्रवाद का सिद्धान्त यह है कि हर राष्ट्र को अपनी स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता बनाए रखने का अधिकार है, इसने किसी दूसरे राज्य को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। संक्षेप में राष्ट्रीयता के बंधनों पर बल देना ही राष्ट्रवाद है। जिस प्रकार सामुदायिक भावना विभिन्न सदस्यों को एक सूत्र में बांधती है, उसी प्रकार राष्ट्रवाद भी परस्पर सहयोग और सहानुभूति की भावना जागृत करता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अगणित अवसरों पर राष्ट्रवाद ने राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाई है। राष्ट्रवाद की भावना से राष्ट्र स्वतंत्र हो जाते हैं जैसे भारत, पाकिस्तान, लंका, बांग्लादेश आदि। राष्ट्रीयता के कारण राष्ट्रवाद की भावना का जन्म होता है।

(2) देशभक्ति - राष्ट्रवाद एक विचारधारा है, उस विचारधारा को क्रिया में परिणित करने के लिए जो कदम उठाए जाते हैं उन्हें ही देशभक्ति कहते हैं। देशभक्ति का अर्थ मातृभूमि के प्रति प्रेम, उसकी भूमि भूमि और परम्पराओं के प्रति भक्ति एवं

उसकी दृढ़ता की रक्षा है। इतिहास के ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब देशभक्ति के लिए लोगों ने प्राण दे दिए है। राष्ट्रवाद और देशभक्ति राष्ट्रीयता के दो रूप हैं जिनमें राष्ट्रीयता अपनी सीमा के अंदर रहती है।

(3) उग्र राष्ट्रीयतावाद - जब राष्ट्रीयता अपने स्वस्थ रूप का त्याग कर देती है तो लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं। जब राष्ट्रवादी भावना दूसरे राष्ट्र के हित का ध्यान नहीं रखती है तो उसे राष्ट्रीयतावाद कहते हैं। राष्ट्रीयता का यह रूप मानवता के लिए अहितकर है।

(4) साम्राज्यवाद - उग्र राष्ट्रीयतावाद और अधिक भंयकर रूप धारण कर लेने पर साम्राज्यवाद बन जाता है। विस्तार की राष्ट्रीय नीति और कार्य जिसमें अपने से मिले राज्य को बलपूर्वक अधिकृत कर लिया जाता है,

साम्राज्यवाद कहलाता है। आधुनिक युग में साम्राज्यवाद का रूप आर्थिक है।

राष्ट्रीयता की समस्या

(The Problem of Nationality)

वर्तमान परिस्थितियों में व्यक्ति के राजनीतिक जीवन में राष्ट्र की महत्ता सबसे अधिक है। भारत में अत्यंत प्राचीन काल से ही राष्ट्रीय एकता को स्वीकार किया गया है। मृत्युशैय्या पर पड़े भीष्म पितामह ने राष्ट्रीय एकता की समस्या की विवेचना करते हुए युधिष्ठिर से कहा था कि 'गणों का विनाश फूट के कारण ही होता है। फूट से वे शत्रु द्वारा सुगमता से जीत लिए जाते हैं। अतः गणों को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वे संघ में संगठित होकर रहें।"2

आज भारत की आजादी के 64 वर्ष पूरे हो गए है। इन छह दशकों में ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि भारत के लिए राष्ट्रीय एकता की समस्या मौलिक है। देश में व्याप्त अनेक मतमतान्तर जहाँ स्थानीय, व्यक्तिगत और साम्प्रदायिक समस्या को उभारते हैं, राष्ट्रीय एकता की समस्या सामने चुनौती का काम करते हैं। भाषा, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्र आदि इसी प्रकार की समस्याएँ है। इन समस्याओं से सामाजिक विघटन (Social Disorganization) की समस्या का जन्म होता है, जो राष्ट्रीय एकता की समस्या को जन्म देता है।

15.6 भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या की पृष्ठभूमि (*Background of the Problem of National Integration in India)*

भारत एक विशाल देश है, सिर्फ राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक, दृष्टि से भी। भारत में 1947 से पहले अनेक राज्य और शासन व्यवस्थाएं थीं, जो एक दूसरे से भिन्न पूर्णतया सत्ता सम्पन्न थीं। भारत अनेक छोटी-बड़ी देशी रियासतों में विभाजित था। ये देशी रियासतें सम्प्रभुता सम्पन्न थीं। प्राचीन भारत यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से विविध था, किंतु सांस्कृतिक दृष्टि से इसमें एकता विद्यमान थी। इसी सांस्कृतिक एकता के कारण विभिन्नताओं से सम्पन्न भारत एक सूत्र में बँधा हुआ था। उस समय भारत में कोई राजनीतिक एकता की समस्या नहीं थी। 1947 में भारत और पाकिस्तान नाम के देश का दो भागों में विभाजन हुआ और यहीं से भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या का जन्म और विकास हुआ। भारत में राष्ट्रीय एकता की पृष्ठभूमि का विवरण इस प्रकार है-

1. स्वतंत्रता के बाद भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या उस समय उठ खड़ी हुई, जब भारत की पाँच सौ से अधिक छोटी-छोटी रियासतों को भारतीय गणराज्य में विलीन करने की समस्या आई। इस जटिल समस्या को समाधान करने में तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल की कुशल नीति और कर्मठता को हमेशा याद किया जाएगा।

2 भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए दूसरी चुनौती थी विस्थापितों की समस्या। भारत ने विस्थापितों की समस्या का भी कुशलता और धीरज से सामना किया और इस प्रकार भारत में राष्ट्रीय एकता की स्थापना हुई।

3. भारतीय एकता के लिए तीसरी समस्या थी, प्राचीन राज्य पद्धति को समाप्त करके नवीन सुदृढ़ राज्यों की स्थापना करना। राज्य पुर्नगठन आयोग ने भाषा को राज्यों के पुनर्गठन का आधार बनाया तथा 27 राज्यों के स्थान पर 16 राज्यों के गठन की अनुशंसा की। भाषा की समस्या के आधार पर राज्यों के गठन ने अनेक

समस्याओं को जन्म दिया तथा नये-नये प्रान्तों की स्थापना की माँग प्रबल होने लगी। इस समस्या का भी अन्त में समाधान हुआ और इस प्रकार भारत में राष्ट्रीय एकता को बल मिला।

4. 1962 चीन ने और 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया। कठिन परिश्रम, धैर्य, अटूट एकता और साहस का परिचय देकर भारतवासियों ने अपनी राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखा।

5. 1971 में बांग्ला देश का उदय भी भारत की सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता का परिचायक था।

6. 1975 के जून में भारत में आपातकाल की घोषणा में भी जनता ने एकता का परिचय दिया तथा समस्याओं
के समाधान में एकजुट होकर आगे आई।

भारत में राष्ट्र-निर्माण की समस्याएं
(The Problems of Nation Building in India)

भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रमुख समस्याएं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) नागरिकता का अभाव भारतीय समाज में जितनी भी समस्याएं हैं, उन सभी समस्याओं के जड़ में एक ही समस्या है। वह समस्या है नागरिकता के ज्ञान का अभाव। भारत 1947 को स्वतंत्र अवश्य हो गया, किंतु यहाँ के नागरिकों में अभी भी नागरिकता का पूर्ण बोध नहीं हो पाया है। नागरिकता को पूर्ण बोध न होने के कारण ही हमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता और इसके मूल्यों का ज्ञान नहीं हो पाता है। इन मूल्यों के अभाव में भी देश के सामने राष्ट्रीय एकता ही समस्या का जन्म होता है।

(2) प्रशासकीय शिथिलता (Administrative Weakness)- किसी भी देश में राष्ट्र निर्माण की समस्या का प्रत्यक्ष संबंध भावनात्मक एकता की समस्या से होता है। राष्ट्र का भावनात्मक आधार अधिक होता है और इसी भावनात्मक आधार पर देश के अन्य आधारों का संचालन होता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में प्रशासकीय और आर्थिक कार्यों पर अधिक ध्यान दिया गया। इस प्रशासकीय शिथिलता और

उपेक्षात्मक दृष्टिकोण के कारण भी भारत में राष्ट्र निर्माण की समस्या का जन्म और विकास हुआ।

(3) शैक्षणिक कारक (Educational factors)- भारत में राष्ट्रीयता और राष्ट्र निर्माण की समस्या के लिए शिक्षा संबंधी कारण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत में अत्यंत प्राचीनकाल से ही शिक्षा का अभाव रहा है। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि शिक्षण संस्थाओं में काफी वृद्धि हुई है, किंतु शिक्षा की गलत नीतियों के कारण इसके गुणात्मक महत्व में कोई खास अंतर नहीं आया है। भारत में ऐसी अनेक शिक्षण संस्थाएं है, जो विभिन्न जातियों, धर्मों और वर्ग के व्यक्तियों के नाम पर संचालित है। ये शिक्षण-संस्थाएं भी विशिष्ट प्रकार की मजहबी शिक्षा प्रदान करती है। परिणामस्वरूप भी भारत में राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधा उपस्थित होती है।

(4) राजनीतिक दल (Political Parties) प्रजातन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

किंतु राजनीतिक दलों का नैतिक पतन इसके मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं। जब राजनीतिक दल नीति और सिद्धांतों को तिलाजंलि दे देते हैं तथा येनकेन प्रकारेण अपने दल को सत्ता में लाने का प्रयास करते हैं तो इससे उनका नैतिक स्तर गिर जाता है तथा राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके दलगत स्वार्थों को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। दलगत स्वार्थों को अधिक महत्व प्रदान करने के कारण भी अनेक समस्याओं का जन्म होता है, जिससे राष्ट्रीय एकता की समस्या पनपती है और राष्ट्र निर्माण में बाधा होती है।

(5) क्षेत्रीयता (Regionalism) भारत में क्षेत्रवाद की समस्या भी राष्ट्र निर्माण के मार्ग में अवरोधक तत्व है। भारत विशाल देश है, जो विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयों में विभाजित है। इन क्षेत्रीय इकाइयों में निवास करने वाले व्यक्ति अपने को भारत का अंग न मानकर अपने-अपने क्षेत्रों को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। भारत में विभिन्न प्रदेशों की माँग क्षेत्रवाद की समस्या का ज्वलन्त उदाहरण है। क्षेत्रवाद की इस समस्या के कारण भी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को नुकसान पहुँचता है।

(6) साम्प्रदायिकता (Communalism)- भारत में स्वतंत्रता के पूर्व से ही साम्प्रदायिकता का अस्तित्व था, जिसके कारण देश का विभाजन हुआ था, किंतु स्वंतत्रता के बाद यह समस्या और भी जटिल हुई है। स्वतंत्रता के बाद अनेक साम्प्रदायिक दलों का जन्म हुआ, जिनमें मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा आदि प्रमुख है। इन संगठनों की आत्मा में साम्प्रदायिकता के तत्व विद्यमान है, भले ही ये राजनीतिक दलों का आवरण धारण किए हों। साम्प्रदायिकता के कारण तनाव पैदा होता है और राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधा उपस्थित होती है।

(7) भाषावाद (Linguism) भारत में अनेक भाषा और बोलियाँ हैं। इन भाषा और बोलियों के कारण भी भारत में अनेक विविधता विद्यमान है। भाषा को लेकर देश में समय-समय पर अनेक विवाद हुए और इनका सिलसिला आज भी जारी है। भाषा समस्या के कारण ही देश में अनेक आन्दोलनों का जन्म हुआ तथा विभिन्न भाषा-भाषी नागरिकों में कटुता की भावना का विकास हुआ। भाषा के ही आधार पर अनेक प्रान्तों के निर्माण की माँग का सिलसिला आज भी ज्यों का त्यों जारी है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषावाद ने भारत में अनेक विरोधी परिस्थितियों को जन्म दिया है। भाषागत विभिन्नताओं के कारण एक सम्पर्क भाषा का आज भी अभाव है और इसके कारण राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को धक्का पहुँचा है।

(8) पीत पत्रकारिता (Yellow Journalism) समाचार-पत्रों का राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करने में महत्वपूर्ण स्थान होता है। अनेक परिस्थितियों में समाचार पत्र अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ रहते है। 'पीत पत्रकारिता' के परिणामस्वरूप ये पत्र अपने उत्तरदायित्वों के सम्पादन में असमर्थ रहते हैं। इन पत्रों को नथाकथित व्यक्तियों का आर्शीवाद भी प्राप्त रहता है अतः इन पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण स्थपित करना कॉठन कार्य होता है। नियंत्रण के अभाव में यह पत्र जनता की भावनाओं को गुमराह करते हैं, उन्हें गलत समाचार देते है और इस प्रकार साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ावा देते हैं।

(9) आर्थिक असमानता (Economic Disparity) भारत में आर्थिक असमानता और निर्धनता व्याप्त है। बेरोजगारी भी अपनी चरम सीमा पर है अनेक व्यक्तियों

को पेट भर भोजन भी नहीं मिल पाता है इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे है, जिनकी आय और व्यय का कोई हिसाब-किताब नहीं है। यह आर्थिक असमानता, बेरोजगारी और निर्धनता असंताष को जन्म देती है। यह असंतोष सामाजिक संगठन और व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करके सामाजिक विघटन को जन्म देता है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता को संकट पैदा हो जाता है और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में बाधा पैदा हो जाती है।

(10) जातिवाद (Casteism) भारत में सामाजिक संस्तरण का प्रमुख आधार जाति व्यवस्था है। भारतीय समाज असंख्य जातियों में, जिनमें ऊँच-नीच की भावनाएँ पाई जाती है, विभाजित है। अपनी जाति के प्रति बढ़ती हुई निष्ठा के कारण जातिवाद की गम्भीर समस्या आज हमारे सामने है। चुनावों, नौकरियों, शिक्षा संस्थाओं आदि में आज जातिवाद को बोलबाला है। के कारण व्यक्ति की निष्ठा अपनी जाति तक ही सीमित रहती है तथा इस संकीर्णता के कारण राष्ट्र के प्रति निष्ठा एवं प्रतिबद्धता की भावनाओं का विकास नहीं हो पाता है। जातिवाद में सामाजिक मान्यताओं (यथा न्याय, उचितता, समता तथा सर्वव्यापी भ्रातृत्व आदि) की भी उपेक्षा की जाती है जोकि राष्ट्र-निर्माण के लिए उचित नहीं है।

भारत में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया
(Process of Nation-Building in India)

भारत में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया का प्रारंभ 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम के साथ हुआ जिसके परिणामस्वरूप भारतीयों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयास शुरू कर दिए। इस आन्दोलन से राष्ट्रीयता का विकास हुआ। स्वतंत्रता के पूर्व राष्ट्र-निर्माण में निम्नांकित कारकों ने विशेष योगदान दियाः-

(1) परम्परागत शक्तियाँ (Traditional forces) भारत में राष्ट्र-निर्माण में सहायक दो प्रमुख शक्तियों है- भौगोलिक एकता तथा हिन्दू सभ्यता। अंग्रेजी शासनकाल में भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनेक मौलिक एवं स्थायी परिवर्तन हुए। यह काल भारतीय इतिहास के सभी कालों से भिन्न था क्योंकि इसमें अंग्रेज अपने साथ नवीन तकनीक, संस्कृति, संस्थाएँ, ज्ञान, विश्वास एवं आदर्श लेकर आए थे। नवीन औद्योगिकी एवं इसके परिणामस्वरूप संचार एवं परिवहन साधनों

में होने वाली क्रांति की सहायता से अंग्रेजों ने भारत का ऐसा एकीकरण किया जैसा
पहले इसके इतिहास में कभी नहीं हुआ था। फलस्वरूप भौगोलिक एकता और सुदृढ़ हो गई। हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता के कारण भारतीयों में समन्वय की भावना प्रारंभ से ही रही है।

(2) क्रांतिकारी एवं नवीन शक्तियाँ (Revolutionary and modern forces)- भारत में उपर्युक्त परम्परागत शक्तियों के अतिरिक्त निम्न क्रांतिकारी एवं नवीन शक्तियों भी थीं जिन्होंने भारत में राष्ट्र-निर्माण में योगदान दिया है।

(i) धार्मिक एवं पुनर्जागरण आन्दोलन (Religious and renaissance movements)- भारत में राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-निर्माण का विकास करने में अनेक सामाजिक, धार्मिक तथा पुनर्जागरण आन्दोलनों ने सहायता दी है। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ऐनी बेसेण्ट, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीयों को भारत की महानता और गौरव को समझने तथा इसका पुनर्जागरण करने के लिए प्रोत्साहन दिया और भारतीय जनता में एक नवीन चेतना विकसित की।

(ii) स्वतंत्रता संग्राम (Freedom movement) 1857 ई. का स्वतंत्रता संग्राम यद्यपि असफल रहा, फिर भी इसके दमन के लिए अंग्रेजी शासन ने जिस नीति को अपनाया, उससे राष्ट्रीयता की भावनाएँ और अधिक प्रबल बन गईं।

(iii) पश्चिमी शिक्षा (Western education) भारत में पश्चिमी शिक्षा का विस्तार होने से भारत में एक नवीन वर्ग का विकास हुआ जिसने पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होकर राष्ट्रीयता जाग्रत करने की गति को एवं स्वतंत्रता संग्रामों को प्रोत्साहन दिया। शिक्षित लोगों के इस वर्ग ने अमेरिका, इटली और आयरलैण्ड के स्वतंत्रता संग्रामों के बारे में पढ़ा तथा यही शिक्षित लोग भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक एवं बौद्धिक नेता हो गए। राजा राममोहन राय, दादाभाई नौरौजी, फीरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, नेहरू आदि पश्चिमी शिक्षा की ही देन है।

(iv) जन संचार एवं परिवहन साधनों का विकास (Development of means of mass communication and transportation)- भारत में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देने में जन संचार एवं परिवहन के साधनों का विकास महत्वपूर्ण रहा। है। प्रेस के विकास से भारतीय समाचार-पत्रों एवं देशी साहित्य को प्रोत्साहन मिला और इन माध्यमों से जनसमूह जागरूक हुआ और उसका ध्यान देश की दुर्दशा एवं विदेशी शासन की दोषपूर्ण नीतियों की ओर आकर्षित हुआ जिसके कारण उनमें अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा की एक नवीन चेतना विकसित हुई।

स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय निर्माण के लिए प्रयास (Efforts for Nation Buliding in independent India))

स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय निर्माण के लिए सरकार द्वारा निम्न प्रयास किए गए है-

1. राष्ट्रीय एकता सेमिनार (Seminar on National Integartion) - 1958 में 16 एवं 17 अप्रैल को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विज्ञान भवन दिल्ली में परिसंवाद का आयोजन किया जिसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया इस परिसंवाद में राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किए गए थे, वे इस प्रकार है-

आर्थिक असमानता को समाप्त कर तथा देश की आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देना।

(ii) भारतीय जीवन के इतिहास का अध्ययन करके इसमें निहित सामाजिक आर्थिक जीवन के लिए एकता के तत्वों की खोज करना।

(iii) प्रत्येक भारतीय भाषाओं का नियोजित विकास करना, पुस्तकों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करना तथा राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट की स्थापना करना।

(iv) छात्रों में विविध भाषाओं के ज्ञान की वृद्धि की जाय, उन्हें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पढ़नें के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाय।

(v) उन पुस्तकों को पाठ्यक्रम में रखा जाय, जो राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करें।

(vi) राष्ट्रीय एकता के लिए स्वस्थ जनमत का निमार्ण किया जाए।

(vii) शैक्षणिक संस्थाओं में उत्सव और राष्ट्रगान को प्रोत्साहित किया जाए।

(vii) महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय एकता से संबंधित व्याख्यान मालाएँ प्रारंभ की जायें।

(ix) प्रत्येक विश्वविद्यालय में क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की जाये।

(x) ऐसी पुस्तकों को प्रकाशित किया जाये, जिसमें भारत के विभिन्न भागों के जीवन और रहन-सहन की विस्तृत विवेचना की जाए।

(2) राष्ट्रीय एकता समिति (National Integration Committee)- 1960 में अखिल भारतीय कांग्रेस ने श्रीमति इंन्दिरा गाँधी की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय एकता समिति' की स्थापना की थी। इस समिति ने भारत में राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए जो सुझाव दिए थे, वे इस प्रकार है-

@ शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाना,

(1) प्रत्येक नागरिक और उसके सम्पत्ति की सुरक्षा की व्यवस्था करना,

(ii) आर्थिक क्षेत्र में अल्पमतों के लिए अधिक अवसर प्रदान करना,

(iv) विधान सभाओं और संसदों में अल्पमत को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करना।

(3) मुख्यमंत्री सम्मेलन (Chief Minister's Conference)- राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र निर्माण के उपायों की खोज के लिए भारत के विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन आयोजित होता रहता है। मुख्यमंत्रियों ने इस समस्या के समाधान के लिए 'तीन भाषा' फार्मूले की अनुशंसा की। विश्व-विद्यालयों में हिंदी और अंग्रेजी दोनों को ही स्थान देने की बात कही गई। मुख्यमंत्रियों ने राष्ट्रीय एकता को भारत की अन्य समस्याओं की तुलना में अत्यंत ही महत्वपूर्ण बताया और अनुशंसा की कि राष्ट्रीय स्तर में विभिन्न वर्ग के विशेषज्ञों का सम्मेलन बुलाकर इस समस्या पर विचार किया जाय।

(4) राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन (National Integration Conference)- मुख्यमंत्री सम्मेलन के सिफारिशों को ध्यान में रखकर दिल्ली के विधान सभा में 28 सितम्बर से 1 अक्टूबर 1962 तक राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन का आयोजन

श्री जवाहरलाल नेहरू के संयोजकत्व में किया गया। राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए इस सम्मेलन ने जो सिफारिशें कीं, वे इस प्रकार है-

राजनीतिक शक्तियों का उपयोग इस प्रकार किया जाएगा कि किसी दल या समुदाय के व्यक्ति को न अनुचित लाभ हो और न हानि हो।

(i) शासन, शांति और व्यवस्था की स्थापना के साथ ही इस बात का भी ध्यान रखेगा कि किसी भी व्यक्ति या समूह की नागरिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न हो।

(ii) कोई भी राजनीतिक दल किसी भी अन्य राजनीतिक दल की सभाओं या सम्मेलनों को भंग करने का प्रयास नहीं करेगा।

(iv) कोई भी राजनीतिक दल इस प्रकार के कार्यों का सम्पादन नहीं करेगा, जिससे विभिन्न धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों और मत-मतान्तर के व्यक्तियों में घृणा पैदा हो।

(v) कोई भी राजनीतिक दल आन्दोलनों का संचालन करते समय हिंसात्मक घटनाओं को प्रोत्साहन नहीं देगा।

(vi) कोई भी राजनीतिक दल किसी विशिष्ट वर्ग, सम्प्रदाय और क्षेत्र के हित के लिए आंदोलन नहीं करेगा।

(5) राष्ट्रीय एकता परिषद (National Integration Council)-2 और 3 जून 1962 को दिल्ली में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित 36 व्यक्तियों की राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठकें हुई। इनमें विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्री महत्वपूर्ण राजनीतिक दलों के नेता, गृहमंत्री आदि सम्मिलित हुए। इसमें मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन और राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन के प्रस्तावों को जैसा का तैसा स्वीकार कर लिया।

(6) भावनात्मक एकता समिति (National Integration Committee) भारत में राष्ट्रीय एकता लाने के उद्देश्य से डा. सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में जनवरी 1962 में भावनात्मक एकता समिति का निर्माण किया गया था। राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में इस समिति ने जो महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, वे इस प्रकार है-

(1) शिक्षा के क्षेत्र में हरिजन तथा पिछड़ी जातियों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की जायें,

शिक्षा में तीन भाषा फार्मूले को स्वीकार किया जाए,

(ii) अच्छी पाठ्यपुस्तकों के लेखन के लिए विद्वान लेखकों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाए,

(iv) विद्यार्थियों के चरित्र के निर्माण के लिए विद्यार्थियों की वेशभूषा में समरूपता लाई जाए,

(v) स्कूलों में इतिहास और भूगोल की शिक्षा कों अनिवार्य कर दिया जाए।

15.7 राष्ट्र-निर्माण में समाजशास्त्र की भूमिका (*Role of Sociology in Nation Building)*

समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों (Social Relations) का विज्ञान है। सामाजिक सम्बन्ध समाज का वह तानाबाना है, जो व्यक्तियों को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। किसी भी समाज या देश के सामने जब पहचान का संकट आता है तो समाज अनेक वर्गों में विभाजित हो जाता है। इस विभाजन से व्यक्तियों में टकराव की स्थिति निर्मित होती है जो राष्ट्र निर्माण की सबसे बड़ी बाधा है। समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम से इस टकराव को समाप्त करने में अहम् भूमिका का कार्य करता है।

प्रत्येक व्यक्ति में 'मैं' (1) और 'हम' (We) की भावनाएँ होती हैं। "मैं" की भावना समाज को तोड़ती है, जबकि "हम" की भावना समाज को जोड़ती है। समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो व्यक्ति को सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम से उसे "मैं" की भावना मैं "हम" की भावना की ओर ले जाने का प्रयास करता है। "मैं": प्राकृतिक प्रवृत्ति है, जबकि "हम" सामाजिक प्रवृत्ति है। इस प्राकृतिक प्रवृत्ति को सामाजिक प्रवृत्ति में बदलने का कार्य समाजशास्त्र द्वारा किया जाता है और यही सामाजिक प्रवृत्ति राष्ट्रीय निर्माण का आधार है।

समाजशास्त्र में व्यक्तित्व (Personality) का अध्ययन किया जाता है। मानव व्यक्तित्व किस प्रकार विकसित होता है तथा किस प्रकार एक व्यक्ति पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के स्तर को प्राप्त करता है, इसका ज्ञान समाजशास्त्र के माध्यम से होता है। समाजशास्त्र व्यक्ति के पूर्ण विकास पर बल देता है। जब

व्यक्ति का पूर्ण विकास हो जाएगा तो वह व्यक्तिगत सोच से ऊपर उठ जाएगा और सामाजिक सोच की ओर अग्रसर होगा। इससे राष्ट्र निर्माण में मदद मिलेगी। समाजशास्त्र में उन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जो राष्ट्रीय जीवन में बाधाएँ उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिए जातिवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि। इसके साथ ही इन समस्याओं के समाधान के लिए आधार भी प्रस्तुत करता है। इन समस्याओं के समाधान से राष्ट्रीयता को बल मिलता है, जो राष्ट्र निर्माण का आधार है।

राष्ट्र निर्माण में समाजशास्त्र की भूगिका इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि समाजशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान है जो व्यक्ति और समाज का सम्पूर्णता में अध्ययन करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी सामाजिकता का विकास समाज में रहकर ही संभव है और यही सामाजिकता राष्ट्र निर्माण का आधार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्र निर्माण में समाजशास्व की अहम् भूमिका है।

स्वप्रगति परीक्षण

1.किसने कहा, "एक राष्ट्र भावनाओं का एक समुदाय है।"

(अ) ब्राइस (ब) मैक्सवेबर

(स) स्पेंसर (द) मैकाइवर और पेज

2. राष्ट्र के लिए कौनसा तत्व महत्वपूर्ण है?

(अ) भूगोल (ब) राष्ट्रीयता

(स) राष्ट्रीय पहचान (द) उपरोक्त सभी

3.राष्ट्रभाषा अधिनियम कबपारित हुआ था?

(अ) 1953 (ब) 1963 (स) 1973 (द) 1983

4.भारत में राष्ट्रीय पहचान का आधार है-

(अ) वर्ग (ब) विभिन्न श्रेणियाँ

(स) आर्थिक विभाजन (द) जातीय पहचान

15.8 सारांश

"राष्ट्र निर्माण" अध्याय एक समृद्ध और सशक्त राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया, उसमें आने वाली चुनौतियों, और उसमें प्रत्येक नागरिक की भूमिका पर प्रकाश डालता है। इस अध्याय में लेखक ने स्वतंत्रता के बाद भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में राष्ट्रीय एकता, आर्थिक विकास, और सामाजिक समरसता को राष्ट्र निर्माण का आधार माना है।

इस अध्याय में यह समझाया गया है कि राष्ट्र निर्माण केवल सरकार या नेताओं का कार्य नहीं है, बल्कि यह हर नागरिक का दायित्व है। राष्ट्र की प्रगति के लिए शिक्षा, स्वच्छता, विज्ञान और तकनीक, और सामाजिक सुधार जैसे पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। साथ ही, राष्ट्रीय भावना, सांस्कृतिक एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था राष्ट्र निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

15.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: 1. (ब), 2. (द), 3. (द), 4. (स) ।

15.10 शब्दावली

1. राष्ट्र निर्माण: एक सशक्त और संगठित राष्ट्र का निर्माण करने की प्रक्रिया।
2. सामाजिक समरसता: समाज के सभी वर्गों के बीच समानता और सहयोग की भावना।

3. आधारभूत ढांचा: किसी देश की प्रगति के लिए आवश्यक संसाधन, जैसे- सड़क, बिजली, और जल प्रबंधन।

4. राष्ट्रीय एकता: देश के नागरिकों के बीच सांस्कृतिक, सामाजिक और भौगोलिक एकता।

5. लोकतांत्रिक मूल्य: लोकतंत्र के सिद्धांत, जैसे स्वतंत्रता, समानता, और न्याय।

6. सांस्कृतिक विविधता: विभिन्न भाषाओं, धर्मों, और परंपराओं का सह-अस्तित्व।

15.11 संदर्भ सूची

1. डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम - इंडिया 2020: ए विजन फॉर द न्यू मिलेनियम, 1998।

2. महात्मा गांधी - हिंद स्वराज, 1909।

3. डॉ. भीमराव अंबेडकर - भारतीय संविधान का निर्माण और सामाजिक न्याय, 1949।

4. जवाहरलाल नेहरू - डिस्कवरी ऑफ इंडिया (भारत एक खोज), 1946

15.12 अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्र की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताओं को लिखिए।

Define Nation. Write its characteristics.

2. राष्ट्रीय चरित्र क्या है? राष्ट्रीय चरित्र को प्रभावित करने वाले कारकों को लिखिये।

What is national character. Write the factors affecting national character.

3. राष्ट्रीयता पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write a short essay on Nationality.

4. भारत में राष्ट्र निर्माण की समस्या पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write short essay on the problem of nation building in India.

5. भारत में राष्ट्र निर्माण की समस्या की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिखिए। Write the historical background of the problem of nation building in India.

6.भारत में राष्ट्र निर्माण की समस्याओं को लिखिए। Write problems of nation building in India.

7. भारत में राष्ट्र निर्माण के लिए प्रयासों को समझाइए। Explain efforts for nation building in India:

इकाई - 16
परम्परा और आधुनिकता (TRADITION AND MODERNITY)

16.1प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 परम्परा की अवधारणा
16.4 आधुनिकता की अवधारणा
16.5 आधुनिकीकरण
16 .6 भारत में आधुनिकता
16.6 सारांश
16.7 मुख्य शब्द
16.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
16.9 संदर्भ ग्रन्थ
16.10 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

भारत में सामाजिक परिवर्तन को गति प्रदान करने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण स्थान है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सबसे बड़ी विशेषता है- आधुनिकता या आधुनिकीकरण। जैसे-जैसे समाज में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास होता जाता है, समाज आधुनिकता की ओर अग्रसर होता जाता है। दूसरे शब्दों में, समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया गतिशील हो जाती हैं।

भारत आदिकाल से परम्परा-प्रेमी देश रहा है। यही कारण है कि लोग नवीनताओं को अपनाने में धीमे रहे है। फिर भी शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता, औद्योगीकरण तथा नगरीय जीवन के प्रति बढ़ती गतिशीलता ने लोगों को आधुनिकता की ओर

जाने के लिए प्रेरित किया है। भारत में सामाजिक परिवर्तन का यही सबसे बड़ा आधार है। प्रो. एम. एन. श्रीनिवास ने लिखा है कि 'भारत आज प्राचीन और नवीन के बीच संघर्ष का रणस्थल है।

16.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने की आवश्यकता को समझना।
2. संस्कृति और तकनीकी विकास के महत्व को पहचानना।
3. नई सोच अपनाने के साथ अपनी जड़ों और मूल्यों से जुड़े रहना।
4. सामाजिक, आर्थिक, और वैज्ञानिक परिवर्तनों के प्रति जागरूकता बढ़ाना।

16.3 परम्परा की अवधारणा (The Concept of Tradition)

परम्परा क्या है? इसका निश्चित और स्पष्ट उत्तर देना अत्यन्त ही कठिन है। परम्परा शब्द का 'सामाजिक विरासत' (Social heritage) से घनिष्ट संबंध है। सामाजिक विरासत में भौतिक और अभौतिक सभी वस्तुएँ आती हैं जो माता-पिता से, अपने सन्तानों को प्राप्त होती हैं। परम्परा की विभिन्न विद्वानों ने निम्न परिभाषाएँ दी है-

(1) रॉस- "विश्वास और विचार करने की विधि के हस्तान्तरण को ही परम्परा समझना है।"।

(2) गिन्सवर्ग- "परम्परा का अर्थ व्यक्तियों के विचारों, आदतों और प्रथाओं के योग से है जो एक समाज में पाई जाती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है।"2

(3) योगेन्द्र सिंह- "परम्परा समाज की एक सामूहिक विरासत है, जो कि सामाजिक संगठन के सभी स्तरों में व्याप्त होती है। उदाहरण के लिए मूल्य व्यवस्था, सामाजिक संरचना और व्यक्ति की संरचना।""

डॉ. योगेन्द्र सिंह ने परम्परा को सामाजिक विरासत कहा है। उन्होंने इस सामाजिक विरासत में निम्नलिखित तीन तत्वों को सम्मिलित किया है-

(a) मूल्य व्यवस्था, (b) सामाजिक संरचना, और

(c) व्यक्तित्व की संरचना

(4) ड्रेवर- "परम्परा कानून, प्रथा, कहानी तथा किवदन्ती का वह संग्रह है, जो मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।"*

समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। यह व्यवस्था अत्यन्त ही जटिल है। यह व्यवस्था एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। जब सामाजिक व्यवस्था एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है तथा जनता इसे अपनी आदत के रूप में स्वीकार कर लेती है, तो इसे ही परम्परा के नाम से जाना जाता है।

परम्परा की विशेषताएँ (Characteristics of Tradition)

परम्परा में निम्नलिखित विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं।

(1) परम्परा का सम्बन्ध सामाजिक विरासत से होता है,

(2) परम्परा का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण होता रहता है।

(3) परम्परा आर्शात्मक और भावनात्मक विशेषताओं को अपने में सम्मिलित करती है- जैस गुरूजनों की सेवा, बड़ों का आदर, अहिंसा, अध्यात्मवाद आदि।

(4) परम्परा का निर्वाह अनेक प्रथाओं और लोक-रीतियों के माध्यम से किया जाता है।

परम्परा का महत्व
(Importance of Tradition)

निम्न कारणों से परम्पराओं का सामाजिक जीवन में महत्व है-

(1) परम्पराओं से आत्मविश्वास और दृढ़ता की भावना का विकास होता है। यदि परम्पराएँ न हों तो हमें दूसरों का अनुकरण करना पड़े। इसके द्वारा अतीत की घटनाओं की स्मृतियाँ वर्तमान जीवन के सम्मुख लायी जाती है।

(2) परम्पराएँ सामाजिक संगठन, एकता और एकीकरण में सहायक होती हैं।

(3) परम्पराओं के माध्यम से सामाजिक विरासत की रक्षा की जाती है और इसको एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण किया जाता है।

(4) परम्पराओं के द्वारा भावनात्मक एकता का विकास होता है।

भारत के परम्परात्मक प्रतिमान
(Traditional Patterns of India)

भारत में आधुनिकता का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके परम्परागत प्रतिमानों का ज्ञान हो। परम्परागत प्रतिमानों की सहायता से ही आधुनिकता का बोध किया जा सकता है। भारतीय परम्परागत प्रतिमानों को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सामाजिक व्यवस्था- प्रत्येक समाज में सन्तुलित विकास के लिए, सामाजिक एकता की दृढ़ता के लिए सामाजिक संगठन की एक व्यवस्था होती है। भारत में भी इसी प्रकार की, सामाजिक व्यवस्था की स्थापना महान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की गई थी। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के प्रमुख आधारों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) वसुधैव कुटुम्ब या संयुक्त परिवार,

(b) समूहों का समाजशास्त्र या वर्ण-व्यवस्था, और

(c) व्यक्तित्व के विकास की योजना या आश्रम-व्यवस्था।

सामाजिक व्यवस्था के इन आधारों की सहायता से समाज में व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों, स्थितियों और कार्यों को निर्धारित करने का प्रयास किया गया था। इस सामाजिक व्यवस्था का उद्देश्य यह था कि भारतवर्ष में स्थायी सामाजिक संगठन का निर्माण किया जाय। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता पर अधिक बल दिया गया था। संयुक्त परिवार की सहायता से विश्वबन्धुत्व और पारस्परिक सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया था। वर्ण-व्यवस्था के महान सिद्धान्त का निर्माण सामाजिक स्तरीकरण और सामाजिक सामंजस्य को ध्यान में रखकर की गई थी। भारतीय जाति व्यवस्था में व्यवसायों को निश्चित कर दिया था, इससे सामाजिक संरचना को और भी स्थायित्व मिला था। आश्रम-व्यवस्था की सहायता

से मानव व्यक्तित्व के विकास की योजना प्रस्तुत की गई थी और मानव को सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया था। इस प्रकार परम्परात्मक भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संघर्ष को समाप्त करके सामाजिक सन्तुलन और इसके स्थायित्व की योजना प्रस्तुत की गई थी।

(2) आर्थिक व्यवस्था- प्रत्येक समाज में अर्थ-व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अर्थव्यवस्था का सामाजिक व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जहाँ तक भारतीय परम्परात्मक अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध है, इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) परम्परागत कृषि जिसका उद्देश्य व्यवसायिक काम और जीवनयापन अधिक था,

(b) गृह उद्योग, और (c) अदला-बदली व्यवस्था (Barter system)

भारतीय अर्थव्यवस्था परम्परात्मक होने के कारण यहाँ औद्योगीकरण का विकास नहीं हो सका। इसके साथ ही भारत में धन की अपेक्षा मोक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में आधुनिकता का विकास नहीं हो सका।

(3) सामाजिक मान्यताएँ भारतीय परम्परात्मक जीवन में सामाजिक मान्यताओं और सामाजिक मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन मान्यताओं के द्वारा व्यक्ति के कार्य प्रभावित होते है और व्यक्तियों को कार्यों के सम्पादन की प्रेरणा मिलती है। भारत की प्रमुख सामाजिक मान्यताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) पुरूषार्थ,

(b) संस्कार व्यवस्था, और

(c) पवित्र विवाह।

पुरूषार्थ को मानवीय जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना गया था और इसकी प्राप्ति विभिन्न आश्रमों के माध्यम से होती थी। संस्कारों की सहायता से व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया को गति मिलती थी। भारत में समाजीकरण का उद्देश्य सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं की रक्षा करना था। पवित्र विवाह के माध्यम

से वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने का प्रयास किया था। साथ ही व्यक्तिवाद की भावना को भी समाप्त करने का प्रयास किया गया था। इस प्रकार व्यक्ति के कार्यों और परम्पराओं में सामंजस्य स्थापित करके सामाजिक स्थिरता को बनाये रखने का प्रयास किया गया था।

(4) धार्मिक व्यवस्था भारतीय जीवन और दर्शन में जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया गया था, वे धर्म और अध्यात्म के महान् सिद्धान्तों पर आधारित थे। मोक्ष को मानव जीवन का अन्तिम मूल्य बताकर व्यक्ति को भौतिकता से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया गया था। भारतीय संस्कृति को 'धर्मप्राण' इसलिए कहा गया है कि जीवन से सम्बन्धित सभी मानव-मूल्य धर्म पर आधारित है। भारत में धर्म-वेत्ताओं ने परम्पराओं की रक्षा करने के लिए वेदों, उपनिषदों, पुराणों और स्मृतियों का सहारा लिया था। भारतीय संस्कृति की धार्मिक व्यवस्थाओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) धर्मप्राण संस्कृति,

(b) कर्मवाद और भाग्यवाद का समन्वय, और

(c) नैतिकता को सर्वोच्च स्थान।

भारतीय समाज में धर्म की सहायता के द्वारा समाज-विरोधी कार्यों पर रोक लगाने का प्रयास किया गया था।

16.4 आधुनिकता की अवधारणा *(The Concept of Modernity)*

आधुनिकता आधुनिक अवधारणा है। अनेक विद्वानों ने आधुनिकता की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। आधुनिकता की प्रमुख अवधारणाओं में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

(1) मनोविज्ञान में आधुनिकता की अवधारणा को प्राचीनता और नवीनता के सन्दर्भ में व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार आधुनिकता का तात्पर्य एक ऐसे दृष्टिकोण से है जो प्राचीन (Ancient) को नवीन (Modern)

के आधीन करता है। इसके साथ ही, आधुनिकता का तात्पर्य ऐसी अवधारणा से भी है, जो प्राचीनता को नवीनता के आधार पर सन्तुलित करता है। प्राचीनता को नवीनता के आधार पर सन्तुलित करने के निम्न दो आधार है-

(a) क्रान्तिकारी-क्रान्तिकारी तब होता है, जब पुरातन को नूतन के स्थान पर ऐसा प्रयुक्त किया जाता है कि पुरातन का स्थान न रहे।

(b) रूढ़िवादी- रूढ़िवादी परिवर्तन तब होता है, जब नवीनता का प्रयोग तो किया जाय, किन्तु साथ ही साथ प्राचीनता को भी महत्व प्रदान किया जाय।

(2) समाजशास्त्र में आधुनिकता एक बौद्धिक आन्दोलन है, जो 19वीं शताब्दी के अन्त और 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हुआ। प्रारम्भ में इसके अन्तर्गत कैथोलिक धर्मशास्त्र की पुरातन बातों को दार्शनिकोंने वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आज विद्वानों द्वारा ज्ञान की हर शाखाओं (कला, विज्ञान आदि) में दूसरा प्रयोग किया जा रहा है।

(3) आधुनिकता का तात्पर्य एक प्रकार के दृष्टिकोण से भी है, जिसमें मानव की वैचारिक स्वतन्त्रता (Ideo- logical Freedom) पर बल दिया जाता है। इसमें समाज को इस आधार पर संगठित किया जाता है, जिसमें सामन्तवादी व्यवस्था का स्थान न हो।

(4) साधारण अर्थों में आधुनिकता का तात्पर्य मनुष्य के सोचने और ज्ञान को प्रकट करने की शक्ति को विस्तृत करना तथा उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता को बढ़ाने से लगाया जाता है।

(5) आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में आधुनिकता ऐसे परिवर्तनों से सम्बन्धित है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतन्त्रताओं को प्रोत्साहन मिलता है।

(6) आधुनिकता का बौद्धिकता (Rationality) से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत मानव समाज में व्याप्त समस्याओं को धार्मिक और रूढ़िवादी आधारों पर न देखकर विवेक और ज्ञान की कसौटी पर देखा जाता है।

(7) अनेक विद्वान आधुनिकता को परम्परा की विरोधी अवधारणा मानते हैं। किन्तु इस प्रकार की विचारधारा एकांगी है। परम्परा और आधुनिकता अन्तः सम्बन्धित हैं।

(8) आधुनिकता एकत्ववाद (Homogeinity) से बहुतत्ववाद (Hetrogeinity) की ओर मानव की अनन्त यात्रा है। आधुनिकता मानव समाज की वह विकासवादी प्रक्रिया है, जिसमें नये ज्ञान और विचारो का समावेश होता जाता है।

(9) आधुनिकता का व्यावहारिक विज्ञानों (Applied Sciences) से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके निम्न चार लक्ष्य होते हैं-

(a) शक्ति,

(b) यौवन,

(c) कौशल, और

(d) विवेक।

विज्ञान इन तत्वों की खोज में मानव की सहायता करता है।

(10) अनेक विद्वान आधुनिकता और आधुनिकीकरण को पर्यायवाची मानते हैं, जबकि वास्तविकता इससे भिन्न है। आधुनिकीकरण में जिन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है. उन्हें निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) सभ्यता का विकास,

(b) साक्षरता का प्रसार, और (c) नगरीयता का ज्ञान।

किन्तु आधुनिकता की अवधारणा अत्यन्त ही व्यापक है। आधुनिकता संस्कृति के एक विशेष प्रकार की परिचालक है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के विचारों का सम्मान किया जाता है और प्रत्येक को अपने मतों को प्रतिपादन करने का अवसर दिया जाता है।

आधुनिकीकरण की परिभाषा देना अत्यन्त ही कठिन है। संक्षेप में आधुनिकीकरण को ग्रहण करने की प्रक्रिया को ही आधुनिकीकरण कहा जा सकता है। डॉ. . लर्नर ने आधुनिकीकरण को स्पष्ट परिभाषा तो नहीं दी है, किन्तु इसके विशेष लक्षणों की ओर संकेत किया है। ये लक्षण निम्नलिखित है-

(a) नगरीकरण,

(b) साक्षरता,

(c) सन्देशवाहन के साधनों का प्रभाव,

(d) मानवीय कुशलता में वृद्धि, और

(e) राजनैतिक जीवन का विकास।

आधुनिकता के कारण (Causes of Modernity)

• भारत में आधुनिकता की प्रक्रिया को जिन कारणों ने गति प्रदान की है, वे निम्नलिखित है-

(1) आधुनिकीकरण का पहला कारण औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) है। औद्योगिक जीवन में होने वाली क्रान्ति का परिणाम औद्योगीकरण और नगरीकरण के रूप में हुआ। इस प्रकार औद्योगीकरण और नगरीकरण ने भारत में आधुनिकता की प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया है।

(2) आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों ने भी भारत में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया है। सन्देशवाहन के साधनों के कारण विभिन्न देशों और संस्कृतियों से सम्पर्क के कारण आधुनिकता को प्रोत्साहन मिला है।

(3) नये विज्ञानों के जन्म और विकास के कारण भी आधुनिकता की प्रक्रिया को भारत में प्रोत्साहन मिला है। इसका कारण यह है कि आधुनिकता स्वयं में विज्ञान का उत्पादन है।

(4) प्रौद्योगिकी (Technology) के कारण जीवन जगत के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान प्राप्त हुआ तथा इससे विश्व की दूरी भी कम हुई है। इससे भारत में आधुनिकता का विकास हुआ।

(5) राजनैतिक जागरूकता का भी आधुनिकता के विकास में कम महत्व नहीं है। भारतीय स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रीय सिद्धातों के कारण राजनैतिक जागरूकता का विकास हुआ।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के कारण विश्व समाज और संस्कृति एक-दूसरे के सम्पर्क में आये है। इसके परिणामस्वरूप आधुनिकता का जन्म हुआ है।

16.5 आधुनिकीकरण (Modernization)

आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ही सापेक्ष (Relative) धारणाएँ हैं। इन दोनों को एक-दूसरे से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। आधुनिकता और प्राचीनता दोनों ही धारणाएँ अन्तः सम्बन्धित हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य मानव समाज की तीन अवस्थाएँ हैं। ये तीनों अन्तः सम्बन्धित है। आज हम जिसे वर्तमान कहते हैं, वही कल भूत के गर्त में छिप जाता है और जिस भविष्य की कल्पना करते हैं, वह हमारे सामने वर्तमान के रूप में प्रकट होता है। यह प्रकृति का अटल नियम है।

समाज निरन्तर गतिशील व्यवस्था है। इस गतिशीलता के कारण समाज में परिवर्तन होते हैं। सामाजिक परिवर्तन क्यों होते है? ऐसे कौन से कारण है जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते है? देश-काल और परिस्थितियों में भिन्नता के कारण परिवर्तन के अलग-अलग कारणों का जन्म होता है। किसी भी समाज में सामाजिक परिवर्तन का कोई एक कारण नहीं होता है। अनेक कारण मिलकर सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते है, आधुनिकीकरण (Modernization) सामाजिक परिवर्तन का एक ऐसा कारण है. जो भारतीय सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है।

आधुनिकीकरण (Modernization) का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आधुनिकता (Modernity) से है। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति और सामाजिक जीवन में आधुनिकता का प्रतिपादन किया जाता है। आधुनिकीकरण की अवधारणा अत्यन्त ही नई है। इस धारणा के माध्यम से भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

आधुनिकीकरण की परिभाषा
(Definition of Modernization)

आधुनिकीकरण सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की विद्वानों द्वारा अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। इन परिभाषाओं में कुछ निम्नलिखित है-

(1) श्रीनिवास 'किसी पश्चिम देश के प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्पर्क के कारण किसी गैर पश्चिमी देश में होने वाले परिवर्तनों के लिए प्रचलित शब्द है- आधुनिकीकरण।'

(2) इसेनडेट- 'ऐतिहासिक रूप से आधुनिकीकरण परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जो यूरोप जैसी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था की ओर उन्मुख हों।'
(3) प्रसाद- 'आधुनिकीकरण सदैव एक क्रान्तिकारी प्रक्रिया होती है, जिनमें वर्तमान संस्थागत ढाँचे को बेकार माना जाता है। इसकी सफलता समाज के आन्तरिक रूपान्तर की दशा पर निर्भर करती है।"

(4) लर्नर 'गैर-पश्चिमी समाजों पर किसी पश्चिमी अथवा अन्य समाज के प्रभाव के कारण इच्छानुरूप समाजशास्त्र थी.ए. प्रथम वर्ष उत्पन्न सामाजिक दशा को आधुनिकीकरण के नाम से सम्बोधित किया जाता है।'
(5) पे- 'आधुनिकीकरण एक नवीन मानसिक उपज की दशा है, जिससे मशीनों तथा प्रविधियों के उपयोग के लिए एक नई पृष्ठभूमि निर्मित होती है तथा सामाजिक सम्बन्धों का एक नया प्रारूप बनता है।"

आधुनिकीकरण की विशेषताएँ
(Characteristics of Modernization)

आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility)- आधुनिकीकरण और सामाजिक गतिशीलता अन्तः सम्बन्धित प्रक्रियाएँ है। सामाजिक गतिशीलता के अभाव में आधुनिकीकरण की कल्पना ही नहीं की जा सकती हैं। सामाजिक परिवर्तन प्रकृति की अनिवार्य घटना है। जिन समाजों में परिवर्तन की गति तीव्र रहती है तथा परिवर्तन को स्वीकार किया जाता है, उन समाजों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तुलनात्मक रूप से अधिक गतिशीलता प्राप्त होती है।

(2) पद और संगठन में परिवर्तन (Change in Status and Organization)- प्रत्येक समाज का निश्चित

सामाजिक संगठन होता है। यह सामाजिक संगठन सदस्यों के पदों का निर्धारण करता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के कारण परम्परात्मक सामाजिक संगठन समाप्त हो जाते है। इन समाजों में अर्जित पदों को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

(3) सामाजिक विभेदीकरण (Social Differentiation)- समाज का उिवकास हुआ है। यह उद्विकास सरल से जटिल की ओर (From Simple to Complex) हुआ है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से जहाँ एक ओर समाज में विभेदीकरण बढ़ता है, वहीं दूसरी ओर विभेदीकरण के कारण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विभेदीकरण आधुनिकीकरण की अनिवार्य दशा है।

(4) सामाजिक संरचना में परिवर्तन (Change in Social Structure) आधुनिकीकरण विभेदीकरण को प्रोत्साहित करता है, इसके कारण समाज में नये समूहों, वर्गों और संस्थाओं का जन्म और विकास होता जाता है। समाज में नये वर्गों, संस्थाओं और समूहों के जन्म तथा विकास का परिणाम यह होता है कि सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो जाता है।

(5) औद्योगीकरण तथा नगरीकरण (Industrialization and Urbanization) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उन समाजों से अधिक मान्यता प्रदान की जाती है, जो औद्योगीकरण तथा नगरीकरण से प्रभावित होते हैं। आधुनिकीकरण का परिणाम ही औद्योगीकरण तथा नगरीकरण होता है। जिन समाजों में आधुनिकीकरण को स्वीकार किया जाता है, वहाँ औद्योगीकरण और नगरीकरण अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं।

(6) नई विचारधारा का जन्म (Origin of New Ideologies) आधुनिकीकरण किसी भी समाज में वैचारिक क्रान्ति को जन्म देता है। इसका परिणाम यह होता है कि नई-नई विचारधाराओं का जन्म होता है। ये नई विचारधाराएँ सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित होती है। ये नई विचारधाराएँ समस्याओं को सामने लाती है,

जिससे समाज-सुधार का मार्ग प्रशस्त होता है।

आधुनिकीकरण के कारक (Factors of Modernization)

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गतिशीलता क्यों मिलती है? वे कौन-सी परिस्थितियाँ है, जो आधुनिकीकरण को आगे बढ़ाती है? संक्षेप में आधुनिकीकरण

के कौन से कारण है? आधुनिकीकरण किसी एक परिस्थिति का परिणाम नहीं है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने वाले कारक निम्न है

(1) बुद्धिवाद (Rationalism) आधुनिकीकरण समाजों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में बुद्धिवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। आधुनिक समाज की विचारधारा का केन्द्र उसकी बौद्धिकता और तार्किक प्रकृति है। आज मानवीय विचारधारा में बौद्धिकता को जितना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है उतना मूल्यों, भावनाओं और परम्पराओं को नहीं। मानव विचारधारा में बुद्धि प्रभाव के कारण भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है। अगर बुद्धिवाद को आधुनिकीकरण का वाहक कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(2) भौतिक परिवर्तन (Physical Change)- भौतिक परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है। दिन और रात, ठण्डी और गर्मी ये प्रकृति के आदेश से अपने आप होते रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन का स्वाभाविक परिणाम सामाजिक परिवर्तन के रूप में होता है। सामाजिक परिवर्तन आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करते है। संक्षेप में भौतिक जगत् में होने वाले परिवर्तन भी किसी समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

(3) प्रतिष्ठा की अनुभूति (Sense of Prestige) वर्तमान समय के मानव के सामने सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है- समाज में उसकी प्रतिष्ठा। परम्परात्मक समाज मानव प्रतिष्ठा की विवेचना परम्परात्मक आधारों पर करते थे। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उनके मापदण्ड पर्याप्त निश्चित थे। किन्तु आज स्थिति कुछ उलटी ही नजर आ रही है। पैन्ट-शर्ट उतनी ही प्रतिष्ठा के प्रतीक है, जितना मानव की चन्द्र-यात्रा। रूस अगर मंगल पर जाने की तैयारी कर सकता है, तो ऐसी तैयारी करना अमेरिका की प्रतिष्ठा का सवाल है। प्रतिष्ठा की अनुभूति के कारण भी आधुनिकता की प्रक्रिया को गति मिलती है।

(4) धन का महत्व (Importance of Money) धन को यदि वर्तमान सामाजिक जीवन की धुरी कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। समाज में धन के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। परम्परात्मक समाज में धन

जीवनयापन का साधन था, किन्तु अब धन को मानव सुख और संवृद्धि का आधार माना जाने लगा है। धनी या निर्धन होना भाग्य की बात नहीं रह गई है। धन कमाने को भी बुरा नहीं माना जाता है। चाहे उसके लिए किसी भी साधन को क्यों न अपनाया जाय। वर्तमान सामाजिक जीवन में साध्य महत्वपूर्ण है, साधन नहीं। इस प्रकार के समाज में नई आर्थिक उपलब्धियों को स्वीकार किया जाता है। उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाता है तथा औद्योगिक विकास की नई सम्भावनाओं की खोज की जाती है। इस सबका स्वभावतः परिणाम यह होता है कि आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

(5) सामाजिक सम्पर्क (Social Contact)- सामाजिक सम्पर्क आधुनिक समाज को मौलिक विशेषता है। आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों के विकास के कारण दुनिया की दूरी घटती जा रही है। मानव समाज की भौतिक दूरी समाप्त होती जा रही है। सामाजिक सम्पर्क के कारण एक समुदाय दूसरे समुदाय के आचार-विचार और रहन-सहन की विधियों को अपनाता है। विभिन्न संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता है। सामाजिक विरासत का एक स्थान से दूसरे स्थान को हस्तान्तरण होता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गतिशीलता मिलती है।

(6) सामाजिक समस्यायें (Social Problems) प्रत्येक समाज परम्पराओं को विकसित करता है। परम्पराओं के द्वारा सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है। सामाजिक परिवर्तन के कारण परम्पराएँ अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल हो जाती है। परम्पराओं की यह असफलता सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। प्रत्येक समाज इन समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है। समस्याओं के समाधान के प्रयास भी आधुनिक विचार और जीवन-पद्धति को जन्म देते हैं। इसके परिणामस्वरूप भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है।

आधुनिकीकरण के परिणाम (Results of Modernization)

मानव समाजों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सामाजिक परिवर्तन की गति निरन्तर है, जिसके कारण आधुनिकीकरण को बल मिलता है। किसी भी समाज में आधुनिकीकरण के क्या परिणाम होते

हैं। समाज की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों विभिन्न सामाजिक परिणामों को प्रोत्साहित करती हैं। फिर भी आधुनिकीकरण के कुछ सामान्य परिणाम होते हैं, जो सभी सभाओं में स्पष्ट परिलक्षित होते है। आधुनिकीकरण के प्रमुख परिणामों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सामाजिक परिणाम (Social Results) आधुनिकीकरण के प्रमुख सामाजिक परिणाम निम्न है-

(a) वृहद समाज (Mass Society)- आधुनिकीकरण वृहद् समाजों को जन्म देता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया उन्हीं समाजों में गतिशील होती है, जो आधुनिक होते हैं तथा जो समाज के परम्परागत आधारों कोत्याग चुके होते हैं। आधुनिकीकरण कि प्रक्रिया जहाँ वृहद् समाजों को जन्म देती है, वहीं वृहद समाज आधुनिकीकरण समाजशास्त्र : बी.ए. प्रथम वर्ष की प्रक्रिया को और आगे ले जाते हैं।

(b) अर्जित पद (Achieved Status) आधुनिकीकरण के कारण जहाँ एक ओर परम्परात्मक प्रदत्त पदों (Ascribed Status) के महत्व में कमी होती है, वहीं दूसरी ओर अर्जित पदों के महत्व में वृद्धि होती है। जैसे- जैसे समाज आधुनिकीकृत होता जाता है, अर्जित पदों के महत्व में वृद्धि होती जाती है।

(c) द्वैतीयक संगठन (Secondary Organization) आधुनिकीकरण प्राथमिक समूहों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसके कारण उनका संगठन शिथिल हो जाता है। प्राथमिक समूहों के संगठन की यह शिथिलता उन्हें विघटन की ओर मोड़ देती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्राथमिक समूहों के महत्व तथा प्रभाव में कमी आ जाती है। इन प्राथमिक समूहों का महत्व कम हो जाने से उनके स्थान पर द्वैतीयक संगठनों का निर्माण होने लगता है। इस प्रकार आधुनिकीकरण के कारण प्राथमिक समूहों के महत्व में कमी आती है और उनके स्थान पर द्वैतीयक समूहों के महत्व में वृद्धि होती है।

(d) समझौतेवादी सम्बन्ध (Contractual Relations)- आधुनिकीकरण के स्थान पर मूल्यात्मक और भावनात्मक सम्बन्धों में शिथिलता का विकास होता है और इनके स्थान पर समझौतावादी सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। व्यक्तियों

के सम्बन्धों में समझौता विशेष हित और उद्देश्यों से प्रेरित होता है। जैसे ही इन उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है, समझौतेवादी सम्बन्ध अपने आप ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप समझौतेवादी सम्बन्ध विकसित होते हैं।

(e) लघु परिवार (Small Family)- आधुनिकीकरण का सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ है कि परम्परात्मक संयुक्त परिवारों की संरचना में परिवर्तन हो रहा है और उसके स्थान पर व्यक्तिगत परिवारों का विकास होता जा रहा है। व्यक्तिगत परिवार आधुनिक जीवन के प्रतीक बनते जा रहे हैं। उन व्यक्तिगत परिवारों को आधुनिक कहा जाता है, जिनमें सन्तानों की संख्या कम होती है।

(f) वैवाहिक स्वतन्त्रता (Marital Freedom)- वैवाहिक क्षेत्र में भी आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा है। विवाह के उद्देश्यों में परिवर्तन हो रहा है। आधुनिक विवाह धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं किये जाते है। परिवार नियोजन की अवधारणा ने पुत्र की अनिवार्यता को भी कम कर दिया है। यौन सम्बन्ध और इससे सम्बन्धित शान्ति विवाह के आधार बनते जा रहे हैं। यही कारण है कि प्रेम विवाह को आधुनिकता और सभ्यता का प्रतीक माना जाने लगा है। देर से विवाह करना आधुनिक सामाजिक जीवन का अंग बनता जा रहा है। विवाह न करना और अपने को अविवाहित बताने की प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(g) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (Personal Freedom)- आधुनिकीकरण ने समूहवाद को समाप्त कर दिया है और उनके स्थान पर व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन प्रदान किया है। इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में वृद्धि होती जा रही है। जीवन के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता आधुनिक सामाजिक जीवन का अंग बनता जा रहा है।

(2) सांस्कृतिक परिणाम (Cultural Results) आधुनिकीकरण ने व्यक्ति की संस्कृति और उसके सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया है। आधुनिकीकरण के कारण सांस्कृतिक जीवन पर जो प्रभाव पड़े हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) जीवन का व्यवहारिक दृष्टिकोण (Practical view of Life)- आधुनिकीकरण ने आदर्श के स्थान पर यथार्थ को प्रोत्साहित किया है। आधुनिक मानव कल्पना-लोक में नही रहना चाहता है। जीवन में जो यथार्थ
है, व्यवहारिक है, उसी को महत्व प्रदान किया जाता है।

(b) भौतिक संस्कृति (Material Culture) जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों में निरन्तर कमी आ रही है और उसका स्थान भौतिकता लेती जा रही है। यही कारण है कि भौतिक संस्कृति को जीवन में अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

(c) वृहद संस्कृति (Mass Culture) आधुनिकीकरण ने वृहद संस्कृति को विकसित किया है। व्यक्ति उस नदी की बाढ़ में बहते हुए उस तिनके की भाँति हो गया है, जो किनारा प्राप्त करना चाहता है। लहरो के थपेड़े के कारण वह ऐसा करने में अपने को असमर्थ पाता है। घर की रसोई में बना भोजन होटल की तुलना में फीका लगता है। होटल की चाय में अच्छा टेस्ट और 'फ्लेवर' मिलता है। व्यक्ति काफी हाउस के टेबिल में एक कप काफी और सिगरेट के सहारे घंटों समय व्यतीत कर सकता है। वह सिगरेट के कश से निकलते हुए धुएँ से अपनी जिन्दगी की तुलना करता है, जिसे हवा के थपेड़े मनमानी दिशाओं की ओर ले जाते हैं। तुलनात्मक जीवन और संस्कृति को महत्व प्रदान किया जाता है।

(d) परिवर्तन का महत्व (Importance of Change) - 'जस्ट फार चेंज' (Just for Change) आधुनिक संस्कृति का अंग बनता जा रहा है। परिवर्तन को जीवन के साथ जोड़ा जाने लगा है। परिवर्तन को महत्व प्रदान किया जाता है, भले ही उसका तार्किकता और बौद्धिकता से कोई सम्बन्ध न हो।

(c) सम्भावनाओं की जागरूकता (Consciousness of Possibilities) आज व्यक्ति के सांस्कृतिक जीवन में जागरूकता का विकास होता जा रहा है। परम्परात्मक समाज की संस्कृति में व्यक्ति की क्रियाओं का निर्धारण सम्भावनाओं और असम्भावनाओं को ध्यान में रखकर किया जाता था। किन्तु वर्तमान समाज के लिए कुछ भी असम्भव नहीं रह गया है। समुद्र पार करना तो

दूसरी बात है, आज का मानव चन्द्रमा की यात्रा भी कर चुका है तथा वह इससे भी आगे की तैयारी कर रहा है।

(3) आर्थिक परिणाम (Economic Results) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक क्षेत्रों में भी प्रभावित किया है। इस प्रकार आर्थिक परिणाम निम्नलिखित है-

(a) औद्योगीकरण (Industrialization)- आधुनिकीकरण के कारण औद्योगीकरण का विकास हुआ है। परम्परात्मक उद्योगों के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण विकसित हो गया है और उन्हें हेय की दृष्टि से देखा जा सकता है। गृह-उद्योग समाप्त होते जा रहे हैं और उनके स्थानों पर विशाल उद्योगों की स्थापना हो रही है। इसका स्वभाविक परिणाम यह हो रहा है कि औद्योगीकरण का विकास होता जा रहा है।

(b) नगरीकरण (Urbanization)- नगरीकरण भी आधुनिकीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण आर्थिक परिणाम है। शिक्षा, उद्योग, आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों में वृद्धि के कारण नगरीकरण का विकास होता जा रहा है। नगरों में निवास करना आधुनिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है तथा इसे सभ्यता और प्रतिष्ठा के साथ जोड़ा जाने लगा है।

(c) राष्ट्रीयकरण (Nationalization)- उद्योगों में राष्ट्रीयकरण की प्रकृति को प्रोत्साहन मिल रहा है। राष्ट्रीयकरण को आधुनिक सभ्यता का प्रतीक माना जाता है तथा इसे आर्थिक विकास की कुंजी कहा जाता है।

(d) बड़े पैमाने पर उत्पादन (Large Scale Production)- प्रारम्भिक समाजों में उत्पादन उपभोग के लिए किया जाता है। आधुनिक समाजों में उत्पादन का उद्देश्य उपभोग न होकर अधिक से अधिक लाभ कमाना है। व्यापार आधुनिक औद्योगिक उत्पादन का प्रमुख उद्देश्य है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन विशाल पैमाने पर किया जाता है।

(e) विशेषीकरण (Specialization)- विशेषीकरण आधुनिक औद्योगिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। औद्योगिक श्रमिकों को विशेष प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है और इस प्रशिक्षण के अनुसार ही उन्हें कार्य दिये जाते हैं। विशेषीकरण के

अभाव में आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था को संचालित करना अत्यन्त ही कठिन होता है।

(f) आर्थिक न्याय (Economic Justice)- आधुनिकीकरण ने आर्थिक जगत् में न्याय के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

(4) राजनैतिक परिणाम (Political Results)- राजनैतिक क्षेत्र में भी आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा है। आधुनिकीकरण के राजनैतिक प्रभावों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) कार्यों में वृद्धि (Increase in Functions) आधुनिक राज्य के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि है। इसका कारण यह है कि आधुनिकीकरण ने राज्य को कल्याणकारी राज्य (Welfare State) घोषित किया है। इससे राज्य को अन्य अनेक कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है।

(b) धर्म निरपेक्ष आधार (Secular Basis) आज राज्यों को धर्म और सम्प्रदायों के आधार पर कोई खास महत्व प्रदान नहीं किया जाता है। इसका कारण यह है कि राज्य धर्म निरपेक्ष होते जा रहे हैं। धर्म निरपेक्षता आधुनिक राज्य व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है।

(c) प्रजातान्त्रिक व्यवस्था (Democratic System) आज राज्य शासन की सामन्तवादी व्यवस्थाएँ समाप्त होती जा रही है। इसका कारण यह है कि आधुनिकीकरण में प्रजातन्त्र को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है।(d) समानता (Equality)- समानता भी आधुनिक जीवन का महत्वपूर्ण नारा है। राजनैतिक क्षेत्र में समाजशास्त्र बी.ए. प्रथम वर्ष धर्म, लिंग, जाति और सम्प्रदाय के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जाता है।

(e) अनौपचारिक कानून (Foronal Laws) परम्परात्मक समाजों का संचालन अनौपचारिक कानूनों द्वारा होता था, जिसमे प्रथाओं, परम्पराओं, धर्म और परिवार का महत्व प्रदान किया जाता था, किन्तु आधुनिकीकरण ने औपचारिक कानूनों को विकसित किया है, जिसमें कानून, पुलिस और न्यायालय प्रमुख है।

(f) नौकरशाही (Bureaucracy)- आधुनिकीकरण आधुनिक राजनैतिक जीवन में नौकरशाही को विकसित करता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिकीकरण का जीवन के हर क्षेत्र में प्रभाव पड़ा है।

16.6 भारत में आधुनिकता (*Modernity in India)*

भारतीय समाज और संस्कृति की परम्परात्मक विवेचना के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि आधुनिकता के क्षेत्र में भारत कहाँ तक अग्रसर हुआ है। इस दृष्टि से भारत में आधुनिकता के अध्ययन को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) भारत में आधुनिकता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ पर भी जीवन के हर क्षेत्र से सम्बन्धित नवीन विचारों और अनुसंधानों को तीव्रता से अपनाया जा रहा है। इससे जीवन की पद्धतियों और दृष्टिकोणों में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। अनुसंधाना

(2) भारत में आधुनिकता की दूसरी विशेषता शिथिल सामाजिक व्यवस्था है। परम्परात्मक सामाजिक व्यवस्था समाप्त होती जा रही है और नवीन व्यवस्थाओं का उदय होता जा रहा है। संयुक्त परिवार विघटन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। वर्ण और आलम व्यवस्था को कम महत्व दिया जाता है। जाति-प्रथा समाप्त होती जा रही है और नये वर्गों का शीघ्रता से विकास हो रहा है। तलाक, बाल-विवाह, दहेज और विधवा-विवाह से सम्बन्धित सामाजिक मान्यताएँ भी शिथिल होती जा रही है।

(3) परम्परात्मक कृषि-व्यवस्था में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। कृषि का व्यवसायीकरण और यन्त्रीकरण (Com- mercialization and Mechanization) होता जा रहा है। कृषि के लिये नई और सुधरी हुई विधियों को प्रयोग में लाया जाने लगा है। आज का भारतीय किसान भाग्यवादी कम और कर्मवादी अधिक हो गया है। आधुनिकता के कारण कृषि कार्यों को महत्ता प्रदान की जाने लगी।

(4) गृह उद्योग समाप्त होते जा रहे है और इनके स्थान पर औद्योगीकरण की प्रक्रिया अधिक गतिशील हो गई। इसके दो परिणाम हुए हैं-

(a) नगरीकरण को प्रोत्साहन, (b) नगरीकरण के परिणामस्वरूप नगरीय समस्याओं में वृद्धि।

(5) पवित्र विवाहों के स्थान पर विवाह में समझौते को अधिक महत्व प्रदान किया जाने लगा है। आधुनिक भारतीय समाज में अन्तर्जातीय विवाहों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता है।

(6) जीवन से लेकर मृत्यु तक होने वाले संस्कारों को अपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है और इन्हें पिछड़ेपन की निशानी माना जाता है।

(7) स्वी-शिक्षा, सह-शिक्षा, प्रौढ़-शिक्षा आदि में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इससे सामाजिक जागरूकता का विकास होता है। साथ ही शिक्षा के परिणामस्वरूप दृष्टिकोणों में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के कारण आधुनिकता के विकास में मदद मिलती है।

(8) धर्म के महत्व में निरन्तर गिरावट आती जा रही है। इससे धर्म-निरपेक्षीकरण की भावना का विकास होता जा रहा है।

(9) फैशन के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस वृद्धि के परिणामस्वरूप पहनावे, रहन-सहन, खान पान तथा व्यवहारों आदि में आधुनिकता का विकास होता जा रहा है।

(10) धन (Money) के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। आधुनिक भारतीय व्यक्ति मोक्ष की अपेक्षा धन को अधिक महत्व प्रदान करता है।

(11) समाज कल्याण कार्यों को सहायता से दलित और पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने का निरन्तर प्रयास किया
जा रहा है। इससे समाज के सभी वर्गों में समानता, स्वतन्त्रता और न्याय की भावनाओं का विकास होता
जा रहा है।

(12) समूहवाद की भावनाएँ निरन्तर समाप्त होती जा रही हैं और इनके स्थान पर व्यक्तिवादी भावनाएँ और विचार विकसित होते जा रहे हैं।

(13) व्यक्ति के आचार-विचार और व्यवहारों में निरन्तर औपचारिकता का विकास होता जा रहा है।

परम्परा और आधुनिकता में अंतर (Difference between Tradition and Modernity)

परम्परा और आधुनिकता को दूसरे शब्दों में प्राचीनता और नवीनता कहकर सम्बोधित किया जाता है। अवधारणाओं से स्पष्ट है कि ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न है। इन दोनों में प्रमुख अन्तर निम्न है-

(1) परम्परा की प्रकृति स्थायी होती है, जबकि आधुनिकता में परिवर्तनशीलता के तत्व पाए जाते हैं।

(2) परम्पराओं का सम्बन्ध भूतकालीन परिस्थितियों से होता है, जबकि आधुनिकता का सम्बन्ध वर्तमान से होता है।

(3) परम्पराएँ आदर्शात्मक होती है, जबकि आधुनिकता का सम्बन्ध यथार्थ और फैशन से होता है।

(4) परम्परा और आधुनिकता दोनों का ही सम्बन्ध मानव जीवन की व्यवस्था से होता है। इन दोनों में अन्तर मात्र इतना है कि परम्पराओं की अवहेलना को जहाँ दण्डनीय अपराध समझा जाता है, वहीं आधुनिकता की अवहेलना का सम्बन्ध किसी दण्ड आदि से नहीं है।

(5) परम्पराएँ रूढ़िवादी होती है, जबकि आधुनिकता का सम्बन्ध प्रगतिशील दृष्टिकोण से होता है।

(6) परम्पराएँ सामाजिक अभिव्यक्ति का माध्यम होती है, जबकि आधुनिकता में आत्म-प्रदर्शन पाया जाता है।

(7) परम्पराओं का सम्बन्ध मानव संस्कृति के अभौतिक पक्ष से होता है, जबकि आधुनिकता का सम्बन्ध मानव संस्कृति के भौतिक पक्ष से होता है।

(8) सामान्य अवस्थाओं में परम्पराओं की पुनरावृत्ति नहीं है, जबकि आधुनिकता का सम्बन्ध पुनरावृत्ति से है।

(9) परम्परा एवं आधुनिकता दोनों में ही परिवर्तन होता है, परम्पराओं में परिवर्तन की गति धीमी रहती है, जबकि आधुनिकता में परिवर्तन की गति तीव्र होती है।

स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्न :

1. विरासत के तीन तत्वों- मूल्य व्यवस्था, सामाजिक संरचना और व्यक्तित्व की संरचना का उल्लेख निम्न में से किसने किया है-

(अ) गिडिंग्स

(ब) योगेन्द्र सिंह

(स) सोवरिन

(द) आलपोर्ट

2. निम्न में से कौन-सी विशेषता परम्परा की नहीं है-

(अ) परम्परा सामाजिक विरासत से सम्बन्धित होती है,

(ब) परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है।

(स) परम्परा का स्वरूप आधुनिक होता है

(८) परम्परा का निर्वाह अनेक प्रथाओं और लोकरीति के माध्यम से किया जाता है।

3. निम्न में से कौन-सा कथन सत्य है-

(अ) परम्पराओं के द्वारा भावात्मक एकता का विकास होता है।

(ब) परम्पराएँ सामाजिक संगठन में सहायक होती है।

(स) परम्परा से आत्मविश्वास और दृढ़ता की भावना का विकास होता है।

(द) उपर्युक्त सभी कथन सत्य है।

16.7 सारांश

"परंपरा और आधुनिकता" एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच के संबंधों को समझने और इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने पर केंद्रित है। इस अध्याय में लेखक ने परंपरा को हमारे इतिहास, संस्कृति, और मूल्य-आधारित जीवन का प्रतीक माना है। वहीं, आधुनिकता को वैज्ञानिक सोच, तकनीकी विकास और नए सामाजिक दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित किया गया है।

अध्याय इस बात पर जोर देता है कि परंपरा और आधुनिकता विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। परंपराओं को संरक्षित करते हुए आधुनिकता को

अपनाना एक स्वस्थ समाज के विकास के लिए आवश्यक है। यह अध्याय हमें अपने मूल्यों, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखते हुए, प्रगतिशील विचारों और नई तकनीकों के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

16.8 मुख्य शब्द

1. परंपरा: समाज में पूर्वजों से प्राप्त रीति-रिवाज, मूल्य, और संस्कार।
2. आधुनिकता: नवीन विचारों, प्रगतिशील सोच, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्वरूप।
3. संतुलन: दो या अधिक चीजों के बीच सामंजस्य स्थापित करना।
4. संरक्षण: किसी चीज को सुरक्षित रखना और उसका संरक्षण करना।
5. धरोहर: पूर्वजों से प्राप्त विरासत या संपत्ति।
6. प्रगतिशील: आगे बढ़ने या विकास करने की सोच रखने वाला।

16.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (ब), 2. (स), 3. (द)।

16.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. रामविलास शर्मा - परंपरा और आधुनिकता, 1995।
2. डॉ. सूर्यनाथ त्रिपाठी - भारतीय संस्कृति और आधुनिक समाज, 2002।
3. डॉ. विद्यानिवास मिश्र - संस्कृति और सभ्यता के संदर्भ, 1987।
4. जवाहरलाल नेहरू - डिस्कवरी ऑफ इंडिया (भारत एक खोज), 1946। 16.11

16.11 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिये महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examinations)

(अ) निवन्यात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.संक्षेप में आधुनिकीकरण की अवधारणा को समझाइए।

Explain in brief the concept of Modernization.

2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(अ) परम्परा, (ब) आधुनिकता,

(स) आधुनिकीकरण।

Write short notes on the following-

(a) Tradition

(b) Modernity

(c) Modernization

3. 'आधुनिकता और परम्परा अन्तः सम्बन्धित अवधारणाएँ है।' विवेचना कीजिए।

"Tradition and Modernity are inter-related concepts." Discuss.

4.आधुनिकीकरण की व्याख्या कीजिए। आधुनिकीकरण के क्षेत्र लिखिए।

Discuss Modernization. Write the fields of Modernization.

5. भारत में आधुनिकीकरण के कारणों की विवेचना कीजिए।

Discuss the causes of Modernization in India.

6. भारत में परम्परा और आधुनिकता के प्रतिमानों की विवेचना कीजिए।

Discuss the patterns of Tradition and Modernity in India.

7.परम्परा की अवधारणा की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

Discuss in brief the concept of Tradition.

8. परम्परा और आधुनिकता में भेद कीजिए।

Differentiate between Tradition and Modernity.

(ब) लघुउत्तरीयप्रश्न (Short Answer Questions)

1. डॉ. योगेन्द्र सिंह द्वारा दी गई परम्परा की परिभाषा लिखिए।

Define Tradition as given by Dr. Yogendra Singh.

2. परम्परा का महत्वलिखिए।

Write importance of Tradition.

3. आधुनिकता क्या है?

What is Modernity.

4. 'भारत में आधुनिकता' पर 250 शब्द लिखिए।

Write 250 words on Modernity in India.

5. आधुनिकीकरण पर प्रो. एम. एन. श्रीनिवास के विचार लिखिए।

Write Prof. M. N. Srinivas view on Modernity.

6.क्या भारत आधुनिक हो रहा है? समझाइए।

Is India being modern. Explain.

7.आधुनिकता के सामाजिक लक्षण लिखिए।

Write social characteristics of Modernity.

8.भारत में आधुनिकता के परिणाम लिखिए।

Write impact of Modernity in India.

(स) वस्तुनिष्ठप्रश्न (Objective Questions)

1. भारत मे सामाजिक परिवर्तन को गति प्रदान करने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण स्थान है।' यह कथन कि सका है-

(अ) श्रीनिवास (ब) टी. बी. बाटोमोर (स) मैकाइवर एवं पेज (द) रूडयार्ड किपलिंग

2.विज्ञान औरप्रौद्योगिकी की सबसे बड़ी विशेषता निम्न में से क्या है-

(अ) भौतिकीकरण (ब) औद्योगीकरण

(स) आधुनिकीकरण (द) समाजीकरण

3.'भारत आज प्राचीन और नवीन के बीच संघर्ष कारण स्थल है।' यह कथन किसका है -

(अ) सेठना (ब) मैलिनोवास्की

(स) एम. एन. श्रीनिवास (द) किम्बालयंग

4.परम्परा घनिष्ठ रूप से निम्न में से किससे सम्बन्धित है-

(अ) सामाजिक विरासत (ब) सामाजिक विभेदीकरण

(स) सामाजिक परिवर्तन (द) सांस्कृतिक विलम्बन

5. "विश्वास और विचार करने की विधिं के हस्तान्तरण को ही परम्परा समझना।" परम्परा की उपर्युक्त परिभाषा है-

(अ) गिन्सबर्ग (ब) रॉस

(स) योगेन्द्र सिंह (द) ड्रेवर

-6. 'Social Psychology' पुस्तक के लेखक हैं-

(अ) गिन्सबर्ग (ब) योगेन्द्र सिंह

(स) श्रीनिवास (द) रॉस

7. परम्परा को समाज की सामूहिक विरासत निम्न में से किस समाजशास्त्री ने कहा है-

(अ) ड्रेवर (ब) योगेन्द्र सिंह

(स) गिन्सबर्ग (द) सदरलैण्ड

उत्तर- 1. (ब), 2. (स), 3. (स), 4. (अ), 5. (ब), 6. (द), 7. (ब),